लहरों के तीर

(सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास)

डॉ० वसन्त कुमार

प्रकाशक

अरुणोदय प्रकाशन

राँची

प्रकाशक :
अरुणोदय प्रकाशन
१९/३, विश्वविद्यालय आवास
बरियातू, रांची–८३४००९
(बिहार)

प्रथम संस्करण : फरवरी, १९८५

पुस्तकालय संस्करण
मूल्य : एक सौ दस रुपये

सामान्य संस्करण
मूल्य : पैंसठ रुपये

आवरण :
श्याम कुमार चित्रकार

मुद्रक :
जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लिमिटेड
गोलघर, वाराणसी–२२१००१

LAHARON KE TEER First Edition 1985
Novel by Dr. Basant Kumar Price Rs One hundred ten.

शंकरस्वरूप गुरुदेव
श्रीमत्परमहंस श्री परमज्ञानानन्द पुरी जी महाराज
की जलरूपा मूर्ति को
सादर, सभक्ति
जिससे
कोई सुधा, कोई कमल
प्रसूत होते हैं

—वसन्त कुमार

खुली चिट्ठी कमल के नाम

प्रिय बन्धु,
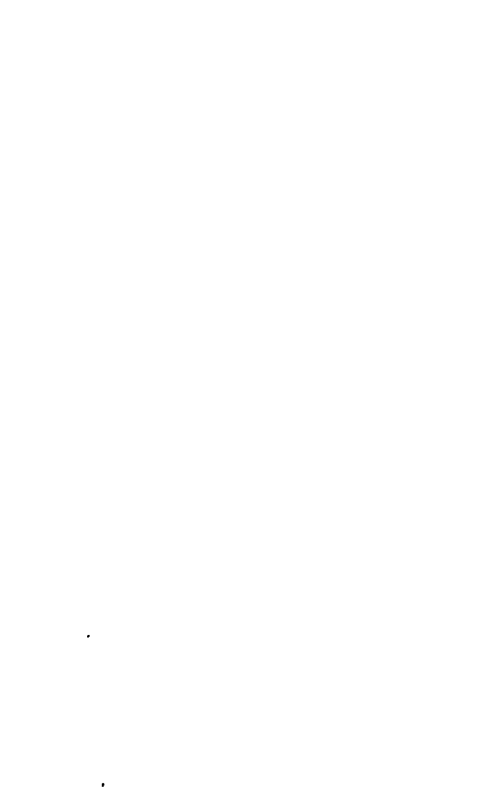
आज से कई साल पहले अचानक एक दिन तुमसे मेरी मुलाकात हो गयी थी। पता नहीं, हम दोनों ने एक दूसरे में क्या कुछ देखा कि थोड़े ही दिनों में एक प्राण दो शरीर हो गये। फिर तो तुम्हारे ऊबड़-खाबड़ जीवन की मायूस तस्वीरों के साथ अपनत्व बढ़ता ही गया। अनजाने ही मेरी ठंढी कलम कुछ कह डालने की आग से तड़प उठी। इस कलम को तब क्या पता था कि वह अचानक जिन रेखाओं को आँकने चली है, वह खुद भी कहीं न कहीं उन्हीं के ताने-बाने से सर्जित हुई है। फलतः इस तथाकथित परकीय कथा का सहृदय आलम्बन पाकर स्वयं उसी की अस्मिता तृप्त होती चली गयी। तुम्हारा माध्यम मेरी कलम की बेजबान पीड़ाओं को स्वर देता रहा। मुझे अच्छी तरह याद है, १९५६-५७ के दिन थे वे। अभी टटके हो पटने के बी० एन० कालेज में प्राध्यापक होकर आया था। पार्क रोड, कदमकुआँ में रहने का अस्थायी ठौर मिल गया था। उन्हीं दिनों तुम्हारी कथा कहने के बहाने इस कलम की अपनी जिन्दगी शुरू हुई। तब से लेकर आजतक लगभग २६ वर्ष गुजर चुके हैं। इस लम्बी अवधि में तुम्हारे कई चित्र बने हैं, कई बिगड़े भी हैं। ठीक उसी तरह जैसे यह कलम खुद भी बनती-बिगड़ती आई है। मैं नहीं जानता, इस कलम ने तुम्हारे साथ कितना न्याय किया है। फिर भी, विश्वास करो, तुम्हें पूरा-पूरा कह देना ही इसका वांछित लक्ष्य रहा है। आज, छब्बीस वर्षों के बाद, पुरानी फाइल में बन्द तुम्हारी कहानी छपने जा रही है। आम आदमी की जिन्दगी में एक शताब्दी का चतुर्थांश कम समय नहीं होता। इतने समय में आदमी क्या से क्या हो जाता है। मैं नहीं जानता, आज के अपने बदले हुए परिवेश, बदली हुई मानसिकता में तुम्हें अपनी ही कथा कितनी अजनबी, कितनी अनकही लगेगी। जब इस कलम की स्याही हो नहीं रीत पायी तो तुम कैसे रीत जाओगे कमल? इसीलिए अपनी कहानी के अन्त को असलियत मत समझ लेना। पहाड़ी झरने की तरह तुम्हारी कहानी चट्टानों से बन्द कर दिये जाने पर भी अपने लिए नया रास्ता उरेह लेगी, चलती ही रहेगी। पता नहीं, कहाँ तक, किस क्षितिज के धुंधलके तक। तुम इसे पहचानो,

न पहचानो; तुम अपने स्वरूप को ही मिथ्या मान लो, किन्तु मेरी कलम की सचाई इससे बदलनेवाली नहीं है।

इच्छा थी, आज प्रेस में देने से पहले अपने इस अनगढ़ कथ्य को तुमसे दिखा लेता। तुम्हारी सम्मति ले लेता। इसके लिए तुम्हारी बड़ी खोज की। कई नगरों में गया। हर गली में, हर नुक्कड़ पर, जहाँ कहीं तुम्हारे मिल जाने की सम्भावना थी, मैं ने तुम्हारे लिए आँखें बिछायी। पूछताछ की। किन्तु तुम कहीं भी तो नहीं मिले। तुमसे मेरी अन्तिम भेंट हुए भी कई साल गुजर चुके हैं। अपनी कर्म-भूमि की खोज में न जाने तुम कहाँ-कहाँ भटकते रहे हो। आवारा जिन्दगी की यह खोज खोज ही रह गई या इसे कोई किनारा भी मिला। यों तो तुम्हारे लिए खोज के प्रति प्रतिबद्धता उपलब्धि से भी बड़ी चीज थी। इसीलिए तो एक खोजी के रूप में तुम अपने जीवन के टूटन और बिखराव में भी हँसते-मुस्काते रहे, रस लेते रहे। कभी-कभी शंका होती है मन में, आखिर मैं किसकी खोज कर रहा हूँ—तुम्हारी या अपनी ? यदि अपनी ही खोज है यह तो इसके लिए किसी नगर के राजमार्ग या किसी गाँव के गलियारे में भटकने की क्या जरूरत ! फिर सोचता हूँ, इस शंका का भी अपना औचित्य है। तुम्हारा निखालिस स्वरूप मेरे अपने स्वरूप से कहीं अन्तरतम में जुड़ा हुआ है। इसीलिए तुम्हारी जीवन-यात्रा की कोई भी चूक या सिद्धि प्रकारान्तर से मेरी भी चूक या सिद्धि हो जाती है। वस्तुतः मेरी तरह हर कलम की अपनी किस्मत उसकी रचना के साथ ही जुड़ी होती है। तुम मेरी सृष्टि हो तो स्वाभाविक है कि मैं अपनी अस्मिता का प्रक्षेप तुममें पाऊँ। किन्तु आखिर यह कैसी बला है ? तुम्हारी कथा कहने का श्रेय मुझे मिला है जरूर। किन्तु मैं खुद तो शुरू से अन्त तक तुम्हें शब्द देने में दरकिनार ही रहा हूँ। फिर मुझसे तुम्हारा सम्बन्ध कैसा, संगति कैसी ? यदि अभी तुम मेरे पास होते तो शायद मेरी शंकाओं का कोई समाधान निकल आता। जो हो, इस बीच तुमसे मुलाकात न हो पाने की निराशा जरूर है। किन्तु तुम तो मेरी कलम के रेशे-रेशे में मौजूद हो। इसीलिए मन में अटूट विश्वास है कि तुम्हारी पारखी आँखों के सामने कभी न कभी मेरी कलम की यह तस्वीर जरूर जायेगी। इसीलिए तुम्हारे नाम आज यह खुली चिट्ठी लिखकर छोड़ देता हूँ। शायद तुम कभी पढ़ पाओ। अपनी कहानी की बाबत मेरे कुछेक विचारों की छान-बीन कर सको।

तुम तो, पता नहीं, अभी देश या विदेश के किस कोने में पड़े होगे। तुम्हें क्या मालूम, मैं तुम्हारी खोज में अबतक कहाँ-कहाँ का चक्कर लगा चुका हूँ।

इसी सिलसिले में पुराने सारन जिले के सोनपुर, किसनपुर, बिलासपुर आदि कई जगहों को पूरी तरह छान आया हूँ। मुझे पता है, इन स्थानों से तुम्हारी बड़ी नजदीकी रही थी। शारीरिक और आत्मिक दोनों तरह की नजदीकियों में रसे-बसे तुम्हारी कथा के ये सूत्रधार अभी भी वर्तमान हैं। नारायणी कछार के निकटवर्ती जिस बूढ़ी सडक को घिसी-पिटी जिन्दगी से तुम्हारी कहानी खड़ी हुई है, अबतक वह बहुत कुछ बदल चुकी है। मुझे तो अब उसे देखकर अपनी आँखों पर ही विश्वास नहीं हुआ। बीस-पच्चीस वर्षों के अन्तराल में ही उसके प्रसाधन की शैली में बड़ा रद्दोबदल हुआ है। फलतः वह सनातन बुढ़िया नये जमाने की कलँगी लगाये भीतर और बाहर दोनों ओर से नयी नवेली-सी दिखने लगी है। अब तो उस सड़क पर शायद ही कभी धूल उड़ती हो। अपनी पूरी लम्बाई में कंक्रीट की जा चुकी है वह। जहाँ कभी बैलगाड़ियों का चरमर रात-दिन सुनायी देता था वहीं अब ट्रकों, बसों या मोटर गाड़ियों का दौड़ना एक आम बात है। पहले की तरह अब वहाँ किसी कार को देखकर लोगों की भीड इकट्ठी नही होती। कुत्ते नही भौंकते। जमाने की हर नयी रफ्तार के साथ जैसे उस सड़क ने मन ही मन समझौता कर लिया है। सड़क के आस-पास रहने वाले मजदूरों और किसानों की बस्तियों में भी बड़ा परिवर्तन आ गया है। ठीक उसी तरह जैसे उन किसानों के अपने चेहरे बदल गये है। उनके विचारो मे तबदीली आयी है। अब उनकी पुरानी अल्हड़ पीढ़ी समाप्तप्राय है। उसी के साथ उनका भोलापन, सहृदयता, ईमानदारी आदि गुण भी बुझते गये है। जाड़े की रातो में घूरे के आस-पास अभी भी भीड़ जमा होती है। चर्चाएँ भी छिड़ती हैं। किन्तु इन चर्चाओं में न तो पहले की अकृत्रिम ताजगी है, न मन को मोह लेने वाली खुमारी। अब तो देश और समाज की सड़ी हुई व्यवस्था की बू आती है उनमें। आज न तो बंगाल की रसवन्ती कहानियाँ सुनाने वाली पीढ़ी ही शेष है और न ऐसी कथाओं के लिए कोई ललक ही बच रही है। नयी रोशनी में दूर देहातों के बदले हुए इस चेहरे में तुम्हें अचम्भे मे डाल देने वाली कई चीजें मिलेंगी। इस चेहरे की नकली चिकनाई के भीतर से झाँकते हुए काले झुर्रीदार धब्बे अपनी असलियत खुद प्रकट कर देते है। जो धब्बे तुम्हारे जमाने के थे वे भीतर और बाहर से एक रूप थे। अब तो ऊपर की चमड़ी नकली है, भीतर का रंग कुछ और है। आज की यह कंक्रीट सड़क ऊपर से चिकनी होकर भी अपने भीतर गर्द और गुब्बार की न जाने कितनी परतें छिपाये हुई है।

खैर, छोड़ो इन बातों को। इस चर्चा को तानकर मैं ज्यादा दूर नहीं ले

जाना चाहता। डर है, तुम्हारी कथा के सरस प्रसंग कहीं इससे बिखर न जाएँ। मगर एक बात, इसी सिलसिले में और कहूँगा। तुम्हारे गाँव जाने पर ऐसा लगा जैसे नये जमाने से कटी हुई सुधा कहीं आज भी वही बेकली से तुम्हारी बाट जोह रही है। मैंने इस भ्रम को मिटाने की भरसक कोशिश की। किन्तु उसका रंग और भी गहराता गया। वहाँ के बाग-बगीचे और खेत, घर-द्वार, सर्पीली पगडंडियाँ और स्कूल का अहाता—सुधा सब जगह मौजूद मिली, तुम्हारी शेष कथा सुनने को आकुल। लेकिन, तुम्हीं कहो, मैं उसे क्या सुनाता? यही कि तुम और अलका!....... नहीं, यह व्यथा-कथा सुनाने की शक्ति मुझमें नहीं थी कमल! तुम्हारी कहानी को तो सुधा की हँसी-खुशी की अपेक्षा है। उसके मासूम आँसुओं से मैं तुम्हें खत लिखना नहीं चाहता। तुम्हारी और सुधा की सजल स्मृतियों के साथ मैं ऐसी कोई गुस्ताखी नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, तुम्हारे लिए ऐसी सारी जीवन्त स्मृतियाँ ही सुधा की प्राणमय मूर्तियाँ गढ़ती रही हैं। मैं अपनी ओर से उनकी जीवन्तता को कोई नया आघात देना नहीं चाहता।

रास्ते भर मैं सुधा की उन्हीं दर्दनाक चीखों से घिरा रहा। किसी तरह उनसे अपना पिण्ड छुड़ाकर लौट पाया हूँ। मुश्किल तो यह है कि यहाँ भी अकेले में कभी-कभी सुधा की चीख सुनायी देती है। यह चीख, यह आर्त पुकार मेरा पीछा क्यों कर रही है कमल? इसे तो तुम्हारे पास पहुँचना चाहिए न! शायद वह पहुँच भी रही हो। मैं खुद कौन होता हूँ इस सुधा का? मैंने तो तुम्हीं से सुनी-सुनायी कहानी भर कही है। तुम्हारे लिए वह यथार्थ हो सकती है। मेरे लिए तो कोरी कल्पना है, ...शब्दों में तिरती हुई परछाईं! तुम तो खुद जानते हो, मैंने आजतक उसका चेहरा भी नहीं देखा।

और यही, इसी जगह याद आती हैं अपने दोस्तों की कुछ बातें। तुम्हारी कहानी की पाण्डुलिपि पढ़कर वे बार-बार पूछते रहे हैं कि तुम यथार्थ हो या कल्पना। मैं उनके ऐसे सवालों पर केवल हँसता आया हूँ। जैसे उनकी नजर में यथार्थ और कल्पना दो भिन्न चीजें हों। उन्हें कौन समझाये कि असल में ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं दोनों में तत्त्वतः कोई फर्क नहीं देखता। आज की कल्पना कल का यथार्थ है। कल का यथार्थ परसों के लिए नयी कल्पना। यथार्थ और कल्पना के इसी रंगीन संयोग से तो जिन्दगी बनती है। अब तुम्हीं कहो, मैं तुम्हें कल्पित कहूँ या सच? तुम तो परम सत्य बनकर मेरे मन-प्राणों में छाये हुए हो। तुम कभी मिथ्या भी हो सकते हो क्या? और यदि अपने मित्रों को भरमाने

के लिए तुम्हें झुठला ही दूँ तो मुझे या मेरी कलम को यथार्थ होने का अधिकार कहाँ रह जाता है ?

लौकिक परिवेशों में खड़ा तुम्हारा यह सम-विषम जीवन-वृत्त अपने मर्मांश में अध्यात्म से आप्यायित है, यह बात अब समझ में आयी है। तुम्हारी विद्रोही एवं संघर्षशील प्रकृति जिस सत्य की तलाश में तुम्हें तिल-तिल जलाती रही, वह समाज या जीवन का कोई मामूली पहलू नहीं माना जा सकता। यह ठीक है कि शायद ही कहीं खुले शब्दों में तुमने अध्यात्म को स्वीकारा है, फिर भी तुम्हारी विकट पीड़ाओं के अन्तराल में परमार्थ के महत्तर मूल्य दर्शनीय हैं। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारी इस जीवन-कथा को भगवत्स्वरूप पूज्य श्री परमज्ञानानन्द पुरी जी महाराज परमहंस के श्रीचरणों में चढ़ाने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। जिस सहृदयता से महाराज जी ने इस अकिंचन भाव-पुष्प को स्वीकार किया उसमें कहीं न कहीं तुम्हारे महनीय जीवन दर्शन की ही महिमा है। इसी की अनुपूरक कड़ी बनकर सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी के यशस्वी प्रबन्धक अग्रजकल्प श्री तरुण भाई ने बड़ी प्रीति और तत्परता के साथ अपने जीवन शिक्षा मुद्रणालय में तुम्हारी कहानी मुद्रित करायी है। आदरणीय भाई जी भी एक लम्बे अरसे से श्री दरबार से जुड़े रहे हैं। यह सारा सुखद संयोग तुम्हारे प्राणों में तिरते महत्तर जीवन-मूल्यों का ही उद्घोष है।

मैं चाहता हूँ कि अपनी यह चिट्ठी यहीं खत्म कर दूँ। किन्तु यह अद्भुत नजारा तो देखो। मेरे मन के धूमिल पर्दे पर एक के बाद एक अचानक कई चेहरे कौंधने लगे हैं—तुम्हारी शोभा और किरण भाभी ही नहीं, विनोद, राय साहब, कान्ति बाबू, पण्डित शोभाकान्त जी और न जाने कौन-कौन लोग! इन सब की पहचान, न जाने क्यों, धुंधली पड़ती जा रही है। मैं अपनी तेज नजरों से इन्हें पकड़ना चाहता हूँ और ये हैं जो मेरी पकड़ में आ ही नहीं रहे। तो भई, मुझे तंग करने से क्या मतलब है इनका ?

सच पूछो तो मैंने अपनी कच्ची कलम से एक तपी-तपायी जिन्दगी को जबान देनी चाही है। यही मेरा कसूर है। लेकिन कहीं न कहीं गलती तुम्हारी भी तो है इसमें। भला मुझ अल्पज्ञ से यह सब कहने की जरूरत ही क्या थी ? मुझे अपने कथ्य का अधिकारी तुमने मान ही कैसे लिया ?....... तो लो, स्वीकार करो अब अपना यह लज्झर-पज्झर गट्ठर। आखिर कबतक झेलता रहूँ इसे ? जिसका बोझ उसी के सिर पड़े यह। सचमुच यह गट्ठर बँध नहीं पाया होता यदि अपने प्रिय शिष्य एवं गुरुभाई श्री उमेश पाण्डेय का सहयोग नहीं मिला

होता। इसके लिए मेरा आशीर्वाद है उन्हें। और अब सचमुच मैं हल्का महसूस कर रहा हूँ। एक जिम्मेदारी थी जिसे जैसे-तैसे पार घाट लगा दिया है। अब तुम जानो और जाने तुम्हारी यह कहानी। मैं स्वयं जीवन के इस अटूट एवं अविराम प्रवाह में तुम्हारी लहरों के तीर छोड़कर तटस्थ हो रहा हूँ। नहीं तो, क्या पता, इन तीखे तीरों से मेरी मिट्टी भी घायल हो जाये, मेरा भी न जाने क्या कुछ ढह जाये और मैं खुद भी उन बहते तीरों का अंशभूत हो जाऊँ!

अच्छा, तो विदा दो दोस्त! जैसे तैसे तुम्हारी चिट्ठी तो खत्म हुई, किन्तु अब बढ़ चली कहानी...... !

संस्कृत विभाग, रांची विश्वविद्यालय
रांची
दिनांक १ जुलाई, १९८४

तुम्हारा ही,
लेखक

प्रथम खण्ड

चट्टान और स्रोत

एक

बिहार के सारन जिले में गंडकी के थोड़े ही फासले पर एक लम्बी कच्ची सड़क जमाने से चलती रही है। सड़क के आस-पास नारायणी का सुविस्तृत कछार। उस पर बसे खेतिहर मजदूरों, किसानों के छोटे-बड़े गाँव, कस्बे। कही घने और कहीं विरल शीशम, आम-जामुन, बरगद, पीपल और महुए के छतनार पेड़। बीच-बीच में सरकण्डे, फूस, मूंज और झौएँ की झाड़ियाँ। कहीं-कही एकान्त भाव से खडे खजूर और ताड़ के लम्बे दरख्त। कछार के सदाबहार अंचल में समय-समय पर मुस्काती-लहलहाती ककड़ी, रब्बी और धान की खेती। गंडकी के सुनील अंचल में मानो हरे, लाल-पीले, बेल-बूटे कढे हुए हों। गरमी के दिनों में इस कच्ची सडक पर उजली धूल की घनी परतें चढी रहती है। अक्सर कतार बाँधकर चलनेवाली आम सवारी बैलगाड़ी ही है। जहाँ-तहाँ कनियाँ और बहुरिया को ले जाती हुई लाल डोलियाँ भी दिख जाती हैं। कभी-कभार दूर-दराज के गाँवों में रहनेवाले बाबुओं के घोड़ों की द्रुतगामी टापें भी सुनाई दे जाती हैं। नये जमाने के पदचाप की तरह मौके-बेमौके मोटर कार भी गुजरती दिखाई देती है। ऐसे समय उसे देखने के लिए बडे-बूढ़े, बच्चे, नौजवान अपने घरों से निकल पड़ते हैं। खेती के काम छोड किसान उसे हसरत भरी निगाहों से देखने लगते है। उधर गँवई दर्शनार्थियों को धूल और गर्द के गुब्बारों से ढकती हुई कार सरसराती हुई आगे निकल जाती है। यहाँ के बाशिन्दों के शान्त जीवन में कार एक अजीब हलचल बन कर आती है। अपने पीछे अचम्भे और कौतूहल की अमिट रेखायें बनाती स्वयं किसी दूर देश को निकल जाती है।

यहाँ आज भी आस-पास के गाँवों में मजदूरी या खेती पर गुजर करने वाले बहुतेरे ऐसे है जिन्होंने अपनी ऊँची उमर में भी कभी ट्रेन से सफर नहीं किया है। पास-पड़ोस में लगने वाले गँवई हाटों को छोड़कर कभी किसी छोटे

या बड़े शहर को नहीं देखा है। इनमें कुछ सौभाग्यशाली मजदूर कटिहार के चटकलों या बंगाल के जूट-मिलों में भी काम करते हैं। घर लौटने पर वे बड़े गर्व से बड़े-बड़े महलों, राक्षस की तरह काम करनेवाली मशीनों तथा नजदीक से देखे हवाई जहाजों की रोचक कथायें सुनाया करते हैं। खासकर जाड़े के दिनों में ऐसे अनुभवी लोगों के सरस संस्मरण सुनने के लिये घूरे के आस-पास बड़ी भीड़ जमा हो जाती है। संस्मरण सुनानेवालों में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो कभी बंगाल के छोटे-बड़े जमींदारों के यहाँ प्यादे का काम करते थे। अब जमींदारियाँ टूट गई हैं। बंगाल के जमींदारों का भाग्य भी देश के विभाजन के हथौड़े से बुरी तरह पिट चुका है। किन्तु इन भोजपुरिया प्यादों की जबान से अब भी सुदूर बंगाल की शस्य-श्यामल भूमि पर बसे पुराने जमींदारों की रसवन्ती कथायें गूँजा करती हैं। भोजपुरी में संस्मरण सुनाने के दौरान ये भावावेश में टूटी-फूटी बंगला पर उतर आते हैं। ऐसे समय इनकी कथाओं में एक नई रंगीनी, एक नई ताजगी भर जाती है। घूरे की आग न जाने कब बुझ जाती है। किन्तु इनकी रहस्यमयी कहानियों की आग कभी नहीं ठंढाती। लोग बड़े गौर से उनके चेहरे पर बनते-मिटते रंगों को देखते रहते हैं। देर रात तक उनकी वीरता, आहार-विहार तथा कर-वसूली से सम्बन्धित रोमांचक कथायें सुनते रहते हैं। बीच-बीच में तलहथी पर खैनी मसलने और थपथपाने की आवाज ही कुछ अवरोध बनती है। समाजवादी न्याय से एक के हाथ पर तैयार की गई खैनी पास बैठे कई लोगों में बाँट दी जाती है। यह काम यन्त्रवत होता है। ओठ के पीछे खैनी दबा कर भी लोगों को उसका अहसास नहीं होता।

इस सड़क की जिन्दगी न जाने कितने युगों से कुछ इसी ढंग से चलती रही है। देश में कब कौन-सी क्रान्ति हुई, देश कब गुलाम रहा और कब आजाद हुआ, इनकी लहरों से यह सड़क बहुत कुछ अछूती है। इसे अपने पिछड़ेपन का कभी गम भी नहीं रहा। सड़क से गुजरनेवाला हर परदेशी यहाँ के लोगों के लिये पावन सन्देश बन कर आता और चला जाता है। हर बैलगाड़ी उनकी धीमी शान्त जिन्दगी की प्रतीक बन कर आती है। अक्सर अपने पीछे बिरहा और निर्गुन की अमिट कड़ियाँ छोड़ती आगे सरक जाती है। रात के नीरव सन्नाटे में भी बैलगाड़ियों के पहियों का चर-मर तथा गाड़ीवानों के बेसुध अटपटे गीत सुनाई पड़ना एक आम बात है।

वसन्त के ढलते दिनमान में आज इसी सड़क से एक भड़कीली कार गुजर रही है। कार की सुन्दर बनावट से लगता है जैसे जमीन पर कोई आकाश-विहारी

विमान दौड़ा जा रहा हो। धूल के भूरे बादलों के बीच भी सूर्य की चमचमाती किरणों से वह चाँदी की तरह झलमल कर उठती है। सड़क के अगल-बगल कार के दर्शनार्थी बूढ़े और जवान जमा होते जा रहे हैं। स्वयं कार को जैसे उनके कौतूहल या जिज्ञासा से कोई मतलब नहीं। वह सरसराती हुई अपने पीछे गर्द-गुब्बार, फूली हुई अरहर की खेती तथा जौ-गेहूँ की झूमती बालियों को छोड़ती आगे निकली जा रही है। जवान तथा बूढ़े सड़क के किनारे खड़े-खड़े ही हैरत भरी नजरों से कार को निहारते जा रहे हैं, किन्तु बच्चों को केवल इतने से सन्तोष नहीं। वे कार के पीछे-पीछे अपनी ताकत भर दौड़ते हैं। शोर मचाते हैं। फिर थककर हाँफते हुए खड़े हो जाते हैं। उधर बिजली की तरह चमकनेवाली कार धूल के उड़ते मेघों के बीच ओझल हो जाती है। उसका हार्न भी क्रमश क्षीण पड़ता हुआ डूब जाता है।

आज इस कार को देखकर सबसे ज्यादा अचरज यहाँ के बड़े-बूढ़ों को है। उनकी इतनी उमर कट गई। इस बीच उन्होंने सड़क से गुजरती कई मोटरें देखी होंगी। किन्तु आज की तरह का नजारा पहले कभी उनकी आँखों के सामने नहीं गुजरा। कार को औरत भी चला सकती है, ऐसा आज पहली बार उन्हें मालूम हुआ। कुछ ने कहा, "यह औरत के वेश में कोई मर्द बैठा है।" कुछ दूसरों ने अपना विचार दिया, "यह औरत नहीं, साक्षात् देवी है।" कुछ ऐसे निष्कर्ष भी आये, "घनघोर कलजुग आ गया। औरतें मर्द का काम कर रही हैं।"

ऐसी सारी टिप्पणियों और उत्सुक दृष्टियों से लापरवाह बनी कार सरपट भागी जा रही है। कुछ दूर आगे जाने पर सड़क के किनारे खड़ा एक विशाल बरगद का पेड़ है। न जाने कितने युगों से थके-माँदे मुसाफिरों और परदेसियों को छाया देता रहा है। इस बूढ़े बरगद की जड़ें किसी साधु की पिंगल जटाओं की तरह दूर-दूर तक फैलती गई हैं। इसकी झुकी डालियाँ साँझ पहर ग्रामीण बच्चों के झूले के काम आती हैं। ऊँची टहनियों पर न जाने कितने पंछियों ने अपनी घर-गृहस्थी बसायी है। इसकी जटिल जड़ों के एक किनारे किसी सतनामी साधु का पुराना कच्चा मठ है। मठ की दीवारों पर जगह-जगह गेरू के टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा है - 'सत नाम सत्य है।' दीवारों में नोनी लगने से अक्षर कई जगह झड़ गये हैं। मठ के दाहिनी ओर पुराना कुआँ है। उसपर अब एक जगत बना दी गई है। जगत पर एक छोटी जंग लगी बाल्टी बराबर रखी रहती है। इससे बटोही पानी भरकर अपनी प्यास बुझाते हैं। धूल-गर्द से भरी कार बरगद की छाया में आकर रुक जाती है। देखते ही देखते वहाँ आस-पास के लोगों की काफी भीड़ जमा हो जाती है। कार में केवल तीन जन दिखाई देते

है। एक चालीस के लगभग की भरे-पूरे चेहरे वाली गोरी औरत। दूसरी उसकी बगल में ही बैठी बारह-तेरह साल की सुन्दर भोली लड़की। चेहरे की बनावट से वह कार चलानेवाली औरत की अपनी बेटी-सी जान पड़ती है। तीसरा एक साँवले रंग का हृष्ट-पुष्ट आदमी। साधारण वेश में इन दोनों से अलग-थलग वह कार की पिछली सीट पर बैठा है।

कार के रुकते ही तीनों बाहर आ जाते हैं। पिछली सीट पर बैठा मर्द शीशे का ग्लास लेकर कुएँ से पानी लाने चल देता है। इधर पेड़ की छाया में निरंतर बढ़ती हुई भीड़ को कुछ मौका मिलता है कि वह कार से बाहर निकले इन अद्भुत प्राणियों को ठीक से देख सके। दोहरे शरीर तथा नाटे कद की महिला ड्राइवर बाहर आकर दूध की तरह सफेद गमछे से बच्ची के मुखड़े को पोंछती है। उसे प्यार की नजरों से देखती हुई कहती है, "मैंने तो पहले ही कहा था कि रास्ता बहुत खराब है। जीप से चलना बेहतर होता। किन्तु तू मानी नहीं। अब देख अपनी कार की हालत। धूल और गर्द से तबाह हो गई है।"

"और कित्ती दूर चलना होगा माँ?" बच्ची जैसी सुन्दर है उसकी बोली वैसी ही कोमल और मधुर है, "चाचा जी का गाँव अब तो नजदीक होगा न?"

"हाँ बेटा," औरत पानी भरते मर्द को पुकार कर कहती है, "पानी जल्दी लाना कैलास। अभी आठ-दस मील और चलना है।"

औरत के शरीर पर महीन खादी की उजली साड़ी है। साड़ी में कोई पार नहीं। गले में साड़ी के रंग की ही चोली है। ठण्डी हवा से उड़ते आँचल को अपने सिर पर वह बार-बार सँभालती है। कुछ सकुचाई नजरों से जब-तब अपने इर्द-गिर्द इकट्ठी होती हुई भीड़ को देख लेती है। जो लोग अभी कुछ देर पहले शिकायत कर रहे थे वे भी अब साक्षात लक्ष्मी की तरह खड़ी इस औरत को निहार कर मन्त्र-मुग्ध हो रहे हैं। औरत के अंग-अंग से सादगी, सरलता और विनय टपक रहा है। शरीर पर कहीं कोई गहना नहीं दिखाई देता। भोले ग्रामीणों के लिये उसकी यह सादगी आश्चर्य और श्रद्धा का विषय है। कुछ अनुभवी ग्रामीण तुरत भाँप जाते हैं कि औरत बेवा है। हवा से उड़ता हुआ आँचल कभी-कभार उसके सिन्दूरहीन सीमन्त को झलका देता है।

कैलास पानी लेकर आता है। ग्लास को बच्ची की माँ के हाथ में थमा देता है। स्नेहमयी माँ पानी से बच्ची का मुखड़ा साफ कर देती है। ग्लास में दुबारा पानी आता है। बच्ची गट-गट करके पूरा ग्लास पानी पी जाती है। उसके बाद एक ग्लास पानी उसकी माँ पीती है। कार में बैठने से पहले वह भद्र महिला सामने इकट्ठी भीड़ को एक नजर देख लेती है। भीड़ के आगे खड़ा एक बूढ़ा

किसान बड़े अचरज और श्रद्धा से इनकी ओर देख रहा है। उसके गालों पर पकी हुई दाढ़ी की खूंटी है। धँसी हुई गोल-गोल आँखों से सरलता छलक रही है। हाथ में हँसिया है। छाती नंगी है। सिर पर फटे गमछे की पगड़ी बँधी है। कार वाली महिला को उस बूढे किसान की चिकनी नजर मे न जाने क्या मिलता है। अपना संकोच तोडकर उससे मीठी आवाज मे पूछती है, "हमें किसनपुर जाना है बाबा ! अभी और कितनी दूर चलना होगा ?"

ममत्व से भरी हुई महिला की इस आवाज से उस बूढे किसान को विश्वास का नया बल मिलता है। उधर भीड में फुसफुसाहट शुरू हो जाती है। किसान सहज विश्वास से कार के नजदीक पहुँच जाता है। हकलाता-सा पूछता है, "क्या कहा हजूर, किसनपुर ?........किसनपुर आप किनके घर जाएँगी ?"

"रायबहादुर ठाकुर गोपाल सिंह के यहाँ।"

"ओ हो, रायसाहब के यहाँ ?" बूढे की आँखें चमक जाती हैं, "वे तो हमलोगो के जिमदार बाबू हैं हजूर ! यह पूरा जवार उन्ही की जिमदारी मे पड़ता था। अब तो जिमदारी टूट गई। नही तो उनके घोड़े की टाप जवारभर मे गूंजती रहती थी। बडे भलमानस हैं। गरीबों को कभी नही सताया। शादी-ब्याह के मौके पर हमें हर तरह की मदद देते रहे। आज के जमाने में वैसा धरमी आदमी कहाँ मिलेगा हजूर ? मैं तो बचपन में भी उनके दरबार में काका के कन्धे पर बैठकर जाया करता था। रायसाहब से भी बढ़कर उनके पिता बाबू रमेसर सिंह थे। जिनगी भर सदाबरत बाँटते रहे। उनके दरबार मे साधु-सन्तों की भीड़ लगी रहती। दरबार मे बीसों हाथी झूमते रहते। घोड़ों की तो कोई गिनती ही नही थी। अब तो वे सारी बातें खतम हो गईं हजूर। वे सब सतजुगी लोग थे। आज तो कलजुग का महातम है। जिमदारी टूटी। सुनते हैं कि छुआछूत और जात-पाँत भी टूटने वाली है।"

"बाबा, मैंने तो यह पूछा था कि किसनपुर यहाँ से कितनी दूर है," महिला ने विनम्र भाव से मुस्काकर कहा, "मेरे जानते कोई आठ-दस मील होगा। यही न ?"

"जी हाँ हजूर," बूढा अपने कुछ टूटे और कुछ खड़े दाँतों को दिखाता मुग्ध भाव से बोला, "किसनपुर तो यहाँ से दो ही कदम आगे पड़ेगा। आगे जाकर फदुल्लेपुर और महरानी हेले कि किसनपुर पहुँच गये। वहाँ बाबू लोगों के कोठे दो कोस दूर से ही दिखाई देते हैं।.........लेकिन आप रायसाहब की कुटुम्ब हैं। इस नाते यह गाँव-जवार आप ही का है। कहिए तो आराम करने

के लिये खाट मँगा दें। कुछ नाश्ता-पानी करके बेरा ढलने पर जाएँगे। आप लोग बड़े आदमी हैं। इस धरती का भाग कि आपका आसन यहाँ पहुँचा।"

"मुझे अफसोस है बाबा," महिला बूढ़े के सौजन्य से भीगकर दोनों हाथ जोड़ती हुई बोली, "किसनपुर हमें जल्द से जल्द पहुँचना है। लौटती बार मौका लगा तो आपलोगों का घर होते जाएँगे। आप सबको मेरा और मेरी बच्ची शोभा का प्रणाम।"

कैलास कार का पिछला गेट खोल कर पहले से ही खड़ा था। माँ-बेटी के यथास्थान बैठ जाने पर इस बार वह खुद ड्राइवर की सीट पर आ गया। कुछ देर में गाड़ी से घर्र-सी आवाज हुई। देखते ही देखते वह अपने पीछे गर्द के गुब्बारे उड़ाती दूर निकल गई। उसकी अनचीन्ही आवाज सुनकर गाँव के कुत्ते भौंकने लगे। मर्दों की तरह गाँवों की औरतें भी अपने घर के टाट फाड़-फाड़ कर दूर सड़क पर भागती कार की ओर झाँकने लगी।

अपनी इकलौती बच्ची शोभा की पीठ पर हाथ रखे कार की मालकिन निर्मला देवी कुछ दूसरी ही चिन्ताओं में डूबी हैं। सोनपुर से किसनपुर की लम्बी यात्रा में उनकी थकी-माँदी आँखें कार के धूमिल शीशे से पीछे भागते पेड़ों, हरे-भरे खेतों और गाय-बैल के झुण्डों को देख रही हैं। बरगद के नीचे विश्राम के कुछ क्षणों में ही ड्राइवर ने कार पर चढ़ी धूल को झाड़-पोंछ कर साफ कर दिया था। किन्तु अब फिर उसके शीशों पर गर्द की महीन परत जमने लगी थी। धूल-धूसरित शीशे के पार रास्ते की हर चीज मटमैली नजर आती थी। मानो वे निर्मला के बीते जीवन की भागती तस्वीरें हों। स्पष्ट होने पर भी उड़ते समय के वातायन से धुँधली नजर आ रही हों। उनके पति, पटने के यशस्वी एडवोकेट कुमार साहब को मरे आज छह वर्ष हो रहे हैं। फिर भी उनकी जीवन्त स्मृतियाँ बड़ी निकट मालूम होती हैं। अपने पीछे असहाय विधवा पत्नी और गुड़िया-सी नन्ही बच्ची शोभा के अतिरिक्त उन्होंने काफी पैतृक सम्पत्ति छोड़ी थी। पटने में एक आलीशान बंगला, बैंक में हजारों रुपये, दो सुन्दर कार और एक जीप। मित्रों की एक स्निग्ध मण्डली भी विरासत के रूप में छोड़ते गये थे। इसमें किसनपुर के रईस रायसाहब ठाकुर गोपाल सिंह सर्वोपरि थे। वे कुमार साहब के परिवार के अभिन्न अंग हो गये थे। कुमार-परिवार के हर सुख-दुख में हिस्सेदार थे। इस परिवार के पुराने सम्बन्धी भी पड़ते थे। दोनो मित्रों का एक दूसरे के यहाँ आना-जाना बराबर होता रहता। कुमार साहब की मृत्यु के बाद निर्मला ने खुद इस रिश्ते के सूत्रों को सम्भाल लिया था। चतुर गृहिणी की तरह उनसे दूर भविष्य के ताने-बाने बुनने लगी थी।

निर्मला की गोद की एक ही लाल थी। उसे देख-देखकर वह पति-विरह के दुखों को भुलाये रहती थी। किसनपुर के ठाकुर-परिवार का भी एकमात्र सुकुमार और होनहार पौध विनोद था। कई भाई-बहनों के बीच एकमात्र वही बच पाया था। अवस्था मे शोभा से केवल दो साल बड़ा था। जब कुमार साहब जीवित थे तो उन्होंने कई बार निर्मला के सामने रायसाहब से शोभा और विनोद के भावी सम्बन्ध की चर्चा की थी। एक तरह से विनोद को शोभा के लिये मांग लिया था। उनकी मृत्यु के बाद इस तरह की कोई चर्चा फिर नही चली। किन्तु निर्मला के भावुक मन ने स्वर्गीय पति की अभिलाषा को बुझने नही दिया। पति के साथ छोटी बच्ची शोभा को गोद लिये वे कई बार किसनपुर आई-गई थी। पति के नही रहने से यह आना-जाना कम जरूर हो गया था। किन्तु दोनों परिवारों के परस्पर सौहार्द में पहले से बढोत्तरी ही हुई थी। रायसाहब अपने स्वर्गीय मित्र की विधवा को हर समय हर तरह की मदद करने को तैयार रहते थे। निर्मला की टूटी गृहस्थी फिर से खड़ी करने में इनका बड़ा योगदान था।

गाड़ी अब एक महुए के बगीचे के बीच गुजरने लगी थी। महुए की मह-मह से वहां का वातावरण मतवाला हो रहा था। नीचे जमीन पर मोती के उजले-पीले दाने की तरह महुए बिखरे पड़े थे। गाँव की कई किशोरियाँ अपनी नरम उँगलियों से उन्हे चुन-चुन कर एकत्र कर रही थी। कार की आवाज सुनकर वे सब अपना काम छोड़ उठ खड़ी हो गई। कौतूहल से उसे तब तक देखती रही जब तक वह उनकी नजरों से ओझल न हो गई। महुआनी से आगे कुछ दूरी तक सरकण्डे की घनी झाड़ियाँ मिली। उनके बीच बेल और शीशम के कई छोटे-बड़े पेड़ों पर बैठा फदगुद्दी चिड़ियों का एक बड़ा झुण्ड कार की घरघराहट सुनकर फुर्र-से आसमान मे बिखर गया। छोटी शोभा के लिये यह दृश्य बड़ा ही आह्लादकारी था, वह अपनी माँ से अलग हो गई थी। गाड़ी के धुँधले शीशे से अपनी आँखें सटाये रास्ते में पड़नेवाले छोटे-बड़े गाँवों, खुले मैदानों में खेलते नंगे-अधनंगे बच्चों और गण्डकी के किनारे उड़कर जाते बगुलों को बड़े गौर से देखती जा रही थी। ये ही चीजें देखने के लिये तो वह किसनपुर आने को बेचैन रहती थी। जब भी यहाँ से कोई बुलाहट आती, वह माँ से निश्चित समय से पहले ही वहाँ चलने के लिये चिरौरी करती। सोनपुर में उसका जीवन बँधा हुआ रहता। वहाँ थोड़ी देर के लिये भी अपनी माँ की आँखों की ओट हुई नही कि उसे खोजने के लिये कई नौकर दौड़ा दिये जाते, उस पर कड़ी डाँट-फटकार पड़ती। किन्तु किसनपुर में उसे विनोद के साथ घूमने-घामने की पूरी

आजादी मिल जाती थी। उसके साथ घोघारी नदी में बंशी से मछलियाँ फँसाने में बडा मन लगता। फूली सरसों और तीसी के खेतों में विनोद के हाथों में हाथ डाले तितलियों की तरह बलखाती चलती थी। मंजरियों से लदी आम की झुकी डालियों पर उछल-कूद करने में बडा मजा आता। साँझ पहर नियमित रूप से परकोटे के भीतर हवेली के बडे दीवानखाने में चाचाजी की मजलिस लगती है। वे बड़े प्यार से शोभा को गोद में बिठा कर कोई गीत गाने को कहते हैं। पास ही बैठे विनोद से तबला बजाने को कहा जाता है। शोभा को संगीत सिखाने के लिये बचपन से ही संगीत-शिक्षक रखे गये हैं। इसी प्रकार विनोद को तबलावादन सिखाने के लिये उस्ताद रखे गये हैं। शोभा मीरा के कुछ पदों को अटपटे स्वर में हारमोनियम पर उतारना सीख गई है। फिर भी सबके सामने गीत गाने में उसे बड़ी लाज लगती है। चाचा जी के बार-बार कहने और पुचकारने पर किसी तरह लजाई आवाज में कोई पद आधा गाकर ही छोड़ देती है। उधर विनोद बड़े इतमीनान से तबला बजाता है। इसे कोई डर या संकोच नहीं होता। शोभा के गीत के बीच में ही सकुचाकर चुप हो जाने से उपस्थित लोग हो-हो कर हँसने लगते हैं। तब वह डाल से उड़ाई गई तितली की तरह वहाँ से हवेली के भीतर भाग जाती है। भागते हुए भी उसे अपने पीछे लोगों का प्यार से हँसना सुनाई पड़ता है। ... ...

शोभा भीड़-भड़के से बहुत डरती है। विनोद ठीक इसके उल्टा है। यह जितनी ही शान्त और गम्भीर है, वह उतना ही चंचल और शोख। कभी-कभी दोनों में मामूली बात को लेकर भी झगड़ा हो जाता है। शोभा को अक्सर ऐसे समय विनोद के हाथों पिटना पड़ता है। वह अगर रोने लगती है तो विनोद उसे मनाकर चुप कर देता है। इसीलिए आपस के ऐसे झगडे भी दोनों के प्रेम में साधक हो जाते हैं, बाधक नहीं। शोभा किसनपुर के एक-एक बगीचे से परिचित है। घोघारी के किनारे-किनारे हरे-भरे खेतों के एक-एक मोड़ पर विनोद के साथ घूमी है। उसे वहाँ दाना चुगते कबूतरों के झुंड, ताड़ों पर नीड़ बसाते चोंचे, संध्या समय बाँसों के झुरमुट में परस्पर झगड़ती ग्रामीण स्त्रियों की तरह चिड़ियों का विपुल शोर, उनके नीचे बादामी रंग की महुअर चिडियों का एक बाँस से दूसरे बाँस पर फुदक-फुदककर उड़ना—ये सब बहुत पसन्द हैं। विनोद को घर लौटने की जल्दी रहती है। किन्तु शोभा का मन ऐसे मोहक दृश्यों को देखने से कभी अघाता नहीं। देर तक खड़ी-खड़ी उनमें खोयी रहती है।

घर लौटने पर शोभा को अक्सर दीवानखाने में मसनद के सहारे बैठे चाचा-जी दिखाई पड़ते हैं। अपने लम्बी नली वाले पेचदार हुक्के पर लखनऊ का

सुगन्धित अम्बरी तम्बाकू पीने में तन्मय रहते हैं। शोभा दीवानखाने के चौकोर सगमरमरी पाये के पीछे छिपकर उनके गुड़गुड़े पीने के ढंग को देखा करती है। उनकी कड़ी-कड़ी अधपकी मूँछ से कश के उजले बादलों का टकराना, फिर बिखरकर चेहरे के आस-पास छितरा जाना बड़ा अच्छा लगता है। उनकी देखा-देखी शोभा ने कई बार की है। सबके चुपके कहीं अकेले में छिपकर चाचाजी का हुक्का गुड़गुड़ाना चाहा है। किन्तु ऐसा करते समय हुक्के का कसैला पानी उसके मुँह में भरकुल्ला आ जाता है। पानी थुकरते-थुकरते तबाही हो जाती है। खाँसी उपट जाती है, सो अलग। उसे अचँभा होता है, ये बड़े-बूढ़े कैसे हुक्का पी लेते हैं! सोचती है, जब बड़ी होगी तो उसे और कोई चीज नहीं चाहिए। घर के एकान्त कोने में बैठकर केवल हुक्का गुड़गुड़ायेगी। उससे ढेर का ढेर धुआँ छोड़ती रहेगी। ‥

"उधर क्या देख रही है बेटा," अचानक माँ की आवाज से शोभा का स्वप्न भंग हो जाता है, 'सामने देख, तेरे चाचाजी की हवेली दिख रही है। हमलोग किसनपुर के नजदीक आ गए।"

शोभा उत्सुकता से कार के दूसरी ओर चली आई। माँ को उँगलियों की सीध में धूमिल शीशे के दूर पार देखा। सचमुच ऊँची हवेली का कुछ भाग दूर खड़े वृक्षों के ऊपर झलक रहा था। हवेली के मुँडेरे से शिवाले का पीत कंगूरा भी दिखाई पड़ा, ढलते सूरज की किरणों से झक-झक कर रहा था। यह शिव-मन्दिर हवेली से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर था। किन्तु यहाँ से उससे बिल्कुल सटा हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। शोभा के कानों में शिवाले के बूढ़े पुजारी के अटपटे मंत्र गूँजने लगे। सुबह-शाम बजाये जानेवाले घंटे की आवाज सुनाई देने लगी। उसे याद है, कई बार मन्दिर की इसी आवाज से भोर पहर उसकी नींद टूटती थी। उसकी सबेरे देर तक सोने की आदत थी। माँ उसे अकेले बिस्तर पर सोये छोड़कर स्वयं चाचाजी के घरेलू कार्यों में लग जाती थी। वह अकेली न जाने कब तक सोई रहती। सामने खुली खिड़की से शिवाले के घंटे की आवाज स्वप्निल सम्मोहन की तरह अचानक उसके सुप्त कर्ण-रन्ध्रों में फैलने लग जाती। नींद टूटने पर भी वह बड़ी देर तक पलकें बन्द किये उस दिव्य स्वर को अपने प्राणों में ग्रहण करती रहती। जब एकाएक आवाज बुझ जाती तो मानो उसकी नींद-भाँती चेतना का सिलसिला टूट जाता। वह हड़बड़ाकर उठ बैठती। आँखें मीसती हुई खिड़की के पारदर्शी शीशे से छनकर आती सूर्य की बाल किरणों को अजीब कौतूहल से देखने लग जाती। ‥ ‥‥ ‥

हाँ, तो वही मन्दिर, वही हवेली और वही सुपरिचित परिवेश अब निकट

से निकटतर होते जा रहे हैं। शोभा की कार घोघारी के किनारे-किनारे एक पतली कच्ची सड़क से गुजरने लगी है। इस समय नदी में बहुत कम पानी रह गया था। बरसात के दिनों में इसी नदी की गदराई जवानी को देखकर डर लगता है। उन दिनों उस पर इस पार से उस पार जाने के लिए छोटी-छोटी नावें, डोंगियां चलती हैं। शोभा को नाव पर चढ़कर नदी पार करते बड़ा डर लगता है। उसे याद है, किसनपुर गाँव की एक अल्हड़ मण्डली इसी नदी पर झझरी खेलने के लिए एक बड़ी नाव पर सवार होकर निकल पड़ी थी। उस पर एक कोने मसनद लगाकर चाचाजी भी विनोद और शोभा को साथ लिए बैठे थे। वह एक सुहानी पूनो की संध्या थी। नदी पर अंधेरे का झीना आवरण चढ़ता जा रहा था। सामने ताड़ के पेड़ों की ओट से किसी सुहागिन के ललाट पर चमकती गोल बिन्दी की तरह चांद झांक रहा था। बहकावे में आकर शोभा भी नाव पर सवार हो गई। धीरे धीरे नाव बीच लहर में पहुँची। वहाँ ढोलक पर थाप पड़ते ही कीर्तन का स्वर नदी के शान्त प्रवाह को गुँजाने लगा। नाव बेतरह डगमगाने लगी। शोभा को लगा जैसे वह दूसरे ही क्षण डूबने जा रही है। थर-थर काँपने लगी। अचानक बगल में बैठे विनोद की गर्दन को अपने दोनों हाथों से कसके पकड़कर चिल्ला पड़ी। ढोलक और झाल बजाना छोड़ लोग उसके क्रन्दन का शायद मजा लूटने लगे। तभी तो प्रायः सबके सब उसे रोते देखकर हँस रहे थे। चाचाजी ने लाख पुचकारा, किन्तु उसका रोना बन्द नहीं हुआ। हार मानकर नाव एक किनारे लगा दी गई। शोभा को उतार दिया गया। किनारे पर आकर शोभा की जान में जान आ पाई। तभी से नाव पर बैठने से उसने कसम ही खा ली थी।

अब कार किसनपुर गाँव में प्रवेश करने ही वाली है। गाँव के बाहर एक बड़ी मण्डी है। वहाँ हर सोमवार और शुक्रवार को बाजार लगता है। मण्डी के एक ओर जिले का नामी हाई स्कूल है। आगे चलकर गोपाल चाचा की दूर तक फैली आम की गाछी है। इस समय वह मंजरियों से लदी दिख रही है। दूसरी ओर रब्बी की झूमती हुई खेती है। कुछ दूर जाने पर गाँव का एक पुराना तालाब मिलता है। उसमें कुछ लोग अपने मवेशियों को नहला रहे हैं। कुछ ग्रामीण बच्चे उसके गँदले पानी में छुपक रहे हैं। तालाब के किनारे से कार सीधे पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। अब किसनपुर गाँव बिल्कुल सामने है। यह पुराने जमींदारों की एक बड़ी बस्ती है। गाँवभर में सबसे रईस और सम्भ्रान्त रायसाहब का ही घर माना जाता है। उनकी विशाल हवेली गाँव के सटे पूरब में है। हवेली के कई पुराने भाग बेमरम्मत पड़े हैं। उनका

रंग काला पड गया है। परकोटे के ऊपर से उनकी कई खिड़कियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर नीचे की ओर लुढकती प्रतीत होती है। हवेली का अगला हिस्सा पुराना होकर भी सुन्दर है। उस पर अभी-अभी ही सफेदी हुई है। हवेली के इस भाग में पुरानी नक्काशी और शिल्प के सुन्दर नमूने हैं। दीवारें काफी मोटी हैं। उन पर सीमेंट के बेल-बूटे बिल्कुल असली से प्रतीत होते हैं। बीच-बीच मे वे झडते गए है। हवेली के दाहिनी ओर पुरानी अश्वशाला है। किसी जमाने में यहाँ बहुत सारे घोड़े रहा करते थे। अभी इसमे पशुओ के चारे तथा भूसे रखे गए है। कार घुडसाल के सामने से गुजरती हुई हवेली के विशाल दरवाजे पर आकर खडी हो गई। घर्राहट सुनकर आस-पास से कई नौकर तथा दूसरे लोग दौड आ गए। शोभा और उसकी माँ से इस गाँव का बच्चा-बच्चा परिचित था। कार से उतरती हुई निर्मला को नौकरों ने सलामी दागी। खबर पाकर भीतर हवेली से रायसाहब खड़ाऊँ से खटर-खटर आवाज करते बाहर आए। निर्मला और शोभा ने झुककर उनके चरण-स्पर्श किए। गद-गद कण्ठ से आशीर्वाद उच्चरित करते हुए रायसाहब ने शोभा को प्यार से अपनी ओर खीच लिया। उसके गोरे ललाट पर कई चुम्बन जड़ दिये।

दो

जब से निर्मला देवी शोभा को लेकर रायसाहब के घर आई हैं, विनोद के एकान्त जीवन में रंग भरा उल्लास छा गया है। इसके पहले भी शोभा कई बार विनोद के घर आ चुकी है। किन्तु तब की बातें आज से बहुत भिन्न थी। शोभा उस समय छोटी बच्ची थी। शोभा के साथ धमाचौकड़ी करने में जो उल्लास पहले मिलता था और जो आज मिलता है, उसमें बड़ा फर्क आ गया है। बढ़ती हुई उमर के साथ दोनों एक दूसरे की भावनाओं के अधिक निकट आने लगे है। उनमें एक-दूसरे को अधिक आत्मीयता से अपनाने की चेतना जगने लगी है। यही कारण है कि इस बार जब मे शोभा आई है, विनोद उससे एक क्षण को भी अलग होना नही चाहता। साथ ही खाना-पीना, साथ ही हाथ में हाथ डाले नदी-नाले, बाग-बगीचे की सैर करना। यह सब बिना किसी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम

के हो रहा है। दोनों के माता-पिता भी अपने बच्चों के सौहार्द में रस लेने लगे हैं। उनके मंगल-भविष्य के ताने-बाने बुनने लगे हैं।

विनोद अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर के कारण अपनी उम्र से दो-तीन साल बड़ा लगता है। वह गेहुएँ रंग का स्वस्थ्य सुन्दर किशोर है। बचपन में किसी ऊँची कुर्सी से गिर पड़ा था। फलतः उसकी दाहिनी आँख के ऊपर घाव का एक छोटा निशान बराबर के लिए बन गया। यह निशान उसकी शोख प्रकृति को अनायास ही प्रकट कर देता है। माता-पिता की एक ही सन्तान होने के कारण बड़े लाड़-प्यार में पलता आया है। उसकी उद्दण्ड प्रकृति का एक यह भी कारण है। घर में माता-पिता के अतिरिक्त उसके एक विधवा बुआ तथा एक विधवा चाची भी हैं। घर भर में उसे बुआ विशेष प्यार करती हैं।

विनोद के पिता रायसाहब ठाकुर गोपाल सिंह कुछ समय पहले अपने जिले के बड़े जमीदारों में थे। जमीदारी से इन्हें एक लाख की वार्षिक आमदनी हो जाती थी। जमीदारी टूट जाने पर भी इनके परिवार की शान-शौकत या प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं। आज भी पूरे जवार में इनकी तूती बोलती है। इनके रोबीले चेहरे को देखकर ही बहुतों के अभिमान टूट जाते हैं। भारी-भरकम चेहरे के उपयुक्त ही इनकी आवाज बड़ी बुलन्द है। गोरा-चौड़ा ललाट। नीचे की ओर झुकी खड़ी-खड़ी अधपकी मूंछ। गाल की उभरी हड्डियाँ भौहों पर लम्बे-लम्बे सफेद बाल। कुल मिलाकर रायसाहब के चेहरे पर कठोरता अधिक, ऋजुता कम है। स्वभाव से कोमल और उदार हैं। विचारों से कट्टर रूढिवादी। राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्वदा विरोधी रहे। आज की स्वदेशी सरकार के स्थायित्व में इनका कत्तई विश्वास नहीं। अपने इन्ही गुणो के कारण किसी समय अंग्रेज साहबों के बडे प्रिय पात्र थे। एक अंग्रेज कलक्टर ने खुश होकर इन्हें रायबहादुर की उपाधि दे दी थी। लखनऊ, काशी गया तथा अन्य स्थानों की प्रसिद्ध तवायफें इनके दरबार में नाच-गान करने बराबर आया करती थी। इधर कुछ समय से तवायफों का आना-जाना कम पड़ता जा रहा था। धीरे-धीरे बदलते युग और समय के साथ पहले की जमीदारी ठाट-बाट और विलासिता में गिरावट आती जा रही थी। इसका कारण पैसा था, जो अब पहले की तरह लुटाया नहीं जा सकता था। अब तो ठाकुर-परिवार सामन्ती आवरण त्याग कर धीरे-धीरे गृहस्थी के कार्यों में प्रवृत्त होने लगा था। घोड़े और हाथियों के बदले दरवाजे पर कई जोडे बैल झूमने लगे थे। फावड़े, ट्रैक्टर तथा खेतो के कई दूसरे औजार दिखने लगे थे। इसके अतिरिक्त इस परिवार का अब कोई दूसरा भविष्य भी नही था।

शोभा की उम्र विनोद की उम्र से दो साल कम है। किन्तु अपने भरे-पूरे

चेहरे और उर्वर कद के चलते विनोद उससे चार-पाँच साल बड़ा लगता है। शोभा को अपनी माँ का ही दमकता हुआ गोर वर्ण तथा शान्त-स्निग्ध चेहरा मिला है। वह मितभाषिणी तो है, अमितहासिनी भी है। हँसती है तो जैसे फूल झड़ते हैं।

आज शोभा के नही चाहने पर भी विनोद उसे खीचकर अपने गाँव के हाई स्कूल में ले गया है। इस स्कूल की स्थापना उसके पिता जी ने ही की है। राय-साहब खुद साधारण पढ़े-लिखे आदमी हैं। किन्तु विद्या का प्रचार करना और कराना इन्हें बहुत पसन्द है। स्कूल का भवन पक्का और आधुनिक ढंग से बना है। इसकी शिक्षा का स्तर काफी अच्छा है। हर वर्ष यहाँ से कुछ न कुछ विद्यार्थी अच्छी श्रेणी प्राप्त करते तथा अपने स्कूल का नाम ऊँचा करते हैं। स्कूल के मंत्री रायसाहब स्वयं हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध स्कूल में एक पत्ता भी नही डोल सकता।

विनोद का शोभा को आज अपने स्कूल ले आने का उद्देश्य कुछ दूसरा ही है। गाँव-जवार के लोग उसके दुराग्रही, हठी और दुष्ट स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हैं। लोगो की आँखों के सामने प्रायः प्रतिदिन उसकी शैतानी का कोई न कोई करिश्मा आता ही रहता है। भय से उसकी शिकायत उसके माता-पिता तक कोई नही पहुँचा पाता। स्कूल में मामूली-सी बातों को लेकर भी अपने साथी लड़कों से मार-पीट कर लेना उसकी आम दिनचर्या है। आज विनोद शोभा को दिखा देना चाहता है कि स्कूल में उसकी कितनी धाक है। हेडमास्टर तक उससे कितना भय खाते हैं। उसका कितना सम्मान करते हैं।

क्लास में आज विनोद के साथ एक नई सलोनी लड़की को देखकर दूसरे लड़कों के मन में बड़ा कौतूहल है। उसे लेकर कई तरह की काना-फूसी चल रही है। इन सबके बीच केवल एक ही ऐसा लड़का दिख रहा है जो एक कोने में शान्त और अन्यमनस्क भाव से बैठा है। उसके मासूम चेहरे पर कोई ऐसा रंग नही जिससे लगे कि वह खुद भी किसी बात से उत्कण्ठित हो। वह कमरे की पिछली सीट पर खुली खिड़की के सामने बैठा है। बाहर खड़े नीम के पेड़ पर आपस में चोंच लड़ाते तथा चें-चें करते गौरैयों के जोड़े को जब-तब देख लेता है। क्लास में अभी पढ़ाई शुरू नही हुई है। सामने बैठे मास्टर साहब भी बड़े इतमीनान से विनोद से शोभा के विषय में कुछ न कुछ पूछ रहे हैं। क्लास के दूसरे सभी लड़के मास्टर साहब और विनोद की बातें सुनने में लगे हैं।

यह एकाकी लड़का, जिसका नाम कमल है, पिछले पाँच-सात महीनो से इस स्कूल में आया है। हाल की अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपने क्लास में सर्वप्रथम

स्थान प्राप्त किया है। तब से इसे अनायास ही अपने शिक्षकों और साथियों का स्नेह और सम्मान मिलने लगा है। ऊपर से देखने में जितना ही दब्बू और संकोची है, भीतर से उतना ही विनयी, प्रखर और सौम्य। गरीबी की चोटों ने इसे छोटी उमर में ही अपनी अवस्था से अधिक बड़ा और गम्भीर बना दिया है। इसका स्निग्ध और सरल अन्तर इसके प्रत्येक हाव-भाव से झांकता रहता है। वह ऐसे लोगों को भी अपनी ओर सहसा आकृष्ट कर लेता है जो पहले इसे जानते तक नहीं। पतली-सी गर्दन में मटमैली हाफ कमीज, कमर में काले रंग का अत्यन्त साधारण हाफ पैंट, बस यही है उसका पहनावा। नंगे पाँवों पर धूल की परत-सी जमी हुई है। जैसे यह कहीं बहुत दूर से पैदल चलकर आया हो। सरल और स्वच्छ दृष्टि में किसी अनजानी दूरी का स्वप्न तिरता हुआ-सा लगता है।

रायसाहब के गाँव किसनपुर में कमल का ननिहाल है। पिछले कुछ महीनों से यह अपनी विमाता के साथ यहीं आ गया है। स्थानीय स्कूल में पढ़ना भी शुरू कर दिया है। सौभाग्य से अपने क्लास में कमल ही ऐसा लड़का है जो अभी तक विनोद की हरकतों से बचा हुआ है। उसकी शान्त प्रकृति और तेजस्विता से विनोद मन ही मन चिढ़ा रहता है। अब तक न जाने कई बार कमल को अपने चक्कर में लाना चाहा है। दूसरे लड़कों के बीच उसे अपमानित करने की कोशिश की है। किन्तु कमल हर बार अपनी सहनशीलता के कारण उसके दुष्ट चंगुल से बचता आया है। अपने उपायों को विफल होते देख विनोद ने उसे अपने क्लास में 'बुद्धू' नाम से प्रचारित करने की भरपूर कोशिश की है, किन्तु उसे छोड़ शायद ही कोई दूसरा लड़का कमल को बुद्धू कहता हो। इसके बावजूद विनोद के प्रति कमल का कोई दुर्भाव नहीं। कोई शिकायत नहीं। हाँ, विनोद से वह बराबर कतराया रहता है। अपने बचाव के लिए उसके पास इससे बढ़कर कोई दूसरा कवच भी नहीं।

आज विनोद के लिए यह बड़े ही उल्लास का विषय है कि उसको शोभा को सभी प्रशंसा और सम्मान की दृष्टि से देख रहे हैं। वह सबकी दृष्टियों की केन्द्र बनी हुई है। केवल कमल की बेरुखी उसके मन को बुरी तरह कचोट रही है। आज ही, शोभा के सामने ही, इस घमण्डी को मजा चखाएगा, ऐसा उसका निश्चय है।

दोपहर के समय अवकाश का घण्टा बजा। लड़के शोरगुल करते क्लास से बाहर मैदान में आने लगे। कुछ गेंद खेलने लगे। कुछ जलपान करने लगे। कुछ दूसरे खोमचेवालों से गरम समोसे, काबुली, मिठाइयाँ आदि खरीदकर

खाने लगे। कमल को न तो किसी खेल से शौक था, न उसके बस्ते में खाने की ही कोई चीज थी। कुछ खरीद कर खाने के लिए पैसे भी नहीं थे। वह चुपचाप निर्लिप्त भाव से स्कूल के बड़े अहाते के कोने में खड़े कनैल के नीचे बैठ रहा। धूप कुछ तेज हो गई थी। पछेया हवा के गर्म-गर्म झोंकों पर धूल उड़ रही थी। कमल के रूखे-सूखे बाल हवा में बेतरतीबी से लहरा रहे थे। होंठो पर काली पपड़ी पड़ी हुई थी। हाथ में कोई किताब लिए वह अपने मन को एकाग्र करने में लगा था। विनोद ने उसे दूर से ही देखा। उसके मन में अचानक एक शरारत सूझी। खोमचेवाले से उसने कुछ मिठाई खरीदी। कुछ अपने खाया, कुछ शोभा को खिलाया। अन्त में मिठाई का एक टुकड़ा लेकर वह शोभा को साथ लिए कमल के पास पहुँचा। शोभा यन्त्रवत उसका अनुसरण कर रही थी। वह शुरू से ही स्कूल के अपरिचित परिवेश में संकोच से दुबकी हुई थी।

"भाई कमल," विनोद कमल के नजदीक पहुँच कर अपने स्वर में बनावटी नम्रता भरता हुआ बोला "तुम अकेले क्यों बैठे हो? लो यह मिठाई, जलपान करो।"

"धन्यवाद भाई", कमल के स्वर में कृतज्ञता की वंशी बज उठी, "मैं भरपेट खाकर आया हूँ। भूख बिल्कुल नहीं है।"

"बहुत गरीब है बेचारा," विनोद कमल को सुनाकर शोभा से बोला, "भरपेट सूखी रोटी भी नसीब नहीं होती। कहता है कि भरपेट खाकर आया हूँ।"

विनोद को आशा थी कि उसकी व्यंग्यभरी बातें सुनकर कमल तिलमिला जाएगा। तब कमल से उसकी सहज ही मुठभेड़ हो जाएगी। किन्तु जब कमल ने उसकी कड़वी बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया तो विनोद की झल्लाहट और भी भड़क उठी।

"बेचारे की अपनी माँ मर चुकी है। इसी उमर में टूअर हो गया है। इसके नाना मेरे घर मजदूरी करते हैं। हमारा जूठन खाने को ले जाते हैं", विनोद अपने स्वर में और भी तल्खी भरता हुआ बोला, "वही जूठन यह भी खाता है।"

"मैं तो किसी का जूठन नहीं खाता विनोद," कमल से रहा नहीं गया। उसने टोक दिया।

"खबरदार जो झूठ बोला" विनोद गरज उठा, "जूठन के सिवा तुझे मिलता ही क्या है रे बुद्धू?"

"अच्छा भाई, मैं जूठन ही खाता हूँ।"

"अच्छा-वच्छा कुछ नही, तुम्हारी शैतानी मैं खूब समझता हूँ। तुमने मुझे गाली क्यों दी ?"

और इससे पहले कि कमल कोई सफाई दे, विनोद उसके साथ अचानक ही जूझ गया। इस मुठभेड के लिए कमल स्वप्न में भी तैयार नही था। अचानक इस हिंसक आक्रमण से त्रस्त होकर चिल्ला पड़ा। देखते ही देखते बहुत से लडके वहाँ जमा हो गए। तब तक विनोद कमल की छाती पर सवार हो चुका था। उसे कई घूंसे जमा चुका था। उसकी पुरानी कमीज बीच से ही फाडकर ईंट के टुकडे से उसका सिर फोड चुका था। कई लड़को ने एक साथ मिलकर बड़ी मुश्किल से इस गुत्थम-गुत्थी मे दोनों को एक-दूसरे से अलग किया। शान्त-प्रिय शोभा ने अपने अब तक के जीवन में ऐसा नजारा नही देखा था। पहले तो वह साँस रोककर संत्रस्त-सी शुरू से अन्त तक का यह अकल्पित काण्ड देखती रही, फिर उसकी नजर निर्दोष कमल की नाक और सिर से बहती हुई खून की धार पर पड़ी। चोट की पीडा से कमल जमीन पर पड़ा-पड़ा रो रहा था। शोभा के दयालु मन पर करुणा, सहानुभूति, विस्मय और घबडाहट के मिश्रित भाव अनायास तिर गए। वह वहीं खड़ी-खडी सुबकने लगी।

बाहर मैदान में हल्ला सुनकर हेडमास्टर दूसरे कई शिक्षको के साथ निकल आए। उन्होने लडकों को अपने-अपने क्लास में बैठ जाने का आदेश दिया। जब लड़के क्लास के भीतर चले गए तो विनोद और कमल दोनो को उन्होने अपने ऑफिस में बुलाया। कमल अभी भी अपने ललाट के घाव को हाथो से दबाए करुण स्वर में सिसक रहा था। उसके फटे कपडे और उँगलियाँ जगह-जगह ताजे खून से रँगी हुई थी। विनोद को पहले अपनी विजय पर बडी खुशी हुई थी, किन्तु शोभा को रोते देख उसका सारा उत्साह ठंडा पड गया। शोभा की इस बेवकूफी से वह मन ही मन खीझ उठा।

हेडमास्टर ने मामले की छानबीन की। विनोद दोषी ठहराया गया। किन्तु उसे दण्ड कैसे दिया जाए ? यह कोई नई बात तो थी नही। फिर भी आज हेडमास्टर ने कुछ साहस से काम लिया। कडककर बोले, "तुम्हारी दुष्टता की हद हो गई विनोद ! मैं अभी रायसाहब के पास पत्र लिखकर तुम्हारी शैतानी की रिपोर्ट करता हूँ।"

विनोद के लिए इतनी ही धमकी काफी थी। इससे उसके आत्मसम्मान को गहरी ठेस लगी। खासकर शोभा के सामने डाँट सुनकर उसका चेहरा तमतमा उठा। किन्तु उस हालत मे कुछ कर भी नही सकता था। हार मानकर गुस्से

को पीता हुआ उसने हेडमास्टर से घर जाने की छुट्टी माँगी। उसकी प्रार्थना कबूल कर ली गई। वह शोभा की ओर बिना देखे तमतमाया हुआ अपने घर चल पड़ा। शोभा चुपचाप उसके पीछे लग गई। अब तक उसका रोना बन्द हो गया था। रास्ते में दोनों में से किसी ने कोई बात नहीं की। दोनों ही अन्ततः एक-दूसरे से क्षुब्ध थे।

तीन

रायसाहब से विनोद की शिकायत पेश की जा चुकी थी। घर आते ही विनोद रुँआसा होकर अपनी बुआ इन्दुमती से बोला, "कमल ने आज स्कूल में मुझे भद्दी गालियाँ दीं। जब मैंने विरोध किया तो वह मुझे मारने झपट पड़ा। मैंने अपने बचाव में उसके सिर पर चोट की। वहाँ से थोड़ा खून निकल गया। हेडमास्टर ने उल्टे मेरी ही पिटाई की। मुझे स्कूल से निकाल दिया।"

अपने लाडले विनोद की बात सुन इन्दुमती आग-बबूला हो गई। उनका विश्वास था कि संसारभर के लड़कों में एकमात्र विनोद ही निर्दोष और भोला-भाला है। रायसाहब के दूसरे सगे-सम्बन्धी अच्छी तरह जानते थे कि इन्दुमती के अन्धे स्नेह के कारण ही विनोद सबके सिर चढ़ा रहता है। किसी का अदब नहीं मानता। किन्तु रायसाहब के परिवार में इन्दुमती की बड़ी धाक थी। उनके विरुद्ध कोई चूँ तक भी नहीं बोल सकता था। वह खुद नि:संतान विधवा थी। रायसाहब की बड़ी बहन थी। अपने वैधव्य के तुरत बाद ससुराल से सारा सम्बन्ध तोड़ मायके में ही बस गई। रायसाहब के परिवार के सभी सदस्यों में बड़ी होने के कारण उनकी काफी इज्जत थी। उनकी राय लिए बिना रायसाहब कोई काम नहीं करते थे। विनोद छोटा होने पर भी अपनी बुआ के पारिवारिक महत्व को समझता था। उनका कोई भी हुक्म तामील करने में कोई कोर-कसर उठा नहीं रखता था। अपने पिता से बहुत डरता था। बुआ के माध्यम से ही अक्सर अपनी इच्छाओं को उनसे प्रकट किया करता। उसकी माँ सुशीला ने भी अपने लड़के के पालन-पोषण का पूरा भार अपनी ननद को ही दे दिया था। इधर इन्दुमती का विनोद के प्रति उच्छल स्नेहभाव उसे दुष्टता के सम्भावित परिणामों की ओर खींचता चला गया। विनोद उनकी आड़

लेकर बड़ी से बड़ी गलतियाँ कर देता। कोई उसका बाल भी बाँका नही कर पाता।

इन्दुमती ने पहले ही नमक-मिर्च मिलाकर अपने छोटे भाई से हेडमास्टर तथा कमल के विरुद्ध शिकायत कर दी थी। उन्होंने विनोद के अपमान को अपने तथा अपने भाई के ऊँचे खानदान की प्रतिष्ठा का विषय बना लिया। सन्ध्या समय हवेली के सजे-सजाए दीवानखाने में रायसाहब तमतमाए बैठे थे। उनके सामने नीचे फर्श पर कमल के नाना परीछन सिंह कमल के साथ चिन्तित भाव से विराजमान थे। एक समय था जब परीछन सिंह के पुरखे भी जमींदार थे। परिस्थिति वश उन्हे अपनी छोटी जमीदारी रायसाहब के घराने में ही बेंच देनी पड़ी। आज भी परीछन सिंह के धनी घराने का प्रतीक इनका बड़ा-सा मकान मौजूद हैं। इस मकान के कई भाग अब तक धराशायी हो चुके हैं। किन्तु उसका अगला हिस्सा कुछ ठीक-ठाक है। इसी हिस्से में परीछन सिंह का छोटा परिवार रहता है। आजकल इनके निजी परिवार में इनकी धर्मपत्नी के अतिरिक्त दूसरा कोई नही। एक लड़का था, किन्तु कुछ वर्ष पहले वह चेचक का शिकार हो गया। बच गई उनकी पुत्री सुनैना। उसकी शादी कमल के विधुर पिता प्रताप सिंह से करके वे अपने पारिवारिक ऋण से मुक्त हो गए। अमीरी की कब्र पर पनपी हुई गरीबी कितनी दाहक होती है, इसका ज्वलन्त प्रमाण इनका दीन-हीन परिवार है। सजातीय और स्वबर्गीय होने के कारण रायसाहब की इन पर विशेष कृपा रहती है। इनके परिवार का भरण-पोषण जमाने से रायसाहब के घर मे ही होता रहा है। होश सँभालने के बाद से ही परीछन सिंह रायसाहब की खेती-बारी तथा दूसरे धन्धे सँभालते आए है। सामान्य स्थिति में रायसाहब इनकी बातों की कद्र करते है। किन्तु यह सभी जानते है कि क्रोधावस्था मे रायसाहब को आँखो पर परदा छा जाता है। उस समय ये अपना-पराया कुछ नहीं समझते।

क्रुद्ध काले नाग को तरह फुफकारते हुए रायसाहब की बगल में ही एक झीने परदे की ओट में इन्दुमती, निर्मला, सुशीला, शोभा और विनोद यथास्थान बैठे है। शोभा अपनी चाची सुशीला के साथ बैठी है। बड़ी उत्कण्ठा, करुणा और सहानुभूति के भाव से सामने बैठे कमल के मासूम चेहरे को देख रही है। आज दोपहर में घटे उस काण्ड की अमिट छाप उसके कोमल मस्तिष्क पर है। कमल के सिर पर जो पट्टी बँधी है उसमें खून के कुछ धब्बे अब भी दिख रहे हैं। उसे देखकर इस समय भी शोभा का मन करुणा और सहानुभूति से विगलित हो रहा है। उधर विनोद इन्दुमती के पास बड़े गर्व से बैठा है।

कमल को ऐसी टेढ़ी नजर से घूर रहा है, मानो कह रहा हो, "कहो बच्चू, कुशल तो है ? विनोद की महिमा देख ली न ? क्लास में बहुत बनते थे। अब अपनी करनी का फल भोगो !"

केवल हेडमास्टर के आने भर की देर थी। रायसाहब का आखिरी फैसला सुनने के लिए वहाँ लगा छोटा-सा दरबार उत्कण्ठित भी था और भयातुर भी। थोड़ी ही देर में हेडमास्टर भी अपनी बेत की छड़ी घुमाते आ पहुँचे। उनका चेहरा देखने से ही लगा कि वे भीतर से काफी डरे हुए है। केवल बाहर से निर्भीक होने का स्वांग रच रहे हैं। उन्होंने आते ही अदब से झुककर रायसाहब को प्रणाम किया। उनके संकेत पर सामने बिछी मखमली दरी पर बैठ गए।

इन्दुमती ने पहले से ही अपने छोटे भाई का कान भर दिया था। उनमे कुछ और सुनने का धीरज बच नही रहा था। कब किस पर पहाड़ टूटेगा, इसी की आतुर प्रतीक्षा में सभी लोग थे।

"परीछन भाई, तुम्हारे नाती की इतनी हिम्मत जो मेरे विनोद को गालियाँ दे ? उसे मारने पड़े ?" रायसाहब एकाएक गरज पड़े।

असमय मे छाए मेघ की कडकती बिजली की तरह रायसाहब की कठोर वाणी सुनकर सामने बैठे परीछन सिंह के होश उड़ गए। वे अच्छी तरह जानते थे कि कमल निर्दोष है। किन्तु रायसाहब जब तक आपे से बाहर हैं तब तक कोई भी सफाई देना खतरे से खाली नही होता। यही सोचकर वे चुप्पी साधे बैठे रहे।

रायसाहब की आँखें क्रोध से लाल-पीली हो रही थीं। रोबीले चेहरे पर डरावना रंग चढ़ा हुआ था। हेडमास्टर सिर लटकाए मन ही मन अपने भाग्य को कोस रहे थे। सोच रहे थे अब उनकी नौकरी गई। सचमुच हुआ भी यही। परीछन सिंह के लगे बाद हेडमास्टर को कसके डाँट पडी। हेडमास्टर ने हिम्मत करके कुछ सफाई देनी चाही। किन्तु इससे रायसाहब का क्रोध और भी भडक उठा। उन्होने सबके सामने अपना अन्तिम निर्णय सुना दिया— 'परीछन सिंह कमल को अब से उस स्कूल में पढ़ने नही भेजें और हेडमास्टर कल की तारीख से ही बरखास्त किए जाते हैं।' परीछन सिंह ने अपना भाग्य सराहा कि बात यहीं तक रह गई। उधर हेडमास्टर बहुत गिड़गिड़ाए, किन्तु रायसाहब अपने निश्चय से टस से मस भी नहीं हुए।

विनोद मन ही मन विजय के उल्लास में फूला बैठा था। किन्तु अब तक शान्तद्रष्टा के रूप मे बैठी शोभा के मन मे अचानक बड़ी हलचल मच गई।

अपनी आँखों के सामने ही ऐसा घोर अन्याय होते देख उसकी आत्मा तिलमिला गई। उसने भावावेश पर काबू पाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु सफल नही हो पाई। कुछ देर के लिए उसका बाल-सुलभ संकोच न जाने कहाँ जाता रहा। एक अपूर्व आवेश मे वह एकाएक उठ खडी हुई। रायसाहब के सामने जाकर चुपचाप खडी हो गई। रायसाहब ने उसके मासूम किन्तु जिज्ञासु चेहरे को देखा और दुलार से पूछा "क्या बात है बेटा ? कुछ कहना चाहती है ?"

"चाचाजी, बेचारे कमल का कोई कसूर नही," शोभा रायसाहब से ढीठ होकर बोली, "सारा दोष विनोद भैया का है। मैं भी तो वहीं थी। कमल ने न तो विनोद भैया को कोई गाली दी, न उन्हे मारने ही पडा। उल्टे इन्होंने ही उससे व्यर्थ का झगडा मोल लिया। उसे बडी बेरहमी से पीटा। हैडमास्टर साहब भी बिल्कुल निर्दोष हैं। इन्होंने विनोद भैया को स्कूल से नही निकाला। विनोद भैया तो स्कूल से छुट्टी लेकर घर आए!"

शोभा की निर्भीक और दोटूक बातें सुनकर उपस्थित सभी लोग अवाक रह गए। परीछन सिंह और हेडमास्टर दोनों ने उसे मन ही मन न जाने कितने आशीर्वाद दिए। निर्मला अपनी बेटी के साहस और न्यायप्रियता की मन ही मन प्रशंसा करने लगी। उपस्थित लोगों मे केवल इन्दुमती ही ऐसी थी जो शोभा पर जल-भुन गयी। उनका बश चलता तो उस समय वह उसे कच्चा ही चबा डालती। वे क्या करें, क्या नही करें, इसका निश्चय न होने के कारण स्तब्ध-सी बैठी की बैठी रह गई। विनोद का चेहरा भय से पीला पड गया।

"मै जानता हूँ बेटा," रायसाहब गद-गद कण्ठ से शोभा के मुखड़े को चूमते हुए बोले, "तू कभी झूठ नहीं बोल सकती। तेरी गवाही के आगे अब किसी दूसरी गवाही की जरूरत नही रही। तूने आज मुझे एक बड़े पाप से बचा लिया। अपराधी को दण्ड मिलकर रहेगा। अच्छा, जरा ठहर ...... । सुन विनोद, जरा कोठरी में आना तो। तुझसे भी कुछ बातें कर लूं।"

रायसाहब ने शोभा को वही अपनी जगह पर बिठा दिया और बिना किसी की ओर देखे सामने कोठरी में घुस गये। उनके वहाँ जाने तथा विनोद को वही बुलाकर पूछ-ताछ करने का प्रयोजन किसी को मालूम नही हो सका। इन्दुमती भी अपने भाई की बातो से कुछ ताड़ नही सकीं। अपने मन मे झिझक का अनुभव करते हुए भी उन्होंने विनोद को उनके पास जाने दिया। विनोद कोठरी की ओर कुछ इस तरह बढा जैसे कोई बलि का बकरा वध-स्थान की ओर बढा जाता हो। जैसे ही वह कोठरी के भीतर पहुँचा, रायसाहब ने बड़ी फुर्ती से दरवाजा बन्द कर लिया। इसके कुछ ही देर बाद अन्दर से छड़ी चलने की

सट-सट आवाज बाहर तक गूंजने लगी। भीतर विनोद को बेतरह चीखते-चिल्लाते सुनकर इन्दुमती, निर्मला और सुशीला बेतहाशा कोठरी की ओर दौड़ पड़ी। बन्द दरवाजे को बाहर से पीटती हुई वे लगभग एक साथ चिल्ला पड़ी, "यह क्या करते है आप ? खोलिए! खोलिए !"

उक्त घटना के थोड़ी देर बाद की ही बात है। रायसाहब ने बाहर आकर परीछन सिंह और हेडमास्टर से क्षमा माँगी। हेडमास्टर रायसाहब की क्षमा-याचना से कुछ लजाए हुए-से प्रसन्न मन अपने आवास की ओर चले गये। परीछन सिंह ने भी रायसाहब से विदा लेकर कमल के साथ अपने घर प्रस्थान किया। निर्मम पिटाई की पीड़ा से चिल्लाते विनोद को घर के भीतर ले जाया गया। इस समय घर की सभी स्त्रियाँ उसी की सेवा मे एकजुट होकर लगी थी। दास-दासी सभी विनोद को घेरे हुए खड़े थे। केवल एकाकिनी शोभा उन सबसे अलग-थलग हवेली की ऊँची छत के पार्श्व भाग में कामदार रेलिंग के सहारे खड़ी-खड़ी उदास पश्चिमी आकाश को चिन्तित भाव से देख रही थी। अस्तगामी सूर्य की मुरझाई किरणें शोभा के खिन्न मुखड़े की सुन्दरता मे चार चाँद लगा रही थी। सामने नीचे गाँव के कितने घर-द्वार दिख रहे थे। शोभा इन सबसे अलग अपने उलझे विचारों मे ही खोई थी। उसके अबोध मन को आज की दुखद घटना का स्पष्ट रूप से घातक हादसा लगा था। समृद्ध घराने के शान्त वातावरण में पली वह बालिका जीवन की हलचलों से काफी दूर रहती आई थी। उसने अब तक माता-पिता के प्यार के सिवा कुछ नहीं जाना था। उसे याद है, अपने अब तक के जीवन में दुख का अनुभव उसे केवल एक ही बार हुआ था। अपने परम स्नेही पिता बाबू कुमार सिंह की असमय मृत्यु की धूमिल करुण स्मृति उसके मन मे आज भी थी। उसे यह भी याद था कि अपनी माँ को जार-बेजार रोते देख वह भी उस समय कितना रोई थी। मृत्यु की विभी-षिका का अनुमान वह अपनी माँ के करुण क्रन्दन से ही लगा पाई थी। दिन बीतते गये। घाव भरता गया। काल-क्रम से पिता की मर्मान्तक याद भी धूमिल से धूमिलतर होती चली गई। उसके बाद अपने आँचल की एकमात्र

प्यारी निधि शोभा को उसकी विधवा माँ ने फिर कभी यह जानने का मौका ही नहीं दिया कि दुख क्या होता है, अभाव किसे कहते हैं।

लेकिन आज की अकल्पित घटना ने जैसे शोभा को भीतर ही भीतर तोड़ दिया था। उसका मन अत्यन्त दुखी और अशान्त हो गया था। विचारों के ताने-बाने में बुरी तरह उलझी हुई वह समझ नहीं पा रही थी कि आखिर दोष किसका है। कमल के पिटने की याद आती तो वह विनोद को दोषी ठहराती। रायसाहब की बेरहम पिटाई की पीड़ा से छटपटाते विनोद की स्मृति आती तो वह स्वयं अपने को ही अपराधिनी समझने लगती। वह क्या करे, विनोद को कैसे बताये कि उसकी पीड़ा से वह खुद भी घायल हुई है। वह कुछ भी ठीक से सोच नहीं पा रही थी। इसी उधेड़बुन में न जाने कितने क्षण बीत गये। अचानक उसकी नजर सामने नीचे की ओर मुड़ गयी। वहाँ भग्नावशेष के रूप में खड़े एक बड़े से मकान की जीर्ण-शीर्ण दीवारों से घिरे आँगन में कमल को पहचान कर वह चकित-सी रह गयी। कमल के सामने साक्षात चण्डी की तरह लगनेवाली एक मर्दानी औरत को खड़े देख उसका कौतूहल और भी बढ़ गया। वह अपरिचित स्त्री किसी आवेश में हाथ भाँज-भाँजकर कमल से कुछ पूछ रही थी। कमल भयभीत-सा चुपचाप एक कोने में दुबका खड़ा था। विनोद के द्वारा फाड़ी गई मटमैली कमीज अब भी उसकी गर्दन से लटक रही थी। फटी हुई कमीज के एक हिस्से से उसकी नंगी छाती पर उभरी बाईं पसली स्पष्ट दिख रही थी। उस समय उस स्त्री और कमल के सिवा वहाँ दूसरा कोई नहीं था। क्रोधावेश में आगे बढ़कर उस औरत ने कमल की फटी कमीज को झटके के साथ खींचकर दूर आँगन में फेंक दिया। फिर उसके दोनों हाथों को पीठ पीछे ले जाकर रस्सी से बाँध दिया। इसके बाद वह दाँत पीसती हुई कुछ देर के लिए कहीं चली गई। निरीह कमल सुबकता हुआ अकेला खड़ा रहा। जैसे किसी बड़े संकट का इन्तजार कर रहा हो। उसने अभी से ही कुछ जोर से रोना शुरू कर दिया था जैसा कि उसके खुले हुए मुख तथा बेतरह काँपते होठों से मालूम हो रहा था। शोभा का बाल-हृदय न जाने किस अनिष्ट की आशंका से काँप उठा। उसके सामने कुछ ही घंटे पहले का करुण दृश्य चलचित्र की तरह घूम गया जबकि निर्दोष कमल पर विनोद ने बड़ी निर्दयता से प्रहार किया था। थोड़ी ही देर में शोभा ने देखा कि वह स्त्री फिर कहीं से आ गयी है। अब उसके हाथ में एक पतली लोहे की छड़ है। उसने छड़ को भय से रोते कमल के सामने नीचे फर्श पर रख दिया और फिर कोई दूसरी चीज लाने कहीं चली गई। थोड़ी देर बाद वह दहकती चिनगारियों की एक अँगीठी लिए आ

पहुँची। छड़ के एक किनारे को अँगीठी की आग में तपने के लिए छोड़ दिया। शोभा का कोमल हृदय एक अपूर्व घबड़ाहट से भर गया। उसने बन्दी कमल को बिना किसी प्रहार के ही चिल्लाते और जमीन पर लोटते हुए देखा। उसकी कोमल देह तपे लोहे से दागी जाएगी, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। किन्तु कुछ देर में हुआ वही जो उसके कल्पनातीत था। उस निठुर औरत ने फर्श पर तड़पते कमल की नंगी पीठ को तपे लोहे की छड़ से दाग दिया। शोभा के होश उड़ गये। उसकी आँखें फैली की फैली रह गईं। वह निर्जीव कठपुतली की तरह अपलक छटपट करते हुए कमल को तब तक देखती रही जब तक वह स्वयं अचेत होकर छत पर गिर न पड़ी।

पाँच

शोभा को जब होश हुआ तो उसने पाया कि वह किसी मुलायम बिस्तर पर लेटी हुई है। विनोद की माँ सुशीला ललाट पर किसी ठंढी चीज को पट्टी कर रही थी। उसकी माँ निर्मला उसके मुख की ओर झुकी हुई अपनी आँखों से टप-टप आँसू बरसा रही थीं। दो-चार व्यक्ति और भी दिखे। सभी उसको घेरे हुए चिन्तित भाव से खड़े थे। इन सबको वह एकाएक पहचान नहीं सकी। आँख खुलते ही उसने अत्यन्त क्षीण स्वर में पुकारा, "माँ!"

"मेरी बेटी! मेरी लाड़ली!!" कहती हुई निर्मला अपनी बच्ची के गले से लिपट गयी। उनकी आँखों से गंगा-यमुना बह चली।

शोभा कुछ स्वस्थ-सी होकर कुछ क्षणों तक अपनी स्थिति को समझने की चेष्टा करती रही। सहसा उसकी आँखों के सामने एक बीभत्स दृश्य नाच गया। उसकी कराह-भरी चीख निकल पड़ी, "कमल मर गया माँ, कमल""!"

बेहोशी का दौड़ा फिर शुरू हो गया। डाक्टर ने सुबकती हुई निर्मला को बहुत आश्वासन दिया और संज्ञाहीन शोभा के शरीर का एक बार फिर परीक्षण किया। रायसाहब ने डाक्टर को चिन्तित दृष्टि से देखा।

"घबड़ाइये मत," डाक्टर ने प्रबोध देते हुए कहा, "यह जल्दी ही अच्छी हो

जायेगी। अभी इसके मन पर किसी भयानक घटना का प्रभाव है। मैंने जैसा बताया है, वैसा ही उपचार करते जाइए।"

× × × ×

शोभा को पूरी तरह स्वस्थ होने मे दो दिन लगे। दो दिनो तक निर्मला और सुशीला डाक्टर की मदद से बराबर उसकी सेवा में जुटी रही। तीसरे दिन सन्ध्या समय शोभा के जिद पकडने पर उसे कुछ देर के लिए हवेली से संलग्न उद्यान मे घूमने की अनुमति दे दी गई। निर्मला स्वयं भी उसके साथ ही घूमने गई। इतने दिनो तक शोभा ने विनोद को एक बार भी नही देखा था। उद्यान में अपने को माँ के साथ एकाकी पाकर उसने कुछ चिन्तित भाव से पूछा, "विनोद भैया कहाँ चले गये माँ ?"

"वह अभी भी बहुत कमजोर है बेटा," निर्मला ने वात्सल्य के मीठे स्वर में कहा, "ठाकुर भैया की निर्मम पिटाई से बुखार में डूबा था। लेकिन अब ठीक है। केवल कमजोरी रह गयी है।"

माँ की बात सुनकर शोभा के मन मे सुख और दुख की अजीब-सी मिश्रित अनुभूति हुई। कुछ देर चुप रहकर चिन्तित मुद्रा में पिछली घटनाओ के तार जोडने लगी।

"तुमने विनोद को नही देखा बेटा," निर्मला बोली "उसे देखने चलोगी ?"

पहले तो शोभा को लगा जैसे उसी के मन की बात कही गई है। अतः उसने हँसती हुई आँखों से एक बार अपनी माँ को निहारा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसका उत्फुल्ल मुखड़ा स्वत. ही गम्भीर पड गया। वह सिर झुकाए अपने पैरों के अंगूठे से मिट्टी कुरेदने लगी।

"क्यो, क्या सोच रही है बेटी ?"

"मैं विनोद भैया को देखने नही जाऊँगी।"

"ऐसा क्यों ?" निर्मला ने प्यारसे उसकी ठुड्डी को ऊपर करके उसे चूमते हुए कहा, "इतना रंज नही मानते बेटा !"

शोभा को उस समय अपनी माँ का मन्द-मन्द मुस्काना न जाने क्यों लज्जाप्रद लगा। उसने झट से संकोच के रंग में रँगा अपना मुखडा माँ के आँचल में छिपा लिया। निर्मला प्यार से उसका सिर सहलाने लगी। कुछ क्षण इसी तरह बीते। शोभा को एकाएक कुछ याद आया। माँ के आँचल से अपने चेहरे को अलग करके उत्सुक वाणी मे पूछ पड़ी, "कमल का क्या हुआ माँ ?"

"कमल को आज ही उसके गाँव भेज दिया गया," निर्मला कुछ गम्भीर पड़कर बोली, "उसके घाव भी अब भरने लगे है। उसकी दुष्ट विमाता सुनैना

को ठाकुर भैया ने बड़ी कड़ी फटकार सुनाई है। उस देवता के समान निर्दोष बालक पर उसने सचमुच बड़ी निर्दयता बरती है।"

इधर निर्मला का कहना समाप्त हुआ, उधर शोभा की आँखें छलछला आईं।

छह

अपने पिता की निर्मम पिटाई खाकर विनोद कई दिनों तक बिस्तर [illegible] रहा। उधर शोभा की मानसिक स्थिति बड़ी नाजुक हो चली थी। [illegible] अपनी समझ से उसी के कारण विनोद पिटा था। अतः उस [illegible] किसी अज्ञात भय और संकोच के मारे वह चाहकर भी विनोद को [illegible] जा सकी। विनोद के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अपनी माँ से ही [illegible] लिया करती। यदि उसका वश चलता तो वह विनोद की पीड़ा [illegible] लिए होती। उसकी वेदना से अपने दुखते प्राणों को पीड़ा को [illegible] किन्तु वह सर्वथा असमर्थ थी। इस काम के लिए [illegible] नहीं, किन्तु बुद्धि और भाषा की बड़ी कमी थी। विनोद [illegible] रहा होगा, यह सोचकर उसका बुरा हाल था।

एक दिन सन्ध्या समय शोभा अकेली ही [illegible] में टहल रही थी। विदेशी गुलाब के एक [illegible] उसी रंग की तितली कभी बैठती और कभी [illegible] तितली के हाव भाव देखने में तन्मय हो गई थी [illegible] कुछ भी अहसास नहीं रह गया था। [illegible] के दूसरे हिस्से में टहल रहे थे। [illegible] मूक भावों का आदान-प्रदान करती रही। [illegible] विनोद उसके पास आकर उसे [illegible] विनोद की नजर से टकराई। [illegible] में खड़ी की खड़ी रह गयी।

से ऐंठ दिया। वह चिल्ला पडी। विनोद ने उसके नरम कपोलों पर जल्दी-जल्दी चार-पाँच थपेडे जड दिए। फिर घर की ओर भाग चला। ज्यों ही कुछ आगे बढा कि सामने अपने माता-पिता के साथ निर्मला को टहलते देख सहम गया। दूसरा कोई रास्ता न देख वह बगल के लता-गुल्म में छिप गया। रोती हुई शोभा ने दूर से ही उसका छिपना देख लिया था। किन्तु रायसाहब आदि तीनो मे से किसी को भी विनोद के वहाँ आने, भागने या छिपने का आभास नही मिल सका। वे तीनों जल्दबाजी में स्पष्टतः उसी दिशा की ओर बढ़े आ रहे थे जहाँ शोभा रो रही थी। पास पहुँचते ही घबड़ाए हुए रायसाहब उसे पुचकारने लगे। उसके आँसू पोंछकर बोले, "क्यों बेटा, क्या बात हुई ?"

शोभा ने रोते हुए ही एक बार तिरछी नजरों से उस झाड़ी की ओर देखा जिसमें विनोद दुबककर छिपा हुआ था। फिर अपने को संयत करती हुई रुआँसी आवाज में बोली, "कुछ नही चाचा जी ! मुझे एक मधुमक्खी ने काट लिया !"

"कहाँ ? किस जगह ?"

"यहाँ," शोभा ने अपने दाहिने कर्णपुट की ओर संकेत किया।

रायसाहब ने ध्यान से देखा। उन्हे शोभा के कान का वह भाग सचमुच कुछ लाल दिखाई दिया। शोभा के कान को प्यार से सहलाते हुए बोले, "चुप हो जा बेटा, तेरे कान पर अभी दवा लगाता हूँ।"

शोभा को साथ लिए तीनो व्यक्ति हवेली की ओर बढ़ चले। घर पहुँचते ही रायसाहब ने उसके कान पर कोई दवा लगा दी। तब तक शोभा आश्वस्त हो गई थी। कुछ देर बाद अपनी माँ को अकेली पाकर शोभा ने खिन्न भाव से पूछा, "माँ, अपने घर कब चलोगी ?"

आज तक निर्मला ने अपनी बच्ची के मुँह से घर चलने की बात नही सुनी था। वह तो एक बार यहाँ आ जाने पर फिर यहाँ से अपने घर जाने की इच्छा ही नही करती थी। उसी के जोर देने पर निर्मला अक्सर रायसाहब के घर आ जाया करती थी। अपनी पुत्री की उदासी में सनी हुई बात सुनकर उन्हें किंचित आश्चर्य हुआ। बडे स्नेह से शोभा का मुखड़ा चूमते हुए बोलीं, "बहुत जल्द बेटा! आज ही मैं ठाकुर भैया से सोनपुर जाने के विषय में कहूँगी।"

सात

आज निर्मला की विदाई है। वे तैयार होकर उदास मुख रायसाहब के पास बैठी हैं। रायसाहब खुद भी खिन्न दिख रहे हैं। दोनों में कुछ देर पहले से ही बातों का सिलसिला चल पडा है। बातचीत के एक मोड़ पर रायसाहब कहते है, "मैंने तो इस बार सोचा था कि तुम दोनों को कम से कम छह महीनों तक अपने पास रखूंगा। किन्तु तुम्हारी जिद जो न कराये।"

"नही भैया", निर्मला बोलती है, "आप तो जानते ही हैं कि घर की कितनी बड़ी जिम्मेदारी मेरे कन्धे पर है। सासजी तो अब बिल्कुल ही थक गयी। मुझे छोड़ घर देखनेवाला कोई नहीं। इसीलिए कुछ जल्दी है।"

"कोई बात नहीं," रायसाहब कुछ खांसकर कहते है, "शर्त यही रही कि फिर मैं जब कभी बुलाऊँ, तुम्हे आ जाना होगा।"

"जरूर आऊँगी भैया," निर्मला गीले कंठ से कहती है, "मुझे यहाँ आने से इन्कार कब है ? आपकी ही शरण में तो छोड़ी गई हूँ।"

"शरण-वरण की कोई बात नही बहन," रायसाहब धीरज और विश्वास के स्वर में बोलते है, "यह तो मेरा फर्ज है। तुम्हें और शोभा को खुश रखना मेरा धर्म है।............कुमार की दोस्ती और उपकार क्या भूले जा सकते है ?"

इस बार रायसाहब के गले में कुछ खसखसाहट होती है। निर्मला आँचल से अपनी उमडी आँखें पोंछती है। कुछ देर तक मौन छाया रहता है।

"आप से मेरी एक विनती है भैया," निर्मला मौन भंग करती है, "आप मेरे यहाँ जब कभी आयें, विनोद को भी साथ लाना न भूले।"

"जरूर लेता आऊँगा उसे.........अभी तो बच्चा ठहरा, शैतानी कर बैठता है। बड़ा होने पर सुधर ही जायेगा।"

"जरूर सुधर जायेगा," निर्मला आशा के स्वर में कहती है, "किन्तु आपको भी उसके प्रति इतना कठोर नही होना चाहिए।",

"मैं और कठोर ?" रायसाहब कुछ हँसकर कहते है, "विनोद के स्नेह में पड़कर तुम असलियत भूल जाती हो। तुम तो जानती हो कि विनोद के सिवा मेरी कोई दूसरी सन्तान नही। आगे चलकर घर की सारी जिम्मेदारी उसे

ही सँभालनी है। अगर इसी समय से उसे काबू में नहीं रखा जा सका तो भविष्य में वह अपने को बिगाड़ लेगा। परिवार की इज्जत को भी धूल में मिला सकता है। मैं नहीं चाहता कि किसी के अन्धे प्यार में पड़कर मेरा बेटा आवारा हो जाये।"

निर्मला चाहकर भी इस विषय में फिर कुछ नहीं बोल पाती। राय-साहब की अन्तिम बात सुनकर उन्हें इच्छा होती है कि विनोद के भविष्य के सम्बन्ध में दो शब्द कहें, किन्तु जीभ चल नहीं पाती। इन्दुमती का कुटिल स्वभाव उनसे छिपा नहीं है। विनोद के चरित्र पर इन्दुमती के लाड़-प्यार का बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इसका उन्हें अहसास है। जिस दिन से शोभा ने विनोद के चरित्र की पोल खोल दी थी और उसकी पिटाई हुई थी, उसी दिन से इन्दुमती निर्मला और शोभा दोनों को अपना दुश्मन समझने लगी थी। इन्दुमती के हाव-भाव से साफ प्रकट हो जाता है कि वे इन दोनों माँ-बेटी की जल्दी से जल्दी विदाई करा देना चाहती है। जैसे ये दोनों इनकी आजादी में दखल देने आयी हों। बहुत कुछ इसी बात से निर्मला ने अपने घर जाने की जल्दी दिखाई है। लेकिन इन सारी बातों को रायसाहब से कहना वे उचित नहीं समझती। इससे उनके पारिवारिक जीवन में कड़वाहट पैदा हो सकती है।

हवेली के भीतर विनोद की माँ सुशीला किशोरी शोभा को सजने-सँवारने में लगी हुई है। उसे नहला-धुलाकर वेश-विन्यास कर देने के बाद अपने घर के नये कपड़े पहना रही है। इन्दुमती हवेली की ड्योढ़ी पर खड़ी-खड़ी यह सब देख-देखकर मन ही मन कुढ़ रही है। उधर विनोद कुछ दूर से विदा होने से पहले शोभा का आकर्षक प्रसाधन देख रहा है। स्कूल वाली घटना के बाद इन दोनों में बात-चीत तो अलग, आमना-सामना भी नहीं हुआ था। उस दिन उद्यान में कुछ देर के लिए देखा-देखी हुई भी तो विनोद ने एक दूसरा ही काण्ड रच डाला। तब से दोनों फिर एक-दूसरे से कतरा कर रहने लगे थे। यों उस घटना के बाद विनोद अब भीतर से पश्चात्ताप करने लगा है। आज वह शोभा की विदाई का कारण अपने को ही मान रहा है। न वह शोभा की पिटाई करता और न वह इतनी जल्दी अपने घर जाती। आज सबेरे से ही वह ऐसे मौके की तलाश में है जब वह कुछ देर के लिए भी शोभा के साथ अकेले में मिल सके। अपना दिल खोलकर वह शोभा से माफी माँग लेना चाहता है। दुर्भाग्य से उसे ऐसा अवसर अभी तक नहीं मिला है।

शोभा को बाहर आँगन में कुछ देर बैठने के लिए कहकर सुशीला कोई

चीज लाने घर के भीतर चली गई। अवसर देखकर विनोद ने साहस बटोर-कर प्यार भरी वाणी में धीरे से पुकारा, 'शोभा !''

शोभा ने अपनी हरिणी की तरह चकित कजरारी नजरों को घुमाकर देखा। सामने बरामदे के कोने में खड़ा विनोद उसे हाथ के संकेत से अपने पास बुला रहा था। इस आमंत्रण मे कुछ ऐसा जादू था कि शोभा बिना कुछ सोचे-समझे विनोद की ओर खिंच गयी। जैसे किसी शक्तिशाली चुम्बक की ओर लोहे का कोई छोटा कण आकृष्ट हो गया हो। सिर झुकाए विनोद के पास जा पहुँची। विनोद के पास जाकर भी लज्जा और संकोच के भार मे उसका सिर ऊपर नही उठ सका।

"शोभा !" विनोद ने शोभा का हाथ अपने हाथ मे थामते हुए मीठी वाणी में पुकारा।

शोभा ने एक बार लजाई हुई नजरो से विनोद को देखा। उसके उदास मुखड़े को देखकर पुनः अपना सिर नीचे झुका लिया।

"मैंने बड़ी गलती कर डाली शोभा !..........माफ नही कर दोगी ?"

"गलती कैसी विनोद भैया," शोभा अपने भीगे हुए स्वर को संयत करती हुई साहसपूर्वक बोल गई, "माफी तो तुम मुझे दोगे।"

विनोद फिर कुछ नही बोल सका। उससे कुछ बोला ही नही गया। उसे ऐसा अहसास हुआ जैसे शोभा के अंग-प्रत्यंग से करुणा और क्षमा की वृष्टि हो रही है। वह खुद उस वर्षा की बूंदो से आप्लावित हो चला है। किसी अज्ञात प्रेरणा से उसने शोभा को अपनी ओर खींच लिया और उसके कन्धे पर अपना सिर टेक दिया। भावुक शोभा ने बिना किसी झिझक के ऐसा हो जाने दिया। बाद मे उसका सिर भी विनोद के कन्धे पर स्वतः झुक गया। इतने दिनो के दुराव से दोनों के मन मे जो पीड़ा की परतें पड़ती गयी थीं, वे इस आकस्मिक मिलन से अब उनकी पलको पर लहरा उठीं। विनोद के नासा-रन्ध्र में शोभा के सजे-सँवारे सुगन्धित केशों की महक भर गयी। उसे बडा अच्छा लगा। वह शोभा से और अधिक चिपट गया।

ठीक इसी समय पीछे से सुशीला की आवाज आयी, "अरी शोभा ! किधर गयी री ?"

आवाज सुनते ही दोनो हड़बड़ाकर एक दूसरे से अलग हो गये। पलक मारते ही शोभा सुशीला के पास पहुँच गयी। उनसे विनय भरे स्वर में बोली, "चाची, विनोद भैया को भी मेरे साथ जाने दीजिए न ! कुछ दिन मेरे घर रहकर ये फिर चले आयेंगे !"

"अच्छा, तो यह बात !" सुशीला हँसकर चुटकी लेती हुई बोली, "मालूम होता है, दोनों में सन्धि हो गयी !"

चाची का मजाक सुनकर शोभा झेंप गयी। उसी समय विनोद भी वहाँ पहुँच गया।

"तू इस बार अकेली ही जा बेटी," सुशीला अब कुछ गंभीर होकर बोलीं, "कुछ दिनों बाद मैं विनोद को तुम्हारे घर जरूर भेज दूँगी।"

बाहर से रायसाहब भी निर्मला के साथ हवेली के भीतर आ गये। उन्होंने बताया कि गाडी तैयार है। जल्दी होनी चाहिए। कुछ देर में सब लोग साथ ही हवेली के बाहर गेट की ओर बढ चले। सबके पीछे शोभा और विनोद चल रहे थे। दोनों के चेहरे पर खेद और पश्चाताप का भाव झलक रहा था। कुछ कदम चलकर शोभा ने विनोद से धीरे से कहा, "तुम मेरे घर जल्दी आओगे न भैया ? मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगी।"

इसके जवाब में विनोद ने केवल स्वीकारात्मक सिर हिला दिया। उसका गला रुँध आया था। चाहकर भी कुछ बोल नही सका। कार में चढ़ने से पहले शोभा और निर्मला दोनों की आँखें बरसने लगी। उपस्थित दूसरे लोग भी बिदाई की करुणा से प्रभावित हो गये। निर्मला और शोभा ने सामने खड़े रायसाहब के चरण स्पर्श किए। फिर वे दोनों कार में बैठ गयीं। विनोद मर्माहत-सा वही खड़ा-खडा यह सब कुछ अपलक देखता रह गया। सुशीला उसे अपने निकट खीचकर प्यार भरे शब्दों में आश्वासन देने लगी। देखते ही देखते कैलाश ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। वहाँ खड़े लोग कार को तब तक देखते रहे जब तक वह दूर वृक्षावलियों में ओझल न हो गई।

आठ

कमल को अपने गाँव आये लगभग दो महीने बीत चुके थे। अब उसके घाव भर चुके थे। हाँ, अभी भी उस नृशंसता के प्रतीक उसकी पीठ पर तीन उजले निशान मौजूद थे। उसके पिता प्रताप सिंह के पास रायसाहब ने एक कड़ा पत्र लिख भेजा था। पत्र में सुनैना की दुष्ट प्रकृति की ओर लक्ष्य करके उसे

रास्ते पर लाने की बात की गई थी। इस बात पर अधिक बल दिया गया था कि सुनैना भविष्य में फिर कभी अपने सौतेले बेटे के प्रति ऐसी निर्दयता न बरते। प्रताप ने जब कमल के घाव देखे तो अपना सिर पीट लिया। कहाँ से कहाँ उन्होंने दूसरी शादी की! उनके सामने अपनी पहली पत्नी का शान्त-स्निग्ध चेहरा नाच गया। कमल अभी पाँच वर्ष का भी नहीं हो पाया था कि वह तपेदिक की शिकार हो गई। मरने से पहले उसका अन्तिम वाक्य यही था — "मेरे बच्चे पर ख्याल रखना!" इस छोटे से वाक्य में ही कमल के प्रति उसका मातृ-स्नेह उमड़ आया था। अपने बच्चे के लिए आँसू बहाते हुए ही उसने प्राण त्याग दिए थे। उस समय प्रताप ने मन ही मन निश्चय किया कि वे दूसरी शादी नहीं करेंगे। कमल के मुखड़े को देख-देखकर ही अपने जीवन के तमाम अभावों को भुला देंगे। किन्तु पत्नी की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही इन पर अपनी विधवा भाभी गीता देवी तथा प्रिय कनिष्ठ जगमोहन का दबाव पड़ने लगा। हार मानकर इन्हें दूसरी शादी कर लेनी पड़ी। विवाह के आरम्भिक वर्षों में सुनैना के स्वभाव में कोई त्रुटि नहीं जान पड़ी। वह कमल को मातृ-सुलभ स्नेह देती रही। किन्तु जब से सुनैना को अपने पहले पुत्र की प्राप्ति हुई, वह कमल से विमुख होती चली गयी। प्रताप के छोटे भाई जगमोहन की शादी ने भी उसके स्वभाव में परिवर्तन ला दिया। जगमोहन की पत्नी से इसकी कभी नहीं पटी। धीरे-धीरे किसी न किसी बहाने वह गीता देवी तथा अपनी छोटी गोतिन फूला से झगड़ने लगी। गीता देवी बराबर फूला का ही पक्ष लेती थी। इससे सुनैना का मन फूला के प्रति और भी ईर्ष्यालु होता चला गया। वर्षों से परस्पर विश्वास और स्नेह के सूत्रों में बँधा हुआ परिवार टूटता गया। कपट, ईर्ष्या और अविश्वास की दरारें पड़ने लगीं।

सुनैना धीरे-धीरे तीन बच्चों की माँ हो गई। कमल से वह लगातार कतराती चली गई। घर रहने पर कमल का काम था अपनी छह मास की सौतेली बहन को गोद लिए रहना। इसमें उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई प्रश्न नहीं था। सुनैना का आदेश था कि कमल उसकी बच्ची को लिए रहे ताकि वह खुद घरेलू काम कर सके। वह अपनी बच्ची को घर की किसी भी दूसरी औरत को नहीं देती थी। गीता इसके लिए सुनैना को बराबर कोसती रहती थी, किन्तु इसका फल कभी अनुकूल नहीं हुआ। यदि बच्ची कभी रो देती और रोने की आवाज सुनैना के कानों में पहुँचती तो कमल पर डाँट-फटकार की बौछार शुरू हो जाती। कमल मन मारे अपनी विमाता के अत्याचार सहा करता।

कमल को अपने परिवार में गीता देवी सबसे अधिक प्रिय थीं। गीता के

अपनी कोई सन्तान नहीं थी। कमल को उन्होंने एक तरह से गोद ही ले लिया था। मातृहीन कमल उन्हे बचपन से ही माँ कहकर पुकारा करता था। अपनी विमाता को वह चाहकर भी माँ नही कह पाया। इसके लिए उसके पिता भी उससे कुढे रहते। सुनैना की नजर में इसके पीछे गीता का ही हाथ था। उन्ही के बहकावे में पड़कर कमल उसे माँ नही कहता। इस बात को लेकर भी वह गीता से लडती-झगड़ती थी। किन्तु कमल और गीता के परस्पर सम्बन्ध में अब तक ऐसे लडाई-झगडो से कोई अटकाव पैदा नही हुआ।

जब प्रताप अपने श्वसुर के अनुरोध पर सुनैना को उसके मायके भेजने लगे तो उनके मन में एक नई कल्पना जगी। कमल को अपनी विमाता के अनुकूल बनाने के ख्याल से उन्होंने एक योजना तैयार की। यदि कमल को भी सुनैना के साथ भेज दिया जाये तो वे दोनों घर के कलहपूर्ण वातावरण से अलग रहकर एक-दूसरे के करीब आ जायेंगे। सुनैना कमल को साथ ले जाने के लिए तैयार हो गई। किन्तु गीता किसी भी कीमत पर कमल को छोडना नहीं चाहती थी। प्रताप अपनी भाभी की जिद जानते थे, किन्तु उन्होंने हार नही मानी। अनेक प्रकार से भाभी की खुशामद की। उन्हे विश्वास दिया कि वे कमल को एक-डेढ महीने के भीतर ही अपने घर बुला लेंगे। आखिर गीता इसी शर्त्त पर मान गयीं। प्रताप ने अपने श्वसुर को पत्र लिखकर उन्हें कमल और सुनैना के भविष्य के लिए सचेत कर दिया। यह भी लिख दिया कि कुछ दिनो तक कमल के पढने की व्यवस्था वे वहीं किसी स्थानीय स्कूल में कर देंगे। प्रताप की भीतरी इच्छा यही थी कि वे कमल और सुनैना को कुछ विलम्ब से ही अपने घर बुलाएँगे। इसका एक कारण यह भी था कि उस वर्ष उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। फसल मारी गई थी। घर का अन्न स्वाहा हो चुका था। ऊपर से तीन सौ का कर्ज हो चला था। प्रताप बहुत दिनों से अपने घर से कुछ दूर मण्डी में एक सेठ जी के यहाँ पल्लेदारी करते थे। यह काम उनकी रुचि का नहीं था। किन्तु घर को चलाने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही था। ज्यादा पढे-लिखे भी नही थे कि कोई दूसरी नौकरी आसानी से मिल जाती। छोटे भाई जगमोहन पर खेती की देख-रेख का भार था। खेती के नाम पर भी इस परिवार को बहुत कम बचा था। इसीलिए शायद ही किसी साल उन्हे आर्थिक संकट का मुकाबला नही करना पडता हो।

जब कमल को अपनी विमाता के साथ किसनपुर गये तीन महीने से भी अधिक होने लगे तो गीता देवी को चिन्ता बढने लगी थी। वे प्रायः प्रतिदिन टोकती कि कमल को बुला लिया जाये। किन्तु प्रताप किसी न किसी बहाने बात

टाल्ते जा रहे थे। इसी बीच गीता के भाई की शादी तय हो गयी। विवाह के अवसर पर आमन्त्रित होकर वे भी अपने मायके चली गयीं। इससे प्रताप को मन ही मन खुशी हुई कि रोज-रोज का एक संकट टला।

लेकिन उस दिन प्रताप ने जब अपने दरवाजे पर अपने पुराने जमींदार रायसाहब ठाकुर गोपाल सिंह की जीप लगी देखी तो उनका मन आशंका से भर गया। गाड़ी से कमल को उतरते देखकर उन्हें और भी अचरज हुआ। इस आकस्मिक ढंग से कमल को आया देख धीरे-धीरे वहाँ गाँव के स्त्री-पुरुषों की एक खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। ड्राइवर ने रायसाहब का पत्र प्रताप के हाथ में थमा दिया और वहाँ बिना अधिक देर ठहरे चलता बना। कमल चूँकि कमीज पहने था, अत: उपस्थित लोगों को उसके घाव के चिह्न देखने का अवसर नहीं मिल सका। हाँ, इस बात से सबको आश्चर्य था कि एक साधारण जन के लिए रायसाहब की ऐसी कृपा कैसे हो गयी। इस सम्बन्ध में लोगों में अनेक प्रकार की कानाफूसी शुरू हो गयी।

प्रताप रायसाहब का पत्र पढ़कर दंग रह गये। वह धीरे से कमल को एकान्त में ले गये और उसके घावों का निरीक्षण किया। इन्होंने [illegible] माना कि उस समय तक उनकी भाभी गीता अपनी पीहर से नहीं लौटी थी। यदि वे होती तो कमल की दुर्दशा देखकर प्रताप को न जाने कैसी खरी-खोटी सुनातीं। कमल शान्त भाव से अपने पिता के सामने खड़ा था। [illegible] के सम्बन्ध में कई प्रश्न किए। उसने अपनी [illegible] अपने पिता से निवेदित किया। उसने पिता की आँखों [illegible]। लेकिन इसका उसके मन पर कोई अनुकूल या [illegible] नहीं पड़ा। वह जैसे तटस्थ भाव से अपनी या अपने पिता [illegible] था। अन्त में प्रताप ने उसे गले लगा लिया और [illegible]। [illegible] जैसे उसका मन भी पसीज रहा हो। [illegible] नहीं पाई। हाँ, पिता के लिए उसने मन [illegible] किया। [illegible] अपने स्वर को संयत करते हुए [illegible], "[illegible] भाभी की बात मैंने नहीं मानी। [illegible] किया। लेकिन [illegible] यदि तू मेरा सिर समाज में [illegible] में किसी भी आदमी से कुछ नहीं [illegible]।"

कमल के आने के लगभग तीन महीने बाद सुनैना को भी बुला लिया गया। प्रताप पहली ही रात को कमल के सम्बन्ध में जब उसे डाँटने पड़े तो वह उल्टे उनसे झगड़ने लगी। सुनैना की नजर में कमल आवारा हो गया था। यदि वह ऐसा नही होता तो रायसाहब जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के बेटे को पीट देने की हिम्मत उसे नहीं होती। सुनैना ने अपने पति से स्कूल वाली घटना के सम्बन्ध में कुछ इस तरह बातें बनाकर कहा कि सारा दोष कमल पर ही आता था। प्रताप के लिए यह बिल्कुल नयी बात थी। सुनैना ने अपनी बातों में नमक-मिर्च लगाकर तथा कई कसमें खाकर प्रताप के मन में यह विश्वास बद्धमूल कर दिया कि कमल सचमुच अपराधी है। धीरे-धीरे अपनी पत्नी के विरुद्ध उनका रोष ठंढा पड गया। उनकी नजर मे रायसाहब के बेटे को पीटने जैसी धृष्टता मामूली अपराध नही था। उन्हें आश्चर्य हुआ कि रायसाहब ने अपने निजी पत्र में उस बात का जिक्र क्यो नही किया था। अन्त में प्रताप ने इसे उनकी सज्जनता और बड़प्पन मानकर संतोष कर लिया।

इधर कमल के जीवन में इन सारी नई-पुरानी बातों से कोई विकृति पैदा नही हुई। वह पहले जैसा था, वैसा अब भी था। अपने बडे से बडे दुख को भी पी जाने की क्षमता रखता था। उसके पिता ने सुनैना के बहकावे में पड़कर उसे स्कूल वाली घटना के लिए नये सिरे से फटकारा। वह चुपचाप रह गया। अपनी ओर से कोई सफाई नही दी। शायद वह जानता था कि उसकी किसी भी सफाई का कोई मूल्य नही होगा। गीता के अभाव मे वह अब तक अपने पिता के साथ ही सोया करता था। लेकिन जब से सुनैना आई है, उसे अकेले ही सोना होता है। अपनी चाची फूला के साथ सोना उसे पसन्द नही। चाचा जगमोहन का शुरू से ही स्वभाव था कि वे अपने घर न सोकर गाँव में कही इधर-उधर सो जाया करते थे।

आज पूर्णिमा की रात थी। गर्मी के कारण कमल बरामदे में नही सो सका। उसने अपने छोटे आँगन में चाची से खाट डलवा दी और खा-पीकर सो रहा। उसके बिस्तर के आस-पास कुछ बकरे बँधे थे। उसकी चाची का एक बकरा खुला होने के कारण कमल की खाट के नीचे आ-जा रहा था। उसके नीचे ससरने से ऊपर बिस्तर में जो उतार-चढाव हो रहा था, उससे कमल को एक अजीब-सी सुखद अनुभूति हो रही थी। आज दोपहर से ही कमल का मन कुछ भारी था। उसने बकरे को स्नेहपूर्वक अपने पास खींच लिया। सोए-सोए ही उसका मुख ऊपर उठाकर चूम लिया। बकरे पर इस स्नेह की अच्छी प्रतिक्रिया हुई। वह कमल का तलवा चाटने लगा। कमल ने बकरे की

उसने चिन्ता छोड़कर दूर आकाश में दृष्टि दौड़ा दी। पूर्णिमा का चाँद दिशाओं में अपनी किरणों का अमृत बिखेर रहा था। आकाश बिल्कुल स्वच्छ था। बादल का एक छोटा-सा उजला टुकड़ा न जाने चाँद के निकट निस्पन्द खड़ा था। जैसे उसके जादू से अभिभूत पड़ा हो। चाँद के आस-पास दूसरे जितने भी तारे थे, सभी प्राणहीन-से लग रहे थे। असीम ब्रह्माण्ड की उस नीरव शान्ति में कमल का मन पंछी-सा उड़ान भरने लगा। यदि किसी तरह कमल चाँद के पास चला जाता तो बड़ा सुख मिलता।..........चन्दा मामा के घर बच्चों को खाने के लिए दूध-भात मिलता है, बचपन में अपनी माँ से सुनी बात उसे तुरत याद हो आयी। हो चन्दा मामा धरती पर ही क्यों नहीं उतर आते? यदि वे यहाँ आ जाते तो वह उन्हीं के कन्धे पर चढ़कर आकाश में पहुँच जाता। लेकिन वहाँ आकाश में तारों के बीच क्या अकेले उसका मन लगेगा?..........एकाएक कमल के मन में सुधा की स्मृति कौंध गई। सुधा उसकी बाल्यसखा और सहपाठिनी थी। सुधा चाहकर भी उसका साथ नहीं दे सकेगी। सुधा की माँ उसे वहाँ जाने ही क्यों देगी? तो क्या उसका कोई दूसरा सखा है जिसे वह आकाश-विहार में अपने साथ ले जाना चाहेगा?.......... कमल की कल्पना-दृष्टि के आगे कहीं से कोई धूमिल छाया-मूर्ति घूम गयी। उसे पहचानने में कमल को कुछ आयास करना पड़ा। हाँ, वह शोभा ही थी। कमल ने अपने मन को उस पर स्थिर भी नहीं किया कि वह हवा से उड़ाए गए कुहासे की तरह कहीं दिगन्त में विलीन हो गई।..............चाहे जितना भी परिश्रम करना पड़े, कमल चाँद और तारों को जमीन पर उतार लाएगा। उनसे पृथ्वी के ऐसे घरों को सजा देगा जिसमें अँधेरा ही अँधेरा रहता है। तब शायद ऐसे घरों को किसी दूसरे दीये की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।......

कमल की बोझिल पलकें न जाने कब झँप गईं। उसका प्यारा बकरा भी उसके पैर के नजदीक गुलगुली गुदड़ी पर चढ़कर बैठ गया और कमल के पैरों पर सिर रखकर आराम करने लगा। आँख लगने के न जाने कितनी देर बाद कमल एक स्वप्न देखने लगा—

कमल आकाश की अनन्त ऊँचाइयों में अकेले ही उड़ा जा रहा है। वह कहाँ और किस लिए उड़ान भर रहा है, यह उसे तनिक भी नहीं मालूम। नीचे-ऊपर आस-पास दूसरा कोई नहीं। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार। मानो वह अन्धकार की किसी अतल खाई की ओर स्वतः बहा जा रहा हो। वह देर तक इस उबाने वाले थकेलेपन से लड़ता रहता है। कुछ क्षणों में नीचे किसी के क्षीण स्वर में कराहने की आवाज आती है। आवाज धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है।

कमल के हाथ-पैर काफी थक गये हैं। अब आगे उड़ना उसमे संभव नही। अचानक अन्धकार के उस अनन्त शून्य मे उसके पैरों को कोई ठोस सहारा मिलता है। जैसे महासागर की उत्ताल लहरों के बीच कोई छोटा-सा द्वीप मिल गया हो। कुछ देर के लिए उसकी जान मे जान आती है। अब वह उस ठोस वस्तु को अपने हाथ से छूकर पहचानना चाहता है। अन्धकार का सघन पटल धीरे-धीरे फटता जाता है। कमल के हाथ में पुराने फूस के कुछ तिनके लग जाते है। अब उसे पहचानने मे देर नही लगती कि वह जिस चीज पर खड़ा है, वह कोई कुटिया है। कुटिये से नीचे उतरने का कोई भी रास्ता नही। उसके भीतर से किसी के कराहने की परिचित-सी आवाज कमल के मन को दहला देती है। एकाएक अन्धकार का पर्दा फिर घनीभूत होने लगता है। उसकी नीली लहरो पर उड़ते हुए जुगनुओं के झुण्ड कमल की थकी देह पर मँडराने लगते है। कमल को वैसी हालत मे भी एक खेल सूझता है। वह जुगनुओं को पकड़-पकड़ कर उन्हें कुटिये के तिनको मे उलझाने लगता है। इस खेल में भाग लेने के लिए शोभा भी न जाने कहाँ से प्रकट हो जाती है। वह अपनी अँजुरी जुगनुओं से भरकर कमल के हाथ में देती है। लेकिन यह शोभा ही बदलकर सुधा कैसे हो गई? कमल अपनी आँखें फाड़-फाड़कर सुधा को ठीक से पहचानना चाहता है। हाँ, यह सुधा ही तो है जो कुटिये को सजाने के लिए कमल के हाथों मे झुण्ड के झुण्ड जुगनू ला-ला कर दे रही है। कुछ ही क्षणो मे एक और आश्चर्य होता है। कुटिये पर सजे हुए सभी जुगनू तारे बनकर टिमटिमाने लगते हैं। कमल तारो के उस छोटे मेले मे शोभा के रूप मे खड़ी सुधा से कुछ कहना चाहता है। किन्तु वह कुटिये के छज्जे के कोने में अचेत पड़ी मिलती है। कुछ तारे साँप बनकर सुधा को डस रहे हैं। कमल व्यग्र होकर उसे सर्पो से मुक्त करने के लिए आगे बढता है। किन्तु उसके पैर शिथिल पड़ गये हैं। उससे एक कदम भी आगे नही चला जाता। अपने को असहाय पाकर वह सुधा को बचाने के लिए बूते भर चिल्लाता है। लेकिन यह क्या, वे विषैले सर्प अब उसी की देह को बेतरह डँसने लगते हैं। उसका हाथ-पैर झिटकना कुछ काम नही देता। सर्प-दंश की पीड़ा से वह कराहने लगता है और लगातार कराहता रहता है।.....

कमल की आँखें खुली। बकरा उसके पैर के नजदीक ही बैठा मेमिया रहा था। कुछ देर तक उसे स्वप्न की कराह और बकरे के मेमियाने मे कोई अन्तर नही जान पड़ा। धीरे-धीरे मन साफ होता गया। उसे खुशी हुई कि अब तक वह जो कुछ देख रहा था वह स्वप्न मात्र था। उस स्वप्न ने जैसे उसकी नस-

नस को तोड़ दिया था। उसने बड़ी कठिनाई से अपना भारी सिर उठाकर अपने आस-पास देखा। सुबह हो गयी थी। अब आसमान में न चाँद था, न तारे। बाल-सूर्य की किरणों की ललाई उसके खपरपोश घर के छप्पर पर फैल रही थी। आँगन में उसकी चाची झाड़ू दे रही थी। कमल बड़ी कोशिश करने के बाद किसी तरह अपने बिस्तर पर बैठ सका। लेकिन जब उससे उठा नहीं गया तो उसने बड़ी कमजोर आवाज मे पुकारा, "चाची!"

फूला ने झाड़ू देना छोड़कर कमल की ओर दृष्टि दौड़ाई। उसे लगा जैसे कमल की आँखे काफी लाल पड़ गयी है। वह आशंकित मन से कमल के निकट पहुँची। उसके ललाट को छूकर आश्चर्य से बोली, "अरे, तुम्हे तो तेज बुखार है!"

नौ

कमल आठ दिनों तक बुखार में डूबा रहा। नवें दिन उसका बुखार कुछ कम हुआ। गाँव के वैद्य जी की दवा चल रही थी। सुनैना कभी-कभी ही उसे देखने आती। उस हालत में भी उसे कडो झिड़कियाँ सुना जाती—दिनभर तेज धूप में आवारे की तरह घूमने का नतीजा है, भोगो! कमल की चाची फूला अपने छोटे बच्चे की निगरानी मे ही उलझी रहती। कमल के पास आने का उसे बहुत कम समय मिलता। पिताजी सुबह और शाम आकर जरूर देख जाते। दिनभर तो मण्डी मे ही रहते। जगमोहन, आज दो दिन हुए, अपनी भाभी को बुलाने गए हैं। ऐसी स्थिति में कमल को बिस्तर पर प्रायः अकेले ही पड़े रहना होता। पंखा झलनेवाला भी कोई नही मिलता।

आज सुबह से ही ऊमस थी। दोपहर का समय था। गर्मी के कारण कमल ने अपनी देह की चादर पैताने फेंक दी थी। फिर भी उसकी परेशानी नही मिटी। भीतर बुखार की गर्मी। बाहर वातावरण की गर्मी। उसके शिथिल ललाट पर पसीने की बूंदें चमक रही थी। प्यास के मारे कंठ कब से सूखा जा रहा था। उसने अपने निर्बल कंठ से चाची को कई बार पानी पिलाने के लिए पुकारा। किन्तु कोई उत्तर नही आया। सुनैना और फूला दोनों अपने घरों में

अपने-अपने बच्चों को लेकर सोई हुई थी। इधर प्यास और गर्मी के मारे कमल की हालत बदतर होती जा रही थी। जब कई बार पुकारने पर भी कोई नहीं आया तो कमल ने दबे कण्ठ से रोना शुरू कर दिया। आँसू की गर्म-गर्म बूंदों से उसके कपोल सिक्त होने लगे। दुख की उस वेला में उसे अचानक अपनी स्वर्गीया माँ की याद हो आई। उसकी आँखें दूने वेग से झड़ने लगी। वह न जाने कब तक असहाय-सा रोता रहा। अचानक पीछे से उसके कानों में किसी की मीठी आवाज गूँज गयी, "क्या तकलीफ है कमल ?"

कमल ने बड़ी कठिनाई से अपना सिर घुमाकर देखा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। सुधा उसकी ओर झुकी हुई उसे प्यार-भरी नजरों से देख रही थी। कमल ने अपना रोना बन्द कर दिया। कुछ देर तक अपनी भीगी पलकों से सुधा को निहारता रहा। उसकी पलकें तब झपी जब सुधा ने अपने रेशमी दुपट्टे के छोर से उसके मुख पर बिखरे आँसुओं को पोंछना शुरू कर दिया।

"कुछ चाहिए तुम्हें ?" सुधा ने झुके हुए ही पूछा।

"बहुत प्यास लगी है !" कमल किसी तरह कह पाया।

सुधा ने कमरे में सरसरी दृष्टि डाली। एक कोने में ढँका हुआ मिट्टी का पात्र रखा था। उसने झुक कर कटोरे को हटाया। पात्र में पानी भरा था। झट से कटोरे में पानी भर लिया और उसे लिए हुए कमल के पास आई। कमल ने पानी पीने के लिए बिस्तर पर बैठने की कोशिश की। किन्तु बुखार और कमजोरी के कारण उससे उठा नहीं जा सका। हाँफकर पुनः बिस्तर पर गिर पड़ा। उसकी ऐसी कमजोरी देख सुधा कुछ देर तक घबराई हुई स्तब्ध खड़ी रह गयी। तुरत ही उसे एक उपाय सूझा। वह धीरे से कमल के सिरहाने बैठ गयी। अपने बायें हाथ से कमल के सिर को सहारा देती हुई दाहिने हाथ से कटोरे को उसके ओठों से लगा दिया। कमल काँपता हुआ-सा गट-गट करके कटोरे का पूरा का पूरा पानी पी गया। सुधा ने पुनः उसके तपते सिर को यथास्थान रख दिया। कटोरे से जल-पात्र को ढँक आई। लौटती बार उसकी नजर कमल के नंगे बदन पर गयी। चादर उसके पैताने पड़ी थी। सुधा ने चादर तानकर कमल के शरीर को छाती तक ढाँप दिया। फिर उसके सिरहाने बैठकर ताड़ के पंखे से धीरे-धीरे हवा करने लगी। सुधा इस तरह बैठी-बैठी कमल से कुछ पूछने की सोच रही थी। किन्तु कमल की आँखों से आँसुओं को टप-टप बहते देख वह एकाएक घबड़ा-सी गयी। अपने दुपट्टे से उसके आँसुओं को पोंछती हुई गीले कण्ठ से बोली, "तुम फिर रोते हो कमल !"

कमल के आँसुओं का बाँध अब तक कुछ सबत था। सुधा के प्यार भरे शब्दों ने उसके रहे-सहे धीरज को भी तोड़ दिया। वह सुधा के दुपट्टे में अपना मुँह छिपाकर सिसक पड़ा। सुधा उसे ढाढस बधाती रही। अपने बाँये हाथ की पतली उँगलियों से उसके तपते सिर के रूखे बालों को सहलाने लगी। उसका दाहिना हाथ अब भी पंखा झलने में लगा था। कमल को ऐसा लगा मानो सुधा उसकी स्वर्गीया माँ हो जो अपने दुखी पुत्र के संतप्त मन पर करुणा और वात्सल्य की वर्षा कर रही हो। वर्षा की शीतल बूँदें कमल के हृदय के रेशे-रेशे में भीनती जा रही थीं। कमल अपनी आँखों से मूक कृतज्ञता की अजस्र धारा बहाता रहा। सुधा के काफी आश्वासन देने के बाद शान्त हो सका।

"तुम्हें कोई तकलीफ है ?" सुधा ने अपना पुराना प्रश्न फिर दुहराया। उत्तर में कमल ने नकारात्मक रूप से सिर हिला दिया।

"तुम इतने दिनों से बीमार हो। मैं तो आज ही जान पाई !"

"सो कैसे ?"

"मास्टर साहब आज क्लास में तुम्हारी चर्चा कर रहे थे। आज ही परीक्षा-फल सुनाया गया। तुम अपने क्लास में फर्स्ट आए हो। मास्टर साहब से ही मालूम हुआ कि तुम अपनी बीमारी के कारण इधर क्लास करने नहीं जा रहे थे।"

"चाची कैसी है सुधा ?" कमल को जैसे दूसरी बातों से कोई मतलब न बात काटता हुआ बोला, "उन्हें देखे बहुत दिन हो गए।"

"माँ तो काफी अच्छी हैं" सुधा बोली, "यह जानकर कि तुम बीमा· माँ ने ही मुझे तुम्हें देखने के लिए भेजा है।"

कमल फिर चुप हो गया। जैसे कोई बात याद कर रहा हो।

"कमल····· ····· ····· !"

सुधा के इस बार के किंचित बदले हुए स्वर से कमल को कुछ विस्मय हुआ। उसने सुधा की झुकी हुई तरल आँखों में प्रश्न भरी दृष्टि गड़ा दी।

"तुम बहुत दुबले हो गए हो। पहचाने भी नहीं जाते !" सुधा अपने मन की अनेक मिश्रित भावनाओं में से किसी तरह इसी को छाँटकर शब्दों में बाँध सकी।

कमल करुणामयी सुधा के मुखड़े की ओर टुकुर-टुकुर ताकता रह गया।

"यदि आज मैं इस समय नहीं आई होती तो तुम····· ····· ·····!" सुधा

नही समझ सकी कि आगे क्या बोले ! अपनी दूसरी साँस को संयत करती हुई बात बदलकर बोली, "तुमने अपनी बीमारी की मुझे खबर तक नहीं दी !"

कमल अब भी चुप रहा। वह देख रहा था सुधा के सौम्य मुखड़े को। उसके उज्ज्वल दर्पण में कमल के प्रति सुधा की सहानुभूति और स्नेह प्रतिबिम्बित हो रहे थे। उन उज्ज्वल आँखो के आकाश में कमल के लिए सब कुछ संचित मिला—प्रेम, करुणा, श्रद्धा, सम्मान, सहानुभूति और वेदना ! कमल को अपनी ओर इस तरह आँखें गड़ाए देखकर सुधा कुछ झेंप-सी गई। उसने कुछ देर के लिए अपनी सलज्ज दृष्टि उसकी ओर से मोड़ ली।

"तुम्हे तो अभी भी तेज बुखार है !" सुधा ने जान बूझकर बातो को दूसरी दिशा मे मोड़ दिया।

कमल फिर भी चुप रहा।

"तुम तो कुछ बोलते हो नही !" सुधा नाराजगी के स्वर में बोली।

"क्या बोलूं सुधी," कमल ने करवट बदलते हुए कहा, "तुम मेरे लिए इस तरह कब तक बैठी रहोगी ? मेरे कारण.......... ! अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। चिन्ता न करो।"

"तो क्या मैं चली जाऊँ ?"

कमल को सुधा का यह प्रश्न कुछ काँपते स्वर से किया हुआ लगा। उसने कुछ क्षणों तक सुधा के भावों को उसके चेहरे मे पढ़ना चाहा। सुधा ने रुठकर पंखा झलना बन्द कर दिया था। अपना सिर लटका लिया था।

"हाँ सुधी, सचमुच अब तुम जाओ," कमल ने कुछ गंभीर होकर कहा, "तुम्हें काफी देर हो गई। अच्छे हो जाने पर हम स्कूल मे फिर मिलेंगे।"

सुधा तुनुक कर खड़ी हो गई। भोला कमल उसका तुनुकना समझ नही पाया। वह कमल की ओर से अपना मुख मोड़कर धीरे-धीरे भारी कदमों से कमरे से बाहर होने लगी। शायद उसके अन्तर्मन में अब भी आशा थी कि कमल उसे जाने से रोक लेगा। अपने पास बुला लेगा। लेकिन जब पीछे से ऐसी कोई आवाज नही आई तो वह और भी तुनुककर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गई। घर से बाहर आते ही उसकी आँखे भर आईं।

दस

गीता के आ जाने पर कमल जल्दी ही स्वस्थ हो गया। मायके से लौटने पर गीता ने जब कमल के सूखे हुए चेहरे को देखा तो उनकी आत्मा कराह उठी। घर मे कदम रखते ही उन्होंने फूला और सुनैना को खरी-खोटी सुनाई। कमल की देख-रेख का पूरा भार अपने कन्धे पर ले लिया। जब से सुनैना के साथ कमल किसनपुर भेजा गया, उसका एकाकी जीवन धुरी-हीन पहिये की तरह डोलता रहा था। अब वही गीता के रूप में एक सहृदय आधार पाकर उसके प्रति पूर्णतः समर्पित हो गया। समय पर खाना, समय पर सोना और समय पर बाहर खेलने जाना—गीता ने इन सब की उचित व्यवस्था कर दी थी।

कमल के स्वास्थ्य में जब कोई कमी नही रह गई तो उसके पढने की समस्या उठ खड़ी हुई। स्कूल छोड़े उसे कई सप्ताह हो चुके थे। सुनैना की दलील थी कि कमल अब से बकरियाँ चराए। घर मे बकरियों की संख्या काफी हो चली थी। कमल के दो सौतेले भाई थे—सुरेश और दिनेश। दिनेश तो अभी बहुत छोटा था। किन्तु सुरेश की उम्र बकरी चराने की हो चली थी। वही अब तक बकरियाँ चराया भी करता था। किन्तु संख्या बढ जाने से अब वह अकेले सभी बकरियों को सँभाल नही पाता था। बकरियाँ केवल सुनैना की ही हों, ऐसी बात भी नही थी। घर की तीनों स्त्रियों की अपनी-अपनी बकरियाँ थी। ये उनकी स्थायी पूंजी समझी जाती थी। सुनैना इस बात पर अड़ गई कि कमल भी बकरियाँ चराये। नही तो सुरेश केवल उसी के हिस्से की बकरियाँ ले जाएगा। गीता को सुनैना के इस दुस्साहस पर बड़ा रंज हुआ। वह घर की मालकिन थीं। अपने अधिकारों में किसी प्रकार का खलल नहीं सह सकती थी। उन्होंने ऊँची आवाज में सबको सुनाकर कह दिया, "कमल पढेगा, जरूर पढ़ेगा! वह बकरियाँ नही चरा सकता!" सुनैना ने भी अपने दरवाजे के दूसरी ओर से दूने जोर के साथ घोषित कर दिया, "सुरेश भी पढ़ेगा, वह बकरियाँ नहीं चरा सकता!" देखते ही देखते दोनों ओर से घमासान युद्ध छिड़ गया। फूला अब तक चुप बैठी आँगन के कोने में अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। दोनों जेठानियों को लड़ते देख उसका भी कंठ कुलबुलाने लगा। कुछ देर में वह भी मैदान में कूद पड़ी। गीता की ओर से सुनैना को गालियाँ देने लगी। गालियों में उपमा,

धक्के देते हुए उसे तोड़ने पर तुल गए। किन्तु अब तक बहुत सारे पड़ोसी हल्ला सुनकर आँगन में जमा हो गए। उन लोगों ने उत्तेजित जगमोहन को जबरन पकड़कर आँगन से बाहर दरवाजे की ओर ठेल दिया। थोड़ी देर बाद इस विकट ताण्डव का अन्त हो गया। हाँ, सुनैना जार-बेजार रोती हुई अपनी ईया और बाबूजी को याद कर रही थी।

ग्यारह

कमल आज अपने घर से चुपके सुरेश के साथ बकरियाँ चराने आया है। उसके नाम पर परिवार में इतनी कटुता बढ़े, इसे वह कतई बर्दाश्त नही कर सकता। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि अब से स्कूल नही जाएगा। पढाई नही करेगा। बडा होने पर अपने चाचा की तरह खेत जोतेगा। बैलों का सानी-पानी करेगा। विशुद्ध गृहस्थ के रूप मे अपने परिवार के भरण-पोषण में जुट जाएगा। यों तो उसके परिवार में न जाने कब से स्त्रियाँ लड़ती-झगड़ती आई थी। उनकी दिनचर्या प्रायः भद्दी गालियों और झगड़ों से ही आरम्भ होती थी। किन्तु कल का ताण्डव तो कई मानों मे अपूर्व था। कल उसके पिताजी के घर वापस आते ही सुनैना ने उनके सामने नाक बजाना शुरू कर दिया, "जगमोहन ने मेरी बिना किसी कसूर के पिटाई की। पास ही खड़ी अपनी पत्नी को छूने भी नही गया।" इस पर उसके पिताजी बाहर से कुछ नहीं बोले। किन्तु भीतर मे गीता और जगमोहन पर जल-भुन गए। लाख मनावन करने पर भी उन्होने रात का खाना नही खाया। उनके अनशन करने से बच्चों को छोड़ परिवार का दूसरा कोई भी सदस्य अन्न ग्रहण नही कर सका। प्रताप और जगमोहन दोनों एक दूसरे से मुँह फुलाए बिस्तर पर पड़े रहे। दोनों के मन में एक-दूसरे के विरुद्ध एक ऐसा तनाव पनप गया था जिससे उनका पारस्परिक सम्बन्ध बिखरता गया। उधर सुनैना पति की शह पाकर बडी रात तक खाट पर पड़ी-पड़ी सबको सुना-सुनाकर जगमोहन, गीता और फूला को गालियाँ देती रही। फूला जगमोहन के डर से सब सुनकर भी खून के घूंट पीती रही। गीता देवी तो अपने दुःख के पर कष्ट के बादल बनाती हुई जैसे समाधिस्थ हो गई थी। उन्हे पुराने

उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का भरपूर प्रयोग होता रहा। झगड़े की एक खास खूबी यह थी कि आवाज की प्रचण्डता ही शक्ति की द्योतक थी। जो जितना चिल्लाए, वह अपने को उतना ही बहादुर समझती। थोड़ी देर में पूरा का पूरा टोला ही झगड़े की आँधी में उड़ने लगा। आस-पास की कितनी हमदर्द आई-माई आने लगी। अखाड़े में जुटे रण-बाँकुरे योद्धाओं को समझाने के बहाने आग में और भी घी डालती गईं।

शान्तिप्रिय कमल अपने आँगन के एक कोने में नंगी चौकी पर निर्लिप्त दार्शनिक की मुद्रा में बैठा था। समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या करना है, कहाँ जाना है। उसके चाचा हल चलाने गए थे। पिता जी अपनी नौकरी से वापस नहीं आए थे। मर्दों की अनुपस्थिति से स्त्रियों को पूरी आजादी मिल गई थी। कमल का मन अशान्त होता जा रहा था। अब तक वह बारी-बारी से परस्पर झगड़ती तीनों स्त्रियों के विकृत मुखड़ों की ओर देख-देखकर किसी तरह समय गुजार रहा था। झगड़े में अब गन्दी गालियाँ दी जाने लगी थीं। बच्चे से लेकर बाप, दादे, परदादे सभी पवित्र बनाए जा रहे थे। गालियाँ देने की एक चण्ड मुद्रा में सुनैना बिजली-सी लपकती हुई निरीह कमल के पास पहुँच गई। उसकी पतली गर्दन को मरोड़ती हुई-सी कर्कश स्वर में चिल्ला पड़ी, "इस मुँह-जले की मरोड़ दूँगी और मिट्टी में गाड़ दूँगी!"

गर्दन मरोड़ने का 'प्रैक्टिकल' कुछ इस ढंग से दर्शाया गया कि कमल की नाजुक गर्दन सचमुच ही ऐंठ गई। आकस्मिक आघात की पीड़ा से कमल चीख पड़ा। उसके रोने की आवाज सुनकर गीता सुनैना पर क्रुद्ध सिंहनी-सी झपट पड़ी। उसके केश पकड़कर उसकी पीठ पर दो-तीन घूँसे कसके जमा दिए। अपनी माँ की यह हालत देख सुनैना के तीनों बच्चे चिल्लाकर रोने लगे। क्रन्दन करता हुआ दिनेश घबराया हुआ आँगन में बिखरे बटखरे, लोटा, ईंट, हाँडी जैसी चीजों को उठा-उठाकर घर के भीतर रखने लगा। उसे डर था कि कहीं गीता इन वस्तुओं से उसकी माँ की मरम्मत न करने लगें। वह जानता था कि क्रुद्ध गीता के हाथ में कोई भी चीज पड़ जाये, वे उसी से उसकी माँ की हजामत बना डालती थीं।

इधर यह घमासान महाभारत अपने 'क्लाइमेक्स' पर पहुँचा हुआ था और उधर जगमोहन अपना पैना लिए बाहर से दौड़ते हुए आ पहुँचे। क्रोध से उनकी आँखें दो लाल चिनगारियों-सी जल रही थीं। सबसे पहले उनके सामने सुनैना पड़ी। उसकी पीठ पर तीन-चार पैने जमाते हुए वे फूला की ओर झपटे। फूला ने बड़ी फुर्ती से घर में भागकर भीतर से सिटकिनी चढ़ा दी। जगमोहन किवाड़ पर

धक्के देते हुए उसे तोड़ने पर तुल गए। किन्तु अब तक बहुत सारे पड़ोसी हल्ला सुनकर आँगन में जमा हो गए। उन लोगों ने उत्तेजित जगमोहन को जबरन पकड़कर आँगन से बाहर दरवाजे की ओर ठेल दिया। थोड़ी देर बाद इस विकट ताण्डव का अन्त हो गया। हाँ, सुनैना जार-बेजार रोती हुई अपनी ईया और बाबूजी को याद कर रही थी।

ग्यारह

कमल आज अपने घर से चुपके सुरेश के साथ बकरियाँ चराने आया है। उसके नाम पर परिवार मे इतनी कटुता बढे, इसे वह कत्तई बर्दाश्त नही कर सकता। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि अब से स्कूल नही जाएगा। पढाई नही करेगा। बडा होने पर अपने चाचा की तरह खेत जोतेगा। बैलों का सानी-पानी करेगा। विशुद्ध गृहस्थ के रूप में अपने परिवार के भरण-पोषण में जुट जाएगा। यों तो उसके परिवार में न जाने कब से स्त्रियाँ लड़ती-झगड़ती आई थी। उनकी दिनचर्या प्रायः भद्दी गालियों और झगड़ों से ही आरम्भ होती थी। किन्तु कल का ताण्डव तो कई मानी मे अपूर्व था। कल उसके पिताजी के घर वापस आते ही सुनैना ने उनके सामने नाक बजाना शुरू कर दिया, "जगमोहन ने मेरी बिना किसी कसूर के पिटाई की। पास ही खड़ी अपनी पत्नी को छूने भी नही गया।" इस पर उसके पिताजी बाहर से कुछ नही बोले। किन्तु भीतर मे गीता और जगमोहन पर जल-भुन गए। लाख मनावन करने पर भी उन्होने रात का खाना नहीं खाया। उनके अनशन करने से बच्चों को छोड़ परिवार का दूसरा कोई भी सदस्य अन्न ग्रहण नही कर सका। प्रताप और जगमोहन दोनों एक दूसरे से मुँह फुलाए बिस्तर पर पड़े रहे। दोनों के मन में एक-दूसरे के विरुद्ध एक ऐसा तनाव पनप गया था जिससे उनका पारस्परिक सम्बन्ध बिखरता गया। उधर सुनैना पति की शह पाकर बडी रात तक खाट पर पड़ी-पड़ी सबको सुना-सुनाकर जगमोहन, गीता और फूला को गालियाँ देती रही। फूला जगमोहन के डर से सब सुनकर भी खून के घूँट पीती रही। गीता देवी तो अपने हुक्के पर कश के बादल बनाती हुई जैसे समाधिस्थ हो गई थी। उन्हें पुराने

जमाने याद आ रहे थे। आज उनके पति रहते तो इस घर में उनकी यह दुर्दशा नहीं होती। वे कमल को सब दिन अपने साथ ही सुलाती थीं। किन्तु उस रात पहली बार उन्होंने भी उसे पराया समझ लिया। कमल सहमा हुआ-सा सोने के लिए उनके पास पहुँचा। उन्होंने उसे झिड़ककर अपने पास से भगाना चाहा। कमल फिर भी उनके पास ही खड़ा रहा। इस पर उनकी कड़वी वाणी गूंज पड़ी, "दूर हो अभागे! जिसके हो उसके पास जा! मैं तेरी कौन होती हूँ ?"

कमल को अब गीता के पास एक क्षण भी ठहरना मुश्किल हो गया। वह वहाँ से भागा-भागा-सा बाहर दरवाजे पर आया। अँधेरी रात का सन्नाटा चारों ओर फैला था। दरवाजे पर कोई नहीं था। कुछ दूर पर खड़ा बरगद का पुराना पेड अन्धकार में आकण्ठ डूबा था। उसके पत्ते-पत्ते में ढेर का ढेर अन्धकार समा गया था। बीच-बीच में कभी-कभी जुगनुओं की टोलियाँ दीपित हो उठती थी। इस स्वप्निल दृश्य को देखते ही कमल के मन में विगत स्वप्न की धुंधली याद कौंध गई। दरवाजे के एक कोने मे वड़ी देर तक खड़ा-खडा सोचता रहा। क्या करे, कहाँ जाये। इतनी बड़ी दुनिया में क्या उसके लिए कही भी कोई ठौर नही ? दरवाजे के खपडैल बरामदे में पशुओ को खिलाने के लिए थोड़ा सूखा पुआल रखा था। न जाने वह कब पुआल पर बैठ गया। अनजाने ही मतवाली नीद के झोंके में उसी पर लुघर गया। जब तक वह जगा था, उसके कानों मे गीता की कर्कश आवाज गूँजती रही—'अभागे !'......... ...हाँ, वह सब तरह से अभागा था। कहीं भी उसे सुख-चैन नही। कोई भी उससे खुश नही। वह अभागा है जिसके न बाप है, न माँ। न भाई है, न बहन। हर तरह से अकेला है। मानो गाँव का कोई लावारिश कुत्ता है जिसे दुरदुराने में ही लोग सुख का अनुभव करते हैं। उसकी आँखे उमड़ आई। आँसुओं की गर्म-गर्म बूँदे उसके मासूम कपोलों से टपकती हुई नीचे पड़े पुआल को भिगोने लगी। मूक अन्तर्वेदना की इसी प्रक्रिया में उसकी आँसुओं मे डूबी पलकों ने न जाने कब अपने कपाट बन्द कर लिये।

रात में किसी कारण उसकी पलकें कुछ देर के लिए खुली। वह कुछ ठीक-ठीक समझ नही पाया। वह चारपाई पर सोया हुआ था। गीता दीये की मद्धिम रोशनी में उसकी गर्दन पर धीरे-धीरे किसी गर्म तरल चीज का लेप कर रही थी। दूसरे ही क्षण उसकी आँखें फिर लग गईं।

सुबह उठने पर उसने पाया कि कल वाला तनाव कुछ ढीला हो गया था। घर के सभी लोग अपने-अपने काम में लग गये थे। गीता का भी उसके प्रति स्नेह पूर्ववत हो गया था। नित्य के अभ्यास के अनुसार जब सुरेश खा-पीकर

लाज में गड-सा गया। उसे हाथ में बकरियाँ थामे देख सुधा क्या सोचती होगी! किन्तु दूसरे ही क्षण इस कुण्ठा के बदले उसके हृदय में स्वाभिमान का भाव पनप गया। वह बकरी चराने जाता है तो क्या हुआ, किसी की गुलामी तो नहीं करता? जिनको पढ़ना हो, पढ़ें। कमल को तो बकरी ही चरानी है। इस भाव के जगते ही कमल अपनी बकरियों के और भी करीब चला आया। गर्व से सिर ऊँचा करके सुधा के विपरीत सामने पगडंडी की ओर ताकने लगा। उधर सुधा ने जब अप्रत्याशित रूप से कमल को बकरियों के बीच जाते हुए देखा तो वह आश्चर्य में डूब गई। उसकी गति आप से आप धीमी पड़ गई। आश्चर्य से फैली मासूम आँखें कमल पर टिकी रह गईं। कुछ देर तक अवाक खड़ी रहकर कमल को निहारती रही। कमल उसकी उपस्थिति का बोध करते हुए भी एक क्षण के लिए भी उसके मुखड़े की ओर देखने का साहस नहीं बटोर सका। सुरेश के साथ बकरियाँ लिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ गया। सुधा विस्मित-सी उसे निहारती रही। धीरे-धीरे वह वह पगडंडी से गुजरता हुआ मकई के लहलहाते पौधों की ओट में पड़ गया।

× × × ×

बकरियाँ दूर तक फैली हुई गाछी में चरने को छोड़ दी गई थीं। लड़के आम के एक पुराने छतनार पेड़ के नीचे 'हड्डा-बिच्छी' खेल रहे थे। कमल ने अपने साथियों से कहा था कि वह पहले खेल सीख लेगा, तब खेलेगा। अतः वह अभी तक उत्सुक दर्शक के रूप में एक किनारे चुप-चाप बैठा था। उसके सामने कच्ची जमीन पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर रेखाओं के चौकोर कोठे बना दिए गए थे। लड़के बारी-बारी से अपना एक पैर ऊपर सिकोड़कर दूसरे पैर से कूदते हुए एक सिकटे को कूदनेवाले पैर से इस तरह ठोकर दे रहे थे कि वह कोठे की रेखाओं को तो पार करे, किन्तु उन्हीं पर स्थिर न हो जाये। इस बार चनेसरी की बारी थी। चनेसरी वहाँ उपस्थित सभी लड़कों में कुछ ज्यादा उमर की थी। कमर के कुछ हिस्से को छोड़कर उसकी पूरी देह नंगी थी। कमर में वह एक मैला चीथड़ा लपेटे थी। भूरे रूखे केशों पर गर्द की परत चढ़ी हुई थी। छाती पर हलका उभार प्रकट हो रहा था। छोटे-छोटे बिखरे केश पुरवैया के झोंकों में बेतरतीबी से उड़ रहे थे। काले रंग की देह में उसके दाँत ही बर्फ जैसे सफेद थे। जब भी हँसती, उसके दाँत काले मेघों के बीच बिजली की तरह चमक उठते थे। न जाने क्यों, कमल का मन जितना खेल में नहीं लगा था, उतना उस ढीठ लड़की के अंग-संचालन, हाव-भाव तथा मुक्तता से भरी हँसी को देखने में रम. हुआ था। इस काली-कलूटी

बदसूरत लड़की में भी कोई ऐसा आकर्षण जरूर था, जो एक साथ ही कुछ मधुर, कुछ कठोर और कुछ कटु था।

जब खेलना खत्म हुआ तो एक लड़के ने गुल्ली-डण्डे का प्रस्ताव किया। किन्तु दूसरे ने उसे इशारे से कुछ समझाकर चुप कर दिया। इस इशारे का अर्थ कमल बिल्कुल नहीं समझ सका। अन्त में कमल, सुरेश तथा दो-तीन दूसरे छोटे बच्चों को वहीं छोड़कर शेष बड़े लड़के चनेमरी के साथ गाछी के दूसरे किनारे चले गए। वे वहाँ खड़े होकर न जाने क्या सलाह-विचार करते रहे। जो लड़के कमल के साथ रह गए थे, उन सब में कमल ही अधिक बड़ा तथा समझदार था। वह आज पहली बार बकरियाँ चराने आया था। फिर भी इन लड़कों में से बहुतों के साथ उसका पुराना परिचय था। उसे बहुत बुरा मालूम हुआ कि उसके साथी लड़के उससे कतराकर इस तरह बातचीत करें। रंज-भाव से कुछ सोच ही रहा था कि दूसरी टोली से एक लड़के ने आवाज दी, "कमल, सुनो तो !"

कमल के निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते ही एक लड़के ने उसके कान के पास मुँह लेजाकर फुसफुसाहट के स्वर में पूछा, "देखो कमल, किसी से कहोगे तो नहीं ?"

कमल इस अजीब प्रश्न से चिढ़कर बोला, "पहले बात भी तो कहो भाई ?"

सभी लड़के एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। लगा जैसे कमल के स्वर ने सबको भयभीत बना दिया हो। एक लड़का निर्भय होकर आगे बढ़ा। कमल के निकट आकर बोला," देखो, हम तुमको भी शामिल करेंगे। लेकिन तुम पहले हमारी रखवाली कर लो, तब............। तुम बाहर खड़े होकर देखते रहना कि कोई आ तो नहीं रहा। यदि कोई दिखे तो जल्दी ही हमें आवाज दे देना। समझे ?"

कमल निरुत्तर-सा उस लड़के का मुँह ताकता रह गया। यह कौन अजीब -सा खेल है, वह यही सोच रहा था। अन्त में कुछ नहीं समझते हुए भी उसने अपनी स्वीकृति दे दी।

बकरियों के चराने का भार दो-चार छोटे लड़कों पर छोड़कर दूसरे सभी लड़के कमल को साथ लिये गाछी से संलग्न सरकण्डे की झाड़ियों के नजदीक आ पहुँचे। झाड़ियों के इस पार कच्चा बाँध था। उसके उस पार के नीचे की कोई चीज नजर नहीं आती थी। कमल को बाँध के इस पार ही पहरेदार बनाकर खड़ा कर दिया गया। चनेमरी को लिये तीन-चार लड़के बाँध के उस पार चले गए। कमल कुछ देर तक मनहूस-सा वहीं खड़ा रहा। अन्त में वह ऊब गया। झाड़ियों की ओर से कोई नहीं निकला तो उसे बड़ी खीझ हुई। इस रहस्यमय

खेल को अब वह खुद जाकर देखेगा। ऐसा निश्चय करके वह धीरे-धीरे बाँध के दूसरी ओर बढ़ा। सामने सरकण्डे की एक विरल झाड़ी थी। कमल कौतूहलवश इसी झाड़ी के पीछे खड़े होकर आगे का दृश्य देखने लगा। जो कुछ देखा उससे उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। शरीर थरथराने लगा। धमनियों में एक नई सनसनी फैल गई। ललाट पर पसीने की बूंदें चमकने लगी। यह नजारा उसके लिए बिल्कुल ही नया था। कुछ ठीक से नहीं समझकर भी उसके किशोर मन में एक अजीब-सी बेचैनी और घबड़ाहट छाने लगी। वह न जाने कब तक आखें फाड़े सब कुछ निहारता रहा। पीछे बगीचे में से अचानक सुरेश की आवाज सुनाई पड़ी, "दौड़िए भैया, माँ की बकरी घेर ली गई!"

इस एक आवाज ने ही कमल को जैसे होश में ला दिया। वह वहाँ से भागता हुआ सुरेश के निकट पहुँचा। सुरेश अपनी बकरियों को सँभालने में लगा हुआ था। वे कभी इधर और कभी उधर भाग-भाग कर निकटवर्ती मकई के खेत में जाना चाह रही थी। उसकी माँ सुनैना की झबड़ी बकरी किसी भी तरह सँभाल में नहीं आई थी। वह गाँव के सबसे बड़े रईस जीवन बाबू के खेत में न जाने कब से चर रही थी। जब तक कमल वहाँ पहुँचे, जीवन बाबू का नौकर भगेलू एकाएक वहाँ उपस्थित हो गया। बकरी को पकड़कर अपने मालिक के घर चल पड़ा। कमल के पैर के नीचे धरती खिसकती हुई जान पड़ी। भगेलू की अकड़ गाँवभर में प्रसिद्ध थी। वह पकड़ी हुई बकरियों को सीधे फाटक पहुँचाता था। जीवन बाबू ने इसके लिए उसे पूरी आजादी दे दी थी। डरने की सबसे बड़ी वजह यह थी कि बकरी सुनैना की थी। जब वह जानेगी कि सुरेश के साथ कमल बकरी चराने गया था तो इस गलती की सारी जिम्मेदारी वह कमल पर ही थोपेगी और फिर डाँट-डपट, मार-पीट, झगड़ा-फसाद! कमल की आँखों के सामने सारी बातें चलचित्र की तरह घूम गईं। उसने घबड़ाहट में दूसरी बकरियों को सुरेश के जिम्मे छोड़ दिया। खुद बकरी छुड़ाने के लिए भगेलू के पीछे दौड़ गया। थोड़ी दूर जाने पर ही रास्ते में भगेलू मिल गया। हाँफता हुआ कमल उससे गिड़गिड़ाकर बोला, "मेरी बकरी छोड़ दो भगेलू! अब से फिर ऐसी गलती नहीं होगी।"

भगेलू ने कमल पर एक उपेक्षा भरी दृष्टि डाली। बिना कुछ बोले ही आगे बढ़ता गया।

"छोड़ दो भगेलू", इस बार कमल भगेलू के आगे जाकर चिरौरी करता हुआ बोला।

"हटो सामने से", भगेलू कमल को धक्का देता गरज पड़ा, "तुम्हारे घर की

बकरियाँ रोज-रोज खेत चर जाया करती हैं। बहुत सह चुका हूँ। आज कभी नही छोड़ सकता।"

कमल इस धक्के से गिरता-गिरता बचा। उसे रुलाई आ गई। किसी तरह अपने पर काबू करके वह भगेलू का पीछा करता गया। उसके आगे भगेलू न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता बढ़ा जा रहा था। अपने मालिक के घर पहुँचकर उसने बकरी को मजबूत रस्से में बाँध दिया। खुद सामने दोचारे में कुट्टी काटने लगा। दोचारे के ठीक सामने कुछ दूरी पर जीवन बाबू का विशाल पक्का मकान था। दरवाजे पर कई जोड़े बैल, तीन अच्छी नस्ल की गायें और दो भैंसें बँधी थीं। दूसरी तरफ एक ही कतार में एक ही आकार-प्रकार के लगभग बीस बखार खड़े थे। बखारों पर तुरत ही चूने की पुताई हुई थी। जीवन बाबू की सम्पन्नता का परिचय उनके घर-द्वार को देखकर सहज ही हो जाता था। कमल वहीं एक बखार के पीछे खड़ा हो गया। रुआँसा होकर तैश में कुट्टी काटते भगेलू को निहारने लगा। उधर भगेलू उसकी उपस्थिति से बिल्कुल ही लापरवाह लग रहा था।

कमल को वहाँ खड़े-खड़े काफी देर हो गई। अब उसे एक दूसरी ही चिन्ता सताने लगी। कहीं वह न पहुँच जाये, जिसे कमल अपने को ऐसी हालत में कभी नहीं दिखाना चाह रहा था। क्या सोचेगी वह? कमल उससे क्या बहाना बनाएगा? वह इसी चिन्ता मे डूब-उतरा रहा था। उसके मन में अभी तक यह विश्वास था कि भगेलू जरूर पसीज जायेगा। उसे बकरी दे देगा। किन्तु इतनी देर के बाद भी भगेलू की नजर का टेढ़ापन तनिक भी नहीं कमा। अन्त में हुआ वही जिसका कमल को सबसे ज्यादा डर था। सुधा अपने घर के भीतर से किसी काम से दरवाजे पर आई। उसकी नजर बखार से सटे कमल पर जाकर टिक गई। उस समय कमल का मुँह प्रतिकूल दिशा में था। अतः वह सुधा को नहीं देख सका। इतने दिनों के बाद कमल को अपने दरवाजे पर देखकर सुधा का हृदय आनन्द से खिल उठा। किन्तु कमल जिस ढंग से बखार की बगल में अपने को छिपाए खड़ा था उससे सुधा के मन मे आश्चर्य और कौतूहल के भाव एक ही साथ तिर गए। दूसरे ही क्षण उसे एक शरारत सूझी। हल्के-हल्के कदम रखती हुई चुपचाप कमल के पीछे पहुँच गई। उसके कान के पास मुँह ले जाकर जोड़ो से चिल्ला पड़ी, "कू ऽ ऽ ऽ!"

कमल सिर से पैर तक काँप गया। इधर सुधा उसका काँपना देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ी। किन्तु सुधा के हँसने से कमल तनिक भी प्रभावित नहीं हुआ। उसकी मुख-मुद्रा और भी कस गई। सुधा को इससे और भी अचरज

हुआ। वह हँसना बन्द करके रुआँसे कमल के निकट खिंच आई। उसके मन में कुछ घंटे पहले का कमल, उसका बकरियाँ थामे जाना, सुधा के प्रति उसका उपेक्षाभाव आदि बातें कौंध गईं। अपने मन के तात्कालिक रंजभाव पर काबू करती हुई वह किंचित विस्मय और सहानुभूति की वाणी में बोली, "आखिर क्या बात है कमल ?"

संकोच और आत्मकुत्सा के भाव से दुबका कमल कुछ भी नहीं बोल सका। वह अपने पैर के अँगूठे से ढेर-सी मिट्टी कुरेदता रहा। सुधा उसके संकोची स्वभाव को जानती थी। कमल का उस समय जैसा रूप था, उसे देखकर उसका मन किसी अज्ञात आशंका से भर उठा। सहानुभूति में कमल के और भी पास जाकर दुलार के शब्दों पूछ पड़ी, "बोलते क्यों नहीं जी ?......... मां को बुलाऊँ क्या ?"

"नहीं-नहीं," माँ के नाम पर कमल एकाएक घबड़ा गया। बोला, "उन्हें मत बुलाओ।"

"क्यों ?" सुधा और भी अचरज में पड़कर बोली।

कमल फिर भी सिर झुकाए खड़ा रहा। भगेलू कुट्टी काटता हुआ अब तक दोनों की बातचीत सुन रहा था। इस बार सुधा को सुनाकर कुछ व्यंग्य के लहजे में बोला, "हुजूर अपनी बकरी छुड़ाने आए हैं बब्बी ! लेकिन इनकी बकरी को बिना फाटक दिए छोड़ नहीं सकता।"

सुधा ने एक नजर भगेलू पर और दूसरी नजर सामने बँधी बकरी पर डाली। एकाएक सब कुछ समझ कर वह कमल पर हँसने ही जा रही थी कि अचानक गम्भीर पड़ गई। उसने कमल की तरफ से अपना सिर मोड़ लिया। भगेलू को सुनाकर कुछ रोषभरे शब्दों में बोली, "तो तुम अभी तक कुट्टी ही काट रहे हो ? बकरी को जल्द फाटक पहुँचाओ !"

"अभी जाता हूँ बब्बी," भगेलू का कहना समाप्त भी नहीं हुआ कि सुधा कमल की ओर बिना नजर घुमाए जल्दी ही अपने घर के भीतर चली गई।

कमल सुधा के इस अचानक बदले रुख से कुछ देर तक अचंभे में पड़ा रहा। दूसरे ही क्षण सुधा की रुखाई से उसके मन को बड़ी चोट लगी। उसने देखा, भगेलू फाटक ले जाने के लिए उसकी बकरी खोल रहा है। अब उसे अपने या बकरी के बचाव की कोई उम्मीद नहीं रही। उसने सोचा, इस अपमान से तो अच्छा है कि वह अपने घर की ही आफतों को खुशी-खुशी झेल ले। इस विचार तक आते ही उसके मलिन चेहरे पर एकाएक रोष और आत्म-

गौरव की मिश्रित लाली दौड़ गई। उसने निश्चय किया, अब वह सुधा से कभी नहीं बोलेगा। न इस दरवाजे पर फिर कभी लात ही देगा। इस निश्चय के साथ ही उसके पैर बड़ी फुर्ती से अपने घर की ओर बढ़ चले।

वह अभी कुछ ही कदम आगे बढ़ा होगा कि उसके कानों में किसी स्त्री-कंठ की प्यार-भरी आवाज गूंज गई, "ओ कमल !"

कमल ने अनिच्छा होते हुए भी सिर घुमाकर देखा। अपने दरवाजे पर खड़ी सुधा की माँ शैलबाला, जिन्हें वह चाची कहकर पुकारता था, उसे हाथ के संकेत से अपने पास बुला रही थी। अपनी माँ के ही पास सुधा चिन्तित भाव से कमल को निहारती हुई खड़ी थी। कमल कुछ देर तक अनिश्चय की मुद्रा में खड़ा रहा। चाची की किसी बात का उसने आजतक उल्लंघन नहीं किया था। उनसे मिलने को उसका जी ललक उठा। किन्तु सुधा पर नजर पड़ते ही वह पुनः झल्ला गया। कुछ देर के द्वन्द्व के बाद वह सिर झुकाए भारी कदमों से चाची की ओर इस प्रकार बढ़ा, जैसे उससे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो। नजदीक पहुँचने पर शैलबाला ने अपने प्यार-भरे हाथ से उसकी ठुड्डी ऊपर करके मुस्काते हुए पूछा, "भागा जा रहा था रे ?"

कमल के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शैलबाला उसकी बाँह पकड़कर उसे अपने घर के भीतर ले चलीं। कमल के पीछे सहमी हुई-सी सुधा भी थी। उसे एक सजे-सजाए कमरे में पलंग पर बिठा दिया गया। कमल जब-जब यहाँ आया है, उस घर के वैभव-विलास और ऐश्वर्य को देखकर उसे अजीब-सा आतंक होने लगता है। यहाँ का परिवेश उसके अनुकूल पड़ता ही नहीं। जैसे वह धरती का मामूली जीव अचानक किसी ऊँचे हवाई सिंहासन पर बैठा दिया गया हो और सभी ओर से घेरे हुए लोग उसे आश्चर्यपूर्वक घूर रहे हों। वहाँ बैठते ही उसने अनुभव किया जैसे उसके मटमैले कपड़ों की मलिनता पलंग पर बिछी दूध-सी सफेद चादर को कष्ट दे रही हो। कमरे की पक्की दीवारों पर पीतल के चौखटों में कई महापुरुषों के बड़े तैल चित्र, फ्रेम किये हस्त-शिल्प के कुछ बारीक नमूने तथा सुधा के बचपन का एक आकर्षक फोटो टँगे थे। पलंग के पास ही एक कलात्मक गोलमेज रखी थी। उस पर सुन्दर बेल-बूँटों से युक्त एक नीला मेजपोश बिछा था। मेज के आस-पास बर्मी टीक की बनी तीन कुर्सियाँ लगी थीं। शैलबाला उनमें से एक कुर्सी पर बैठ गईं। सुधा दुबकी हुई-सी वहीं एक बगल खड़ी हो गई। कनखियों से कमल के शरमाए चेहरे को देखकर मन ही मन आनन्द का बोध कर रही थी।

शैलबाला कुछेक क्षणों तक प्यार से कमल के मासूम चेहरे को निहारती रह गई। फिर मुस्काकर पूछा, "सुधी की बात से रंज मान गया ?"

कमल निःशब्द सिर लटकाए रहा। शैलबाला ने एक बार अपनी बेटी की ओर देखा। सुधा अपनी माँ की बात सुनकर स्वयं भी कुछ-कुछ मुस्काने लगी थी। दूसरे ही क्षण वे कुछ गम्भीर पड़कर कमल से बोलीं, "डर मत कमल, सुधी तो शरारती है ही! तेरी बकरी फाटक नहीं गई, तू सीधे आकर मुझसे कहता; भगेलू की आरजू-मिन्नत करने की क्या जरूरत थी रे ?"

कमल ने कृतज्ञताभरी दृष्टि से शैलबाला को देखा। उन्हें अपनी ओर ही देखते पाकर अपना सिर पुनः लटका लिया।

"तेरे यहाँ इत्ती बार खबर भेजी, तू यहाँ आता क्यों नही था ?"

कमल अब भी चुप रहा। क्या जवाब दे, कुछ सूझा ही नहीं।

"अब यहाँ बराबर आयेगा न ?"

कमल ने हिम्मत करके इस बार अपना स्वीकृतिसूचक सिर भर हिला दिया। शैलबाला को उस समय कमल का भोला-भाला मुखड़ा, उसका भोले रूप से ही हिलना बहुत पसन्द आया। उन्होंने आगे बढ़कर कमल के धूल भरे सौम्य मुखड़े को चूम लिया। मातृ स्नेह का भूखा कमल उस स्नेह भरे चुम्बन से खिल गया। उसने हँसती हुई आँखों से शैलबाला को देखा।

"तू बकरी कब से चराने लगा कमल ?"

"आज ही से", कमल दबी जबान मे बोल गया।

"आज ही से ?" शैलबाला की उत्सुकता जग गई, "तो पढ़ने-लिखने का इरादा छोड़ दिया ?"

"जी हाँ", कमल के मुँह से अचानक ही निकल गया।

"यह तो अच्छा नही बेटा," शैलबाला एक बार फिर गम्भीर पड़ गईं, "तू तो तेज लड़का है। तेरा पढ़ना-लिखना छोड़कर बकरी चराना शोभा नही देता। तेरे मन की पीड़ा मैं खूब समझती हूँ। घर के झगड़े के सम्बन्ध में जान चुकी हूँ। लेकिन क्या करेगा तू ? तेरे घर की औरतों का स्वभाव बदलनेवाला नही। तू मेरी बात मान। बकरी चराना छोड़ दे। कल से निर्भय होकर स्कूल जाया कर। मैं गीता बहन और तेरी माँ को समझा-बुझाकर ठीक कर दूँगी। सुधी मुझसे रोज कहती है कि कमल स्कूल नही जाता। तेरे बिना इसका वहाँ मन नहीं लगता। तू तो जानता ही है। तब बोल, कल से स्कूल करेगा न ?"

"जी हाँ, लेकिन……" कमल इससे आगे कुछ नही बोल सका। उसके ओठ काँप कर रह गए।

"लेकिन-वेकिन मैं सब ठीक कर दूँगी, समझा?" कहती हुई शैलबाला कमल के प्रति परम विश्वास के भाव से उठ खड़ी हुई। सुधा को लक्ष्य करके बोलीं, "क्या खड़ी-खड़ी ताकती है? कमल को नाश्ता नही कराना है?"

सुधा लजाकर नाश्ता लाने चली गई। शैलबाला भी कमल को वही बैठे रहने को कहकर किसी कार्यवश कमरे से निकल गई। कमल कुछ देर तक वहाँ अकेले बैठा रहा। सामने सुधा के फोटो को प्यार से निहारता रहा। फोटो में सुधा अपने सुपरिचित हाव-भाव मे खड़ी थी। ओठो पर मन्द मुस्कान की रेखा खिंच गई थी। चेहरे से भोलापन और मासूमियत टपक रही थी। फोटो देखते-देखते कमल को न जाने क्यों, चनेसरी की याद आ गई। आज की चनेसरी! क्या सुधा भी भीतर से वैसी ही है?… … …सुधा चनेसरी से कितनी भिन्न, स्वस्थ और सुन्दर है! लेकिन सुधा यदि चनेसरी की तरह ही गरीब होती तो क्या वह ऐसी ही लगती? भगवान ने एक को इतना गरीब और दूसरे को इतना धनी क्यों बनाया? दुनिया में सब के सब सुखी क्यों नही होते? वह स्वयं भी सुधा की तरह सुखी और प्रसन्न क्यों नही है? सुधा और चनेसरी, चनेसरी और सुधा!… … …

सामने मेज पर तश्तरी रखे जाने की आवाज से कमल का दिवास्वप्न भंग हो गया। किशोरी सुधा तश्तरी उसके सामने रख स्वयं एक ओर खिसककर खड़ी हो गई थी। कमल ने उड़ती हुई नजर सुधा पर डाली। दूसरे ही क्षण उसके मन में कुछ ही देर पहले सुधा का रूखा व्यवहार कौंध गया। जी में आया कि वह तश्तरी उसकी देह पर पटककर चला जाये। जिन्दगी में फिर उसका मुँह कभी नहीं देखे। लेकिन वह तो जैसे उस घर में सभी तरफ से गिरफ्त कर लिया गया था। वहाँ उसकी अपनी इच्छा का मोल ही कितना था! भीतर ही भीतर घुटते विद्रोह को उसने सुधा के प्रति अपनी नफरत भरी निगाह मे प्रकट कर दिया। मिठाइयों से भरी तश्तरी सामने पड़ी थी। वह विरक्त योगी की तरह मौन साधे बैठा था। सुधा एक कोने में खड़ी-खड़ी उसे इस तरह देख रही थी, मानो अपनी कातर दृष्टि से ही विनीत प्रार्थना कर रही हो, 'खाओ न!'

जब कमल पर इस मौन निवेदन का कोई असर नही हुआ तो सुधा ने कुछ हिम्मत से काम लिया। डरी हुई-सी विनय के स्वर में बोली, "खाओ न जी!"

"तुम खाओ, मैं क्यों खाऊँ ?" कमल के मन में घुटती हुई खीझ ज्यादा देर तक नहीं रुकी।

"मैं तो पहले ही खा चुकी हूँ", सुधा ने अपराधी की तरह सिर लटकाए मीठी आवाज में कहा।

"तो मैं क्या भूखा हूँ ?"

"दिनभर तो महाशय बकरी चराते रहे। खाना कब खाया ?" सुधा अपनी उमड़ती हुई हँसी को जबरन रोकना चाहकर भी नहीं रोक सकी।

"मैं बकरी चराता हूँ तो अपनी," सुधा को हँसते देखकर कमल का क्रोध भड़क उठा, "तुम्हारी बकरी तो नहीं चराता ?"

"तो क्या हुआ, कल से मेरी बकरी भी चराया करो !" सुधा फिर हँसी।

"चुप !" कमल का संकोच न जाने कहाँ चला गया। इस अपमान से उसकी नस-नस में गर्म खून दौड़ने लगा। झल्लाया हुआ-सा अपने घर जाने के लिए पलंग से नीचे उतरने लगा।

"माँ ऽऽऽ !" सुधा वहीं से चिल्लाई।

कमल सुधा की इस शैतानी से सकपकाकर फिर अपनी जगह पर बैठ रहा। मन ही मन उस पर जल-भुन गया।

"बैठ क्यों गए ? ' सुधा फिर मुस्काई, "जाइए न !"

कमल इस बार अपने क्रोधावेग को जैसे-तैसे निःशब्द पी गया। सुधा कुछ ढीठ होकर उसकी ओर बढ़ी। तश्तरी में से एक बेसन का लड्डू निकाला। उसे कमल के मुँह के पास ले जाकर प्यार-भरे शब्दों मे बोली, "लो, खाओ ! '

कमल इस प्यार का प्रतिदान देने के लिए कत्तई तैयार नहीं था। उसके मन के भीतर दबी क्रोधाग्नि अचानक भड़क उठी। कुछ क्षणों तक उस क्रोध ने उसे अन्धा बना दिया। दाहिने हाथ से उसने सुधा के सामने बढ़े हाथ को जोर का झटका दिया। सुधा का वह हाथ बिखरे लड्डू के कणों के साथ उसकी दाहिनी आँख से टकरा गया। लड्डू का अधिकांश चूर होकर नीचे फर्श पर बिखर गया। सुधा की आँख में चोट तो लगी ही, उसमें कुछ कण भी समा गए। वह दोनों हाथों से अपनी आँखों को ढँके सिसक पड़ी।

कमल का क्रोध तत्क्षण न जाने कहाँ उड़ गया। उसके आगे स्थिति की गम्भीरता कौंध गई। हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। सामने रखे तौलिये के एक किनारे को मुँह से भाप देता हुआ सुधा की आँखें सेकने लगा। भय से पसीने-

"तुम्हें तो अब भी मजाक ही सूझता है," कमल लजाकर बोला, "बाप रे ! मेरा तो दम ही निकल गया था ··· ··· ··· सचमुच मुझसे बड़ी गलती हो गई सुधी !"

"गलती ? ··· ··· ··· गलती काहे की ?" सुधा इस बार कमल के बिल्कुल करीब खिंच आई ।

कमल का भावुक हृदय सुधा की उदार वाणी से पसीज गया । उसने अपनी सजल पलकों से सुधा की ओर देखा जो उसी की ओर एकटक निहार रही थी । उसकी छलछलाई आँखों को सुधा ने अपने दुपट्टे से झट से पोंछ दिया । कमल ने लजाकर सिर नीचे कर लिया ।

"ये लो", कमल सामने रखी मिठाई के बचे हुए एक टुकड़े को सुधा के मुँह के पास ले जाकर प्यार से बोला, "तुम भी कुछ तो खा लो !"

"नही कमल, मैं तो पहले ही खा चुकी हूँ । तुम खाओ न !"

लेकिन कमल माननेवाला नही था । उसने नहीं-नहीं कहती हुई सुधा के मुँह में मिठाई के टुकड़े को जबरन ठूँस दिया । सुधा हँसती-हँसती ही उसे निगल गई ।

ठीक इसी समय शैलबाला भीतर आ गई । उन दोनों को मुँह चलाते देख मुस्काती हुई बोली, "मालूम होता है, दोनो का भोज साथ ही हो रहा है !"

कमल जब पानी पी चुका तो उसे एकाएक याद आया कि वह तड़के ही घर से बाहर निकला था । इतना याद आते ही मन ही मन घबड़ा गया । अपनी आकुलता को छिपाने की कोशिश करता हुआ शैलबाला से कहा, "अब जाता हूँ चाची, मेरी बकरी··············· !"

"तेरी बकरी बाहर दरवाजे पर बँधी है", शैलबाला ने पास ही खड़ी सुधा की ओर मुड़कर कहा, "तू भी साथ चली जा सुधी, इसे बकरी दे दे ।"

कमल और सुधा दोनो कमरे से निकलकर बाहर दरवाजे पर आए । कमल की बकरी वहाँ एक खूँटे से बँधी पहले से ही मेमिया रही थी । बकरी को झटपट खोलकर कमल ने सुधा की ओर देख जल्दबाजी में कहा, "अच्छा, तो कल फिर भेंट होगी ।"

"कल से स्कूल चलोगे न ?" सुधा की तरल आँखों में जिज्ञासा तैर गई ।

"हाँ, जरूर !"

कमल ने गुस्से में इतना कुछ निकला ही था कि उसकी बकरी उसके हाथ से रस्सा छुड़ाकर भाग चली। उसे पकड़ने को आतुर कमल भी उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा। उसे बकरी के पीछे भागते देखकर अपने दरवाजे पर खड़ी सुधा जी भरकर हँसती रही।

बारह

जीवन बाबू की देख-रेख में कमल के गाँव में एक हाई स्कूल पिछले दो-तीन वर्षों से चल रहा है। पहले वह मिडिल स्कूल था। कालान्तर में दसवीं कक्षा तक उन्नत कर दिया गया। स्कूल की स्थिति गाँव के सटे पूरब में है। इसमें कुल मिलाकर फिलहाल दस शिक्षक काम करते हैं। आस-पास में ऐसा कोई दूसरा स्कूल न होने से यहाँ दूर-दूर के लड़के पढ़ने आते हैं। छात्रों की संख्या काफी है। स्कूल का मैदान लम्बा-चौड़ा है जिसमें लड़के गेंद, कबड्डी या दूसरे खेल खेलते हैं। कमल और सुधा इस समय इसी स्कूल के छात्र हैं। एक क्लास में पढ़ते हुए भी कमल की अवस्था सुधा से लगभग तीन वर्ष बड़ी है। कारण, कमल को बहुत देर से स्कूल भेजा गया। उधर सुधा का परिवार शिक्षित होने से उसकी शिक्षा कम उम्र से ही आरम्भ कर दी गई। गाँव में कन्या पाठशाला न होने से सुधा का नाम लड़कों के स्कूल में ही लिखा दिया गया। क्लास में कमल को सुधा के साथ बैठने का अवसर नहीं मिलता था। वह सब छात्रों से अलग एक कुर्सी पर बैठती थी, जो गुरुजी लोगों के समीप रखी होती थी। लेकिन कमल ऐसी जगह बैठता था जहाँ से दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह देख सकें।

कमल पिछले कुछ महीनों से फिर यहाँ क्लास करने लगा है। उसके पिता ने घर की सभी बकरियाँ बेचकर इस सम्बन्ध के सारे झगड़े ही मिटा दिए हैं। कमल के साथ सुरेश को भी स्कूल भेजा जाने लगा है। कमल को तो स्कूल जाने की छुट्टी मिली, किन्तु अपने घर और परिवार से उसकी नफरत बढ़ती जा रही थी। पारिवारिक कलह जोर पकड़ता जा रहा था। प्रताप और जगमोहन अब एक-दूसरे से खिंचे-खिंचे रहते। अपनी-अपनी कमाई का पैसा अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सँजोते या खर्च करते। दोनों में पैतृक

सम्पत्ति के बँटवारे की भावना जड़ पकड़ती जा रही थी। जगमोहन गीता का आदर करते थे। अतः गीता उन्हीं के पक्ष में रहती। प्रताप और गीता में बहुत दिनों से बातचीत तक बन्द थी। कमल का विवेकी मन इस बात का अनुभव कर रहा था कि उसके प्रति गीता के स्नेह में भी धीरे-धीरे कमी आ रही है। गीता उसके चाचा के छोटे पुत्र दिल्लू में ही अधिक भूली रहती है। अपने परिवार में गीता का मातृवत् स्नेह ही ऐसा आधार था जिस पर कमल ने अपने दुखी जीवन को टिकने के लिए छोड़ दिया था। अतः इस बात को वह अपने मन में कभी लाता ही नहीं था कि गीता उसे भूलती जा रही है। यदि कभी कुछ देर के लिए भी ऐसी भावना जगती तो उसका मन अशान्त हो जाता। वह अपने को सर्वथा बेसहारा और एकाकी महसूस करने लगता।

आज स्कूल में कमल के ननिहाल के स्कूल की ही तरह एक दुखद घटना घट गई। कमल अपने वर्ग का सर्वप्रथम छात्र था। अतः उसके प्रतिस्पर्धी कुछ लड़के उससे मन ही मन डाह करते थे। कमल किसी भी तरह अपमानित हो, ताकि उन्हें उस पर हँसने का मौका मिले, इस भावना को वे कब से सँजोये आ रहे थे। इधर कमल के शिष्ट आचरण और शान्त प्रकृति से उसके सभी शिक्षक खुश रहते थे। स्कूल में कोई उसका बाल बाँका भी नहीं कर पाता था। किशोरावस्था को प्राप्त कमल और सुधा की पारस्परिक निकटता कुछ लड़कों को बहुत खटकती थी। लेकिन उन्हें ऐसा कोई अवसर नहीं मिलता था कि वे सुधा को लेकर कमल को बदनाम कर सकें। आज कमल के प्रतिस्पर्धी कुछ बदमाश लड़कों ने उसे बदनाम करने के लिए एक नया काण्ड रच डाला। कमल के साथियों में एक ऐसा लड़का था जो उसकी हस्तलिपि की यथावत नकल कर लेता था। उसकी नकल को देखकर कोई कह नहीं सकता था कि वह कमल की लिखावट नहीं है। इस छात्र को मिलाकर कमल की ओर से सुधा के नाम एक पत्र लिखाया गया। पत्र की भाषा यों थी—

"प्यारी सुधा,

तुम्हारे बिना दिल बेकरार बना रहता है। तुम मुझे क्यों तड़पाती हो? आज रात में किसी तरह मेरे घर जरूर आओ। मैं अकेले बाहर बरामदे में सोता हूँ। अतः कोई डर नहीं।

तुम्हारा प्रियतम,
कमल"

दोपहर में अवकाश का घंटा बजा। एक लड़का साहस करके इस पत्र को प्रधानाध्यापक के पास दे आया। यह पूछे जाने पर कि यह पत्र उसे कहाँ मिला, उसने बता दिया कि सुधा जिस कुर्सी पर बैठती है, उसी के नीचे यह पाया गया। प्रधानाध्यापक ने उस लड़के को चले जाने को कहा। पत्र को ध्यान से देखने लगे। कमल की हस्तलिपि से कई बार परिचित हो चुके थे। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि यह कमल का लिखा नहीं है। उन्हें यह भी ध्यान आया कि कमल और सुधा में घनिष्ठता रहती है। कोई ताज्जुब नहीं कि उनके सम्बन्ध की ऐसी विकृति हुई हो। सुधा गाँव के सबसे बड़े रईस की लड़की थी। इसलिए भी उसकी सम्मान-रक्षा की जिम्मेदारी प्रधानाध्यापक पर थी। उन्होंने सबसे पहले सुधा को बुलवा भेजा। सुधा स्कूल के बरामदे में अकेली बैठी कोई किताब उलट-पलट कर देख रही थी। बुलाए जाने पर निधड़क आफिस में गई। हेडमास्टर पहले से ही उसकी प्रतीक्षा में अकेले बैठे थे। उन्हें गम्भीर देखकर सुधा कुछ घबड़ा-सी गई। हेडमास्टर उसके हाथ में पत्र देते हुए कुछ कड़ी वाणी में बोले, "देखो, यह पत्र तुम्हारा ही है न !"

सुधा की नजर 'प्यारी सुधा' पर पड़ी। घबड़ाहट, भय और संकोच के मारे उसकी आँखें चौंधिया-सी गईं। किसी तरह जल्दी-जल्दी पत्र पढ़ गई और उसे हेडमास्टर की मेज पर फेंक दिया। शर्म से उसके कपोल आरक्त हो गए। गुस्से से खून खौल उठा।

"बोलती क्यों नहीं ? पत्र किसका है ?" हेडमास्टर गरज पड़े।

"मैं क्या जानूँ ?" सिर अवनत किए ही सुधा ने उपेक्षा भरे भाव से कहा।

"मैं क्या जानूँ ? शैतान ! अभी पता चल जाता है। जा, चली जा यहाँ से !!" हेडमास्टर जोर से डपटे।

अपमानित सुधा सिर झुकाए आफिस से बाहर आयी। बाहर आते ही उसकी दबी रुलाई फूट पड़ी। दीवार के निकट खड़ी-खड़ी सुबकने लगी। ये आँसू भय के नहीं, गुस्से और दलित आत्मसम्मान के थे। उसने पत्र की लिपि को देखा था। ठीक कमल की लिखावट ! लेकिन यह कैसे सम्भव है ? कमल ऐसा लिख कैसे सकता है ?······ ' नहीं-नहीं जरूर कोई चाल है, रहस्य है। कमल निर्दोष है। वह जितना ही सोचती, उसकी आँखें उतने ही वेग से झड़ती जाती थीं। दूर बैठे कुछ लड़के इस तमाशे का मजा लूट रहे थे।

चपरासी जब कमल को लेकर आया तो सबसे पहले कमल की मुलाकात सुधा से ही हो गई। वह दीवार के सहारे खड़ी मुँह छिपाए रो रही थी। उसे रोते देख कमल को आश्चर्य हुआ। पूछा, "आखिर बात क्या है सुधी ?"

लेकिन सुधा ने उसकी ओर देखा तक नही। सिर लटकाए रोती रही। कमल को इतना समय नही था कि वह सुधा से और कुछ पूछ सके। शंकित हृदय से आफिस में प्रविष्ट हुआ।

"देखो तो, यह तुम्ही ने लिखा है न" ? हेडमास्टर ने पत्र कमल के हाथ में थमाते हुए रोषपूर्वक पूछा।

पत्र पढकर कमल की भी प्राय: वही हालत हुई जो अभी कुछ देर पहले सुधा की हुई थी।

"जी यह मेरा लिखा नही है," उसने बेधड़क जवाब दिया। सुधा के रोने का अभिप्राय अब वह समझ गया। उसने अनुमान कर लिया कि सुधा को भी यह पत्र अवश्य दिखाया गया है। तभी वह सिसक रही है। उसे यह भी विश्वास हो गया कि सुधा ने पत्र पर विश्वास कर लिया है। तभी तो उसने उसकी ओर देखा तक नही। उस विचार तक आते-आते सुधा के प्रति सख्य-भाव हवा हो गया। घृणा से मन भर गया।

"तुम्हारी शैतानी का अभी पता लग जाता है।" हेडमास्टर का क्रुद्ध स्वर फूट पड़ा।

उन्होंने काँपते हाथ से सादे कागज का एक टुकडा और एक पेंसिल कमल की ओर बढाते हुए कडे शब्दों में कहा, "उस पत्र की सारी बातों को यथावत इस कागज पर लिखो ! हम दोनो में मिलान करेंगे !"

कमल कुछेक क्षणों तक गम्भीर पडा कुछ सोचता रहा। फिर न जाने कौन-सी शक्ति उसके मुख से दृढ स्वर में बोल गई, "सर, मैं इन बातों को नही लिख सकता। दूसरी कोई भी चीज लिख सकता हूँ !"

"क्या कहा ?" कमल की धृष्टता से हेडमास्टर कुढ़कर बोले, "जानता है, तू किसके सामने बोल रहा है ?·········तुझे यही लिखना होगा ! और अभी, तुरत !"

कमल पर्वत की तरह अविचल खड़ा रहा। उसने निश्चय कर लिया, वह सब कुछ सह लेगा, लेकिन ऐसा कभी नही लिख सकता। असत्य और अन्याय के सामने सिर नही झुका सकता।

हेडमास्टर का प्रेम और क्रोध दोनो सर्वविदित था। वे अपने छात्रों को बहुत मानते थे। पर यदि किसी कारणवश बिगड गए तो निर्मम भूत हो जाते थे। कमल उनका प्रिय छात्र था। वे उसकी शिष्टता तथा तेजस्विता से बराबर मुग्ध रहते थे। किन्तु आज जब कमल ने उनके आदेश का पालन नही किया तो

उसके तथाकथित अपराध पर उनके सन्देहों ने विश्वास का रूप ले लिया। उनके क्रोध की ज्वालामुखी भड़क उठी। अब तक स्कूल के दूसरे सभी शिक्षक भी आफिस में आ चुके थे। कमल की करतूत की खबर स्कूल के छात्रों में बिजली की तरह फैल गयी। वे इधर-उधर झुंड बाँधकर उसी की चर्चा भाँति-भाँति से कर रहे थे।

हेडमास्टर ने अवकाश-समाप्ति का घण्टा बजाने की आज्ञा दी। शिक्षक और लड़के अपने-अपने क्लास में चले गए। आफिस में कमल और हेडमास्टर ही रह गए। बाहर खड़ी सुधा को भी क्लास में बुला लिया गया। क्लास में जाने पर किसी तरह उसने अपने पर काबू कर लिया। किन्तु उसके मन की बेचैनी पहले से भी अधिक बढ़ गई। कमल पर क्या बीत रहा होगा, यह सोच-सोचकर उसका बुरा हाल था।

इधर हेडमास्टर के दुवारा कहने पर भी कमल अपने निश्चय से नहीं डिगा। क्रुद्ध हेडमास्टर को हार मानकर छड़ी की शरण लेनी पड़ी। कमल की तनी हुई देह पर छड़ी की बौछार शुरू हो गई। पैर से लेकर पीठ तक छड़ी की सट-सट चलती जा रही थी। किन्तु आश्चर्य, कमल न तो अपने स्थान से हटा, न तने हुए शरीर को शिथिल होने दिया। उस निर्मम प्रहार की चोट उसकी आँखों में पानी बनकर उतर नहीं सकी। उसकी इस अजेय मुद्रा ने हेडमास्टर को और भी चिढ़ा दिया था। वे लगातार छड़ी की वृष्टि करते जा रहे थे। लेकिन जब उनकी आँखों के सामने कमल की देह पर नीले चकत्ते, कहीं-कहीं खून के लाल निशान स्पष्ट होने लगे तो बरबस उन्हें छड़ी रोक लेनी पड़ी। उस लड़के की हिम्मत देखकर वे उस हालत में भी चकित थे। किन्तु अपनी हार स्वीकार करना भी नहीं चाहते थे। उन्होंने छड़ी की नोक से ही कमल को बाहर जाने का संकेत करते हुए गरज कर कहा, "सामने मैदान में रखे बेंच पर खड़े हो जाओ—छुट्टी हो जाने के आधे घण्टे बाद तक तुम्हें कड़ी धूप में खड़ा रहना होगा—गेट आउट !!"

कमल ने जब चलना चाहा तो लगा जैसे गिर जाएगा। देह सुन्न पड़ गई थी। किसी तरह अपने घायल शरीर को सँभालते हुए मैदान में गया। निर्दिष्ट बेंच पर स्कूल के प्रतिकूल मुँह करके खड़ा हो गया। जीवन की इस छोटी-सी घटना ने उसके मन को झकझोर दिया था। समाज में जितना अन्याय, जितना अत्याचार और जितनी जालसाजी है, उसे वह आज अपनी चोटों और वेदनाओं में प्रतिबिम्बित देख रहा था। उसका मन विद्रोही बन गया था। वह खुलकर लड़ेगा इन अत्याचारों से। सिर कभी नहीं झुकायेगा। चाहे उसकी जान चली

जाये ! उसके विद्रोह की आग अपने निकलने का कोई दूसरा रास्ता न देखकर अब, इतनी देर बाद, उसकी आँखों की राह से बह चली। वह अकेले धूप में खड़ा-खड़ा रोने लगा। वह यह भी अनुभव कर रहा था कि पीछे क्लास में बैठे लड़के उसे घूर रहे होंगे। उसकी खिल्ली उड़ा रहे होंगे। सुधा भी मन ही मन खुश होगी कि उसके अपराधी को अच्छा दण्ड मिला। अपनी पीठ पर उसे जितनी छड़ी के घावों की वेदना महसूस नहीं हुई, उतना पीछे से घूरती कल्पित दृष्टियों के तीर चुभने लगे। एक क्षण को मन में एक भावना जगी। वह जब निरपराध है तो क्यों इस सजा को, पीछे की व्यङ्ग्य भरी दृष्टियों के तीखेपन को सहन करे ? यदि वहाँ से भाग जाये तो कौन उसे पकड़ सकता है ? दूसरे ही क्षण वह सँभल गया। भागने मे उसे अपनी पराजय मालूम हुई। वह चट्टान की तरह खड़ा रहेगा। यही उसका अन्तिम निश्चय रहा। धूप की तीखी किरणें उसके हरे घावों में और भी जलन भर रही थी। थोड़ी ही देर में उसके घायल शरीर और ललाट पर पसीने की बूँदें चमकने लगी।

सुधा अपने क्लास में जिस स्थान पर बैठी थी वहाँ से कमल को सीधे देखा जा सकता था। क्लास में हिन्दी व्याकरण की पढ़ाई हो रही थी। किन्तु न तो मास्टर जी ही पढ़ाने मे मन दे रहे थे और न लड़के ही उन्हे ध्यान से सुन रहे थे। सभी आँख बचाकर बाहर धूप में खड़े करुणमूर्ति कमल को ही देख रहे थे। जिन लड़कों की दुष्टता के कारण कमल की आज ऐसी दुर्गति हुई थी, वे पहले तो विजय-भाव से कमल की खिल्ली उड़ाते रहे, किन्तु अब बाहर धूप में खड़े रोते हुए कमल की करुणा उनके मन को भी आप्यायित करने लगी थी। वे मन ही मन पछता रहे थे। कहाँ से कहाँ निर्दोष कमल को फँसाया गया। वे चाहकर भी अब कुछ कर नही सकते थे। अब कुछ भी करने का मतलब होता खुद को ही फँसा लेना। ऐसा करने की हिम्मत किसी में नही थी।

सुधा की हालत बड़ी नाजुक थी। वह खूब समझ रही थी कि कमल की तरह वह स्वयं भी आज छात्रों की दृष्टि का लक्ष्य बनी हुई है। अतः छात्रों के बीच बैठकर बाहर कमल को निहारना उसे बहुत लज्जाजनक लग रहा था। सब समझकर भी कमल को न देखना उसे असह्य था। उसने उद्विग्न मन से किसी तरह आँख बचाकर कुछ क्षणों के लिए कमल को देखा। उसकी इस संक्षिप्त दृष्टि में कमल की करुण तस्वीर ने बेचैनी भर दी। उसका कोमल हृदय मर्माहत हो गया। दुबारा देखने की हिम्मत रही ही नही। वह शरीर से ही क्लास मे बैठी थी। उसकी आकुल आत्मा कमल के साथ ही धूप में खड़ी थी। उसके आँसुओ को पोंछ रही थी। उसके दुखते घावो पर मरहम चढ़ा रही

यदि सचमुच वह कमल का हो पत्र होता, तब भी शायद वह बुरा नही मानती। हेडमास्टर द्वारा किए गए अपमानों की ज्वाला से ही उसका हृदय दग्ध हो रहा था।

ठीक चार बजे सायंकाल छुट्टी का घण्टा बजा। लड़के क्लास से बाहर आने लगे। आज दूसरे दिनों की तरह उनका छुट्टी के समय का कोलाहल नही सुनाई पड़ा। प्रायः सबकी वार्ता का विषय आज कमल ही था। तेजस्वी कमल से स्कूल के सभी लड़के परिचित थे। कमल और सुधा के तथाकथित प्रेम-सम्बन्ध को कोई ठीक बताता, कोई झूठ। कमल को अपनी विविध दृष्टियों का लक्ष्य बनाते हुए धीरे-धीरे सभी लड़के स्कूल से बाहर हो गए। केवल रह गयी सुधा। नित्य के नियम के अनुसार वह सबसे पीछे कमल के साथ घर जाती थी। उसने एकान्त पाकर असहाय और करुण दृष्टि से कमल को देखा। वह अब भी शान्त-भाव से विपरीत मुँह किए खड़ा था। ठीक इसी क्षण सुधा की दृष्टि दूर अहाते में खड़े दो लड़कों पर गई। वे उसी की तरफ घूर रहे थे। सुधा ने झट से अपना सिर दूसरी ओर मोड़ लिया। सामने खड़े नीम के छायेदार पेड़ को इस तरह देखने लगी, मानो वह पहले भी उसे ही देख रही थी। लेकिन अपने को उस रूप में भी ज्यादा देर तक रखना उसके लिए असम्भव हो गया। स्कूल के एक कोने से चपरासी उसी की ओर आता दिख पड़ा। वह घबड़ाकर अकेले ही दूसरे रास्ते से घर की ओर चल दी। कुछ दूर तक यही महसूस करती रही जैसे पीछे से उसे कोई घूर रहा हो। असहाय कमल के प्रति उसके उमड़े हुए स्नेह-भाव को व्यंग्य-पूर्वक परख रहा हो। जब गाँव नजदीक आ गया तो उसकी जान में जान आई। एक बार पीछे की ओर मुड़कर प्यासी आँखों से देखा। कमल का कहीं पता नही था। कुछ देर तक विचार-मग्न वहीं रुकी रही। पीछे धीरे-धीरे उदास मन घर की ओर चल पड़ी।

तेरह

निश्चित समय से दस मिनट पहले ही स्कूल के चपरासी ने आकर कमल को सूचना दी, "अब आप घर जा सकते है। आप पर पाँच रुपए का फाइन हुआ है। उसे दो दिनों के अन्दर ही दे देना है। यह हेडमास्टर साहब का आदेश है।"

कमल ने इसे एक कान से सुना, दूसरे से निकाल दिया। शान्त भाव से अपनी पुस्तकें लेकर एक तरफ चल दिया। अब तक स्कूल का अहाता खाली पड़ चुका था। धूप भी कुछ ठंडी पड गई थी। कमल गाँव की विपरीत दिशा में चलता रहा— कहाँ, वह खुद नही जानता था। दिनभर प्यासी पुरवैया अपने गर्म-गर्म झकोरो पर दूर आसमान तक धूल उड़ाती रही थी। अब हवा शान्त थी। दोनों ओर खडे बेर, जामुन, आम आदि वृक्षों के पत्ते मटमैले दिख रहे थे। हवा की झार-झपेट के चिह्न आकाश और पृथ्वी दोनों जगह व्याप रहे थे। कमल अपने पैरों की गति से बेखबर अपने टूटे मन को जोडने में व्यस्त था। थोड़ी देर पहले के सभी चित्र एक-एक करके उसके सामने नाच रहे थे। अपने विचारों में न जाने वह कब तक खोया रहा। अचानक पीछे से एक हाँफती हुई आवाज उसके कानों में तैर गयी, "कमल!"

कमल ने किञ्चित आश्वर्य और घबराहट से अपने पीछे मुडकर देखा। उसका सहपाठी रमेश हाँफता हुआ खड़ा था। शायद वह दूर से कमल के पीछे दौड़ता आया था।

"क्या बात है रमेश ?" कमल ने आकुल जिज्ञासा को।

"बात का पता मिल गया।" रमेश अब भी हाँफ रहा था।

"कौन-सी बात का ?"

"वही—वह चिट्ठी नीलू की लिखी हुई थी। वह ठीक तुम्हारी तरह लिख लेता है!"

"तुम कैसे जानते हो ?"

"नीलू ने खुद मुझसे कहा। उससे क्लास के कुछ लड़कों ने भुलावा देकर पत्र लिखा लिया था। पीछे तुम्हारी सजा देखकर वह बहुत दुखी हो गया। छुट्टी होने पर मुझसे सब कुछ कह डाला। वह तुमसे बहुत डरा हुआ है। तुमसे मिलकर क्षमा माँगना चाहता है······ .. "

कमल के क्षुब्ध मन पर रमेश को बातों की सबसे पहली प्रतिक्रिया हुई कि वह उसके गाल पर थप्पड जड दे। लेकिन वह तत्क्षण प्रकृतिस्थ होकर शान्त स्वर में बोला," जाकर कह देना कि उसका कोई अपराध नही।"

"तुम्हे पाँच रूपए का फाइन हुआ है, जानते हो न ?"

"हाँ। तुम्हें कैसे मालूम ?"

"आज छुट्टी होने से पहले सभी क्लासों में तुम्हारी सजा को रपट सुनाई गई। उस समय तुम बाहर धूप में खड़े थे।"

कमल का भावुक मन अपने चरित्र-हनन की बातें सुनकर और भी तिलमिला गया। इस बार वह मौन साधे रहा।

"लेकिन चिन्ता मत करो कमल। नोलू रुपए का प्रबन्ध कर देगा।"

"फिजूल की बात मत बको रमेश", कमल फुफकार उठा, "तुम लोगों की सहानुभूति मुझे नहीं चाहिए। नोलू को या तुम्हें मेरे लिए कोई कष्ट करने की जरूरत नहीं।"

'तो तुम कहाँ से, कैसे ?······ ····"

"मैं कहीं से भी उसका प्रबन्ध कर लूँगा। तुम्हें उससे मतलब ?"

जैसे नोलू या रमेश की बातों से उसका कोई भी वास्ता न हो, कमल आगे बढ़ता गया। रमेश कुछ समय तक निःशब्द उसके पीछे लगा रहा। किन्तु जब उसने कमल को एक बार भी अपनी ओर उन्मुख होते नहीं देखा, वह धीरे से खिसक गया।

धीरे-धीरे सन्ध्या ने वृक्षों के पत्ते-पत्ते पर अपनी लाल चूनर फैला दी। सड़क पर पथिकों का आना-जाना भी कम पड़ गया। लेकिन कमल का चलना रुका नहीं। अपने विचारों के ताने-बाने में उलझे कमल को अवकाश नहीं था कि वह अपने गन्तव्य के विषय में भी कुछ सोच सके। आज उसे अपने दलित आत्म-सम्मान को लेकर बड़ी चोट पहुँची थी। सुधा के रूखे व्यवहारों ने भी उसके मर्म को घायल कर दिया था। आफिस जाते समय सुधा का रोना, कमल के पूछने पर भी उसका हाँ-ना कुछ जवाब न देना, छुट्टी हो जाने पर कमल की प्रतीक्षा किए बिना उसका घर चला जाना! ······ सुधा आखिर समझती क्या है अपने को? बड़े बाप की बेटी है तो अपने घर की। कमल की आँखों में आज से उसकी एक कौड़ी भी कीमत नहीं। उसने इस जालसाजी पर विश्वास क्यों कर लिया? उस सम्बन्ध में उसने कमल को भी कुछ कहने का अवसर क्यों नहीं दिया? ······ नहीं, अब सुधा का मुँह देखना भी पाप है। कमल फिर कभी स्कूल नहीं जा सकता। पढ़-लिखकर ही वह क्या कर लेगा? घर पर हल चलाना अच्छा। उस स्कूल में फिर मुँह दिखाना अच्छा नहीं। '······' नये निश्चय की शक्ति उसकी नस-नस में अपूर्व उत्साह से भरने लगी।

एकाएक विचारों के एक मोड़ पर कमल को प्रतीत हुआ, जैसे वह अपने गाँव से बहुत दूर चला आया है। उसने अकचकाई नजरों से पीछे मुड़कर देखा। उसका गाँव अब तक वृक्षों की धूमिल ओट में छिप चला था। सन्ध्या की लालिमा अब स्लेटी झुटपुटे में बदलने लगी थी। आस-पास के गाँवों के ऊपर गहराते-

बिखरते धुएँ की भूरी लटें दिख रही थी। कमल ने ख्याल किया, वह एक सुपरिचित रास्ते से ही बढ़ा जा रहा है। उसकी बुआ का गाँव वहाँ से कोई ज्यादा दूर नही था। एक बार मन में आया, वह घर लौट चले किन्तु दूसरे ही क्षण मन की सारी शक्तियाँ दूने जोर से बोल उठीं—नही-नही, वह घर कभी नही लौट सकता। बुआ के पास जाना भी तो उचित नही। .... तो ठीक है, दूसरे ही दिन सुबह में वह वहाँ से भी किसी अज्ञात देश को चल देगा। केवल रातभर के लिए बुआ के यहाँ ठहरना बुरा नही रहेगा।

ठीक इसी समय कमल ने एकाएक अपने सामने देखा। उसके पिता किसी दूसरे आदमी के साथ धीरे-धीरे बातें करते उसी की तरफ बढ़े आ रहे थे। उसे याद आया, मंडी से लौटने का उनका यही समय था। वह घबड़ा कर सडक के दाहिनी ओर मिहोर की एक सघन झाडी के पीछे छिप गया। प्रताप अपनी बात-चीत मे ऐसे लीन थे कि उन्हे अन्यत्र ध्यान देने या अवकाश नही था। उनके आगे बढ़ जाने पर कमल ने चैन की साँस ली। धीरे-धीरे अपने गन्तव्य की ओर चल पडा।

चौदह

कमल आज पन्द्रह-बीस दिनो पर अपने घर वापस आ रहा है। जिस दिन वह अपने घर से गायब हुआ था, उसी दिन से बड़ी बेचैनी के साथ प्रताप उसकी खोज कराने लगे। जहाँ-तहाँ आदमी दौड़ाए गए। स्वयं प्रताप कई जगह घूम-फिर आए। कही भी कमल का पता नही चला। सुनैना भीतर-ही-भीतर बहुत खुश थी उसके अन्तर्मन में विश्वास-सा हो गया था कि कमल फिर वापस नही आ सकता। कमल के अशुभ की कल्पना में वह दिन-रात डूबी रहती। उधर गीता की आँखों के आँसू कभी सखते नही थे। दिन-रात प्रताप को कोसती रहती। उसी की ढिलाई के कारण कमल नही मिल पा रहा है। कमल के घर से भागने का कारण प्रताप को बाद में मालूम हुआ। एक दिन स्वयं हेडमास्टर साहब लज्जा और आत्मग्लानि की मुद्रा मे उनसे क्षमा माँगने आए थे। कमल के गायब होने के पाँच-छह दिनो के बाद ही स्कूल में इस बात का भंडाफोड़ हो गया कि असल

दोषी नीलू और उसके कुछ साथी हैं। कमल बिल्कुल निर्दोष है। धर्मभीरु हेड मास्टर को तो जैसे गो-हत्या लग गई हो। पश्चाताप और मानसिक क्लेश की आग में जल-जलकर उनकी हालत बड़ी करुण हो गई। उनकी क्षमा-याचना से प्रताप कहाँ तक पिघलते, उल्टे उन पर बरस पड़े। साफ-साफ कह दिया कि यदि कमल नहीं मिला तो उनकी खैर नहीं।

कमल के गायब होने की सुनकर सुधा की हालत बदतर हो गई थी। वह समझ नहीं पाती थी कि कमल के सम्बन्ध में किससे पूछे, क्या पूछे। जब तब अपनी माँ से ही कुछ जिज्ञासाएँ कर लेती और बस। रात में बड़ी देर तक वह कमल की बातें सोचा करती। उसकी निर्दय पिटाई और मार्मिक वियोग की कल्पना करते-करते उसकी आँखें प्रतिदिन बरसा करती। सोने पर भी उसके सपने कमलमय होते। कमल के चले जाने के दूसरे दिन ही रमेश उसके पास आया था। नीलू के सम्बन्ध की सारी बातें उसने बता दी थी। बात का पता मिलते ही सुधा की हालत क्रुद्ध सर्पिणी-सी हो गई। निर्दोष कमल पर जो निर्दयता बरती गई थी उसका बदला लेने के लिए उसका खून खौल उठा। वह भूल गई कि नीलू के पत्र ने उसके निजी आत्म-सम्मान पर भी आघात किया था। कमल का घाव उसके लिए इतना बड़ा था कि उसकी मार्मिकता के आगे सुधा कि किसी व्यक्तिगत पीड़ा का कोई प्रश्न नहीं था। दूसरे दिन वह सबसे पहले स्कूल गई। जाते ही साहस-पूर्वक सारी बातें हेडमास्टर को सूचित कर दी। पहले तो हेडमास्टर को विश्वास नहीं हुआ। किन्तु जब छड़ी के आगे नीलू लाया गया तो वह आप-से-आप सारी बातें बक गया।

हेडमास्टर को काटो तो खून नहीं। आत्म-कुत्सा की भावना ने उन्हें और भी बीभत्स बना दिया। नीलू और उसके अपराधी साथियों को कमल से भी अधिक मार पड़ी। नीलू पर बीस रुपये का फाइन भी हुआ। सुधा की प्रतिहिंसा की भावना कुछ ठंढी पड़ गई। किन्तु कमल के गायब होने की बात सुनकर उसकी खुशियों पर पानी फिर गया।

कमल की खोज हर सम्बन्धी में की जा चुकी थी। किन्तु प्रताप ने अपनी बहन के पीहर में अब तक कोई आदमी नहीं भेजा था। उनकी समझ से कमल को अपनी बुआ कभी अच्छी नहीं लगी। उनकी बहन का गाँव बहुत नजदीक भी पड़ता था। अतः कमल का वहाँ छिप जाना सम्भव नहीं था। कुछ ही दिनों बाद उनकी बहन ने कमल के सम्बन्ध में पत्र लिखकर उनके पास भेज दिया। कमल का पता पाकर प्रताप को बड़ी खुशी हुई। पीछे कमल की शैतानी को सोचकर

बड़ी चिढ़ सी हुई। इसीलिए गीता के लाख कहने पर भी वे उसे बुलाने नहीं गये। इससे खीझकर गीता ने भी जोर देना छोड़ दिया। जिसका बेटा है, वही उसे नही चाहता तो दूसरे को क्या गरज पडी है !....

बुआ के यहाँ से मन भर जाने पर कमल आज खुद अकेले ही अपने घर आ रहा है। रास्ते में उसके पैर ठीक से चल नही पा रहे हैं। अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताओं और आशंकाओं से उसका बुरा हाल है। उसके एकाएक भाग जाने के विषय मे अब तक अवश्य ही गाँव के लोग जान चुके होंगे। पहले केवल स्कूल में मुँह दिखाने का सवाल था ! अब तो गाँव के लोगों की नजर के सामने भी कमल कैसे ठहर सकेगा। जब वह बेकसूर है तो फिर डरे ही क्यों ? निर्भीक भाव से घर पहुँचना है। इतने दिनो तक बुआ के घर रह जाने से उसके मन की आग कुछ ठंढी पड चुकी थी। बुआ ने उसे समझा-बुझाकर शान्त कर दिया था। अपने चलने से पहले उसने बुआ को विश्वास दिया कि वह आइन्दे कभी घर से नही भागेगा। किन्तु जैसे-जैसे उसका गाँव नजदीक आता गया, उसका मन भय, आशंका और सकोच के भावों से घिरता चला गया। किसी तरह अपने भारी कदमों को आगे बढाता अपने घर के नजदीक पहुँचा। अब तक थोड़ी रात बीत चुकी थी। आज बहुत दिनो के बाद आकाश में काले बादल छाए हुए थे। हवा बिल्कुल शान्त थी। ऊमस के कारण शरीर पर कपड़ा रखना मुश्किल हो रहा था। कमल दबे पाँव अपने दरवाजे पर पहुँचा। बाहर कोई नहीं था। भीतर आँगन में मुर्दनी (शान्ति) छाई थी। कहीं से भी किसी के बोलने की आवाज नहीं आ रही थी। कमल का मन किसी अज्ञात् आशंका से काँपने लगा। लगा जैसे वह किसी अनजान घर में प्रवेश कर रहा है। इस घर के लोग उसके जाने-पहचाने नहीं हैं।

कुछ देर तक दरवाजे पर खड़ा-खड़ा वह प्रतीक्षा करता रहा कि कोई भीतर से बाहर निकले। जब कोई बाहर नही आया तो वह स्वयं सहमता हुआ आँगन में प्रविष्ट हुआ। आँगन में पहुँचने के पहले से ही बारिश शुरू हो गई थी। उसने सामने घर के बन्द दरवाजे की फाँक से दीये की टिम-टिम रोशनी निकलती हुई देखी। दरवाजा वृष्टि के कारण भीतर से उढका दिया गया था। पानी में भीगता कमल उसी दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया। वह गीता का घर था। अतः उसके लिए विशेष निरापद था। डरते-डरते दरवाजे को फाँक से भीतर देखा—उसके चाचा खा रहे हैं और चाची उन्हें पखा झल रही हैं। उसने बाहर से ही धीमें स्वर में पुकारा, "चाची, दरवाजा खोलो, मैं आ गया हूँ।"

भीतर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। कमल ने सोचा, शायद उसकी आवाज अन्दर नहीं पहुँची हो। उसने इस बार जोर से पुकारा, "चाची, दरवाजा खोलो, मैं भीग रहा हूँ।"

इस बार भीतर से चाचा की धीमी आवाज किसी तरह उसके कानों तक पहुँच गई। वे अपनी पत्नी से डाँट के-से स्वर मे कह रहे थे, "खोल दो दरवाजा, उसे आने दो!" इस पर उसकी चाची ने झिड़ककर उनको चुप कर दिया। स्वयं आवेश में झमकती हुई-सी दरवाजे पर आई। थोड़ा-सा किवाड़ खोलकर भीतर से ही बोली, तुम्हारा घर उधर पड़ता है। वही चले जाओ!" और ठक से दरवाजा बन्द।

कमल इस अप्रत्याशित व्यवहार से सन्न रह गया। उसे कुछ नहीं मालूम हो सका कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है? अब तक वह सिर से पैर तक पूरी तरह भीग चुका था। हवा और वर्षा की सिसकारी के बीच उसने हार मानकर आँगन में खड़े-खड़े ही माँ-माँ की रट लगाकर गीता को पुकारना शुरू किया। लेकिन इतने पर भी कोई जवाब नहीं! कमल के सारे कपड़े भीग चुके थे अतः अब उसने कहीं छिपने की जरूरत ही नहीं समझी। एक तो काली रात। दूसरे बादलों की कड़क-दमक। आँगन मे दीया-बत्ती कुछ नहीं। सूचीभेद्य अन्धेरे में अपनी देह भी नहीं सूझ रही थी। एकाएक पीछे से कमल की पतली गर्दन किसी के कठोर पंजे मे जकड़ ली गई। दूसरे ही क्षण किसी ने उसे धक्का देते हुए सामने खुले दरवाजे के भीतर ढकेल दिया। कमल धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। कुछ होश करके सँभल कर उठने पर उसने पाया कि वह अपनी विमाता के घर में है। दीये की मद्धिम रोशनी में पास ही खड़े पिता की वज्र-मुद्रा भी उसे दिख गई। वह भय से पीला पड़ गया।

"इस अभागे ने मेरी नाक में दम कर दिया है", प्रताप की क्रुद्ध वाणी वृष्टि की सनसनाहट में भी गूँज पड़ी, "जहाँ से आया है, वहीं अभी ही चला जा! निकल जा मेरे घर से। अभी, इसी वर्षा में!"

कठोर नियति के अविचल इंगित की तरह पिता का उठा हुआ दाहिना हाथ उसे बाहर जाने का संकेत दे रहा था। भय के मारे कमल से चला ही नहीं गया। अपने को किसी तरह संभाल कर उसने जैसे ही बाहर निकलना चाहा, क्रुद्ध पिता के निर्मम पंजे ने उसकी पतली गर्दन को एक बार फिर दबोच लिया। उसकी पीठ पर जबरदस्त आघात हुआ। कमल घूँसे के निर्मम प्रहार से छटपटाकर पुनः धराशायी हो गया। यह चोट इतनी करारी सिद्ध हुई कि वह रोना चाहकर भी

रो नही सका। सूखे कण्ठ से आवाज निकल नही पाई। धीरे-धीरे उसकी पिघलती आवाज कंठ को गीला करती हुई बाहर आयी। वह फूट-फूट कर रोने लगा। उधर उसके पिता बड़बड़ाते जा रहे थे—"ससुरा बाहर जा रहा है! शैतान! आवारा! जान लेकर छोड़ूँगा तेरी। इतने दिनों तक अपने बाप के यहाँ पड़ा था? खोजते-खोजते परेशान कर दिया...!"

पन्द्रह

कमल ने एक तरह से निश्चय कर लिया कि इस घर में अब उसका रहना किसी तरह सम्भव नही। लेकिन कहाँ जाये और कैसे जाये इसी की उधेड़बुन में लगा रहा। उसकी अनुपस्थिति में ही उसके चाचा और पिता ने अपनी पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा कर लिया था। घर की सभी चीजें बँट चुकी थी। गीता ने उसके चाचा के साथ ही रहना पसन्द किया। यह प्रत्याशित भी था। अब गीता की नजर भी कमल की ओर से फिर गयी थी। बिल्लू से उन्हें फुर्सत ही नही मिलती थी कि कमल को भी थोड़ा प्यार दे सकें। कमल स्वयं भी अब उनसे खिचा-खिचा सा रहता। कठोर आघातों की लगातार पड़ती चोटें उसके अबोध मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ती गई। उसे लगा जैसे इस जगत में कुछ भी स्थिर नही है। यहाँ तक कि माता और पिता का पवित्र स्नेह भी स्वार्थ के चन्द ठिकड़ों के मोल बिक सकता है! विमाता की भर्त्सनाएँ, पिता का घोर उपेक्षा-भाव, माँ गीता की अन्यमनस्कता, चाचा का दुराव—नही, अब वह एक क्षण भी इस घर में नही रह सकता। इतने बड़े विश्व में अब उसे एक भी आदमी अपना नही दिख रहा था। ऐसा कोई नही था जो उसे सच्चे स्नेह से दुलरा सके। उसे ममत्व दे सके।

सुधा को तो उसने उसी दिन अपने हृदय से निकाल दिया था जिस दिन स्कूल वाली घटना घटी थी। आज एक और ऐसी बात हो गई जिसने सुधा के प्रति उसके आक्रोश को और भी भड़का दिया। कल ही शाम को कमल अपनी बुआ के घर से आया था। आज यह दूसरी सन्ध्या थी। घरेलू परिस्थितियों की विषमता ने उसके मन से स्कूल की बात को धो-पोंछकर साफ कर दिया था। कमल

अपने हरे-भरे खेत की मेड़ पर बैठा ईखों का लहराना देख रहा था। मेड़ के सटे उत्तर में एक पतली कच्ची सड़क गाँव को चली जाती थी। इस सड़क के किनारे ताड़ के कई विशाल पेड़ कतार में खड़े थे। उन पर लटके हुए बया चिड़ियों के घोंसले हवा में झूल रहे थे। साँझ की तिरछी किरणें ताड के खरखराते पत्तों से बिदाई ले रही थी। कमल के ठीक सामने ताड के शिरोभाग से लटकते हुए घोंसले से एक बया शिशु कमल की ओर निहार रहा था। काश, कमल भी उसी घोंसले का पंछी होता। बयों के साथ फुदकता चलता! कमल बड़ी देर तक पक्षियों की दुनिया में डूबा रहा। अचानक रमेश कहीं से आकर उसके सामने खड़ा हो गया।

"कहो रमेश, कैसे हो?" कमल ने उसे अपने पास बिठाते हुए पूछा।

रमेश जैसे पहले से ही अपना पाठ रट करके आया हो। कुछ इधर-उधर की बातें करके वह आये दिन स्कूल में जो कुछ भी घटित हुआ था, उसे आद्योपान्त सुना गया। कमल शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनता रहा। अन्त में बौखलाकर बोला, "तो नीलू के पिटने के पीछे सुधो का ही हाथ था?"

"हाँ, सुधो ने ही जाकर हेडमास्टर से रिपोर्ट की।"

"तुमने उससे नीलू की चर्चा चलाई ही क्यों?" "मैं तो नीलू की ओर से उससे क्षमा माँगने गया था। वह बेचारा पहले से ही डरा था कि बात खुल गई है। सुधा उसके अपराध को जान चुकी है। अब तो वह पढ़ भी नहीं सकेगा। उसके पिता ने भी उसे बहुत पीटा। तब से वह बीमार पड़ा हुआ है। बीस रुपये का फाइन तो वह दो युगों में भी नहीं दे सकेगा! तुमने तो उसे माफ कर दिया था, लेकिन........"

"मूर्ख!" कमल अपने से ही बड़बड़ाया। स्पष्टतः वह रमेश की बातों को नहीं सुन रहा था।

कुछ देर में रमेश उठकर गाँव की ओर बढ़ गया। कमल बैठा रहा। ईख की एक पतली छड़ी से जमीन कुरेदता हुआ अपने विचारों में खोया रहा। पहले तो सुधी ने कमल पर अविश्वास किया। अब नीलू की जिन्दगी चौपट कर रही है। बच्ची को सबक सिखाना होगा। वह क्या समझती है अपने को? कमल की नस-नस फड़क रही थी। ईख की छड़ी उसकी मुट्ठी में कसती जा रही थी।

सुधा आज शाम को ही अपनी माँ से कमल का आना मालूम कर सकी। आनन्द-विह्वल होकर कमल के घर दौड़ी आई। कमल को वहाँ नहीं पाकर कुछ निराश हुई। कमल के घर वाले भी उसकी जानकारी नहीं दे सके। सुधा ने अनुभव किया जैसे कमल का नाम सुनते ही उनके चेहरे उतर गये हों। बाहर

आने पर उसने रमेश को एक तरफ से आते देखा। सुधा के बिना पूछे ही उसने बता दिया कि कमल अपने ईख के खेत में है। सुधा झटकती हुई वहीं पहुँच गयी। लेकिन कमल को सामने देखते ही उसके पैर ठमक गए। हृदय की धड़कन तेज हो गई। स्कूल की शर्मनाक घटना, उसी दिन से कमल का कहीं भाग जाना, आदि बातों ने एकाएक उसे सहमा दिया। किसी तरह अपने मन पर काबू करती हुई धीरे-धीरे कमल के पीछे पहुँच गई। उधर कमल को उसके आने की तनिक भी भनक नहीं थी। वह दूसरी ओर मुँह करके अपने विचारों में उलझा हुआ था। सुधा को साहस नहीं हुआ कि वह कमल को पुकारे। बड़ी देर तक खड़े रहने पर भी कमल का ध्यान नहीं टूटा। तब शंकित हृदय से अपनी सारी शक्ति हाथ की उँगलियों में केन्द्रित करके उसने ईख की पत्तियों को धीरे से खड़खड़ाया।

कमल ने अकचकाकर अपने पीछे देखा। सुधा ने जैसे ही कमल की आँखों से अपनी सलज्ज आँखें मिलाईं, वह सिर से पैर तक काँप गई। क्यों, उसे स्वयं नहीं मालूम हो सका।

"अब फिर किसे फँसाने आई है तू? मुझे?" कमल की क्रुद्ध वाणी गूँज पड़ी। वह अचानक खड़ा होकर सुधा को तेज नजरों से देख रहा था।

सुधा ऐसे भीषण इन्टरव्यू के लिए तैयार होकर नहीं आयी थी। कमल की भयावह आकृति देखकर उसके होश उड़ गए। किसी तरह अपने को सँभालती हुई, काँपते स्वर में बोली, "तो मेरा क्या कसूर था?"

"शट-अप!" कमल न जाने किस अधिकार से गरज पड़ा, "चली जा मेरे सामने से! फिर कभी मुँह न दिखाना, नहीं तो .. शैतान!"

कमल दाँत पीसकर रह गया। उधर सुधा अपमानित होकर भी अपनी जगह से टस से मस नहीं हुई। हाँ, एक क्षण के लिए मन में विद्रोह और आक्रोश का भाव जरूर फूटा। फिर कमल के प्रति न जाने किस ममत्व ने उसके पैरों को आगे बढ़ने से रोक लिया।

"क्यों बे!" कमल के मुँह की बात और हाथ की ईख की छड़ी एक साथ ही चली। छड़ी सुधा के कन्धे पर चलाई गई थी। लेकिन निशाना चूक गया। छड़ी का अगला सिरा सुधा की दाहिनी आँख के कुछ ऊपर ललाट पर जाकर तड़ से बैठ रहा। देखते ही देखते उसके ललाट से टप-टप ताजा खून चूने लगा। सुधा जोर से रो पड़ी।

प्रताप अपने दरवाजे पर बैल को खूंटे से बाँध रहे थे। वहीं से उन्होंने कमल

को किसी पर छड़ी चलाते देख लिया था । इसके लगे बाद किसी लड़की के कंठ का रोना सुनकर वे दौड़ते हुए से खेत में पहुँचे । सुधा ने प्रताप का आना देख लिया । इससे घबड़ा कर वह चुप हो गई । अपने दुपट्टे से झटपट अपने चेहरे पर फैलते खून को पोंछने का असफल प्रयास भी करने लगी ।

प्रताप ने जब सुधा के रक्त-सिंचित मुख और दुपट्टे को देखा, उनके होश उड़ गए । उन्होंने आव देखा न ताव, कमल के हाथ से छड़ी छीनकर लगे उसी पर बजाने । कमल मानो इसके लिए पहले से ही तैयार खड़ा हो । छड़ी की बौछार पड़ती जा रही थी और वह चिल्लाता जा रहा था, "और मारिए--मार डालिए मुझे ! मैं मर जाना चाहता हूँ ।"

लेकिन इस तरह वह ज्यादा देर तक नहीं चिल्ला सका । प्रताप ने अपने होश आने पर देखा कि कमल बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा है । सुधा प्रताप के हाथ की टूटी छड़ी पकड़कर 'चाचा-चाचा' कहती हुई चिल्ला रही है । घबड़ाए हुए प्रताप ने छड़ी एक ओर फेंक दी । रोती हुई सुधा की ओर देखकर बड़े प्यार से बोले, ' बेटी !"

और उनकी आँखें भी वेग से भर आईं ।

सोलह

कमल कहीं भागा जा रहा है—कहाँ, उसे कुछ नहीं मालूम । आगे-पीछे बीहड़ जंगल । डरावनी आवाजें । वीरान रास्ते । कंटीली झाड़ियों को चीरता-फाड़ता भय से चिल्लाता हुआ वह बेतहाशा दौड़ा जा रहा है । मानो कोई हिंस्र पशु उसका पीछा कर रहा हो । वह उसके निर्मम चंगुल से बचने के लिए गिरता-पड़ता सरपट भागा जा रहा हो । अचानक एक कंटीली झाड़ी में उसके दुखते पैर बुरी तरह उलझ जाते हैं । वह मुँह के बल धड़ाम से नीचे गिर जाता है । दूसरे ही क्षण उसके मुँह से भय की चीख निकलती है और उसकी आँखें खुल जाती हैं ।

कमल ने आश्चर्य से अपने आस-पास देखा । न कोई जानवर है और न कोई जंगल ही । इसके बदले उसे घेरे हुए कई लोग खड़े हैं ।

"बेटा कमल !"

कमल ने आवाज आने वाली दिशा मे देखा–शैलबाला उसके चेहरे पर झुकी हुई उसे सजल नयन निहार रही है। कमल ने उठकर बैठना चाहा। लेकिन कोशिश करने पर भी उससे उठा नही जा सका। सारा शरीर अजीब थकान और पीडा से भरा हुआ था। अपनी असहाय अवस्था पर कुछ क्षणो तक कुछ नहीं समझ कर वह फटी आँखों से शैलबाला को घूरता रह गया। न जाने कैसे एकाएक उसकी आँखें भर आईं। अपने पास ही बैठी शैलबाला के आँचल में मुख छिपाकर सिसक पडा।

"चुप, चुप ! रोते नही बेटा ! तू तो बेकसूर है," शैलबाला कभी अपनी और कभी कमल की छलछलाई आँखो को पोंछती जा रही थी।

कमल और माँ को रोते देख पास खड़ी सुधा की आखों से भी आँसू झड़ने लगे थे। वहाँ खड़े दूसरे सभी लोगों की यही दशा हुई।

"तुम्हारे पिता को क्या कहा जाये बेटा," शैलबाला इस बार कुछ धीरज और सात्वना के स्वर में बोली, "सुधी को तो जरा-सी चोट आई थी ! बच्चो मे झगडा-फसाद होता ही रहता है। इसके लिए ऐसी निठुराई ?

बहुत सात्वना देने पर कमल चुप हो सका। अपने मुख को शैलबाला के आँचल से हटाकर उसने एक बार फिर आगन्तुको पर उडती हुई नजर डाली। अचानक सामने खड़ी सुधा की सजल आँखो से उसकी दृष्टि टकरा गई। सुधा की आँख के ऊपर एक छोटा-सा हरा घाव भी उसने देखा। कुछ देर पहले की सारी घटनाएँ उसके सामने चलचित्र की तरह नाच गईं। वह सुधा की उस मार्मिक दृष्टि को सह नही सका। झट से करवट बदलकर आँखे मूँद लीं।

× × × × ×

जब तक कमल पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो गया, शैलबाला उसके पास से नही हटी। रात-दिन उसकी घायल पीठ तथा दूसरे अंगों पर मरहम-पट्टी, मालिश आदि करने में जुटी रही। गीता ने हजार कहा कि वह स्वयं कमल की देखभाल कर लेंगी। लेकिन ममतामयी शैलबाला ने उनकी एक नही सुनी। कमल अपने जीवन मे कितना निराश्रित है, कितना पीड़ित और अकेला है, इसका सच्चा अनुभव यदि किसी को हुआ था तो शैलबाला को ही। वे जब तक कमल की सेवा में रही, कमल के परिवार के दूसरे सभी सदस्य उन्हें घेरे रहे। जैसे कमल के दुःखों को शैलबाला की तरह उन लोगों ने भी बाँट लिया हो। किन्तु शैलबाला की पैनी निगाह ने तुरत भाँप लिया कि असल में वहाँ कमल का हितैषी कोई

इसके लिए शैलबाला से कई बार माफी भी माँगी थी। किन्तु शारीरिक रूप से स्वस्थ हो जाने तथा शैलबाला की आँखों की ओट हो जाने पर उसने पाया कि सुधा के प्रति उसकी हृदय की आग जैसे राख में ही ढकी रह गई थी। वह अवसर पाकर पुनः उभरने लगी। उसके मन को बुरी तरह दग्ध करने लगी। कमल ने अपने मन को टटोलकर देखा। वह अब भी अपनी तथा नीलू की सजा के लिए सुधा को उत्तरदायी मानता है। इसके लिए वह उसे क्षमा नहीं कर सका है।....

साँझ की बुझती हुई किरणें आज सब दिनों से अधिक उदास और मलिन पड़ गई हैं। कमल अपने दरवाजे पर खड़े बरगद की जड़ के सहारे चिन्तामग्न खड़ा है। इस समय उसके इर्द-गिर्द कोई नहीं। केवल बरगद की झुकी हुई डाल पर दो-चार बगुले कहीं से आकर मौन भाव से बैठ गए हैं। पास ही चमटोली से औरतों के झगड़ने तथा गन्दी गालियों की भद्दी आवाज यहाँ भी पहुँच रही है। उसके मकान के भीतर कोनियाँ घर से जाँते पीसे जाने की घरर-घरर आवाज आ रही है। उसकी चाची के सुरीले जँतसार में मिल-जुलकर आवाज हवा में एक अजीब विरक्ति और उदासी लुटा रही —

"जो हम जनिती सौदागर, तुहूँ बड़ छलिया
बाबा के हवेलिया नाही छोड़ती नू रे की!*

बाहर की इस सारी कुरूपता और उदासी के बीच खड़े कमल का मन आज अन्दर से किसी नई शक्ति का बोध कर रहा है। नये निश्चय के संचार से उसका अंग-अंग स्फूर्त लग रहा है। सुनैना अपने बच्चों को लेकर गाँव के काली मन्दिर में पूजा करने गई है। प्रताप अभी तक मंडी से वापस नहीं आए हैं। कमल जब तब अपनी जेब में पड़ी एक पुरानी जंग-लगी चाबी को छूता है। फिर घबड़ाकर जेब से हाथ खींच लेता है। जैसे चाबी ने उसकी उंगलियों को बिंध लिया हो। बड़ी देर तक मन से जूझने के बाद वह चाबी निकालकर अपनी काँपती हुई, पसीने से भरी तलहथी पर रखता है। कुछ देर तक उसे अविश्वास की नजरों से घूरता रहता है। अन्त में उसे अपनी मुट्ठी में दबाए सधे पाँव घर के भीतर चल देता है। वहाँ आँगन में कोई नहीं दिखता। भीतर घर में से आती हुई फूला के जाँते की घरर-घरर आवाज [illegible] की आँधी के [illegible] एकाकार हो जाती है। सामने सुनैना के घर का [illegible]

---

* "हे सौदागर, यदि मैं जान पाती कि [illegible] छली [illegible] अपने पिता का घर छोड़" (तुम्हारे साथ भाग [illegible]

आने का मौन निमन्त्रण दे रहा है। वह दबे पाँव उसी घर में घुस जाता है। खिड़कियों की कमी से कच्ची मिट्टी के बने उस छोटे से घर में अभी ही काफी अन्धेरा छा गया है। कमल सुनैना की अल्कतरे से रंगी काली संदूकची के सामने जाकर खड़ा हो जाता है। काली मन्दिर जाते समय सुनैना ने गलती से अपनी चाबी संदूकची पर ही छोड़ दी थी। कमल के हाथ में वह चाबी क्या आ गई, नये जीवन में प्रवेश करने का मूलमन्त्र ही मिल गया। आज तक वह दो ही चीजों से सबसे अधिक डरता रहा है—साँपों से और चोरों से। किन्तु आज खुद ही जीवन में पहली बार वह हठात् चोर की भूमिका में उतर रहा है। सिद्ध कर देना चाहता है कि चोरी दुनिया का सबसे आसान काम है। साहसी होने का चाहे वह जितना स्वाँग रचे, उसका शरीर अब तक पसीने से लथ-पथ हो चुका है। हाथ और पैर इस तरह काँप रहे हैं, मानो उन पर उसके झूठे साहस का कोई वश नहीं चल रहा हो।

कमल किसी तरह अपनी सारी शक्तियों को उँगलियों में बटोरकर ताला खोलता है। संदूकची के मुँह का पल्ला हटाते समय कुछ आवाज हो ही जाती है। उस आवाज के साथ ही कमल की छाती जोरों से धड़क उठती है। कुछ देर तक वह निस्पन्द साँस रोककर सोचता रहता है। जैसे दूसरे ही क्षण उसे पकड़ने के लिए कोई आया ही चाहता है। कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कोई नहीं आता, वह चैन की साँस लेता है। साहसपूर्वक संदूकची में हाथ लगाता है। कुछ देर अंधेरे में टटोलने के बाद मूँज के छिलके की बुनी हुई एक पुरानी 'पौती' उसके हाथ लग जाती है। सुनैना उसी में अपने रुपये-पैसे रखती है। यह कमल पहले कई बार देख चुका है। इतनी आसानी से इष्ट वस्तु मिल जाने के बाद अब उसके काँपते हाथों में बिजली की फुर्ती दौड़ जाती है। वह अपनी उँगलियों में जैसे-तैसे कागज के कुछ बिखरे टुकड़ों को नोट समझ कर समेट लेता है। उन्हें झटपट जेब में डाल लेता है। सन्दूकची को आहिस्ते उसी तरह बन्द करके एक बार फिर बाहर की आहट लेता है। शायद इस समय अपने पकड़े जाने या पिटने की उसे उतनी चिन्ता नहीं जितनी अपनी स्वप्नमयी यात्रा के भंग हो जाने से है। वह फिर दबे पाँव पेशेवर चोर की तरह कमरे से बाहर आँगन में आता है। अब तक फूआ के जाँते की आवाज बुझ गई है। आँगन में बिखरे बटखरे, सिलवट, मूसल, बर्तन आदि कमल को एक अजीब रहस्यमयी दृष्टि से घूरते हुए प्रतीत होते हैं। सौभाग्य से उस समय वहाँ दूसरा कोई नहीं। किन्तु जैसे परिवार के सभी सदस्य अपने-अपने घरों में छिपकर कमल की ओर झाँक रहे हैं। उसे विस्फारित नेत्रों से घूर रहे हैं। कमल के लिए जैसे उस अजनबी

भाषा ढूंढ़ता रह गया। इसी बीच कमल उससे दूर सरक गया। गाँव की सीमा पार करते ही उसके आगे परिचित-अपरिचित रास्ते, खुले सपाट मैदान और खेतों के हरे-भरे अंचल दिखने लगे। साँझ के गहराते धुँधलके में वे अपनी इकाइयाँ खोते जा रहे थे। गाँव के पार आकर कमल ने जो रास्ता पकडा, वह सीधे स्टेशन को चला जाता था। कमल कई बार इस रास्ते से स्टेशन आया-गया है। थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही गाड़ी की लाइन आ गई। अब इस लाइन को पकड़कर सीधे स्टेशन पहुँचा जा सकता था। कमल तेजी से आगे बढ़ा जा रहा था। कभी-कभी शंकित दृष्टि से पीछे मुड़कर देख लेता। जैसे अब भी कोई उसका पीछा कर रहा हो। अचानक लाइन के एक किनारे सामने आते हुए एक कुत्ते पर उसकी नजर पड़ी। कुत्ता उसके पास आकर प्यार से दुम हिलाने लगा। उसके पैरों को सूंघने लगा। कमल को उसे पहचानते देर नही लगी। वह सुधा का प्यारा कुत्ता था जिसे वह प्यार से 'कित्तू' कहा करती थी। अपने सामने अप्रत्याशित रूप से आए कित्तू को देखकर कमल को जहाँ कुतूहल हुआ, वहीं करुणा भी उमड आयी। उसने थोडी देर रुककर कुत्ते को प्यार किया। उसकी पीठ थपथपाई। उसे घर लौट जाने का संकेत दिया। किन्तु कित्तू इस प्यार का प्रतिदान लौट कर नही देना चाहता था। वह कमल के पैरों पर लोटने-पोटने लगा। उसके इस आत्म-समर्पण में न जाने दूर छूटी जाती प्रीति की कौन-सी परवशता थी। किसी की मूक वेदना या बेजबान शिकायत की कौन सी संवेदना थी। कमल समझकर भी कुछ नही जान सका। किसी बिछुड़ते बन्धु की तरह कुछ क्षणों तक स्नेह से कित्तू को सहलाता रहा। जैसे-तैसे उससे पिंड छुड़ाकर स्टेशन की ओर भागा। डिस्ट्रिक्ट सिगनल पार करते ही उसे कोई गाडी स्टेशन पर खड़ी दिखाई दी। उसने दूने जोर से रास्ते के बिखरे पत्थरों और रोड़ों को अपने नंगे पैरों से लाँघते हुए दौड़ना शुरू कर दिया। दौड़ने के जोश में उसे पता नहीं चला कि उसके पैरों के तलवे कई जगह क्षत-विक्षत हो गए हैं। प्लेटफार्म तक आते-आते गाडी ने सीटी दे दी। कमल ने अपने उखडे हुए पैरों को किसी तरह एक डब्बे के पावदान पर रोपा। गाडी झक-झक साँय-सू करती हुई खुल गई। पावदान पर खडे हाँफते हुए कमल को लगा जैसे न केवल वह स्वयं, बल्कि ट्रेन के साथ भागती हुई सारी दुनिया अस्तित्वहीन हो गई है। वह खुद किसी गतिशील ज्वालामुखी का पिघला टुकड़ा मात्र है जिसे समय ने किसी आधार-हीन अन्ध गली में उलीच दिया है।

आँगन में भूतों की परछाइयाँ नाचती हुई नजर आ रही हैं। वह अपने फुर्तीले पैरों के नीचे इन अट्टहास करती हुई परछाइयों को रौंदता हुआ तेजी से दरवाजे पर आ जाता है। अब तक बेतरह हाँफने लगा है। कुछ देर दरवाजे के कोने में खड़ा होकर अपनी साँसों पर नियन्त्रण करना चाहता है। मानो उसकी छाती की धड़कनों से वहाँ का वातावरण गूँज रहा हो। थोड़ी देर बाद मन-ही-मन अपने घर को प्रणाम करके तेजी से गाँव के पश्चिम चल देता है।

सन्ध्या का झुटपुटा हल्के अँधेरे में बदल चुका है। आकाश में पक्षियों के झुंड सरसराते हुए अपने रैन बसेरे की ओर उड़े जा रहे हैं। कमल अपने पूर्व निश्चय के अनुसार नीलू के घर की ओर चल देता है। रास्ते में ही सुधा का घर पड़ता है। किन्तु वह जान-बूझकर उस रास्ते को छोड़ देता है और एक पतली पगडंडी से नीलू से मिलने चल देता है। इस पगडंडी से भी सुधा का घर कुछ दूरी पर दिख रहा है। कमल कुछ क्षणों तक उसे एकटक निहारता रहता है। उसे उस घर से अब तक प्यार, ममता, सहानुभूति और स्नेह अनायास ही प्राप्त होते आए थे। आज, विदा की इस बेला में, वे सब के सब उसके हृदय में कुछ समय के लिए अदम्य ज्वार बनकर उग आते हैं। निश्चय ही सुधा ने उसे समझने में भूल की है। किन्तु इस समय वह उसे क्षमा कर देता है। अन्तर का उफनता हुआ ज्वार उसकी छलकती पलकों और काँपते होठों की राह बाहर आता है। वह खड़ा-खड़ा अपनी दोनों तलहथियों से आँखें मूँद कर सिसक पड़ता है। :. 'सुधा ! ओ सुधा ! अपने इस नासमझ अकिंचन साथी को क्षमा कर देना'— न जाने वह कब तक बरसाती आँखों से अपने प्राणों का मूक सर्वस्व विसर्जित करता रहता है। कुछ देर में उसकी तन्द्रा भंग होती है। उसे अपने समय और गन्तव्य का ध्यान आता है। जैसे-तैसे सुधा की ओर से अपने मन को खींचकर भागता हुआ-सा नीलू के घर चल देता है।

सौभाग्य से नीलू अपने दरवाजे पर ही मिल गया। कमल ने इशारे से उसे अपने पास बुलाया। उस समय कमल को उखड़े वेश और मुद्रा में आया देख नीलू को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ सहमता और डरा हुआ-सा कमल के निकट गया। उसके कुछ पूछने के पहले ही कमल ने अपनी जेब में हाथ डाला। बिना अधिक टटोले ही उसके हाथ में दस-दस के दो नोट आ गए। उन्हें नीलू को थमाता हुआ सहज स्वर में बोला, "रखो नीलू। कल स्कूल जाकर अपना फाइन चुकता कर देना। मैं लज्जित हूँ कि मेरे कारण तुम्हें तकलीफ हुई। पढ़ना कभी मत छोड़ना। मुझे जल्दी है। मेरी कसम जो तुम इन रुपयों को लौटाओ!"

कृतज्ञता और संकोच से भरा हुआ नीलू का अपराधी मन आत्माभिव्यक्ति की

भापा ढूढता रह गया। इसी बीच कमल उससे दूर सरक गया। गाँव की सीमा पार करते ही उसके आगे परिचित-अपरिचित रास्ते, खुले सपाट मैदान और खेतों के हरे-भरे अंचल दिखने लगे। साँझ के गहराते धुँधलके में वे अपनी इकाइयाँ खोते जा रहे थे। गाँव के पार आकर कमल ने जो रास्ता पकड़ा, वह सीधे स्टेशन को चला जाता था। कमल कई बार इस रास्ते से स्टेशन आया-गया है। थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही गाड़ी की लाइन आ गई। अब इस लाइन को पकड़कर सीधे स्टेशन पहुँचा जा सकता था। कमल तेजी से आगे बढा जा रहा था। कभी-कभी शंकित दृष्टि से पीछे मुड़कर देख लेता। जैसे अब भी कोई उसका पीछा कर रहा हो। अचानक लाइन के एक किनारे सामने आते हुए एक कुत्ते पर उसकी नजर पड़ी। कुत्ता उसके पास आकर प्यार से दुम हिलाने लगा। उसके पैरों को सूंघने लगा। कमल को उसे पहचानते देर नही लगी। वह सुधा का प्यारा कुत्ता था जिसे वह प्यार से 'कित्तू' कहा करती थी। अपने सामने अप्रत्याशित रूप से आए कित्तू को देखकर कमल को जहाँ कुतूहल हुआ, वहीं करुणा भी उमड आयी। उसने थोड़ी देर रुककर कुत्ते को प्यार किया। उसकी पीठ थपथपाई। उसे घर लौट जाने का संकेत दिया। किन्तु कित्तू इस प्यार का प्रतिदान लौट कर नहीं देना चाहता था। वह कमल के पैरों पर लोटने-पोटने लगा। उसके इस आत्म-समर्पण में न जाने दूर छूटी जाती प्रीति की कौन-सी परवशता थी। किसी की मूक वेदना या बेजबान शिकायत की कौन सी संवेदना थी। कमल समझकर भी कुछ नही जान सका। किसी बिछुड़ते बन्धु की तरह कुछ क्षणों तक स्नेह से कित्तू को सहलाता रहा। जैसे-तैसे उससे पिंड छुड़ाकर स्टेशन की ओर भागा। डिस्ट्रिक्ट सिगनल पार करते ही उसे कोई गाड़ी स्टेशन पर खड़ी दिखाई दी। उसने दूने जोर से रास्ते के बिखरे पत्थरों और रोड़ों को अपने नंगे पैरों से लाँघते हुए दौड़ना शुरू कर दिया। दौड़ने के जोश में उसे पता नहीं चला कि उसके पैरों के तलवे कई जगह क्षत-विक्षत हो गए हैं। प्लेटफार्म तक आते-आते गाड़ी ने सीटी दे दी। कमल ने अपने उखड़े हुए पैरों को किसी तरह एक डब्बे के पावदान पर रोपा। गाडी झक-झक साँय-सू करती हुई खुल गई। पावदान पर खड़े हाँफते हुए कमल को लगा जैसे न केवल वह स्वयं, बल्कि ट्रेन के साथ भागती हुई सारी दुनिया अस्तित्वहीन हो गई है। वह खुद किसी गतिशील ज्वालामुखी का पिघला टुकड़ा मात्र है जिसे समय ने किसी आधार-हीन अन्ध गली में उलीच दिया है।

———

द्वितीय खण्ड

धरातल और प्रवाह

एक

समय के नील पंख न जाने कितनी उडान भर चुके। क्षण-क्षण बदलता जन-जीवन और समाज कहाँ से कहाँ आगे सरक गया। भौतिक परिवर्तनों के बीच कुछ ऐसे भी परिवर्तन हुए जिनका सम्बन्ध विनोद और शोभा के जीवन से था। इन परिवर्तनों की दिशा कुछ तो पहले से ही ज्ञात और कुछ अज्ञात थी। राय साहब का जो विनोद आज से कुछ वर्ष पहले नटखट और शरारती बालक था, वह अब अपने कालेज का तरुण होनहार छात्र है। यह दूसरी बात है कि वह अपनी बुद्धि का सही उपयोग अब तक नही कर पाया है। धनी परिवार की एकमात्र सन्तान होने तथा विरासत के रूप मे सामन्ती जीवन की सुख-सुविधाएं अनायास प्राप्त करते रहने के कारण उसे आज तक किसी आर्थिक संकट का सामना नही करना पड़ा है। मुंह माँगे पैसे शुरू से ही मिलते रहे हैं। आर्थिक निश्चिन्तता ने उसके चरित्र में भोग और विलास की लिप्सा भर दी है। शायद वही उसके बौद्धिक विकास की सबसे बड़ी रुकावट है। पटने के सेंटजेवियर्स स्कूल से सीनियर कैम्ब्रिज पास करके इस समय वह पटना कालेज का छात्र है। सेंट-जेवियर्स में पढ़ने, अंग्रेज शिक्षकों के बीच रहने तथा वहाँ के छात्रावास मे लम्बे समय तक रह जाने के कारण उसकी प्रकृति, वेश-भूषा तथा ज्ञान मे अंग्रेजियत की स्पष्ट झलक है। सेंटजेवियर्स ने उसके ज्ञान को कौन-सा स्तर प्रदान किया, यह कहना कठिन है। किन्तु उसने विनोद को सलीके से रहने की कला सिखाई है। इसमें दो मत नही हो सकते। आज तक किसी ने यह नही देखा कि विनोद की टाई, कमीज या पतलून की क्रीज कभी टूटी हो। उसका वस्त्र कभी मलिन हुआ हो। उससे कलात्मक अभिरुचि का परिचय नहीं मिलता हो। अधुनातन फैशन के अनुरूप ही विनोद का व्यक्तित्व भी काफी प्रभावशाली बनकर प्रकट होने लगा है। वह सिर से पैर तक स्वस्थ दिखता है। एक सहज रूपगत प्रखरता से युक्त है। रायसाहब स्वयं पुराने विचारों के आदमी हैं। किन्तु बेटे को अंग्रेज साहब के रूप ं सजे-धजे देखकर उनकी अन्तरात्मा अघा जाती है। आज भी वे जब कभी अपने राने अफसर मित्रों से मिलने जाते हैं, विनोद को ले जाना कभी नही भूलते। ऐसे वसरों पर विनोद पुत्र से अधिक अपने पिता के रोबीले व्यक्तित्व का अलंकरण

बनकर प्रकट होता है । अफसरों के साथ विनोद को फर्राटे से अंग्रेजी जबान में बोलते देख उनका हृदय जुड़ा जाता है । मन खुशी से नाच उठता है ।

पिछले कुछ समय से शोभा भी पटना वीमेन्स कालेज की छात्रा है । शोभा के दिवंगत पिता पटना हाईकोर्ट के नामी एडवोकेट थे । कुछ समय तक पटने में उनके आगे दूसरे लोगों की प्रैक्टिस फीकी हो गई थी । अपनी कमाई से उन्होंने पटने के कदमकुआँ मुहल्ले में आलीशान बंगला बनवाया । तब वे उसी बंगले में सपरिवार रहते थे । शोभा का जन्म उसी मकान में हुआ था । पति की मृत्यु होने के बाद निर्मला अपनी बच्ची शोभा को लेकर कुछ दिनों के लिए अपने मायके चली गईं । वहाँ से पुनः वे अपने पति के पैतृक मकान में सोनपुर आ गईं । घर की गृहस्थी का प्रसार काफी बड़ा था । बूढ़ी सास के सिवा उसको देख-भाल करने वाला कोई दूसरा नहीं था । निर्मला ने इस टूटी हुई गृहस्थी को एक कुशल गृहिणी की तरह फिर से जोड़ना शुरू किया । कुछ ही दिनों में उनके कुशल निर्देशन में घर की रौनक ही बदल गई । पति को खो देने के बाद अपनी लाड़ली बच्ची के भविष्य के प्रति आस्था ही निर्मला की शक्ति बन गई । उसका खाली मन शोभा के सुनहले भविष्य के ताने-बाने से अपना संसार बसाता । अपनी व्यक्तिगत चिन्ताओं को इन्हीं सपनों में विलीन कर देता । पति के दिवंगत हो जाने के बाद पटने की हवा और जमीन मानो उन्हें काट खाने को दौड़ पड़ती थी । इसीलिए बहुत समय तक वह पटने से विमुख रह गईं । इस बीच कदमकुआँ की विशाल इमारत किराये पर चलती रही । शोभा की आरम्भिक पढ़ाई-लिखाई सोनपुर में ही हुई ।

आज से कुछ वर्ष पहले अपने पुत्र के करुण वियोग में भीतर ही भीतर घुलती हुई सास भी स्वर्ग सिधार गईं । निर्मला का मन सोनपुर वाले घर से भी उचट गया । पति ने उनके नाम बैंक में इतने रुपये जमा कर दिये थे जिनके सूद से ही माँ-बेटी का ठाट से गुजारा हो सकता था । घर की जायदाद थी सो अलग । अतः शोभा को उच्च शिक्षा के लिए तथा अपने उचटे हुए मन को बहलाने के लिए भी निर्मला ने फिर पटने में रहना ही अच्छा समझा । उनके विश्वासी नौकर जीतन की मदद से गृहस्थी का भार गाँव के कुछ मजदूरों पर सौंप दिया गया । घर में ताला लग गया । निर्मला जीतन, अपनी दाई सुखिया और शोभा को साथ लेकर पटने आ गईं । इतने दिनों में बंगला उजाड़-सा हो चला था । उसके नवीकरण में कुछ समय लग गया । किन्तु निर्मला की कुशल देख-रेख में घर की सजावट पहले से भी अधिक निखर गई । आगे के खुले हुए

विस्तृत प्रांगण में यथास्थान देशी-विदेशी अनेक फूल, पौधे तथा लताएँ लगा दी गई । निर्मला स्वयं अपने सामने इन पौधों की नियमित सिंचाई करातीं ।

अपने घर से विदा होते समय ही निर्मला ने रायसाहब को पत्र लिखा। उसमें अपने जीवन की इस नई योजना की चर्चा कर दी । पटने आने के बाद भी दोनों के बीच कई बार पत्र-व्यवहार हो चुका था। रायसाहब स्वयं भी आकर निर्मला की नई गृहस्थी देख गए थे। उसके लिए अपने सुझाव भी यदा-कदा देते रहे थे। निमला ने उनसे बार-बार आग्रह किया था कि विनोद को छात्रावास से हटाकर उन्हीं के डेरे पर कर दिया जाये। रायसाहब का अन्तर्मन तो यहद चाहता ही था। फलतः सेंटजेवियर्स का कोर्स पूरा हो जाने के बाद जब विनो पटना कालेज में आ गया तो उसके रहने और पढने की व्यवस्था निर्मला के बंगले में ही कर दी गई। रायसाहब निर्मला को किसी बात पर नाखुश करना नहीं चाहते थे। उन्हे शोभा के लिए जितनी कामना नहीं थी उतना निर्मला के ऐश्वर्य के लिए लालच था। वे दोनों परिवारों के बीच चल रहे वर्षों के सद्भाव के नाम पर किसी न किसी उपाय से निर्मला की अपार सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लेना चाहते थे। उन्हें भय था तो एक ही बात का। निर्मला शोभा को ऊंची शिक्षा दिलाना चाहती थी। किन्तु रायसाहब लडकियों की अधिक पढाई-लिखाई के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि अधिक पढ-लिखकर लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। उन्हें सर्विस तो करनी है नहीं। अतः साधारण अक्षर-ज्ञान उनके लिए काफी है। लेकिन कई बार चाहकर भी वे अपनी इस दलील को निर्मला के गले नहीं उतार सके। वे जानते थे कि निर्मला अपने इरादे की पक्की है। वे उनके मन पर किसी बात को लेकर आघात नहीं देना चाहते थे। निर्मला ने स्त्री-शिक्षा तथा स्त्री-स्वातंत्र्य की भावना को अपने स्वर्गीय पति से ही विरासत के रूप में पाया था। प्रगतिशील कुमार बाबू तथा रूढ़िवादी रायसाहब में ऐसे कई सामाजिक मुद्दों पर कई बार बहस छिड़ जाती थी। पास खड़ी निर्मला दोनों की बहस सुन-सुनकर केवल मुस्का दिया करती थी। कुमार बाबू की उत्कट अभिलाषा थी कि वे अपनी पुत्री को ऊँची से ऊँची शिक्षा देकर योग्य नागरिक बनायेंगे। अपने इस स्वप्न को साकार देखने के लिए वे स्वयं तो रहे नहीं। हाँ, निर्मला ने अपने पति के अधूरे स्वप्नों को पूरा कर लेने का व्रत ले लिया है। शोभा की पढ़ाई के लिए वे कोई भी त्याग करने को सहर्ष तैयार हैं।

जब विनोद के रहने की व्यवस्था निर्मला के बंगले पर ही हो गई तो इससे रायसाहब को सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई। कालेज में नाम लिखाने रायसाहब

स्वयं आये थे। लगभग एक सप्ताह तक अपने पुराने मित्र के आवास पर ठहरे रहे। विनोद के आराम, सुविधा तथा पढ़ाई-लिखाई की उचित व्यवस्था करके तथा उसकी पूरी जिम्मेवारी निर्मला को सौंप कर वे स्वयं घर चले गए।

सेन्टजेवियर्स के छात्रावास में विनोद एक लम्बे अरसे तक बाहरी दुनिया से कटा हुआ-सा रह गया था। यों जब तब सिनेमा देखने या देश के दर्शनीय भागों में परिभ्रमण करने की छूट मिलती थी। लेकिन यह मुक्तता भी वैसी नहीं होती थी जो विनोद की आत्मनिष्ठा की परिधि को तोड़ पाती। छुट्टियों के दिन प्रायः निर्मला उससे मिलने छात्रावास में जाया करती। कभी-कभी उनके साथ शोभा भी होती। ऐसे क्षणों में शोभा का दब्बूपन कुछ ऐसा होता जिसकी दीवार विनोद चाहकर भी तोड़ नहीं पाया। शोभा से यदा-कदा मिलते रहने पर भी बढ़ती हुई उम्र के साथ शोभा के प्रति विनोद का अपरिचय बढ़ता ही गया। बचपन के दिन पीछे छूट चुके थे। दोनों अपने पाँव अनजाने ही तरुणाई की दहलीज पर रोप चुके थे। इस संक्रमणकाल की भावुकता और आत्मकेन्द्रित चेतना दोनों के बीच दीवार बनाती जा रही थी। वे अब भी एक दूसरे को बचपन की आँखों से ही परखना चाहते थे। किन्तु उन्हें क्या पता कि दोनों ही अपने अन्दर और बाहर पहले की अपेक्षा कितना बदल चुके हैं।

जब से विनोद शोभा के घर रहने लगा था, वह स्वभावतः ही उसके प्रति अधिकाधिक आकर्षण का बोध करने लगा। यहाँ आकर उसने पहली बार महसूस किया जैसे उसने शोभा को पहले कभी देखा ही न हो। शोभा की चाल-ढाल, रूप-रंग, लज्जा-संकोच एवं शालीनता में अजनबीपन का गहरा रंग घुल गया था। यह सब विनोद के लिए जितना ही नवीन था, उतना ही काम्य। तब और अब की शोभा में सामंजस्य लाने वाली यदि कोई चीज रह गई थी तो वह थी उसकी मन्द-मधुर मुस्कान। जब भी मुस्काती, आज से कई वर्ष पहले की शोभा की सरल-स्वच्छ मुस्कान की याद दिला जाती। बीते हुए वर्षों ने बालिका शोभा को जैसे एक नये साँचे में ढालकर उसका एक नवीन और मधुर संस्करण तैयार कर दिया था। पहले वह स्कर्ट पहनती थी। अब अधुनातन फैशन की साड़ी पहनती है। पहले छरहरी और छोटी थी। अब उसके अंग भर चले हैं। विविध अंगों के सुडौल आकार तरुणाई के मादक रंगों में कसे हुए हैं। वाणी और स्वभाव की चंचलता एक सहज गम्भीरता में बदल गई है। लम्बे नागिन से झूमते केशों की गुम्फन-कला तथा बोल-चाल के ढंग से भी नई उम्र की मोहकता टपकने लगी है। जब तक रायसाहब निर्मला के घर रहे, विनोद को इतना अवकाश नहीं मिल पाया कि शोभा को ठीक से देख भी सके। शोभा भी उससे खिंची-

खिंची ही रही। किन्तु अपने पिता के घर चले जाने के बाद विनोद ने जैसे मुक्ति की साँस ली। कालेज जाने से पहले या वहाँ से आने के बाद उसकी बराबर यही कोशिश रहती कि वह शोभा से मिल सके। उससे एकान्त में दो बातें कर सके।

विनोद के रहने के लिए जो सजी-सजाई कोठरी दी गई थी वह बंगले के बाहरी बरामदे के दाहिनी ओर पड़ती थी। प्रशस्त कोठरी के एक कोने में विनोद के सोने के लिए गद्देदार पलंग बिछा था। स्टील की दो आलमारियों में उसकी पुस्तकें सजी-सजाई रखी थीं। एक तरफ एक सुन्दर टेबुल के दोनों ओर दो कुर्सियाँ और उनसे हटकर कुछ दूरी पर एक स्प्रिंगदार आराम कुर्सी भी रखी थी। निर्मला और शोभा का शयन-कक्ष बंगले के ऊपरी तल्ले पर था। शीतल को आदेश था कि वह रात में विनोद के दरवाजे के सामने सोया करे। विनोद को बँगले के किसी भी कोने में आने जाने की पूरी छूट थी। किन्तु कुछ दिनों तक संकोच के कारण वह अपने कमरे में ही कैद बना रहा। भीतर तभी जाता जब निर्मला उसे किसी काम से अपने पास बुलाती। धीरे-धीरे बंगले का परिवेश विनोद के लिए अनुकूल और सहज होता गया। वह अब बिन बुलाए भी बंगले के भीतर चला जाता। निर्मला या शोभा से दो-चार बातें कर आता। लेकिन अभी भी उसे कोई ऐसा अवसर नहीं मिल पाया था कि वह एकान्त में शोभा से जी भर कर बातें कर सके। शोभा कभी-कभी कालेज से आते-जाते विनोद की कोठरी के ठीक सामने बरामदे से गुजरती हुई दिखती। किन्तु सामने विनोद को देखकर भी वह अनदेखा कर देती। सिर लटकाये आगे बढ़ जाती।

दूसरे समय यदि वह कभी-कभार बाहर निकलती तो उसके साथ अक्सर उसकी माँ होती। कभी-कभी उसके साथ उसकी कोई सहेली भी दिखाई पड़ जाती। कुछ समय बाद निर्मला की नजरों ने भी भाँप लिया कि शोभा विनोद से कतराती है। कई बार उन्होंने दोनों के सामने उनकी बचपन की दोस्ती के नाम पर कुछ मीठी चुटकियाँ भी ली। शायद ऐसा करके वे दोनों को एक दूसरे की ओर खींचना चाहती थी। इन चुटकियों से शोभा के मन में गुदगुदी जरूर पैदा होती थी। किन्तु विनोद के प्रति उसके संकोच का पर्दा टूट नहीं पाया।

एक दिन विनोद तड़के ही जग कर पलंग पर लेटा-लेटा टॉमस हार्डी का 'दि वुड लैंडर्स' पढ़ रहा था। किन्तु उपन्यास में उसका मन रम नहीं पा रहा था। उस समय उसके मन-प्राणों में न जाने कैसे शोभा की रंगीन कल्पना तिरने लगी थी। उसके कारण विनोद को जैसे उपन्यास के अक्षर दिखाई ही नहीं पड़ रहे थे।

विनोद भीतर डाइनिंग हॉल में निर्मला और शोभा के साथ ही भोजन करता था। किन्तु उसकी चाय या नाश्ता लेकर जीवन या सुखिया अक्सर उसकी कोठरी में ही आ जाते। कभी-कभी निर्मला खुद उसे चाय पिला जाती, आज टेबुल पर प्याले की खनक से विनोद का उलझा हुआ ध्यान टूट गया। देखा, शोभा टेबुल पर चाय रखकर बिना कुछ बोले कमरे से बाहर निकली जा रही है। विनोद ने प्यार भरी आवाज में पुकारा, "शोभा!"

शोभा अब तक खुले दरवाजे के झीने पर्दे तक बढ़ चुकी थी। आवाज सुनकर अपनी पीठ विनोद की ओर करके खड़ा की खड़ी रह गई।

"तुम मुझसे नाराज तो नहीं हो?"

"मैं नाराज क्यों होऊँगी?"

जब तक विनोद कुछ और बोले, शोभा सामने झूलते रेशमी पर्दे को हल्का-सा झटका देती हुई कमरे के बाहर हो गयी।

अपने पलंग पर अधलेटा विनोद अब तक उठ बैठा था। उस अप्रत्याशित ढंग से शोभा के आने और चले जाने से कुछ क्षणों तक उसका मन विस्मित बना रह गया। लगा जैसे शोभा किसी सपने में उसकी कोठरी में आई हो। पलकें खुलते ही विलीन हो गई हो। विनोद ने पहली बार लक्ष्य किया कि शोभा का यह संकोच वस्तुतः विनोद के प्रति उसकी किसी उदासीनता को ही प्रकट करता है। इस उदासीनता का कोई अर्थ वह निकाल नहीं पा रहा था। उसे आज पहली बार लगा जैसे शोभा की इस बेरुखी से उसके मन को कहीं ठेस पहुँची है। वह अपमानित हुआ है। इस अपमान के कड़वे घूँट शायद वह अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। निकट भविष्य में ही उसे या तो यह आवास छोड़ देना होगा, या शोभा, को ही उससे ऐसे बुरे व्यवहारों के लिए माफी माँगनी होगी विचार के इस बिन्दु तक आते ही विनोद का मन तनाव से भर गया। अपने सिर के भारीपन को मिटाने के लिए वह बाहर की खुली हवा में कुछ देर तक टहलता रहा। अब तक आश्विन के सूरज की बाल किरणें बाहर प्रांगण के लता-गुल्मों की ओस-भीनी पत्तियों को दुलराने लगी थी। कुछ देर टहलने के बाद विनोद का मन कुछ स्वस्थ हुआ। वह पुनः कुछ निश्चय करके अपने कमरे में लौट आया। आज रविवार था। कालेज बन्द होने से दिन भर के लिए छुट्टी थी। आज के दिन विनोद प्रायः मैटिनी शो में कोई न कोई अंग्रेजी पिक्चर देखा करता था। अभी इतना सवेरे कहाँ जाये, इसका निश्चय वह नहीं कर पा रहा था। दूसरी ओर इस कोठरी का वातावरण उसके लिए बोझिल हो रहा था। इससे वह

जल्दी ही छुटकारा पाना चाहता था। कुछ देर तक अनिश्चय की यही स्थिति रही। सामने मेज पर रखी चाय ठंडी पड़ चुकी थी। विनोद ने एक बार उसे उपेक्षा भरी नजरों से देखा। जैसे वह उसके स्वत्व को चुनौती देती हुई मेज पर विराजमान हो। यों आज जो कुछ हुआ, वह कुछ असंभावित था। प्रायः सुबह में उसकी चाय लेकर जीतन या सुखिया या कभी-कभी स्वयं निर्मला आ जाती थी। आज यह पहला अवसर था जब उसके कमरे में खुद शोभा चाय देने आई हो। इस असंभावित स्थिति पर अधिक देर तक वह अपने मन को टिका नहीं सका। उसके मन में अपने अपमान की बात तीखे विष की तरह व्यापती जा रही थी। उसने सोच लिया कि अभी ही कहीं बाहर निकल जाना है। संभव है, इससे उसके मन को कुछ राहत मिल सके।

वह बाहर निकलने के लिए कुछ जरूरी कपड़े पहन ही रहा था कि सामने कमरे में जीतन आता दिख पड़ा। आते ही उसने विनीत शब्दों में कहा, "बेबी पूछती हैं कि आज छुट्टी के दिन लंच में क्या लेना पसन्द करेंगे ?"

अभी के मूड में विनोद को यह नया प्रश्न और भी अखरा। तिस पर 'बेबी' के नामोच्चारण ने आग में घी का काम किया। चिढ़कर बोला, "तुम्हारी बेबी का मैं सर्वेण्ट नहीं हूँ कि उनके हर सवाल का जवाब दूँ। जाकर कह आओ !"

बेचारा जीतन इस उत्तर से भौंचक-सा रह गया। विनोद की लाल-पीली दृष्टि के सामने उसे कुछ दुबारा पूछने की हिम्मत नहीं हुई। उलटे पाँव लौटकर उसने शोभा से विनोद का जवाब कह सुनाया। सुनकर शोभा पहले कुछ मुस्काई। फिर खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रही। आज तड़के ही उसकी माँ अपनी एक पड़ोसिन के आग्रह पर ड्राइवर और सुखिया को लिये पटनदेवी के दर्शन करने चली गई थी। जाते वक्त शोभा को कहती गई थी कि उनके वापस आने में कुछ देर हो सकती है। अतः विनोद के खाने-पीने का भार आज उसी पर रहेगा। शोभा ने भी अपनी माँ का साथ देना चाहा था। किन्तु निर्मला इसी उद्देश्य से उसे यहाँ छोड़ती गई थी। शोभा ने आज बड़ी श्रद्धा से अपने हाथ से चाय बनाई थी। उसे किसी नौकर के हाथ न भेजकर स्वयं देने आई थी। इतने दिनों के बीच खाने-पीने के सम्बन्ध में वह विनोद की पसन्द जान गई थी। फिर भी उसने आज न जाने क्या सोचकर इस विषय में विनोद से पूछ लेना अच्छा समझा। जीतन को उसी काम से भेजा था।

जीतन की बातें सुनकर शोभा की मनःस्थिति अस्थिर हो गई। शायद विनोद ने बुरा मान लिया है। विचार के इस बिन्दु तक आते-आते वह घबड़ा-सी

गई। बहुत साहस करके वह पुनः विनोद के कमरे की ओर बढ़ी। रास्ते में कई बार कुछ देर रुकी, फिर बढ़ी। कोई अबूझ प्रेरणा एकाएक उसके पैरों को खींचकर विनोद के कमरे की ओर लेती चली गई। शोभा अपनी सहेलियों के बीच बड़ी शोख लड़की के रूप में प्रसिद्ध थी। किन्तु विनोद के सामने उसकी सारी शोखी हवा हो जाती थी। वह स्वयं चाहती थी कि विनोद से खुलकर रहे। किन्तु कोई ऐसा अटकाव था जो उसके विनोद की ओर अग्रसर होने में सहसा बाधक हो जाता। अपने बाल सखा के प्रति उसका मन स्वयं उसी के लिए कभी-कभी अचंभे का विषय हो जाता। जो हो, आज उसे विनोद के पास जाना है। वह किसी भी प्रकार विनोद के किसी मानसिक कष्ट का निमित्त बनना नही चाहती। दरवाजे के सामने आकर जैसे उसके पैर जकड़ गए हों। संकोच और ग्लानि के पर्दे को चीरती हुई-सी वह अन्दर प्रविष्ट हो ही गई।

विनोद अभी बाहर नही निकला था। न जाने क्या सोचकर पलंग पर अधलेटा पड़ा था। आँखें मुँदी थी। लेकिन सोया बिल्कुल नही था। सामने टेबुल पर चाय की प्याली ठंडी पड़ी थी। उसके पीछे रखी टाइम पीस टिक-टिक करती जा रही थी। शोभा विनोद के पीछे कुछ देर तक खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रही। विनोद से क्या पूछे, क्या कहे, उसे सूझ नही रहा था। अन्त में साहस बटोरकर बोली, "सो गए क्या ?"

इसका जब कोई उत्तर नही मिला, शोभा ने कुछ और साहस दिखाया, "यह तो सोने का कोई वक्त नही ···· मुझसे रंज मान गए ?"

अन्तिम बात से मान से भरे विनोद की चेतना कुछ हिली-डुली। उसने करवट ली और पड़े-पड़े ही बोला, "मैं काहे को रंज होऊँ ?"

"तो चाय क्यों नही ली आपने ?" शोभा के शब्दो में अधिकार का आग्रह था।

"किसने पीने को कहा कि नहीं पी ?" विनोद बोला था रंज होकर, किन्तु जब उसकी आँखें शोभा की जिज्ञासु दृष्टि से टकराईं, अनायास ही उसके होंठों पर मुस्कान खिंच आई।

"ओह, आप भी खूब करते हैं !" शोभा आश्वस्त हो गई और ठंडी चाय की प्याली लेकर बाहर जाना चाहा।

"अब फिर कहाँ चली ?" विनोद उठ बैठा, "इसी से तो तंग आ गया हूँ !"

"तो कुछ और तंग हो लीजिए", शोभा ने पीछे मुड़कर विनोद पर अपनी स्निग्ध दृष्टि फेंकी और फुदकती हुई-सी कमरे से बाहर हो गई। विनोद ठगा-सा

बैठा रह गया। सोच रहा था कि असमय ही मुस्काकर बुरा कर दिया उसने। न जाने ऐसा अवसर फिर कब सुलभ हो। शोभा के इस क्षणिक एकान्त दर्शन ने उसके मन के तारों को बेतरह कँपा दिया था। उसकी मीठी मूर्च्छना मे अभी वह डूब-उतरा ही रहा था कि शोभा चाँदी के कलात्मक ट्रे में ताजी गर्म चाय लिए उपस्थित हो गई। विनोद को मानो नया जीवन मिल गया हो। शोभा खड़ी-खड़ी चायदान से चुपचाप दो प्यालियों में चाय तैयार करने लगी। इस बीच उसने एक बार भी सामने बैठे विनोद की ओर नहीं देखा। फिर भी उसका अन्तर्मन समझ रहा था कि विनोद उसे एकटक निहार रहा है। यह अनुभूति उसके सहज संकोच-भाव को और भी उद्दीप्त करने लगी। उसके हाथ काँपने लगे। कपोलों पर लालिमा दौड़ गई। जैसे-तैसे चाय बनाकर उसने एक कप विनोद की ओर बढा दिया। दूसरा कप स्वयं लेकर सामने की कुर्सी पर बैठ गई। फीरोजी रंग की साड़ी मे गठा हुआ शोभा का गोरा बदन, कन्धे के दोनों ओर संविभक्त काले बालों की दो लम्बी लटें, आम की फाँक-सी चंचल आँखों के ऊपर धनुप की तरह बाँकी काली भौहें, वक्ष पर काले ब्रा के नीचे बारीकी से कसे गर्वोन्नत उरोज—विनोद को लगा, जैसे उसका कंठ सूखने लगा हो। उसकी धमनियों में एक अजीब सनसनी दौड़ गई।

"लीजिए चाय। फिर ठंडी न होने पाए। नही तो मै बनाने से रही!" शोभा ने विनोद की ओर देखा और पलकें झुकाकर मुस्का दी।

"और आप—तुम चाय नहीं पीओगी ?"

"घबडाइए नही", शोभा ने कहा, "इस आप-तुमने अपने लिए भी चाय बनाई है।"

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। चाय की एक-एक प्याली हाथ में लेकर चुस्की लेने लगे।

"आण्टी आज दिखाई नही देती ?" विनोद ने सहज भाव से पूछा।

"पटन दवी गई है। देर से लौटेंगी।"

"इसीलिए आज घर की मालकिन तुम हो।"

"और घर के मालिक आप!"

फिर दोनों हँस पडे।

"मै एक बात से बहुत रंज हूँ शोभा!"

"कहिए, लेकिन मै मनाने की कोशिश अब नही करूँगी!"

"तुम सब बातो को मजाक में ही उड़ा देती हो—'प्लीज टेक इट सिरियसली!'"

"आखिर सुनूं भी तो।"

"मुझे आप कहना कब से सीखा तुमने ?"

"तो इसमें बुरा मानने की कौन-सी बात है ?"

शोभा ने चाय का एक घूंट गले के नीचे उतारा। बोली, "आप मुझसे हर तरह से बड़े हैं, आप ......"

"फिर आप ?" विनोद झल्लाकर बात काटता हुआ बोला, "भूल गईं बचपन की बातें ?"

"हाँ, वो तो खूब याद है," शोभा की तरल आँखों में कोई स्वप्न लहर गया, "तब की बातें .... भिन्न थी।"

"कोई भिन्नता नहीं शोभा ! केवल उम्र की भिन्नता है।" विनोद कुछ गंभीर पड़ गया।

"तो उम्र को छोड़कर आप वही हैं न जो बचपन में थे ?"

"इसमें क्या शक ?"

"तो बेशक आप मेरे लिये 'आप' ही रहेंगे।" शोभा तपाक से बोल गई।

विनोद निरुत्तर-सा रह गया। शोभा के प्रश्न को ठीक से समझा नहीं।

"क्यों'?" विनोद रंजिश के स्वर में बोला।

"क्योंकि आप वैसे ही उद्दण्ड हैं जैसे पहले थे। निर्दोष लड़कों को पीटना, झूठ बोलना—ये सब गुण आप में अब भी है।"

"ओ, हाउ सिलि !" विनोद लजाकर हँसता हुआ बोला, "अब वैसा नहीं हूँ शोभा ! अगर कुछ हूँ भी तो तुम्हें वचन देता हूँ, वैसा कोई काम नहीं करूँगा जिससे तुम्हें कष्ट पहुँचे।"

"तब तुम सचमुच मेरे विनोद भैया !" शोभा हँसी, किन्तु लगा जैसे उसकी हँसी स्वाभाविक नहीं हो। कहीं से उड़ती हुई उसके अधर पर थिरक उठी हो।

"पहले आप, अब भैया ?" विनोद तुनककर बोला।

"वाह, तुम मेरे भैया नहीं ?" शोभा एकाएक गम्भीर पड़ गई, "संसार के सभी स्त्री-पुरुष एक दूसरे के भाई-बहन ही तो हैं।"

चाय खतम हो चुकी थी। वार्ता का सिलसिला भी एकाएक बोझिल हो गया। शोभा का अन्तर्मन न जाने क्यों उद्विग्न हो उठा। पहले विनोद की दृष्टि उसे भली लग रही थी। अब वही एकाएक उसे कष्ट देने लगी। अचानक उठ खड़ी हुई और "अब चली" कहकर कमरे से बाहर हो गई। विनोद अवाक्-सा

देखता रह गया। उसे आज पहले-पहल पता लगा कि ऊपर-ऊपर चंचल दिखने वाली शोभा भीतर से कितनी गंभीर और अबूझ है। समझ नहीं पाया कि आज की इस पहली खुली बातचीत में वह हारा है, या जीता है।

दो

विनोद करीब आधे घण्टे तक अपने कमरे में अनमना-सा बैठा रहा। खुली खिड़की से हवा के मीठे झकोरे उसके शरीर को स्पर्श कर रहे थे। सामने कुछ दूरी पर कदमकुआँ पार्क में कुछ बच्चे आपस में झगड़ते दिख रहे थे। विनोद का कौतूहल अभी शान्त नहीं हुआ था। जिस तनाव में शोभा कमरे से बाहर चली गई थी, विनोद उसकी छानबीन करके कोई समाधान पाना चाहता था। वह चाहता तो शोभा पर पुनः अपना रंग जमा कर सकता था। उसे इसी बहाने मनचाही बातचीत के लिए आतुर कर सकता था। लम्बे अरसे के बाद शोभा के इस एकान्त दर्शन ने विनोद के मन पर मानो कोई जादू कर दिया था। इस बँगले में उसे यदि किसी से कोई संकोच या डर मालूम होता था तो शोभा की माँ से ही। निर्मला देवी का व्यक्तित्व बड़ा गम्भीर था। विनोद उनकी फीकी गम्भीरता से अलग रहना चाहता था। इसीलिए इस बँगले में कुछ समय से रहते हुए भी वह इसके सभी कमरों को भी ठीक से नहीं देख पाया था। आज अवसर अच्छा था। निर्मला थी नहीं। घर में शोभा की कोई दूसरी सहेली भी नहीं थी। अतः शोभा घर के चाहे जिस कोने में गई हो, विनोद वहाँ धड़ल्ले से जा सकता था। उसके साथ कुछ मन की बातें कर सकता था। मन में आज अचानक जो आँधी उठती जा रही थी, उसे बिना बाहर निकाले उसे चैन नहीं मिल सकता था। कुछ निश्चय करके धीरे से उठा और कमरे के बाहर हो गया।

बँगले के बड़े से आँगन में एक विशाल बरामदा था। कोने में ऊपर छत पर जाने के लिए चक्करदार सीढ़ियाँ थीं। आँगन के ही एक हिस्से में किचन की चिमनी से धुँआ उठ रहा था। आँगन में जीवन झाड़ू दे रहा था। बुढ़िया किचन के सामने बैठी सब्जी छील रही थी। विनोद को इधर आते देखकर जीवन हड़बड़ा कर खड़ा हो गया और पूछ बैठा, "कुछ चाहिए बाबू ?"

"नहीं तो", विनोद ने बिना उसकी ओर देखे पूछा, "शोभा किधर गई?"

"वो तो पूजा घर में है बाबू!"

"पूजा घर?" विनोद के आश्चर्य की सीमा न रही, "तो शोभा पूजा भी करती है? अभी से ही?"

"हा बाबू!" जीतन कुछ गम्भीर होकर बोला, "बेबी को तो बहुत छुटपन से ही माता जी ने पूजा की आदत लगा दी है। सुबह-शाम माँ-बेटी साथ-साथ पूजा करती हैं। आज बेबी अकेली ही पूजा कर रही है।"

"कितनी देर लगती है पूजा मे?" विनोद उत्सुक होकर पूछ पड़ा।

"यही कोई आध-पौन घंटा।"

"किधर है पूजाघर?"

"ऊपर!"

विनोद कुछ और सुनने को नहीं रुका। जीने चढ़कर ऊपर जाने लगा। जीतन ने कहना चाहा कि पूजा के समय माताजी किसी को आने नही देती। किन्तु बात जबान तक आते-आते रुक गई। विनोद को उसकी मालकिन कितना आदर और स्नेह देती है, यह उससे छिपा नही था।

छत पर आकर विनोद ने एक सरसरी नजर दौड़ाई। आसमान में जहाँ-तहाँ कुछ पतंगें उड रही थी। छत के खुले हिस्से पर मीठी धूप बिछी थी। एक तरफ चार कमरे दिखाई पड़े। दो कमरे बन्द थे, किन्तु एक तरफ के दोनो कमरे खुले थे। हाँ, एक का दरवाजा भीतर से उढकाया जान पड़ता था। दूसरे का बिल्कुल खुला हुआ था। विनोद बेधड़क खुले कमरे के सामने आया। उसके भीतर झाँकने लगा। सजे-सजाये कमरे के बीच में एक गोल मेज पर कुछ ताजे फूलों से सजा सुनहला गुलदस्ता रखा था। दोनों ओर दो पलंग बिछे थे। सामने एक ओर आकर्षक सोफासेट, फर्श पर मखमली कालीन। हलके बादामी रंग से रंगी कमरे की दीवारों पर रामकृष्ण तथा विवेकानन्द के दो बड़े चित्र टँगे थे। एक तरफ करीने से सजी किताबों से भरी कई स्टील की आलमारियाँ। विनोद कमरे की सादगी और सजावट से प्रभावित हो गया। अनुमान किया कि यही माँ-बेटी का शयन कक्ष होगा।

वह धीरे से दूसरे कमरे की ओर बढ़ गया और उसके दरवाजे की ओट में खड़ा हो गया। भीतर झाँककर देखा। सामने भगवान कृष्ण की छोटी संगमरमरी प्रतिमा खड़ी थी। कृष्ण अपनी बंशी पर उँगलियाँ नचाते जान पडते थे। उनकी आँखें अधमुँदी थी। गले में गुलाब के ताजे फूलों की माला। चरणों के दाहिनी

ओर धूपदानी जल रही थी। दूसरी ओर घी का दीया टिमटिमा रहा था। नीचे मृगछाले पर बैठी शोभा कृष्ण की ओर हाथ जोड़े कोई श्लोक गुनगुना रही थी। कुछ देर में उसने आरती का थाल दाहिने हाथ से उठाया। बायें हाथ से घंटी टुनटुनाती हुई भगवान की आरती करने लगी। विनोद की इतनी उम्र हुई। किन्तु हिन्दी सिनेमा को छोड उसने ऐसा दृश्य कही नही देखा था। विनोद के ख्याल से देवी-देवताओं की पूजा करने से बढ़कर कोई मूर्खता नही हो सकती। उसके अंग्रेज अध्यापकों ने प्रभु ईसामसीह की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करना चाहा था। किन्तु वह ईसामसीह की अपेक्षा अंग्रेजी जबान, अंग्रेजी पोशाक और साहबी ठाठ-बाट को ज्यादा महत्त्व देता था। पूजा मे लीन शोभा की मूर्खता पर वह व्यंग्यपूर्वक मुस्कराया। फिर उल्टे पाँव लौटकर उसके शयनकक्ष में आ गया। वहाँ बेंत की एक कुर्सी पर बैठकर मेज पर रखी पत्रिका को उलट-पुलट कर देखने लगा। वह मासिक 'कल्याण' की अद्यतन प्रति थी। मुखपृष्ठ के कोने में निर्मला देवी के हस्ताक्षर थे। उसने मुस्कराकर पत्रिका को बिना ठीक से देखे ही एक ओर रख दिया। अब उसका ध्यान सामने दीवार पर एक बड़े-से तैल-चित्र पर गया और वही कुछ देर तक अटका-सा रहा। चित्र की पोशाक स्पष्ट ही किसी एडवोकेट की थी। विनोद सोचने लगा, हो न हो, यह शोभा के यशस्वी पिता स्वर्गीय कुमार बाबू की तस्वीर है। उसे आश्चर्य हुआ, ऐसा कीमती साहबी वेश धारण करनेवाले व्यक्ति की धर्मपत्नी और सन्तान धर्म की अन्ध रूढ़ियों में इस तरह क्यों जकड़े हुए हैं। कुछ इसी प्रकार सोच ही रहा था कि सामने दरवाजे का पर्दा हिला। शोभा ने भीतर प्रवेश किया।

अपने सामने एकाएक विनोद को देखकर शोभा अकचका गई। फिर प्रकृतिस्थ-सी होकर साड़ी का आँचल ठीक करती हुई हँसकर बोली, "वाह जी, तुम चोर की तरह यहाँ अकेले कब से बैठे हो ? कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?"

"तुम्हारे घर मे और तकलीफ ?" विनोद मुस्काया, "जहाँ भगवान स्वयं सबकी देखभाल करते है !"

"भगवान केवल मेरे घर में ही तो नही", शोभा विनोद के सामने दूसरी कुर्सी पर बैठती हुई बोली, "वे तो सर्वव्यापक है। सबके रक्षक हैं।"

"आज अभी-अभी एक पुजारिन को तुम्हारे पूजाघर में देखा', विनोद कुछ व्यंग्य के स्वर में बात पलटते हुए बोला, "साक्षात मीरा की तरह लगी मुझे।"

"तो यह भी चोरी से देख आये ?" शोभा मुस्काई, "खैर, कोई बात नहीं। भगवान तक चोरी करते थे।"

"और चीर-हरण भी !"

विनोद खिलखिला कर हँस पड़ा। शोभा को उसकी इस फूहड़ हँसी में कोई तुक नजर नहीं आया। भीतर से अप्रसन्न होकर दृढ स्वर में बोली, "भगवान के सामने सभी नंगे है। वे किसका क्या नही जानते ? क्या नहीं देखते ?...... क्या तुम भगवान को नहीं मानते ?"

"नहीं", विनोद बेधड़क बोल गया, "भगवान को मैं एक ढकोसला जरूर मानता हूँ। मैं आदमी का प्रेमी हूँ।"

"जो सचमुच आदमी का प्रेमी है, वह भगवान का भी प्रेमी हो जाता है", शोभा गम्भीर पड़ गयी, "जाने दो भैया, पहले यह तो बताओ कि यहाँ आये कैसे ?"

"क्यों ? यहाँ आकर कोई अपराध तो नहीं हो गया ?" विनोद 'भैया' सम्बोधन से चिढ़कर बोला, "सचमुच मुझे यहाँ नहीं आना चाहिए था।"

"यह क्या कह रहे हो ?" शोभा दुखी होकर बोली, "मेरे घर में सब कुछ तो तुम्हारा ही है। तुम्हारे लिए यहाँ कोई बाधा नहीं, कोई दुराव नहीं। माँ तो प्रतिदिन कहा करती हैं......"

"क्या कहती हैं ?"

"कहती हैं कि पढ़ने में विनोद से मदद लिया करो", शोभा लजाती-लजाती बोल गई, "तुम दोनों साथ हो पढ़ा करो।"

"और तुम हो कि मुझसे ठीक से बात तक नही करती", विनोद के स्वर में रंज था, "शायद मैं तुम्हारे योग्य हूँ ही नही।"

"इसमें योग्य-अयोग्य की क्या बात भैया", शोभा बोली, "तुम अयोग्य हो तो मैं ही कौन योग्य हूँ ?..........भाई-बहन का काम है एक दूसरे की मदद करना।"

"क्या सचमुच हम दोनों भाई-बहन ही रहेंगे शोभा ?" विनोद इस बार खिन्न स्वर में बोला।

"तो इसमें तुम्हें बुराई ही क्या दिखती है ?" शोभा विनोद के स्वर से कुछ पसीजकर बोली, "बचपन से ही तो तुम्हें भैया कहती आयी हूँ। माँ कहती हैं कि स्त्री और पुरुष का पहला सम्बन्ध भाईचारे से ही आरम्भ होना चाहिए। एक अच्छी बहन ही अच्छी पत्नी और अच्छी माँ हो सकती है।"

"आइ सी", विनोद को मानो मुँहमाँगा मिल गया हो, तुम्हारा जीवन-दर्शन सचमुच बड़ा ही गूढ़ है।"

शोभा ने अब समझा कि उसने शायद कुछ अकथ्य कह दिया है। लजाती हुई-सी बोली, "मेरा मतलब कुछ दूसरा था, मैं...... "

शोभा कुछ और कहने को सोच ही रही थी कि निर्मला देवी एक दूसरी लड़की को साथ लिये एकाएक कमरे में आ गई। उन्हें आकस्मिक रूप से आते देखकर शोभा और विनोद अकचकाकर उठ खड़े हुए।

"बैठो बेटा, बैठो", निर्मला दोनों को बिठाती हुई प्रसन्न स्वर में बोलीं, "तुम भी बैठो किरण !"

साथ आने वाली लड़की का नाम किरण है, विनोद ने अब जाना। उसने तिरछी नजर से किरण को देखा। वह शोभा की ही उम्र की [illegible] लड़की लगी। किरण शोभा से भी कुछ अधिक गोरी थी। [illegible] के ऊपर काला तिल अत्यन्त मोहक लग रहा था। लम्बे-लम्बे काले केश [illegible] के रूप में उसकी पीठ पर लहरा रहे थे। केशों की [illegible] से अधिक फीकी और नीरस लग रही थी। मुख पर कोई [illegible] नहीं थी। बिना पार की सफेद साड़ी उसके गोरे रंग में [illegible] थी, किन्तु उसमें कोई उदासी का भाव तिर रहा था। [illegible] किरण की ओर देखकर बोलीं, "यही किरण है। [illegible] मैंने तुम्हें रास्ते में बताया था।"

इसके साथ ही किरण ने हल्की मुस्कान के साथ विनोद की ओर हाथ जोड़ दिये, "नमस्ते !"

"तुम भी हमारे साथ जातीं तो यहाँ विनोद बाबू अकेले नहीं पड़ जाते?" किरण प्रकृतिस्थ-सी होकर बोल गई, "फिर कभी साथ चलेंगे।"

इसी बीच जीतन चाय दे गया। शोभा ने उठकर सबके लिए चाय बनाई। चाय की गरम-गरम चुस्की के साथ बात चीत पुनः उभर आयी।

"जानती हो शोभा, तुम्हारी किरण दी का बुलावा आ गया है," निर्मला ने बातें शुरू की।

"बुलावा? कैसा? कहाँ से?"

विस्मित शोभा के इन प्रश्नों से किरण कुछ मुस्काई। किन्तु उसका समाधान किया उसकी माँ ने ही, "काशी से बुलावा आया है। किरण के श्वसुर जी का विचार है कि यह वही रहकर अपनी पढाई करे। इसका यहाँ रहना उन्हें पसन्द नही।"

"यह कैसे हो सकता है?" शोभा ने किरण को प्रश्नभरी दृष्टि से देखा, "क्या आप भी वहाँ जाना चाहती है?"

"मेरे चाहने न चाहने से क्या होता है शोभा", किरण के स्वर में कोई वेदना उग आयी, "मेरी अपनी इच्छा का मोल ही कितना है।"

"ऐसे तो किरण की माँ अड़ी हुई है कि वे इसे काशी नही जाने देंगी", निर्मला ने बात का सिलसिला आगे बढाया।

"लेकिन मैं तो चाहती हूँ चाची", किरण के होठों पर पुनः एक फीकी मुस्कान उभर आयी, "पिताजी मेरे पक्ष में आ गये हैं। केवल माँ का ही विरोध है। आपको भी तो इसमें कुछ बुरा नही लगना चाहिए।"

"मैं भी तुम्हारी ही बात दुहराऊँगी बेटा", निर्मला कुछ गम्भीर पडकर बोलीं, "हमारे चाहने न चाहने से क्या होता जाता है? वस्तुत हमारी इच्छाओं की समाज से अलग-थलग अपनी पहचान क्या है, इसका निश्चय भी आसानी से नही किया जा सकता। अन्ततः यही बात ज्यादा साफ है कि समाज जो चाहता है सो करो, जो नही चाहता सो न करो।"

"इसका मतलब तो यह हुआ माँ", शोभा प्रतिवाद के स्वर मे बोली, "कि हमें समाज के बुरे निर्देशों का भी आँख मूँदकर पालन करना चाहिए।"

"'चाहिए' तो मैंने कहा नही", निर्मला बोलती गईं, "समाज और व्यक्ति अन्तस्सम्बद्ध होकर भी ऊपर-ऊपर अलग दिखाई पड़ते है। असल में उनमें से एक यदि समुद्र है तो दूसरा उसकी बूंद। बूंद से अलग समुद्र की कल्पना नही की जा सकती। किन्तु समुद्र से अलग बूंद का अस्तित्व तो है ही। इसीलिए

ज्यादा महत्त्वपूर्ण बूंद है, न कि समुद्र । फिर भी कोई इकाई जब किसी समष्टि का अंग बन जाती है तो उसकी सारी स्वतन्त्र शक्तियाँ समष्टि के विकास में ही लग जाती हैं । काल-क्रम से वह अपने को समूह-सत्ता से भिन्न नहीं कर पाती । फलतः व्यष्टि-चेतना कुंठित पड़ती जाती है । कठिनाई तब आती है जब व्यक्ति की चेतना समाज की चेतना से अधिक सजग हो जाती है । आज हम जिस समाज में हैं उसमें इकाई और समूह का यही संघर्ष छिड़ा हुआ है ।"

"यह संघर्ष क्या निष्फल जायेगा आण्टी ?" इस बार विनोद भी चुप नहीं रह सका, "समुद्र के आगे क्या बूंद को कोई हस्ती नहीं ?"

"यह न कहो बेटा", निर्मला शान्त स्वर में कहती गई, "बूंद की जीवन्त चेतना समुद्र में बाडवाग्नि फैला सकती है । व्यक्ति की सजगता समाज की धारा बदल सकती है । इसीलिए कहती हूँ कि किरण को सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष भी करना होगा ।"

निर्मला ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से किरण के चेहरे की ओर देखा ।

"मैं नहीं समझती चाची", किरण के हलके गुलाबी अधर पर मुस्कान कौंध गई, "कि मेरे काशी जाने से इन विचारों का कोई सम्बन्ध है । आप कृपया मेरी माँ को समझा-बुझा दें । वे मुझे लेकर तनिक भी चिन्ता न करें ।"

निर्मला ने एक बार सकौतुक किरण के चेहरे की ओर देखा । वहाँ उन्हें अखण्ड शान्ति का तेज तथा अडिग निश्चय की आभा नजर आई । कुछ क्षणों बाद वे हारे हुए स्वर मे बोली, "जैसी तुम्हारी इच्छा बेटी । मैं तुम्हारी माँ को जाकर समझा दूँगी । काशी भी जाओगी तो वहाँ तुमसे मिलने साल मे एक-दो बार तो जरूर आ जाऊँगी ।"

फिर एक दुरूह मौन कमरे में छा गया । विनोद इस बीच कभी शोभा को देखता, कभी निर्मला को और कभी किरण को । उसे अब तक की सारी बातें रहस्यपूर्ण लगीं । कई बार मन में आया कि किरण के सम्बन्ध में निर्मला से कुछ पूछे । किन्तु हिम्मत नहीं हुई ।

अब तक धूप कुछ तेज हो गई थी । विनोद के कानों में सामने दीवार पर टँगी घड़ी की टनटनाहट गूँज गयी । दिन के ग्यारह बज चुके थे । वह कुछ याद करके झट-पट उठ खड़ा हुआ और निर्मला से बोला, "मुझे एक जगह जाना है आण्टी । देर हो गई । मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी ।'

"कहाँ जाना है ?"

"एक मित्र ने कुछ जरूरी काम से बुलाया है ।"

'तो खा-पीकर चले जाना ।"

"कोई ज्यादा देर नहीं होगी। मैं लंच के समय लौट आऊँगा।"

"ठीक है, जा सकते हो। हाँ, गेराज से गाड़ी निकलवा लो। कैलास को साथ लेते जाना।"

विनोद ने किरण को नमस्ते किया और कमरे से बाहर हो गया। इसके लमे बाद शोभा किरण को साथ लेकर अपनी खुली छत पर चली गई।

तीन

आज किरण की बिदाई है। उसके पिता डॉ० चन्द्रकान्त विदाई की व्यवस्था करने में व्यस्त हैं। उनके बँगले के भीतर पास-पड़ोस की आठ-दस लड़कियाँ, कुछ बहुएँ और कुछ बूढ़ी और अधेर उम्र की स्त्रियाँ काशी जाने को तैयार किरण को घेरे खड़ी है। उसी भीड़ में निर्मला और शोभा भी दिखाई दे रही हैं। एक ओर किरण की माँ सुबकती हुई अपने आँचल से बार-बार आँखें पोंछती जा रही हैं। किरण रोती हुई माँ को धीरज बँधा रही है।

यथासमय चन्द्रकान्त भीतर आये। पत्नी से बोले, "अब रोने-धोने का समय नहीं है। गाड़ी आने में कुछ ही देर और है। तुम किरण को लेकर कार में जल्दी बैठो।"

इसके बाद किरण उठकर डबडबायी आँखों से सबको प्रणाम करती है। शोभा का हाथ पकड़े अपनी माँ के साथ बाहर पोर्टिको मे खड़ी कार में बैठ जाती है। अपने पीछे सहृदय बन्धुजनों को शोक-संतप्त छोड़कर किरण को लिए हुई कार बांकीपुर स्टेशन चल देती है। रास्ते में शोभा किरण से भीगी वाणी में कहती है, "तुम्हारे चले जाने के बाद अब यहाँ मेरा मन तनिक भी नहीं लगेगा।"

"ऐसा न कहो शोभा, मेरे चले जाने पर भी दूसरी सहेलियाँ तुम्हारा मनोरंजन कर लेंगी। अलका तो है ही। मैं भी तो कभी न कभी फिर आऊँगी ही। इस बीच पत्र बराबर देती रहना।"

"माँ के साथ बाबा विश्वनाथ के दर्शन करने के बहाने मैं भी तुमसे मिलने आऊँगी।"

"जरूर आना शोभा! वहाँ तुम्हें देख कर मुझे बेहद खुशी होगी।······ विनोद बाबू को भी साथ लेती आना। अपनी शादी की खबर अवश्य देना।"

सामने बाँकीपुर स्टेशन को देखकर सभी चुप हो जाते हैं। स्टेशन पर पहले से ही कुछ लोग किरण की प्रतीक्षा में खड़े हैं। उनमें किरण का देवर नलिन मोहन भी है। नलिन को ही किरण के साथ काशी जाना है। स्टेशन पर गाड़ी लगी हुई है। प्रथम श्रेणी के एक केबिन में नलिन अपनी भाभी को लेकर बैठ जाता है। सामान यथा स्थान रख दिये जाते हैं। नलिन का नौकर दूसरे डब्बे में चला जाता है। गाड़ी सीटी देती है। किरण उठकर बारी-बारी से अपने पिता तथा माँ के चरणस्पर्श करती है। अब तक धीरज धारण किये चन्द्रकान्त सिसक पड़ते हैं। जैसे किरण हमेशा के लिए कहीं जा रही हो। उन सबको करुणा-विह्वल छोड़कर गाड़ी खुल जाती है। किरण निर्जीव-सी अपनी बर्थ पर धम से बैठ जाती है। मानो वह नहीं, उसका शव कहीं पार्सल करके भेजा जा रहा हो।

जिस स्थान पर किरण जा रही है, उसके नाम मात्र से ही उसका परिचय है। बाबा विश्वनाथ की नगरी वाराणसी की महिमा सुनती आयी है। उसके श्वसुर बाबू कान्तिचरण विगत कई वर्षों से काशी-वास कर रहे हैं। अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रशान्त के स्वर्गवासी हो जाने के बाद उन्होंने अपने छोटे पुत्र नलिन को भी अपने पैत्रिक घर भागलपुर से बनारस में ही बुला लिया था। कान्ति बाबू की धर्मपत्नी बहुत पहले ही गो-लोक जा चुकी थीं। अपने समय में कान्तिबाबू अपने इलाके के प्रतिष्ठित वकील थे। पत्नी के दिवंगत होने पर पुत्री शीला तथा पुत्र प्रशान्त और नलिन के पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी उन्हीं पर आ गई। इन्होंने इन सब का मातृवत पालन किया। किन्तु भाग्य की गति कान्तिबाबू के विपरीत थी। शीला जब नवीं श्रेणी में पढ़ती थी, निष्ठुर काल ने उसे उठा लिया। प्रशान्त उस समय बी० एस-सी० के छात्र थे। गृहिणी के अभाव तथा शीला के करुण अवसान से कान्तिबाबू का घर वीरान-सा दिखने लगा। इस अभाव को भुलाने के लिए उन्होंने प्रशान्त की शादी कर देनी चाही। उनके मित्र डॉ०चन्द्रकान्त उनसे पहले से ही इस सम्बन्ध में बातचीत चला रहे थे। लड़की कान्तिबाबू की देखी हुई थी। अपने पुत्र के लिए वे जैसी लक्ष्मी चाहते थे, उसका पूरा रूप उन्हें किरण में मिल गया। खटकने वाली बात एक ही थी!

किरण की उम्र बहुत कम थी। मुश्किल से चौदह पार कर रही थी। उधर उनका प्रशान्त बाईस साल का था। किन्तु दूसरी सहूलियतों के सामने उम्र का प्रश्न गौण हो गया। शादी बहुत धूम-धाम से सम्पन्न हो गई।

विवाह के ठीक पन्द्रह दिनो बाद प्रशान्त को साधारण-सा ज्वर चढ आया। दवा शुरू होने के बावजूद ज्वर बढता गया। कान्तिबाबू को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपने समधी डॉ० चन्द्रकान्त से फोन पर बातें की। अभी किरण का द्विरागमन भी नहीं हुआ था, वह अपनी ससुराल पटने में ही थी। चन्द्रकान्त कुछ डॉक्टरों को साथ लिए भागलपुर आये और उसकी हालत नाजुक देखकर उसे अपने साथ ही पटना लेते गये। पटने के मेडिकल कॉलेज अस्पताल में प्रशान्त को भर्ती कर लिया गया। अनुभवी डॉक्टरों की देख-रेख में चिकित्सा आरम्भ हुई। लगभग तीन महीने तक टाइफायड से लड़ता-लड़ता प्रशान्त इस असार संसार से बिदा हो गया। चन्द्रकान्त के परिवार मे दुःख और शोक की लहर उमड़ आयी। उसमें कई महीनों तक लोग डूबे रहे।

प्रशान्त के मरने के बाद कान्तिबाबू के जीवन में बड़ा परिवर्तन आया। ऐसे तो वे बचपन से ही खाने-पीने और मौज-मस्ती में जीने वाले आदमी थे। अपनी जवानी में अभी हाल-हाल तक मुक्त जीवन जीने के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। कई लड़कियो के साथ उनके अनैतिक सम्बन्ध थे। कोठेवालियाँ भी उन पर अपने को न्योछावर करती आयी थी। नाच-गान की शौकीनी खून में रमी हुई थी। किन्तु जीवन में लगते आघातो से उनका मन क्रमशः विरक्त होता गया। जो पूजा-पाठ को कभी घृणा की दृष्टि से देखते थे, वे ही कान्तिबाबू अब उसमें बड़ी आस्था रखने लगे। पत्नी, शीला और प्रशान्त को कुछ ही समय के अन्तराल में खोकर कान्तिबाबू का मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया। उन्होंने वकालत को लात मार दी। सब कुछ छोड़-छाडकर काशी की शरण ले ली। वहाँ एक छोटा-सा सुन्दर मकान भी खरीद लिया। नलिन की शिक्षा-दीक्षा तथा अपने शेष जीवन को काटने के लिए अभी बैंक मे काफी पैसे थे। भागलपुर में जो पैतृक सम्पत्ति थी सो अलग। जब कान्तिबाबू वैराग्य लेकर काशी आ गये तो कुछ दिनों बाद नलिन को भी अपने पास बुला लिया। उसके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था काशी में ही हो गयी। उधर अपने समधी से राय-विचार लेकर डॉ० चन्द्रकान्त ने किरण की पढाई-लिखाई को भी आगे बढ़ाया। मन ही मन निश्चय कर चुके थे कि वे उपयुक्त समय पर अपनी दुखी पुत्री की शादी किसी उदार युवक से कर देंगे। किन्तु अब तक अपनी धर्म-भीरु पत्नी

तथा वैष्णव परिवार के दूसरे सदस्यों से विद्रोह करने में सफल नही हो पाये थे। पीछे जब स्वयं किरण ने इस विषय पर अपनी अनिच्छा प्रकट की तो उनका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया।

गाड़ी की आवाज को चीरती हुई किरण की स्वप्निल दृष्टि अतीत की उस धूमिल गहराई में उतर गई है, जहाँ केवल किरण है। उसके अतिरिक्त अपार नीरवता छाई है। किरण को अभी भी याद है वह दिन जब उसकी शादी हुई थी। उस समय वह बाँकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल की छात्रा थी। किताबी ज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान शून्य के बराबर था। विवाह के मर्म या धर्म को समझ भी न पाई थी कि एक दिन शहनाई की सुरीली ध्वनि के बीच उसकी मंगल-गाँठ एक अपरिचित युवक के साथ बाँध दी गई। प्रथम मिलन-रात्रि पटने में तथा दूसरी और अन्तिम भागलपुर में आई थी। दोनों रात वह लाज की छुई-मुई-सी घूँघट काढ़े बैठी रही। स्वामी ने बड़े स्नेह से उसकी ठुड्डी ऊपर करके उसकी मुँदी पलकों को चूम लिया था। चुम्बन की वही मधुर स्मृति अब जैसे किरण के शेष जीवन का एक मात्र आधार हो।

किरण ने उमड़ी आँखों को आँचल से पोंछ लिया। अतीत के दूसरे पन्ने उलटने लगी।……….अभी उसके हाथ हल्दी से पीले ही थे कि पति की बीमारी की सूचना उसे दी गई। उसने कई बार अस्पताल जाकर उन्हें देखना चाहा। किन्तु लज्जावश अपनी इच्छा किसी से भी प्रकट नही कर पायी। उधर उसके माता-पिता अपनी प्यारी पुत्री के मन पर कोई आघात नही देना चाहते थे। उनकी आशा शायद अभी बुझी नही थी। आखिर एक दिन किरण ने सुना कि उसके पति अब नही रहे। उसकी चूड़ियाँ निकाल ली गई। माथे का सुहाग-सिन्दूर छिन गया। परिवार के सभी लोगों को रोते-चिल्लाते देखकर उसे भी अपनी स्थिति का बोध हुआ। कई दिनों तक जड़वत पडी रह गयी। बाद में लगातार रोती रही। जैसे-जैसे समय बीतता गया, उसकी अभावों की पीड़ा तेज ही होती गयी।………

आज इस घटना को घटे लगभग चार वर्ष बीत चुके हैं। फिर भी प्राणों में वह वेदना वैसी ही समायी हुई है। माता-पिता के प्यार भरे अनुरोध पर वह किसी तरह स्कूल-जीवन पार करके कालेज में आ चुकी है। कालेज से आते-जाते समय उसे प्रायः अपनी ओर घूरती आँखें दिखाई देती हैं। वे प्यासी आँखें! क्या चाहती हैं वे? उस दीन-हीन विधवा से उनका क्या सम्बन्ध है? वह जितना ही उन आँखों से बचने की कोशिश करती, उतना ही उसका मन

किरण ने अपने अन्तःकरण में अपने पूज्य श्वसुर की उज्ज्वल छवि को प्रणाम किया। उनके प्रति उसकी श्रद्धा और भी छलक गई।

"वहाँ खाना-पीना कैसे होता है ?" किरण ने पुनः प्रश्न किया।

"पहले तो पिताजी दोनों जून अपना खाना खुद पका लेते थे। दूसरे का छुआ तक नही खाते थे। किन्तु कुछ दिनों बाद मास्टर साहब के आ जाने पर इस नियम में शिथिलता आ गई। अब मास्टर साहब स्वयं उनका खाना पका देते हैं। दूसरे किसी का पकाया खाना वे नही लेते।"

"ये मास्टर साहब कौन है ?"

"उनके सम्बन्ध मे हममें से कोई विशेष नहीं जानता। शायद वे बंगाल के रहने वाले है। बहुत अच्छी बंगला बोलते है। बचपन में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। तब से कई नगरों में घूमते-घामते और संघर्ष करते, अन्त में काशी आये। तब से यही है। अब तक प्राइवेट रूप से ही मैट्रिक से लेकर बी० ए० तक की परीक्षाएँ दी है। सब में उत्तम श्रेणी और सम्मान प्राप्त किये है। इन दिनों वे पिताजी के द्वारा स्थापित समाज-सेवा-मन्दिर के सर्वस्व है।"

"पिताजी से उनका कैसा सम्बन्ध ?" किरण आश्चर्यपूर्वक पूछ पड़ी।

"वे जब से काशी आये तभी से उन्हें पिताजी का वरदहस्त प्राप्त है। उन्हे वे पुत्रवत मानते है। उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा दूसरी जरूरतों का पूरा प्रबन्ध पिताजी स्वयं करते आये है। इसके बदले मास्टर साहब मुझे पढा दिया करते है। उनका आचरण शुद्ध-सात्विक है। रहन-सहन अत्यन्त सरल और स्वच्छ। इसीलिए पिताजी की उनपर अपार कृपा बनी रहती है।

"क्या नाम है उनका ?"

"श्री अरविन्द।"

"किस जाति के है ?"

'अपनी जाति वे किसी को नही बताते। पूछने पर अपने को 'भारतीय' कहते है। किन्तु आकृति-प्रकृति से ब्राह्मण जान पड़ते है।"

"खाना पकाना आता है उन्हें ?"

"अच्छी से अच्छी चीजें पका लेते है। एक बार शायद वे किसी अच्छे होटल में कुक भी रह चुके हैं।

किरण का मन इस विचित्र युवक के सम्बन्ध में अनेक कल्पनाएँ करने लगा। उसे लगा जैसे उसके मन में अरविन्द के प्रति कोई अस्पष्ट ईर्ष्या पनप रही हो। मानो वह युवक उसके व्यक्तिगत अधिकारों में दखल देने आया हो। पुरुष होकर

अशान्त हुआ जाता। जब कभी दर्पण में अपना चेहरा निहारती, उसका अंग-अंग सिहर जाता। एक अजीब भय, कुछ विचित्र आवेग उसके आकुल मन को मथा डालते। ऐसी स्थिति में अपने दिवंगत स्वामी के फोटो को देख-देखकर अकेले में खूब रोती। जब इसमें भी मन शान्त न होता तो भगवान की मूर्ति के सामने ध्यानमग्न बैठ जाती। धीरे-धीरे स्वयं अपने से उसे विरक्ति होती गयी। माता-पिता के साथ इस बीच वह कई बार हरिद्वार, पुरी, अमरनाथ आदि तीर्थस्थानों में घूम आयी थी। केवल काशी अब तक नहीं जा पायी थी। इसीलिए जब श्वसुर ने उसके माता-पिता से किरण को काशी भेज देने का आग्रह किया तो वह इस निमन्त्रण से मन ही मन खुश हुई। अपने पूज्य श्वसुर को भी आज तक उसने देखा नहीं था। इस बार पत्र के साथ उन्होंने अपना जो फोटो किरण के पास भेजा, उसे देख वह दंग रह गयी। शान्त मुखमण्डल। सिर पर लम्बे-लम्बे बाल। मानो कोई ऋषि हों। किरण को खेद हुआ कि उसने अब तक अपने पुण्यात्मा श्वसुर के दर्शन क्यों नहीं किये थे। उसके मन को विश्वास हो गया कि उन्हीं के सान्निध्य में उसे वास्तविक शान्ति मिल पायेगी। अपना शेष जीवन उन्हीं की सेवा में लगाकर अपने अस्तित्व को कुछ सार्थक बना पायेगी। किन्तु उसकी स्नेहशीला माँ अपनी तरुणी पुत्री किरण को काशी जाने देने में बड़ी हिचक अनुभव कर रही थी। निर्मला तथा चन्द्रकान्त के समझाने-बुझाने पर वे किसी प्रकार राजी हो पायी।……"

गाड़ी की सामान्य गति में अचानक एक तेज खरखराहट घुल-मिल गई। किरण ने कुछ चौंककर अपने आस-पास देखा। नलिन कोई जासूसी उपन्यास उलट-पुलट कर देख रहा था। अचानक किरण ने मौन भंग किया, "हम कहाँ तक पहुँचे लाला?"

नलिन ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। बोला, "हम कोइलवर पुल पार कर रहे हैं। अब आरा थोड़ी ही दूर है।"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद किरण ने पुनः जिज्ञासा की, "यह कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे हो?"

"एक जासूसी उपन्यास है।"

"बाबूजी के सामने तो ऐसी पुस्तक नहीं पढ़ी जा सकती है?"

"क्यों?" नलिन कुछ मुस्कराकर बोला, "पिताजी इस विषय में बहुत लिबरल हैं। वे इसका कोई बुरा नहीं मानते। हम स्वयं उनका लिहाज करते हैं।"

किरण ने अपने अन्तःकरण में अपने पूज्य श्वसुर की उज्ज्वल छवि को प्रणाम किया। उनके प्रति उसकी श्रद्धा और भी छलक गई।

"वहाँ खाना-पीना कैसे होता है ?" किरण ने पुनः प्रश्न किया।

"पहले तो पिताजी दोनों जून अपना खाना खुद पका लेते थे। दूसरे का छुआ तक नही खाते थे। किन्तु कुछ दिनों बाद मास्टर साहब के आ जाने पर इस नियम में शिथिलता आ गई। अब मास्टर साहब स्वयं उनका खाना पका देते हैं। दूसरे किसी का पकाया खाना वे नही लेते।"

"ये मास्टर साहब कौन है ?"

"उनके सम्बन्ध में हममें से कोई विशेष नही जानता। शायद वे बंगाल के रहने वाले हैं। बहुत अच्छी बंगला बोलते है। बचपन मे ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। तब से कई नगरों में घूमते-घामते और संघर्ष करते, अन्त में काशी आये। तब से यही हैं। अब तक प्राइवेट रूप से ही मैट्रिक से लेकर बी० ए० तक की परीक्षाएँ दी हैं। सब में उत्तम श्रेणी और सम्मान प्राप्त किये हैं। इन दिनों वे पिताजी के द्वारा स्थापित समाज-सेवा-मन्दिर के सर्वस्व है।"

"पिताजी से उनका कैसा सम्बन्ध ?" किरण आश्चर्यपूर्वक पूछ पडी।

"वे जब से काशी आये तभी से उन्हें पिताजी का वरदहस्त प्राप्त है। उन्हें वे पुत्रवत मानते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा दूसरी जरूरतों का पूरा प्रबन्ध पिताजी स्वयं करते आये है। इसके बदले मास्टर साहब मुझे पढ़ा दिया करते है। उनका आचरण शुद्ध-सात्विक है। रहन-सहन अत्यन्त सरल और स्वच्छ। इसीलिए पिताजी की उनपर अपार कृपा बनी रहती है।

"क्या नाम है उनका ?"

"श्री अरविन्द।"

"किस जाति के हैं ?"

"अपनी जाति वे किसी को नही बताते। पूछने पर अपने को 'भारतीय' कहते है। किन्तु आकृति-प्रकृति से ब्राह्मण जान पड़ते है।"

"खाना पकाना आता है उन्हें ?"

"अच्छी से अच्छी चीजें पका लेते है। एक बार शायद वे किसी अच्छे होटल में कुक भी रह चुके है।

किरण का मन इस विचित्र युवक के सम्बन्ध में अनेक कल्पनाएँ करने लगा। उसे लगा जैसे उसके मन में अरविन्द के प्रति कोई अस्पष्ट ईर्ष्या पनप रही हो। मानो वह युवक उसके व्यक्तिगत अधिकारों में दखल देने आया हो। पुष्प होकर

वह क्या जाने रसोई पकाना ! अपने को विद्वान बना ले, कह ले ! किन्तु यह कला तो नारियों की ही धरोहर हैं। सम्भव है, वह कोई ढोंगी हो। बाबूजी का निश्चल हृदय उस पर विश्वास कर बैठा होगा।

किरण का मुख-मण्डल विचारों के ताने-बाने में कई रंग पकड़ता गया। गाड़ी आरा, बक्सर आदि मुख्य स्टेशनों पर ठहरती हुई मोगलसराय पहुँची। नलिन ने कुली बुलाकर सामान प्रतीक्षालय में रखवा दिया। किरण को पता चला कि गाड़ी वहाँ बदलनी होगी। अभी काशी जानेवाली गाड़ी में लगभग एक घंटे की देर थी। तब तक नलिन ने वेटिंग रूम में बैरा को आदेश देकर कुछ मक्खन लगी टोस्ट और चायदानी में चाय मँगा ली। नौकर के साथ दोनों चाय-पान करके फिर तैयार हो गये।

"काशी कब पहुँचेंगे ?" किरण ने पूछा।

"छह बजे शाम को।"

"स्टेशन से डेरा ज्यादा दूर होगा ?"

" नहीं, थोड़ी ही दूर है। गंगा के किनारे ही पड़ता है। तांगे से चलना होगा।"

"स्टेशन पर कोई लेने भी आयेंगे ?"

"सम्भवतः पिताजी स्वयं आयें। मास्टर साहब को भी भेज सकते हैं।"

"मास्टर साहब कौन ?"

"वही, अरविन्द बाबू। उन्हें हमलोग मास्टर साहब ही कहते हैं।"

किरण के जी में आया कि कह दे, मास्टर साहब नहीं,'रसोइया' या 'महराज' कहो। किन्तु कुछ सोचकर चुप लगा गयी। काशी वाली गाड़ी दूसरे प्लेटफार्म पर लगी थी। कुछ देर में गाड़ी खुल गई और अपने निश्चित समय पर काशी पहुँची। उस समय किरण की घड़ी में शाम के छह बजकर पाँच मिनट हो रहे थे। उसने मन ही मन पवित्र काशी नगरी को प्रणाम किया और सहमती हुई-सी प्लेटफार्म पर उतर गयी। यात्रियों की भागदौड़ के बीच स्टेशन का वातावरण कई प्रकार की ऊँची-नीची आवाजों से गूँज रहा था। देखते ही देखते सामान ले चलने के लिए वहाँ चार-पाँच कुली जुट गये। नलिन उनमें से किन्ही दो को चाहता था। उधर वे सब आपस में इसके लिए झगड़ रहे थे। इसी बीच एक ओर से साधारण खादी का कुरता, पायजामा और कपडे का जूता पहने एक सौम्य युवक बड़ी फुर्ती से वहाँ आया। नलिन के पास पहुँचकर पूछा, "क्या बात है नलिन ?"

अरविन्द ने उसकी बात सुन ली और नलिन की ओर से जवाब दे दिया, "इस काम के लिए हमीं लोग काफी हैं भाभी।"

इतने में किरण की नजर बास्केट पर गयी जो अटैची के पीछे रखा था। उसे कौन ले जायेगा, यह कहना अरविन्द भूल गया था। नलिन उसे उठाने ही जा रहा था कि किरण ने लपक कर उसे अपने हाथ में ले लिया। मुस्काती हुई बोली, "ईश्वर ने इसे मेरे ढोने के लिए रख छोड़ा है।"

तब तक अरविन्द और घीसू सामान के साथ कुछ आगे बढ़ गये थे। एकान्त पाकर नलिन ने चुटकी ली, "ईश्वर ने या मास्टर साहब ने ?"

किरण ने कुछ झेंपकर सिर झुका लिया। नलिन आगे-आगे चला। किरण उसके पीछे। बाहर आने पर ताँगा खड़ा मिला। सामान रख दिये जाने पर अरविन्द नलिन से बोला, "भाभी और तुम एक साथ बैठ जाओ। मैं ताँगे वाले की बगल में बैठ रहूँगा। घीसू पीछे बैठेगा।"

नलिन ने कहना चाहा कि सीट खाली ही है, आप भी हमारे सामने खाली सीट पर बैठ जाइये। किन्तु कह नहीं सका। अपनी-अपनी जगह सभी बैठ गये। ताँगा चल पड़ा। नलिन की बगल में बैठी किरण को अब कुछ सोचने का अवसर मिला। स्टेशन के इर्द-गिर्द हो-हल्ला बन्द हो चुका था। ताँगा अपनी स्वाभाविक गति में बढ़ा जा रहा था। अरविन्द ने किरण को 'भाभी' कह कर सम्बोधित किया था। इस सम्बोधन ने, पता नहीं क्यों, उसके मन को अजीब ढंग से गुद-गुदा दिया था। अब तक एक नलिन ही उसे भाभी कहा करता था। अरविन्द को ताँगे वाले की बगल में ऊपर बैठा देखकर वह मन ही मन झुंझला रही थी। जब सामने इतनी जगह खाली पड़ी है तो ऊपर बैठने की क्या जरूरत थी ? जब देवर बन गये तो भाभी के साथ बैठने में लाज कैसी ? या किरण के साथ बैठने से इनके निर्मल आचरण में कोई कलंक लग जाता ?

"काशी आपको कैसी लग रही है भाभी ?"

किरण नलिन के इस अचानक प्रश्न से जैसे काँप-सी गई। विचारों का बाँध टूट गया। अब उसे मालूम हुआ कि वह काशी की किसी सड़क से गुजर रही है। सफेद रुमाल से अपनी आँखें साफ करती धीरे से बोली, "बहुत अच्छी लाला !"

अपने उत्तर से वह मन ही मन लजा गई। अभी तक उसने गौर भी नहीं किया था कि काशी उसे कैसी लग रही है। अब जैसे सचेत होकर वह सड़क के दोनों ओर खड़े छोटे-बड़े मकानों और मन्दिरों को देखने लगी। रास्ते में कई मंदिरों

से सान्ध्य-आरती की घड़ी-घण्टे की आवाज कानों में गूंज जाती थी। सड़क पर कहीं-कहीं कमंडलु लिए नंग-धडंग साधु-सन्त उसे इधर से उधर जाते दिखाई पड़े। काशी के परिवेश ने उसके हृदय को छू लिया। उसके श्रद्धा-भाव छलक आये।

ताँगा एक पतली गली में दाहिनी ओर मुड़ा। अब तक रात की हल्की कालिमा काशी नगरी पर उतर चुकी थी। गली में आने पर कुछ दूर तक अंधेरा गहराया हुआ-सा लगा। किरण कुछ नही जान सकी कि वह किधर और कहाँ बढ़ी जा रही है। अचानक ताँगा एक जगह रुक गया। किरण ने बगल में कुछ ऊँचाई पर एक छोटा-सा बँगला देखा। वहाँ बरामदे से एक मद्धिम बल्ब सामने के खुले मैदान को आलोकित कर रहा था। नलिन ने उसे उतरने को कहा। वह सकुचाई हुई नीचे उतरी। अरविन्द नलिन से बोला, "तुम भाभी को लेकर आगे बढ़ो। मैं सामान के साथ आ रहा हूँ।"

नलिन आगे बढ़ा! किरण पीछे। एक छोटी सीढी पारकर दोनों ऊपर बरामदे में पहुँचे। वहाँ खड़े एक सौम्य व्यक्तित्व की ओर किरण का ध्यान आकृष्ट हुआ। बिजली के प्रकाश में उनकी लम्बी उजली दाढ़ी और बाल चाँदी की तरह चमक रहे थे। होठों पर स्निग्ध मुस्कान की रेखा खिंची थी। किरण को पहचानते देर नहीं लगी कि वही उसके श्वसुर हैं। उसने झट से घूंघट काढ़ लिया। तब तक नलिन ने भी धीरे से उसके कान में अपने पिताजी का परिचय दे दिया। किरण ने झुककर श्वसुर के चरणस्पर्श किये। नलिन ने भी उनके पैर छुए। कान्तिबाबू बोले, "बहू को भीतर ले जाओ। कमला खाना पका रही है। खा-पीकर आराम करना। दिन भर के थके होगे तुम लोग।"

आदेश पाकर नलिन किरण को साथ लिए घर के भीतर चला गया।

चार

किरण को काशी आये आज पाँच दिन हो रहे हैं। इस बीच उसने अपनी अनुभवी दृष्टि से यहाँ के संन्यासी परिवार के विषय में बहुत कुछ समझ लिया था। बंगले में उसे दो किचन मिले। भीतर के किचन का प्रबन्ध महराजिन के

हाथ में था। बाहर का किचन अरविन्द चलाता था। बाहर का किचन बाहर ही बरामदे से संलग्न छोटी कोठरी में चलता था। दोनों रसोइयों के खर्च का सम्मिलित प्रबन्ध अरविन्द के ही जिम्मे था। बाहर केवल अरविन्द और कान्तिबाबू की रसोई पकती थी। किन्तु भीतर खानेवालों की कोई निश्चित संख्या नही थी। नलिन के अतिरिक्त बाहर से जितने भी अतिथि आते थे, वे सभी कमला के ही मेहमान बनते थे। कमला अधेड उम्र की निस्सन्तान विधवा थी। अपनी रोजी-रोटी के लिए पूरी तरह कान्तिबाबू पर आश्रित थी। चौबीसों घण्टे के लिए इस घर का काम सम्भालती थी। स्वभाव अत्यन्त मधुर था। जिस दिन से किरण यहाँ आयी है, कमला का मातृ-हृदय खिल उठा है। किरण भी उसे पाकर बहुत खुश है। धीरे-धीरे दोनो एक-दूसरे की ओर खिचती जा रही है। किरण ने रसोई के कामों मे कमला का हाथ बँटाना शुरु कर दिया है।

किरण अभी बाहर बरामदे में जाने से लजाती है। अपना अधिकांश समय भीतर ही कमला के साथ बातें करने में या पूजा-पाठ में बिताती है। नलिन तो बेहिचक भीतर आता-जाता रहता है। किन्तु अरविन्द अब बहुत कम अन्दर आता है। वह प्रायः दरवाजे के बाहर ही खडा होकर कमला को समझा-बुझाकर चल देता है। किरण को उसका यह व्यवहार अच्छा नही लगता।

आज तड़के ही बाहर से चार-पाँच अतिथि आ गये। उनके खाने-पीने की तैयारी हो रही है। किरण सब्जी काट रही है। कमला मसाला पीस रही है।

"अरविन्द बाबू बडे संकोची जान पड़ते हैं दाई," किरण सब्जी बनाती हुई कमला को देखकर बोली, "भीतर आते जैसे उन्हें भय होता है।"

"यह सब उनका बडप्पन है बहूजी! ऐसा साधु लडका मैंने आज तक नही देखा। कभी किसी की ओर आँख उठाकर नही देखते।"

"दिनभर और रातभर आखिर करते क्या है?" किरण की जिज्ञासा बढ गई, "रसोई बनाने के समय ही कभी-कभी उनकी आवाज सुन पाती हूँ। शेष समय उनका कोई अता-पता नही चलता।"

"उन पर किसी एक काम का भार तो है नही बहूजी! वे कई-कई जगह कई कामों से आते-जाते रहते हैं। काशी भर में उनकी पूछ है। यहाँ रात में दो-दो बजे तक अपने कमरे में चुपचाप पढते रहते हैं।"

"मैं तो यही समझती हूँ कि जो मर्द रसोई पकाता है, वह कोई बडा काम नही कर सकता। रसोई तो हम औरतों का काम है।"

"पहले मैं भी यही सोचती थी। किन्तु अब अरविन्द बाबू को देख कर मेरा विचार बदल गया। वे रोज चार बजे भोर में ही उठ जाते हैं। तैयार होकर बाबूजी के साथ गंगा-स्नान को चले जाते हैं। बाबा विश्वनाथ को जल चढ़ाकर आते हैं और पढ़ने बैठ जाते हैं। आठ बजे के लगभग रसोई का काम शुरू करते हैं। दस-साढ़े दस बजे तक बाबूजी को खिला-पिलाकर खुद भी भोजन कर लेते हैं। दोनों का भोजन बड़ा ही सादा होता है—बिना नमक तथा बिना मिर्च मसाले की उबाली हुई सब्जी, रोटी, दूध और फल इनके मुख्य आहार हैं। साढ़े ग्यारह बजे तक अरविन्द बाबू समाज सेवा-मन्दिर में चले जाते हैं। वहाँ से लगभग चार बजे शाम को वापस आते हैं। फिर छह बजे शाम को बाहर निकल जाते हैं। प्रायः आठ-नौ बजे रात तक लौट आते हैं। रात में दस बजे तक उनकी रसोई पक जाती है। खा-पीकर देर रात तक पढते रहते हैं।"

"मतलब कि केवल चार घंटे ही सोते हैं वे ?"

कमला ने मन ही मन हिसाब लगाया। बोली, "हाँ बहूजी, आप ठीक कहती हैं। जब से मैंने बाबूजी का काम संभाला तभी से अरविन्द बाबू को देखती आयी हूँ। वे मशीन की तरह काम करते हैं।"

अरविन्द के विरुद्ध किरण का द्रोह-भाव अब तक बहुत कुछ शान्त हो चुका था। वह अनजाने ही धीरे-धीरे अरविन्द के व्यक्तित्व की ओर खिंची जा रही थी। अरविन्द जैसे उसका कोई नया आदर्श बनता जा रहा था। मानो वह कोई ऐसा क्षितिज हो जहाँ पहुँचने की साध लेकर किरण ने जन्म लिया हो। किन्तु अरविन्द उससे कतराकर क्यों रहता है ? इस परिवार में केवल उसी की तूती क्यों बोलती है ? कान्तिबाबू उस पर इतना विश्वास क्यों करते हैं ? वे किरण को भी उतना ही क्यो नही मानते ? इत्यादि प्रश्न उसके मन में उठते-गिरते रहते थे।

जब रसोई पक चुकी तो अरविन्द ने दरवाजे पर खड़े होकर पूछा, "खाना तैयार है दाई ?"

"हाँ बाबू, सब कुछ तैयार है," कमला ने घर के भीतर से जवाब दिया।

नलिन किसी काम से बाहर गया था। अतः अकेले अरविन्द को ही आतिथ्य करना था। कुछ झिझकता हुआ-सा भीतर रसोई घर के दरवाजे पर पहुँचा और थाली में परसी जाती हुई चीजों को देखने लगा। किरण खाना परोस रही थी। कमला वहीं एक ओर खड़ी थी। किरण ने अपनी कमर में साड़ी का

काछा-सा बना लिया था। उसके उज्ज्वल ललाट पर कुछ घुंघराले केश ऊपर से लटक आये थे। मुँह पर पसीने की बूंदें मोती की तरह चमक रही थीं। अरविन्द ने मानो आज पहली बार किरण को कुछ ठीक से देखा हो—ऐसा अनिन्द्य रूप तो आज तक उसकी दृष्टि में नही आया था! दूसरे ही क्षण जैसे वह संभल गया। निस्संकोच होकर बोला, "थाली लाइये भाभी!"

अरविन्द को सामने देख किरण ने अपना बँधा आँचल ठीक करना चाहा। किन्तु उसका हाथ थाली परोसने में उलझा हुआ था। मन ने भी गवाही दी, इनसे लाज कब तक की जाए! थाली परस कर अरविन्द को सुनाती हुई कमला से बोली, "दाई, कह दो कि भीतर प्रवेश न करें। नहीं तो मेरा किया-कराया सब भ्रष्ट हो जायेगा। उनका छुआ खाना हम कैसे खाएँगे?"

अरविन्द ने मुस्काकर जवाब दिया, "आगे से इसका ख्याल रखूंगा भाभी! मैं सचमुच अछूत जो हूँ!"

"इसीलिए तो इतने पवित्र है.' किरण ने दाई की ओर मुख किए तपाक से उत्तर दिया, "जिन पर दूसरों की छूत नही लगती, वे ही तो अछूत हैं!"

"मैं समझ गया," अरविन्द पुन. मुस्काया, "भाभी मुझ पर शायद नाराज हैं। लेकिन आपने मुझे गलत समझा है। मैं तो किसी से भी छूत नही मानता। मेरे लिए पवित्र और अपवित्र दोनो ही श्रद्धा के पात्र हैं।"" अच्छा, अभी खाना तो लाइये।"

"खाना देने से पहले मैं एक वादा चाहती हूँ," किरण की चञ्चल आँखों ने इस बार कुछ देर के लिए अरविन्द की शान्त-स्निग्ध दृष्टि का मुकाबला किया, ' जिससे मैं समझ सकूँ कि आप सचमुच कैसे हैं।"

"तैयार हूँ," अरविन्द सहज स्वर में बोला, "क्या वादा चाहती हैं आप?"

"यही कि आज मेरे हाथ का बना कच्चा भोजन आपको करना होगा। बोलिए, तैयार हैं?"

"ठीक है", अरविन्द मुस्काकर बोला, "ऐसे मैं तो अपना खाना पका चुका हूँ। उसका क्या होगा?"

"उसे मैं खा लूंगी!" कहने को तो किरण कह गयी, किन्तु तुरत ही अपने दुस्साहस पर लजा भी गई।

"तो ठीक है, यह भी तय रहा। किन्तु बेस्वाद खाना खाकर पछताना नहीं होगा।"

किरण ने कहना चाहा कि वह बेस्वाद खाना उसके लिए अमृत की तरह मीठा होगा। किन्तु बात कंठ तक आते-आते रुक गई। वह बारी-बारी से परसी हुई थालियों को अरविन्द के हाथ में देने लगी।

पाँच

जब किरण अरविन्द के आगे तरह-तरह के व्यंजन परस चुकी तो अरविन्द कुछ लजाया हुआ-सा बोला, "भाभी, बड़ी कृपा होती यदि इन सुस्वादु व्यंजनों के बदले कच्ची मूली और टमाटर ही मुझे दे देती। दाल के बदले थोड़ा-सा दूध अच्छा रहता। नहीं तो मेरा व्रत भंग हो जायेगा।"

किरण ने प्रश्नसूचक दृष्टि से अरविन्द को देखा। फिर बोली, "दादा भी तो एक व्रत है बाबू! क्या मेरे लिए इतना भी ......!"

"बस-बस," अरविन्द लजाकर बोला, "भूल हो गई। क्षमा करेंगी।"

जैसे ही अरविन्द ने अपना पहला कौर उठाया, उसे कुछ याद हो आया। बोला, "मेरा खाना आप कब खाएँगी भाभी? एक साथ ही क्यों नहीं खाया जाये?"

"आप निश्चिन्त रहें बाबू," किरण हँसकर बोली, "आपका खाना मेरे लिये प्रसाद के तुल्य है। उसे तो एकान्त में श्रद्धापूर्वक खाना ही ठीक रहेगा। आप पहले खा तो लें।"

"नहीं भाभी, यह नहीं हो सकता," अरविन्द आरजू भरे स्वर में बोला, "आपको मेरे साथ ही खाना होगा। नहीं तो मैं भी नहीं खाता!"

अरविन्द हाथ पर हाथ धरे बैठ गया। उसकी वह बचकानी रुआँसी आकृति इतनी भोली और मधुर लगी कि किरण कुछ देर तक अपलक निहारती रह गई। फिर बोली, "जो आज्ञा। आपके सामने खाकर आज मैं भी अपना व्रत भंग करूँगी।"

अरविन्द हाथ धोकर अपने किचन से झट-पट खाना भीतर ले आया। उधर किरण भी तैयार होकर थाली के सामने बैठ गई। दोनों आमने-सामने बैठे खाने लगे। बिना नमक का सादा भोजन भी किरण को बड़ा स्वादिष्ट लग रहा था। दोनो एक-दूसरे की पाक-कला की प्रशंसा किये जा रहे थे। बातचीत के सिलसिले में अरविन्द बोला, "पिताजी ने जब यह सुना कि हम दोनों एक-दूसरे के पकाए भोजन आज करेंगे तो उन्हें बड़ी खुशी हुई।"

"सचमुच ?"

"हाँ भाभी, आपको सचमुच वे बहुत मानते हैं। आपकी किसी इच्छा का विरोध करना नही चाहते।"

"किन्तु इतना तो साफ है कि आप दोनों मुझसे छूत मानते है। मेरे यहाँ आये आज पाँच-छह दिन हो गये। फिर भी अपनी रसोई के लिए आप लोगों ने मुझसे कोई सेवा नही ली। यह शायद इसीलिए न कि मैं अछूत हूँ ''''भाग्य-हीन हूँ !"

अपनी बात खत्म करते-करते किरण की आँखें भीग आयी। अरविन्द ने इसे परख लिया। द्रवित होकर बोला, "यह आप क्या कहती है भाभी ? आपको इतनी जल्दी रसोई का झंझट हम देना नहीं चाहते थे। मैं स्वयं तो किसी भी जीवन का आदी हूँ। किन्तु पिताजी बड़े संयम से रहते है। विचारों से रूढिवादी न होकर भी वे आचार की पवित्रता पर जोर देते हैं। इसीलिए जिनके आचरण पर उनका विश्वास नही, उनके हाथ का बना खाना वे नही खाते।"

"तो क्या मेरे आचरण पर भी उनको विश्वास नही ?"

"यह तो मैंने नहीं कहा। आप पर उनका अगाध स्नेह है। यह मैं पहले से ही जानता हूँ। मुझे विश्वास है, आपका पकाया खाना वे जरूर खा लेंगे। मैं उनसे पूछूंगा।"

"नहीं-नही, कही वे बुरा मान जाएँगे।"

"इसकी जिम्मेदारी मुझ पर रही। मैं समझता हूँ, अब जल्दी ही हमारी रसोइ आपको ही सम्भालनी होगी।"

किरण को मानो अपना खोया अधिकार मिलने जा रहा हो। इससे बढ़कर उसके नारीत्व की सार्थकता और क्या होगी ? उसे अपने ऋषि-तुल्य श्वसुर तथा अरविन्द जैसे देवर की सेवा का अवसर मिलेगा ! उसका रोम-रोम अरविन्द के प्रति कृतज्ञता से भर उठा।

खा-पीकर अरविन्द ने बाहर जाना चाहा, किन्तु किरण बड़ी दीनता के स्वर में बोली, "क्या कुछ देर और मेरे साथ नहीं बिता सकते ?"

"मन्दिर जाने का समय हो गया भाभी," अरविन्द कुछ असमंजस में पड़कर बोला, "अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट मैं आपको दे सकता हूँ।"

"धन्यवाद," किरण को जैसे मनचाहा मिल गया हो, "तो आइये मेरे साथ, मेरे कमरे में।"

"पर, आपके कमरे में ?..........अच्छा, यही सही।"

किरण अरविन्द के इस झिझक को ठीक से समझ नहीं सकी। उसने बिना कुछ सोचे-समझे अरविन्द से अपने कमरे में चलने का आग्रह कर दिया था। उधर एक अपरिचिता युवती के प्राइवेट कक्ष में एकाएक प्रवेश करने में अरविन्द के मन में विचित्र संकोच हुआ। उसने तुरत इस भाव पर काबू पा लिया।

कमरे में एक छोटे टेबुल के आमने-सामने दोनों कुर्सियों पर बैठ गये। कमरे की व्यवस्था देखकर अरविन्द को मन ही मन बड़ी प्रसन्नता हुई। बेतरतीबी कहीं नहीं दिखाई पड़ी।

"जानते हैं, मैं आपको यहाँ क्यों बुला लायी ?" किरण ने मानो कोई पहेली बुझाते हुए पूछा।

"इसका कोई विशेष अर्थ भी हो सकता है क्या ?"

"अवश्य," किरण मुस्काई, "आपको अपने कमरे में लाकर बदले मे मैं आपके कमरे में जाने का अधिकार चाहती हूँ। क्या इतना अधिकार मुझे मिलेगा ?"

"यदि मैं आपके कमरे में नहीं भी आता तो भी यह अधिकार स्वतः मिल जाता। मेरे कमरे में कोई दर्शनीय या गोपनीय चीज तो है नहीं। आज ही से उसकी एक चाबी आपके सुपुर्द कर देता हूँ।"

"धन्यवाद।"

और जब तक अरविन्द अपनी जेब में चाबी टटोलता रहा, किरण उसे ध्यान से देखती रही। अरविन्द के खिले चेहरे पर भोलेपन के सिवा उसे दूसरा कुछ नहीं मिला। किन्तु उसके मुख की इस सहज आभा ने ही किरण के मन को छू लिया था। उसने हाथ बढ़ाकर अरविन्द से चाबी ले ली।

"एक बात और बाबू," किरण कुछ याद करती हुई बोली, "क्या मुझे कभी

अपने समाज-सेवा-मन्दिर के दर्शन नही कराएँगे ?''

''जरूर भाभी,'' अरविन्द बोला, ''लेकिन आज नही, किसी दूसरे दिन। अभी तो शायद आप काशी घूमने नही निकली है ?''

किरण ने नकारात्मक सिर हिला दिया। अरविन्द बोला, ''अभी कल ही पिताजी किसी कॉलेज में आपके नामांकन करा देने की बात कर रहे थे। नाम लिखा जाने पर तो प्रायः प्रतिदिन आप बाहर जाया ही करेंगी।''

''नही-नही,'' किरण घबड़ा कर बोली, ''मेरा नाम-वाम लिखाने की जरूरत नहीं। मैं अब पढना नही चाहती।''

''यह तो ठीक नहीं है।''

''ठीक हो या बेठीक। पढ़ने में मैं अपना कोई लाभ नही देखती। जितना पढ चुकी हूँ, वही काफी है। आप मेरी ओर से बाबूजी को कृपया समझा दीजिये। कॉलेज का वातावरण मुझे काट खाता है। मैं वहाँ किसी भी शर्त पर नही जाने की।''

अरविन्द कुछ देर तक चुप रह कर सामने किरण के चेहरे का अध्ययन करता रहा। वहाँ उसे निश्चय की ज्योति दिखाई पड़ी। बोला, ''जैसी आपकी इच्छा। मैंने स्वयं भी तो एम० ए० ज्वायन नही किया। बी० ए० करते-करते मुझे लगा जैसे मैंने अपने जीवन का बहुत मूल्यवान समय नष्ट कर दिया हो। किन्तु पढ़ाई तो मैं करता ही हूँ। अगले साल प्राइवेट रूप से ही एम० ए० की परीक्षा देना चाहता हूँ। सो भी इसलिए कि पिताजी की जिद है। मैं स्वयं किसी डिग्री को ज्ञान की प्राप्ति में आवश्यक नहीं मानता। आप कॉलेज भले न जायें, किन्तु घर पर जरूर पढ़ें। नही पढने से पिताजी के मन में दुख हो सकता है।''

''आप लोग जैसा आदेश देंगे, मैं वैसा ही करूंगी,'' किरण विनीत स्वर में बोली, ''यों अपनी इच्छा मैंने आपको बता दी है।''

''अच्छा भाभी,'' अरविन्द एकाएक खड़ा होता हुआ बोला, ''अब मेरा समय हो गया। और बातें पीछे होंगी। अभी तो हमारी बातचीत का यह पहला ही दिन है। फिर भी दुनिया भर की बातें हम लोग कर गये। अच्छा, नमस्ते!''

''नमस्ते बाबू!'' किरण ने भी जल्दी से हाथ जोड़ लिए। उसके मन ने कहना चाहा कि जीवन में ऐसी तृप्ति का अनुभव उसे पहले कभी नहीं हुआ था।

किन्तु वह कुछ कह नहीं पायी। खड़ी-खड़ी सूनी दृष्टि से अरविन्द को तब तक देखती रही जब तक वह बरामदे से बाहर ओझल नहीं हो गया। उसके बाद एक विचित्र आलोड़न उसके मन में आ गया। वह भारी मन से अपने पलंग पर औंधे मुँह जा गिरी।

छह

अरविन्द मन्दिर चला गया था। नलिन खा-पीकर कालेज गया। कान्तिबाबू भी किसी काम से बाहर चले गये थे। घर के काम से निश्चिन्त होकर कमला खुले आँगन के एक कोने में चटाई डालकर खर्राटे भरने लगी। अपने पूर्व निश्चय के अनुसार किरन धीरे से कमरे के बाहर आयी। न जाने क्या सोचकर अरविन्द ने इतनी आसानी से उसे अपने कमरे की चाबी दे दी थी। मानो उसने चाबी के रूप में अपनी सारी जिम्मेदारी, अपना सारा वैयक्तिक अधिकार किरन को सौंप दिया हो। यह अधिकार पाकर किरन निहाल हो गयी थी। अब अरविन्द का कमरा उसी का कमरा था मानो। वह जैसे चाहेगी, उसका उपयोग करेगी।

चाबी को मुट्ठी में दबाये वह अरविन्द के कमरे के दरवाजे पर आयी। धीरे से ताला खोलकर भीतर प्रवेश किया। अन्दर पहुँचते ही उसने दरवाजे को पुनः भीतर से बन्द कर दिया। अब उसने सरसरी नजर कमरे में दौड़ाई। धीरे-धीरे वहाँ की एक-एक चीज पर गौर करने लगी। एक साधारण-सी चौकी पर पुराना, किन्तु स्वच्छ खादी कम्बल बिछा था। उसपर खादी की ही मोटी सफेद चादर डाली गई थी। बिना खोल का एक तकिया चौकी के कोने में पड़ा था। बिस्तर पर चारों ओर कई पुस्तकें, नोट-बुक तथा कॉपियाँ बेतरतीबी से रखी थीं। एक तरफ काठ के बड़े सेल्फ पर बहुत सारी पुस्तकें दिखाई पड़ रही थीं। बिना मेजपोश का एक छोटा टेबुल भी चौकी से संलग्न पड़ा था। उस पर पुरानी जर्मन टाइमपीस टिक-टिक

करती जा रही थी। बन्द खिड़की के पास ताल-पत्र का एक पंखा रखा था। किरण को आश्चर्य हुआ कि स्वयं उसके कमरे में सीलिंग फैन, पलंग आदि कई सुन्दर फर्नीचर तथा आराम की दूसरी चीजें दी गई थीं। किन्तु स्वयं अरविन्द ऐसे अभाव में क्यों जी रहा है! उसका ध्यान अब कमरे के कोने में रखे छोटे से ट्रंक पर गया। उसमें ताला लगा था।

कमरे में आकर किरण को जितनी खुशी हुई उससे अधिक उसकी बेतरतीबी देखकर खेद हुआ। एक पाककला-विशारद पुरुष से इससे अधिक उम्मीद ही क्या की जा सकती है! किरण के होठों पर मुस्कान की हल्की रेखा खिंच गई। उसने अपनी घड़ी की ओर देखा। अभी अरविन्द के लौटने में चार घंटे की देर थी। दूसरे ही क्षण वह साड़ी के पल्ले को कमर में बाँधकर कमरे को सफाई में जुट गयी। पहले उसने पुस्तकों को झाड़ा-पोंछा। फिर उन्हें लम्बाई-मोटाई के हिसाब से करीने से सजाया। बिस्तर पर बिखरी पुस्तकों को भी साफ करके एक ओर सजाकर रख दिया। फिर कम्बल और चादर को अपने ढंग से बिछाकर तकिये को यथास्थान रखा। इसके बाद कमरे की फर्श की सफाई करके निश्चिन्त हुई। कुछ सोचकर वह दरवाजा खोलकर अपने कमरे में आयी। अपने ट्रंक से अपनी पसन्द की मेजपोश तथा तकिये का खोल निकाला। खोल पर लिखा था 'प्रेमोपहार' और मेजपोश पर 'स्वागतम्।' प्रेमोपहार को पढ़कर वह कुछ मुस्काई। दोनों को लेकर अरविन्द के कमरे में दुबारे आयी। कमरे को पूर्ववत् भीतर से बन्द कर लिया। तकिये में खोल लगाकर तथा टेबुल पर मेजपोश बिछाकर वह सन्तुष्ट हुई।

इसके बाद वह बिस्तर पर तकिये का सहारा लेकर अधलेटी-सी पड़ गयी। अपने घर पर भी वह अपने तथा पिताजी के कमरों को स्वयं छाड़-बुहारकर साफ करती एवं सजाया करती थी। किन्तु आज इस साधारण से कमरे को सफाई कर के उसे जितनी तृप्ति मिली, उतनी पहले कभी नहीं मिली थी। यह मात्र एक दिन के परिचय का इतना-सा फल निकला। अभी जिन्दगी का न जाने कितना समय अरविन्द के साथ बिताना है। न जाने क्या सोचकर उसने सेल्फ पर रखी पुस्तकों में से एक को खींच लिया और उसके पन्ने उलटने लगी। उसे अचरज हुआ यह देखकर कि वह कोई पुस्तक नहीं, बल्कि सुन्दर जिल्द में मढ़ी हिन्दी कविताओं की पाण्डुलिपि है। अक्षर टाइप जैसे सुन्दर और स्पष्ट हैं। किरण ने जिल्द के नीचे संग्रह का नाम पढ़ा—'स्मृति के फूल।' नीचे कलात्मक अक्षरों में कवि का नाम लिखा था—'अरविन्द'। अच्छा, तो अरविन्द बाबू कवि भी हैं!

किरण ने जैसे एक नये रहस्य-लोक में प्रवेश किया हो। एक ही साँस में उसने दूसरा पन्ना उलटा। यहाँ कवि ने अपनी कृति अपने किसी प्रियजन को इन शब्दों में समर्पित की थी—'एक सुधामयी स्मृति को सप्रेम।' नीचे कविता की चार पंक्तियाँ थी—

गूँथकर तारे स्वरों को सर्जना में
जोड़कर ब्रह्माण्ड तेरी साधना में
बैठ तेरी ज्योति की मधुमय शिखा पर
फूंकता हूँ मैं सुधा की बाँसुरी रे!

—कमल"

यह 'कमल' क्या चीज है? किरण ने सोचा, यह किसी का नाम ही हो सकता है। किन्तु अरविन्द और कमल इन दो नामों का यहाँ क्या सम्बन्ध? किरण के मन में समर्पण की उदात्त भावना व्याप गयी। पंक्तियों का अर्थ वह ठीक से समझ नही पायी। किन्तु उनके भीतर की जीवन्त कल्पना ने उसे आत्मविभोर बना दिया। उसने समर्पण की पंक्तियों को कई बार पढ़ा। हर बार उनमें उसे कुछ न कुछ नया रस मिला। स्मृति का कैसा प्रसून है यह? नलिन से अरविन्द के विगत जीवन के सम्बन्ध में उसे जितनी जानकारी मिली थी उससे स्पष्ट था कि अरविन्द का जीवन संघर्षो की एक लम्बी कहानी है। तो वैसे संघर्षों में ऐसी मीठी स्मृतियाँ कैसे सम्भव हो सकती है? किरण ने दूसरा पन्ना उलटा। 'स्मृति के फूल' के प्रथम पुष्प के दर्शन किये—

"ज्योति-पथ दे प्यार मेरा!
विश्व को कमनीयता दे
स्वप्न का संसार मेरा!

दो हृदय की लीनता में
लीन हो ब्रह्माण्ड सारा
प्राण, तू हँस दे कि खिल—
जाये पुलक प्राची-किनारा!

भ्रान्त को मधु लोक दे
मृदु प्यार का आधार मेरा!"

पंक्तियो के जादू में किरण बहुत देर तक अभिभूत बनी रही। एकाएक टेबुल पर टिक-टिक करती टाइमपीस ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। चार

बजने ही वाले थे। कुछ देर में अरविन्द के आ जाने की सम्भावना थी। बाबूजी भी आ सकते हैं। वह झट-पट कविताओं की स्क्रिप्ट हाथ में लिए कमरे से बाहर आ गई। बाहर से कुण्डी में फिर ताला भर दिया और भीतर आंगन में चली आयी। कमला जग कर राम-राम कह रही थी। किरण को बाहर से आते देख जम्हाई लेती हुई बोली, "बाबूजी आ गये वह ?"

"नही तो," किरण कमला की ओर बिना देखे अपने कमरे में चली गई।

□

सात

उक्त घटना के लगभग एक पखवारे के बाद।

अरविन्द ने कान्तिबाबू से किरण की पढाई के सम्बन्ध में बातचीत कर ली थी। कान्तिबाबू को यह सुझाव अच्छा लगा कि किरण प्राइवेट रूप से ही परीक्षा की तैयारी करे। किन्तु उसे पढाने के लिए किनको शिक्षक रखा जाये, यह समस्या कान्तिबाबू के सामने आयी। अब तक वे स्वयं भी किरण से बातचीत करने लगे थे। उन्होंने इस विषय में किरण की भी राय जाननी चाही। उत्तर में वह केवल यही बोली थी, "जिन्हें आप अच्छा समझें।" सचमुच किरण काशी में किनको जानती थी ? चार-पाँच दिनों से बाहर की पाकशाला का प्रबन्ध भी किरण ने अपने कन्धे पर ले लिया था। अब केवल कान्तिबाबू का खाना बाहर पकता था।' शेष सबके खाने की व्यवस्था भीतर के किचन में ही हो गयी थी। किचन के झंझट से छुट्टी पाकर अरविन्द को अब कुछ विशेष समय मिलने लगा था। उसने अब दूने उत्साह से मन्दिर के कामों में हाथ बँटाना शुरू ... दिया था।

किरण में अन्तर है। नलिन को पढ़ाने वाले कई लोग मिल सकते थे। किरण को सभी नहीं पढ़ा सकते। कान्तिबाबू ने अपने मन मे कई परिचित लोगो को टटोलकर देखा। कोई भी इस योग्य नही ठहरा। अन्त में विवश होकर उन्हें अरविन्द से ही कहना पडा। प्रस्ताव सुनकर अरविन्द कुछ देर तक मौन पडा कुछ सोचता रहा। फिर जैसे-तैसे अपनी स्वीकृति दे दी।

इसके दूसरे दिन से ही किरण की पढ़ाई शुरू हो गई। इण्टर उसने पटने में हो कर लिया था। अब बी० ए० की तैयारी होने लगी। किरण तड़के ही उठकर तैयार हो जाती। बड़ी पवित्रता तथा मनोयोग से कान्तिबाबू का भोजन पका लेती। उसके बाद नलिन, अरविन्द आदि को हल्का नाश्ता तथा चाय देकर अपनी पुस्तकें लिए अरविन्द के पास आ जाती। पढाई शुरू हो जाती। बीच-बीच में कभी-कभी कुछ दूसरी बातों का सिलसिला भी चलता। अरविन्द की कविताओं को पढ़कर किरण ने यही समझा था कि वह भावुक प्रकृति का व्यक्ति होगा। किन्तु अब धीरे-धीरे उसका ख्याल बदलता जा रहा था। असलियत तो यह थी कि ऊपर से अरविन्द का व्यक्तित्व बड़ा ही कठोर और गम्भीर था। उसके मन के भीतर क्या है, इस पर किरण की दृष्टि जा ही नही पाती थी। वह एक पक्के, आचारनिष्ठ शिक्षक की तरह किरण को पढ़ाया करता। स्वयं किरण को अरविन्द के इस अनासक्त व्यवहार से सन्तोष नही था। वह उससे पढने-लिखने के सिवा भी कई तरह की बातें करना चाहती थी। जिस दिन अरविन्द ने उसे अपनी चाबी सौंपी थी, उसी दिन से नियमपूर्वक वह उसके कमरे की सफाई स्वयं करती रही थी। किन्तु इसके लिए अरविन्द ने आज तक कभी धन्यवाद भी नहीं दिया था। हाँ, एक-दो बार उससे बोला जरूर था कि यह काम तो वह स्वयं कर लेता था। इसमें किरण को नाहक समय नष्ट नहीं करना चाहिए। 'समय नष्ट नही करना चाहिए'—यह कितनी शुष्क बात निकली थी अरविन्द के मुख से! सुनकर किरण मन ही मन तिलमिला-सी गई थी। तकिये के खोल तथा मेजपोश के लिए भी अरविन्द ने केवल इतना भर कह देना पर्याप्त समझा था, 'इसकी क्या जरूरत थी!' किरण को आश्चर्य होता, ऐसा खूसट व्यक्ति इतनी सरस कविताएँ कैसे लिख लेता है!

आज जब किरण अरविन्द के कमरे में पढने आयी तो उसने उसे कुछ चिन्तित बैठे हुए देखा। किरण ने आते ही पूछ दिया, "क्यों, क्या बात हो गयी?"

"कौन-सी बात?" अरविन्द ने स्पष्ट ही उसके सवाल को नहीं समझा।

"कुछ चिन्तित-से दिखते हैं," किरण कुर्सी पर बैठती हुई बोली।

"कोई खास बात नहीं," अरविन्द फीकी मुस्कान लेकर बोला, "लाइये, आज क्या पढ़ना है ?"

"नहीं, मैं नहीं पढ़ती," किरण कुछ रुआँसी होकर बोली, "आप मुझसे बात तक करना नहीं चाहते !"

"बात दूसरे किस ढंग से की जाती है भाभी ?"

"तो बात करना मुझसे सीखिये," किरण साहस करके बोली, "मैं जो पूछूं, उसका सही-सही उत्तर दीजिए। तैयार हैं ?"

"किन्तु हमें तो पढना है भाभी, फिजूल बातों में समय बर्बाद नहीं करना है।"

"फिजूल बातें !" किरण गम्भीर पड़ गयी, "मेरी समझ से केवल किताबी ज्ञान के पचड़े सुलझाना पढ़ाई नहीं होता। आप मुझसे बड़े हैं। मेरी ढिठाई माफ करेंगे। भीतर और बाहर की कितनी समस्याएँ ऐसी होती हैं जिन पर बातें करने से ज्ञान का रास्ता प्रशस्त होता है।"

अरविन्द कुछ क्षणों तक किरण के मुख पर अचानक उतर आयी लालिमा को देखता रह गया। उसकी बातों के मर्म को परखने की चेष्टा करता रहा। हँसकर बोला, "आज तो लगता है जैसे मुझे ही आपसे पढना है ! समस्याओं को सुलझाने के लिए हमें बहुत से मौके मिल जाएँगे। जो समय जिस काम के लिए निश्चित हो, उसमें वही काम होना चाहिए। किताबी ज्ञान का भी अपना महत्व है। सबके सामने सब तरह की बातें खोली भी नहीं जाती।"

किरण ने चाहा कि अरविन्द की बातों का प्रतिवाद करे। किन्तु इस विषय में कुछ और अधिक बोलना उसे अच्छा नहीं लगा। अरविन्द की नजर में शायद वह अभी इस योग्य थी ही नहीं कि उससे कोई गम्भीर बात की जा सके। किन्तु पता नहीं क्यों, अरविन्द द्वारा कही गई मामूली बात भी उसके मर्म को छू गई। लगा जैसे वह भीतर ही भीतर उबल-सी रही हो। न चाहने पर भी उसका मानसिक क्षोभ उसके चेहरे की रेखाओं में अपनी झलक दिखाने लगा। अधिक देर तक अपने पर काबू नहीं रख सकी। अचानक उठ खड़ी हुई और अपने स्वर को संयत करती हुई बोली, "अभी तबीयत ठीक नहीं लगती बाबू, शाम को पढ़ लूँगी।"

अरविन्द के किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना किरण बड़ी फुर्ती से कमरे के बाहर हो गयी। अरविन्द ने ऐसा तनिक भी नहीं सोचा था कि उसकी किसी

बात का किरण के मन पर कुछ अन्यथा प्रभाव भी पड़ सकता है। उसने कोई लगने वाली बात कही भी नही थी। वह स्वयं चिन्तित अवश्य था। किन्तु यह चिन्ता ऐसी नही थी जिसके विषय मे किरण से कुछ कहा न जा सके। वस्तुतः वह किरण की पढ़ाई के बीच कोई अप्रासंगिक बात चलाना नहीं चाहता था। कुछ इसी दृष्टि से उसने अपनी बातें कही भी थी। उसके मन में यह बात स्पष्ट हो गई कि किरण की तबीयत खराब नहीं थी। उसी की बातों के कारण वह बुरा मानकर चली गई थी। कुछ देर तक बैठा-बैठा वह कुछ सोचता रहा। अन्त में अपने अन्तर्मन के सुझाव पर यन्त्रवत किरण के कमरे की ओर बढ़ गया। किरण का कमरा भीतर से बन्द था। कुण्डो खटखटाना उसे अच्छा नही लगा। वह उल्टे पाँव लौट गया।

□

आठ

दिन के चार बजे तक किरण अपने कमरे में चुपचाप पड़ी रही। कमला के बहुत समझाने पर भी उसने दोपहर का खाना नही खाया। यह कहकर टाल दिया कि उसका शरीर कुछ अस्वस्थ है। अरविन्द के पास से आकर वह अपने बिस्तर पर पड़ी-पड़ी बड़ी देर तक रोती रह गई। मन का न जाने कौन-सा तार छू गया था कि आँखें बरसती रह गईं। जब वह कुछ स्वस्थ हुई तो अपने रोने का कारण खोजने लगी। वह भीतर से इतनी कमजोर क्यों है? वह निश्चय ही अरविन्द से कुछ प्रतिदान चाहती है। तो क्यों? आज अरविन्द ने जो कुछ कहा था उसमें उसके बुरा मानने की बात ही क्या थी? यदि वह किरण को अपने व्यक्तिगत जीवन की चिन्ताओं से अछूता रखना चाहता है तो इसमें बुराई ही क्या है?

किरण अभी न जाने और कितनी देर विचारों के ताने-बाने में उलझी रहती यदि बाहर से नलिन की आवाज नहीं आती, "भाभी, सो गई क्या?"

किरण झट से उठी। बाथरूम जाकर अपने चेहरे को भीगे तौलिये से रगड़-रगड़ कर साफ किया। आश्वस्त होने पर धीरे से किवाड़ खोले। बाहर खड़ा नलिन किरण के हाथ में एक नीला लिफाफा थमाता हुआ बोला, "पिताजी पूछ रहे हैं कि आपकी तबीयत अभी कैसी है। क्या डॉक्टर को बुलाया जाये।"

"नहीं-नहीं", किरण कुछ झेंपती हुई-सी बोली, "मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ। डॉक्टर की कोई जरूरत नहीं।"

"बहुत अच्छा" कहता हुआ नलिन चला गया।

किरण ने अब लिफाफे पर दृष्टि डाली। भेजने वाले का नाम पढ़ा तो मन खिल उठा। यह शोभा की चिट्ठी थी। उसने जल्दी-जल्दी खाम खोलकर पत्र पढ़ना शुरू किया—

"प्यारी दीदी,

आपको यहाँ से बनारस गये कई महीने हो चले हैं। किन्तु आश्चर्य है, आपने अभी तक अपनी इस छोटी बहन को याद नहीं किया। मैं अब तक आपके पत्र की प्रतीक्षा में थी। आज हार मानकर स्वयं लिखने बैठी हूँ।

"आप जब से गईं, मेरा मन बराबर खिन्न रहा है। आप के सिवा मेरी सखियों में दूसरी ऐसी कोई नहीं जिससे सुख-दुख की बातें करके अपने मन को हल्का कर सकूँ। कहने को तो मेरे घर में सब कुछ है। सुख के सारे साधन हैं। माँ का अपार स्नेह मिलता है, सो अलग। किन्तु इन सबके बावजूद, पता नहीं क्यों, मेरा मन सुखी नहीं रह पाता। एक अजीब आशंका में दिल डूबा रहता है। जैसे मेरा कोई भविष्य ही नहीं हो। पढ़ने-लिखने में भी अरुचि हो गई है। घण्टों छत पर अकेली बैठी न जाने क्या-क्या सोचती रहती हूँ।

"विनोद बाबू से आपका थोड़ा परिचय हो चुका है। आप शायद यह भी जानती हैं कि मेरे व्यक्तिगत जीवन के लिए उनकी कुछ विशेष सार्थकता है। किन्तु शायद इससे अधिक आप कुछ नहीं जानतीं।··· ····अपने जीवनकाल में मेरे पापा विनोद जी के पिताजी के परम मित्र थे। दोनों ने एक दूसरे की मान-मर्यादा रखने तथा परस्पर हित-साधन करने के लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ की थीं। अपनी मित्रता को अक्षुण्ण बनाने के लिए ही मेरे पापा ने विनोद जी के पिताजी से एक वचन ले लिया था। यह वचन विनोदजी के साथ मेरे विवाह से सम्बद्ध था। अपनी इस इच्छा को पापा पूरा भी नहीं कर पाये कि क्रूर काल ने उन्हें संसार से उठा लिया। उनके स्वर्गवासी हो जाने के बाद भी विनोद जी के पिताजी हम दोनों माँ-बेटी के प्रति अपार स्नेह रखते आये थे। किन्तु अभी

मुश्किल से दस दिन हुए हैं, अचानक हृदय की गति बन्द हो जाने से उनकी भी मृत्यु हो गयी। हम दोनों माँ-बेटी के लिए यह जीवन का दूसरा सदमा है। स्वर्गीय राय साहब (विनोद जी के पिताजी) की इच्छा का ख्याल करके तथा अपने दिवंगत पति की वचन-पूर्ति के लिए मेरी माँ मेरी शादी विनोद जी से कर देना चाहती है। मैं स्वयं भी तो शायद अब तक यही चाहती रही हूँ।

"किन्तु इधर कुछ दिनों से मेरा मन एकाएक कुछ बदलता हुआ-सा प्रतीत होता है। विनोदजी मेरे बाल सखा है, यह ठीक है। किन्तु मेरे मन में अभी जो उनकी तस्वीर है वह ऐसी नही कि मैं उन्हें अपना जीवन-संगी बना लूं। इधर मेरे प्रति उनका सारा स्नेह और प्यार आरोपित-सा लगने लगा है, जैसे उनके मन से उसका कोई वास्तविक लगाव न हो। फिर, उनके कुछ आचरण ऐसे भी हैं जिन्हें मैं पसन्द नहीं करती। मेरी माँ की अनुपस्थिति में वे कई बार चोर की तरह मेरे कमरे में आ चुके हैं। पता नहीं क्या सोचकर। किन्तु मुझे घबड़ाई देखकर लौट गये है। मुझे उनसे डर लगता है अब। एक दिन माँ के चुपके मुझे देने के लिए बाजार से एक कीमती साड़ी भी लाये थे। मैंने उसे लेने से इन्कार कर दिया। तब से मुझसे मुँह फुलाए हुए हैं। संकोच के कारण मैं माँ से भी यह सब नहीं कह पाती। पिक्चर देखना इनका व्यसन है। कुछ आवारा लड़कों की संगति में इन्हें कई बार देख चुकी हूँ। पक्के नास्तिक तो हैं ही। मेरी पूजा की खिल्ली उड़ाते हैं। अपने रुपये-पैसे को पानी की तरह बहाते रहते हैं। स्पष्टतः उनकी ऐसी आदतें मुझे पसन्द नहीं।

"ऐसी परिस्थिति में मैं करूँ क्या समझ नहीं पाती। आप यहाँ होती तो कुछ कह-सुनकर मन को हल्का कर लेती। शायद कोई समाधान भी मिल जाता। किन्तु मेरे दुर्भाग्य से आप भी मुझे छोड़कर दूर चली गईं। आशा है, पत्र लिखकर मेरा उचित पथ-प्रदर्शन करेंगी।

"आप वहाँ कैसी हैं? पढाई ठीक से चल रही है न? माँ से मैंने कई बार काशी चलने का आग्रह किया है। अगले महीने पूर्णिमा के रोज हमदोनों काशी आ रही हैं। विशेष बातें वहीं होंगी। गलतियों को क्षमा करेंगी।

स्नेहाधीन,
शोभा"

पत्र पढ लेने के बाद किरण कुछ क्षणों तक चिन्तित-सी बैठी रही। उसने पत्र को दुबारे पढ़ा। उसे अपने सिरहाने तकिये के नीचे रखकर बाहर निकलना

ही चाहती थी कि कमला ताजे फलों की टोकरी लिये सामने आकर खड़ी हो गयी। बोली, "बाबूजी ने आपके लिए फल भेजे हैं।" किरण के मन में अपने पूज्य श्वसुर का स्नेह उमड़ पड़ा। फलों की टोकरी को एक तरफ रखकर बाथरूम में घुस गई।

× × × ×

बनारस आने के बाद आज पहली बार किरण नलिन के साथ गंगा के किनारे घूमने आयी है। सन्ध्या का समय है। आज सुबह में अरविन्द से मान करके वह जिस प्रकार भागी-भागी अपने कमरे में आ गयी थी, उसका ज्वर अब बहुत कुछ उतर चुका था। असी घाट पर आकर दोनों ने एक नाव ली। उस पर बैठकर दशाश्वमेध की ओर चल पड़े। पूनो की सुहावनी सांझ थी। चांद की शुभ्र किरणें गंगा की शांत लहरों पर प्रतिबिम्बित होने लगी थीं। किरण की नाव के आस-पास नौकाविहार करने वालों की दूसरी कई नावें थी। किनारे से संलग्न छोटे-बड़े मकानों एवं मन्दिरों के सिलसिले चांदनी में बड़े अच्छे लग रहे थे। किरण कुछ देर के लिए वर्तमान से दूर किसी स्वप्नलोक के सम्मोहन में विचरण करने लगी। अचानक नलिन की वाणी ने उसका स्वप्न भंग किया, "आज मास्टर साहब ने आपको मन्दिर के उत्सव में आमन्त्रित नही किया भाभी ?"

"आमन्त्रित ?" किरण नलिन की बात जैसे पकड़ नहीं पायी हो, "क्यों ? आमन्त्रण की कोई विशेष बात है क्या ?"

"आपको यह भी नही मालूम ?" नलिन आश्चर्य के साथ बोला, "आज मन्दिर के तत्वावधान में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन है। मन्दिर के कुछ अच्छे कलाकार इसमें अपनी कला का प्रदर्शन करेंगे। मास्टर साहब का भी भाषण है।"

"आज यह सब क्यों हो रहा है ?"

"मन्दिर के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए। कुछ नये विभाग खुल जाने से खर्च काफी बढ़ गया है। मास्टर साहब इधर इसी चिन्ता में पड़े हुए हैं। आज नगर के प्रायः सभी सेठ-साहूकारों तथा सहृदय लोगों को अनुष्ठान सफल करने के लिए आमन्त्रित किया गया है।"

"हो सकता है," किरण कुछ ऐसे लहजे में बोली, मानो बातचीत के इस प्रसंग से उसका कोई मतलब न हो। उसे सचमुच आश्चर्य हुआ यह सोचकर

कि अरविन्द ने इस अनुष्ठान की मामूली सूचना तक उसे नहीं दी थी। किन्तु अरविन्द की जिज्ञासाओं की जैसी व्याख्या नलिन ने अभी की थी, उससे किरण के मन में एक नयी शंका उत्पन्न हो गई। आज अपने कमरे में अरविन्द कुछ इन्हीं कारणों से खिन्न दिख रहा था क्या? क्या उसकी अपनी कोई व्यक्तिगत चिन्ता नहीं? सारी चिन्ताएँ सामाजिक मुद्दों से ही सम्बन्ध रखती हैं? आखिर उसका अपना व्यक्ति कहाँ सोया रहता है? इस व्यक्ति की आँखें क्या सदा के लिए टप पड़ गयी हैं? ……… तो किरण की धारणा शायद गलत थी कि अरविन्द उसे अपने व्यक्तिगत सुख-दुख का हिस्सेदार बनाना नहीं चाहता। तो क्या अपनी सामाजिक समस्याओं को भी वह उतना ही गोपनीय समझता है?

किरण का मन सामने गंगा की धारा में लहरों के साथ चाँदनी की आँख-मिचौनी से दूर जैसे कोई गुत्थी सुलझाने में लग गया। वह समझ नहीं पा रही थी कि आज सुबह अपने आहत आत्म-सम्मान का कौन-सा चक्र अब भी उसके मन में घूम रहा है। जितना ही अरविन्द के विचारों से अपने मन को अलग रखना चाहती है, उतना ही वह उनमें अधिकाधिक उलझती जा रही है। आखिर यह मन्दिर कैसा है जिसके लिए अरविन्द ने अपने व्यक्तिगत सुख-दुख को भी भुला दिया है? उसने कई बार अरविन्द से मन्दिर दिखाने का आग्रह किया था। किन्तु हर बार वह यही कहकर बात टालता रहा कि समुचित अवसर आने पर वह स्वयं किरण को वहाँ ले जायेगा।

"कार्य-क्रम का आरम्भ कब से है लाला?" किरण ने मौन भंग किया।

"साढ़े सात बजे से।"

किरण ने चाँदनी के प्रकाश में अपनी घड़ी पर नजर दौड़ाई। अभी सवा सात बज रहे थे। एक बार इच्छा हुई कि नलिन को साथ लेकर मन्दिर देखने चली जाये। कुछ सोचकर बोली, "किन्तु मुझे तो निमन्त्रण मिला नहीं है। बिन बुलाए जाना क्या ठीक रहेगा?"

"अपने आत्मीय जनों को निमन्त्रण देना कोई जरूरी तो नहीं भाभी! हाँ, इसकी सूचना कम से कम आपको अवश्य मिल जानी चाहिए थी। क्या आज मास्टर साहब ने इस विषय में आपसे कोई बात नहीं की?"

"नहीं तो।"

लेकिन तभी किरण को कुछ स्मरण हुआ। आज अरविन्द के कमरे में वह जितनी देर रही थी, दोनों के दोनों कुछ दूसरी ही बातों में उलझे रह गये थे।

थोड़ी देर में वह वहाँ से हठात अपने कमरे में चली आई थी। और फिर दिनभर वहाँ अपने को बन्द किये पड़ी रह गई। सम्भव है, अरविन्द को उसे निमन्त्रण देने का, अथवा इस विषय में कुछ कहने का मौका ही नही मिला हो। यह तो और अच्छा रहेगा यदि किरण अरविन्द के चुपके मन्दिर जाकर वहाँ सब कुछ देख आये।..........

"तो लाला, माँझी को कहो कि वह नाव जल्दी घाट लगाये। समय बहुत कम है। हम दोनों मन्दिर चलें।"

नलिन तो यह चाहता ही था। यदि किरण उसे यहाँ नही लाई होती तो अब तक वह मन्दिर जा चुका होता। उसने बड़ी खुशी से माँझी से दशाश्वमेध पहुँचाने को कहा। थोडी देर में नाव निर्दिष्ट स्थान पर आ लगी। पैसा चुकता करके दोनों विश्वनाथ का मंदिर होते हुए गुजरे। एक सँकड़ी गली से दोनों आगे बढते गये। करीब आधे घंटे तक चलने के बाद उसे सामने अशोक की पत्तियों से सजा तथा बिजली बत्तियों से जगमगाता मन्दिर का प्रधान गेट दिखाई पड़ा। प्रवेश-द्वार पर बड़े-बडे कलात्मक अक्षरो में लिखा था—'समाज-सेवा-मन्दिर' तथा उसके नीचे 'स्वागतम्'। बहुत सारे लोग बाहर-भीतर आ-जा रहे थे। भीतर प्रवेश करने पर लगभग एक एकड़ मैदान में फैले मन्दिर के कई कक्ष दिखाई दिये। बाहर से ही ललित समवेत गान की ध्वनि किरण के कानों में थिरकने लगी। प्रवेश-द्वार पर अतिथियों का स्वागत करने के लिए मन्दिर की चार स्वयंसेवक लड़कियाँ तथा दो लडके पहले से ही खड़े थे। स्वयसेवक अभ्यागत पुरुषों और महिलाओं को अपने साथ भीतर ले जाकर निर्दिष्ट स्थान पर बैठा आते थे। नलिन से पूछने पर किरण को ज्ञात हुआ कि वहाँ सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए टिकट नही बेचे जाते थे। जिनको जितना दान करना होता था, कार्यक्रम के अन्त में वे मन्दिर के सचिव अरविन्द को दे देते थे।

स्वयंसेविकाएँ किरण तथा नलिन को साथ लेकर भीतर आईं। उन्हें मन्दिर के प्रशस्त प्रांगण में लगे शामियाने में बिठा दिया गया। वहाँ महिलाओं के बैठने के लिए अलग व्यवस्था थी, अतः किरण को नलिन से आगे कुछ दूरी पर बैठना पड़ा। दर्शकों की संख्या ज्यादा तो नही थी, फिर भी जितनी थी वह कम भी नही कही जा सकती। कार्यक्रम का प्रारम्भ किरण के आने के पहले ही हो चुका था। किरण के आगे-पीछे दूसरी कई महिलाएँ बैठी थी। इससे वह आश्वस्त हुई कि उस छोटी-सी भीड़ में भी वह अपने को छिपाये रख सकेगी।

समवेत गान के बाद संगीत का कार्यक्रम शुरू हुआ। पर्दे के पीछे कोई माइक

प्रकाश में ही आज के सन्दर्भ में उन्हें परिभाषित किया जा सकता है। कोई भी जाति केवल अपने अतीत के नाम पर नहीं जी सकती। जिसे हम आज अच्छा कहते हैं, सम्भवतः वह कभी बुरी चीज मानी जाती थी। आज का बुरा भी या तो पहले अच्छा था, या भविष्य में अच्छे की कोटि में आ सकता है। काल के अविच्छिन्न प्रवाह में हमारे सामाजिक संस्कार स्वभावतः नये-नये अर्थों में प्रकाशित होते रहे हैं। *अभी आज के तथाकथित धार्मिक सन्दर्भ में हमारे असंख्य भाई-*बहनों का जो शोषण हो रहा है, वह हमारे राष्ट्रीय चरित्र के लिए कलंक की बात है।

"मानव धर्म और दर्शन का इतना अंश सबके लिए सहज है कि दूसरों के साथ प्रेम-भाव रखकर हम दूसरों का जितना भी कल्याण करते हैं उससे कहीं अधिक हित हम स्वयं अपना करते हैं। संसार का प्रत्येक मनुष्य मनुष्य ही तो होता है। वह स्त्री हो या पुरुष, गोरा हो या काला, मनुष्य की कोटि में ही आता है। जात-पाँत, देश-विदेश, छूत-अछूत आदि के भेद तो ऊपर से आरोपित हैं, अतः अवांछनीय हैं। नियति के दुर्दमनीय चक्र को, पुनर्जन्म के सिद्धान्त को आप न मानें, प्रारब्ध को आप न मानें। किन्तु कम से कम इस जीवन के औचित्य में तो आपकी आस्था होनी ही चाहिए। आप भरपेट खाएँ और वही आपका दूसरा भाई भूखा रहे, आप स्वयं अन्यायपूर्वक जीएँ और वही किसी निरपराध का गला घोंटें—यह सब कहाँ का धर्म है? इस पुरुषशासित समाज में आप स्वयं तो धर्म की परिभाषा अपने अनुकूल बनाकर कई-कई शादियाँ करें, व्यभिचार करके भी अपने को धर्मात्मा घोषित करते रहें, और वही अपनी पत्नियों एवं बहनों को पतिव्रत की महत्ता बताएँ, उनकी छोटी-सी भूल पर भी कड़े से कड़े दण्ड की व्यवस्था करें—यह सब कहाँ का न्याय है?

"हमारे सामाजिक जीवन में जितनी कुरीतियाँ प्रचलित हैं, यह समाज-सेवा-मंदिर, लाख चेष्टा के बावजूद, उन सबको नहीं मिटा सकता। किन्तु आदर्श समाज के निर्माण में यदि इसके द्वारा एक ईंट भी जोड़ी गई तो मैं समझूंगा कि हमारा परिश्रम सार्थक हुआ, हमारे स्वप्न फलित हुए। त्रुटियाँ तो सर्वत्र हैं। उन्हें होना भी चाहिए, क्योंकि उनके बिना सचाई की परख नहीं हो सकती। अतः मन्दिर के कार्यक्रम में, इसकी सेवाओं की प्रणाली में, आप जो कमियाँ पाते हों, उनके लिए न केवल हम क्षमाप्रार्थी हैं, वरन् उनके सुधार के लिए आपकी सर्जनात्मक आलोचना की भी कामना करते हैं।"

अरविन्द का सारगर्भित संक्षिप्त भाषण जब तक चला, उपस्थित जन-समूह तन्मय होकर उसे सुनता रहा। भाषण की समाप्ति पर तालियों की गडगडाहट हुई। किरण को आज पहली बार अरविन्द के मुख से एक साथ इतनी बातें सुनने को मिली थीं। अरविन्द की वक्तृता की एक बड़ी विशेषता यह थी कि उसका कोई भी शब्द उसके कण्ठ से फूटता हुआ नहीं जान पड़ता था। मानो उसके शब्द-शब्द में उसके संवेदनशील व्यक्तित्व का अनुगूज फैलता जा रहा हो। भाषण करते समय उसके सौम्य मुखमण्डल पर भावों के जो विविध रंग जगते-मिटते थे उनके कारण उसके शब्दों की शक्ति द्विगुणित-सी हो जाती थी। भाषण के अन्त में अरविन्द ने घोषणा की कि जो कोई भो अपनी शक्ति के अनुसार कुछ दान करना चाहें, वे कृपया उसके दान-पात्र में देते जाएँ। जो नहीं भी कुछ देना चाहे, उनके हार्दिक सहयोग मात्र से मंदिर अपने को कृतार्थ समझेगा।

घोषणा के लगे बाद अरविन्द ने तांबे का एक पात्र उठाया और उपस्थित लोगों की भीड़ में उसे लेकर घूमने लगा। बहुत से लोग पहले से ही कुछ न कुछ दान-राशि लेकर चले थे। ऐसे लोगों की उदारता से अरविन्द का पात्र भरता जा रहा था। किरण बड़े चक्कर में पड़ी। एक तो अरविन्द के सामने आने पर उसके पहचाने जाने का डर था, दूसरे वह दान-पात्र के लिए अपने साथ कुछ भी तो नहीं लाई थी। उसके सामने से अरविन्द खाली हाथ लौट जाए, यह भो उसे सह्य नहीं था। उसका ध्यान एकाएक अपने गले की कीमती सोने की चेन पर गया। दूसरे ही क्षण पुलकित होकर उसने चेन को इस तरह निकाला जिससे दूसरा कोई भाँप नहीं सके। कुछ देर में अरविन्द उसके सामने भी आया। उसने घूंघट काढ़कर चेन को पात्र में डाल दिया। अरविन्द जल्दी ही आगे बढ़ गया। किरण ने चैन की साँस ली। वह अरविन्द की नजर से किसी तरह बच गई।

सभा भंग हो जाने के बाद किरण ने पीछे मुड़कर नलिन की ओर देखा। किन्तु वह कहीं नहीं दिखाई पडा। कुछ घबड़ाई हुई-सी वह उसे भीड़ में खोजने की चेष्टा करने लगी। ठीक इसी समय मन्दिर की दो स्वयंसेविकाएँ उसके पास आईं और उसे देखकर मीठे स्वर में पूछा, "शायद आप ही किरण दी हैं न ?"

किरण कुछ अचम्भे में पड़कर बोली, "जी हाँ, मेरा ही नाम किरण है। किन्तु बात क्या है ?"

"वाह दीदी, खूब छिपने चलीं आप भी," उनमें से एक मोठी हँसी हँसकर बोली, "बहुत दिनों से आपके दर्शन की लालसा थी जो आज पूरी हुई। चलिये भीतर, हमें कृतार्थ कीजिए।"

"नही, लेकिन", किरण कुछ कौतूहल और घबड़ाहट के मिश्रित स्वर में बोली, "आप लोग शायद किसी दूसरी किरण को खोजती होंगी। मैं तो अपने एक आदमी को खोज रही हूँ जो मुझे साथ लेकर यहाँ आये थे। पता नहीं किधर चले गये!"

ठीक इसी समय नलिन भी कही से घूमता-घामता वहाँ आ पहुँचा। किरण से मुस्का कर बोला, "इतनी जल्दी आपने यहाँ के लोगों के साथ परिचय भी बढ़ा लिया भाभी?"

"ओह लाला, तुम?" किरण कुछ रंज के-से स्वर में बोली, "मुझे अकेली छोड़कर चले किधर गये थे?"

"लेकिन आप यहाँ अकेली नही दीदी", दूसरी स्वयंसेविका बोली, 'नलिन बाबू को हम सब अच्छी तरह जानते हैं। आप उनकी भाभी हैं, यह भी हमसे छिपा नही है। और सबसे बड़ी बात तो यह कि आप हमारे श्रद्धेय मास्टर साहब की शिष्या हैं—हैं न?"

"लेकिन......"

"लेकिन-वेकिन हम कुछ नही सुनेंगी", पहली स्वयंसेविका बोली, "हमें मास्टर साहब का आदेश है कि आपको मन्दिर के भीतर सादर ले चला जाये।"

और दोनों स्वयंसेविकाएँ दोनों ओर से किरण के हाथ पकड़कर उसे बड़े छोह के साथ मन्दिर की ओर ले चली। किरण ने नलिन की ओर एक प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। इच्छा और अनिच्छा के द्वन्द्व में वह एक सजे-सजाये कमरे में प्रविष्ट कराई गई। वहाँ सबसे पहले उसकी नजर कान्ति बाबू पर पड़ी। वे उसे वहाँ देखते ही स्नेह से मुस्का पड़े। किरण ने झुककर उनके चरणों का स्पर्श किया और सलज्ज भाव से एक ओर खड़ी हो गई।

"अच्छा किया बेटी, जो तुम खुद ही यहाँ चली आई", कान्ति बाबू किरण से बोले, "मैंने सोचा था कि अरविन्द ने आज के समारोह की सूचना तुम्हें अवश्य दे दी होगी। ऐसे तो आज दिन भर तुम अस्वस्थ ही रही। उसे या मुझे तुमसे मिलने का मौका भी कहाँ मिला? शाम को तुम्हारी कुशल जानने के लिए मैंने यहाँ से एक आदमी को दौड़ाया। पता चला कि तुम नलिन के साथ घूमने निकल गई हो। इससे खुशी हुई कि तुम स्वस्थ हो गई हो। किन्तु अफसोस भी हुआ कि जब तुम टहलने जा सकती थी तो यहाँ भी बुलाई जा सकती थी। तुम्हें समय पर कोई खबर नही दे सका!"

"जी, मेरी तबीयत में कोई खास गड़बड़ी नहीं थी", किरण कुछ लज्जित स्वर में बोली, "नलिन बाबू ने ही मुझे यहाँ के कार्यक्रम के सम्बन्ध में बताया।"

किरण ने कमरे में एक सरसरी नजर दौड़ाई। ट्यूब लाइट के दुधिया प्रकाश में अब तक उसे घेरे कई छोटी-बड़ी लड़कियाँ तथा लड़के इकट्ठे हो गये थे। सबको अपनी ओर उत्सुक नेत्रों से निहारते देखकर वह झेंप-सी गई। कान्ति बाबू ने अपनी अनुभवी आँखों से किरण के संकोच को ताड़ लिया। बोले, "ये सब तुम्हारे ही भाई-बहन हैं बेटी, इन्हें दूसरा न समझो। ये सब हमारे समाज द्वारा ठुकराये इन्सान के बदकिस्मत बच्चे हैं जिन्हें मन्दिर में स्नेह की छाँह मिलने लगी है। अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रायः सब कुछ खोकर अब इनमें ही अपनी सिद्धि मानता हूँ। यदि यह कहूँ कि इस मन्दिर की स्थापना में तुम्हारे दुखी जीवन की ही प्रेरणा है तो अत्युक्ति नहीं होगी। एक व्यक्ति के दुख दर्द ने समाज के कितने निरीहों, पीड़ितों और अनाश्रितों को शरण दी है। किन्तु मन्दिर के स्वप्न को साकार करनेवाला अरविन्द ही है बेटो! मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। अरविन्द के अतुल त्याग तथा सेवा-भाव से इस मन्दिर को प्रत्येक ईंट जड़ी हुई है। अवस्था में वह अभी पूरा जवान भी नही कहा जा सकता। किन्तु अनुभव तथा चरित्र-बल की दृष्टि से वह सचमुच हमसे भी वृद्ध है। इसीलिए तो काशी के विद्वत्-समाज में उसका इतना आदर है। भगवत् प्रेरणा से ही देवदूत की तरह वह न जाने कहाँ से एक दिन मेरे पास आ गया। और अब तो मुझे ऐसा लगता है कि उसमें मेरा खोया हुआ प्रशांत ही मिल गया हो!"

कान्ति बाबू की आँखें इतना कहते-कहते छलछला आईं। आँखों को पोंछने की कोशिश भी उन्होंने नही की। वहाँ उपस्थित लड़के और लड़कियाँ कान्ति बाबू की बातें सुनकर प्रभावित हो गये। उन सबका हृदय उनकी सहृदय वाणी से आप्यायित हो उठा। किरण की मानसिक स्थिति विचित्र-सी हो गयी। अचानक उमड़ते आँसुओं को पी जाने का प्रयास करती रही। किन्तु सफल नही हो सकी। इच्छा हुई कि अपने पूज्य श्वसुर के चरणों पर लोट-पोट कर हृदय को हल्का करले। किन्तु तभी कान्ति बाबू मानो प्रकृतिस्थ होकर बोले, "ले जा बिन्दु, किरण को अपने साथ ले जाकर मंदिर दिखा दे। दूसरो बहनों से भी इसका परिचय करा दे।"

बिन्दु उम्र में किरण से कुछ बड़ी थी। उसने बड़े आदर और स्नेह के साथ किरण का हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसे साथ लिये कमरे से बाहर हो

गयी। अब तक सभा का भीड़-भड़ाका समाप्त हो चुका था। शामियाने से फर्नीचर तथा दूसरे सामान हटाये जा रहे थे। खिली हुई चाँदनी में किरण की अश्रु-सिक्त दृष्टि ने कुछ दूर से ही अरविन्द को पहचान लिया। वह मन्दिर के छोटे-बड़े लड़कों के साथ स्वयं भी एक बड़ी-सी कुर्सी उठाये मन्दिर के किसी कक्ष की ओर बढ़ा जा रहा था। उसे देखकर किरण के मन में उसके प्रति एक गहरी प्रीति और सम्मान का भाव व्याप गया। आँचल से आँखों को साफ करते हुए बिन्दु से पूछा, "आपलोग यहाँ मुझे कैसे जानती है बहन ?"

"आपकी चर्चा गुरुजी बराबर करते रहते है", बिन्दु ने उत्तर दिया, "वे जब भी आपको याद करते हैं, उनकी आँखें भर आती हैं। हमलोग वर्षों से यह देख रहे है।"

"गुरूजी कौन ?"

"वही—आपके पूज्य श्वसुर। उन्हें हम मदिर के सदस्य गुरूजी ही कहा करते है।"

किरण ने अपने अन्तःकरण में कान्ति बाबू की पावन मूर्ति को प्रणाम किया। उसने अपने खोटे भाग्य को भी सराहा जिसके चलते उसे ऐसे धर्मात्मा श्वसुर की प्राप्ति हुई थी।

"मेरे आज यहाँ आने के सम्बन्ध में क्या अरविन्द बाबू जानते हैं ?" किरण ने बिन्दु से अचानक प्रश्न कर दिया।

"जी हाँ," बिन्दु बोली, "मेरे सामने ही उन्होने आपको बुला लाने के लिए दो स्वयसेविकाओ को भेजा।"

किरण को आश्चर्य हुआ कि उसका यहाँ आना जान करके भी अरविन्द कुछ देर के लिए भी उसके पास अब तक आया क्यों नहीं। आज सुबह किरण के अप्रत्याशित व्यवहार से कही वह रूठ तो नहीं गया है ! आज वह व्यर्थ ही उसके कमरे से भाग आयी थी। दिनभर का मानसिक क्लेश भी निरा पागलपन था। जिसके उज्ज्वल चरित्र की प्रशंसा करते उसके महात्मा श्वसुर भी नही अघाते, उसी के सम्बन्ध में वह कैसी-कैसी बेसिर पैर की बातें सोचती रही थी !

"अरविन्द बाबू यहाँ करते क्या है बहन !" किरण ने पुनः प्रश्न किया।

"वे कोई एक काम तो करते नहीं दीदी," बिन्दु बोली, "मन्दिर के प्रत्येक सदस्य के साथ उनका सहृदय सम्बन्ध है। वे उनकी शिकायतें ध्यान से सुनते हैं और उन्हें दूर करने के यथोचित उपाय करते हैं। जहाँ कही भी उन्हें किसी अनाथ भाई-बहन अथवा उपेक्षित या पतित बहनों की खबर मिलती है, वे स्वयं जाकर उन्हें स्नेहपूर्वक मन्दिर में लाते है। प्रायः प्रतिदिन की प्रार्थना-सभा में

भाग लेते और सदस्यों को गीता का मर्म समझाते हैं। मन्दिर की सफाई वे स्वयं करते तथा दूसरों से कराते हैं। मन्दिर द्वारा संचालित शिल्प, शिक्षा तथा चिकित्सा नामक तीनों विभागों की देख-रेख करते हैं। उनके अधिकारियों को उचित निर्देश देते रहते हैं।" संक्षेप में, वे मन्दिर के प्राण हैं।"

बिन्दु अबतक किरण को साथ लिये मन्दिर के शिल्पकक्ष में आ गयी थी। वहाँ इस समय कोई नहीं था। कई सिंगर मशीनें, चरखे, करघे आदि यथा-स्थान रखे थे। मन्दिर के सदस्यों द्वारा बुने गये वस्त्रों के आकर्षक नमूने तथा हस्त-शिल्प की कई दूसरी सामग्री कक्ष की दीवारों पर बारीकी से सजायी गयी थी।

"इसके क्लास कौन लेते हैं ?" किरण ने पूछा।

"इस कक्ष की व्यवस्था तीन शिक्षकों की देख-रेख में होती है—इनमें दो महिलायें तथा एक पुरुष शिक्षक हैं। इन तीनों के अतिरिक्त मन्दिर की ही कुछ दूसरी सदस्यायें भी हैं जो अब अपना प्रशिक्षण पूरा करके अपने दूसरे भाई-बहनों को प्रशिक्षित करती हैं।"

बिन्दु किरण को अब शिक्षा-कक्ष में ले जाने लगी। रास्ते मे किरण ने पूछा, "आप यहाँ कब से हैं बहन ?"

"जब से यह मन्दिर शुरु हुआ तभी से," बिन्दु ने उदास मुस्कान लेकर कहा, "मैं भी दुर्भाग्य की मारी एक बेसहारा पतिता हूँ बहन! माता-पिता पहले ही मर चुके थे। मझधार में पड़ी समाज के अत्याचारों का शिकार हो रही थी। मास्टर साहब ने मुझे बचा लिया।"

बिन्दु की भीगी आँखों को तो किरण चाँदनी के धुँधलके में नहीं देख पायी, किन्तु उसके टूटे स्वर से ही उसकी आन्तरिक पीड़ाओं का उसे परिचय हो गया। किरण उसे आश्वस्त करती हुई बोली, "दुखों के छोटे या बड़े दायरे में तो हम सभी बँधे हैं बहन! उनसे छुटकारा कहाँ है ? फिर भी इस नश्वर जीवन को सार्थक करने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही होगा। आप सब यहाँ जिस उज्ज्वल साधना में लगी है, वह निश्चय ही ऐसे सारे दुखो के दंश को दूर करने वाला है। आज मैं पहली बार यह महसूस कर रही हूँ।"

किरण के भावोद्गार मन्दिर के प्रति उसकी सद्यः उदित आस्था के द्योतक थे। बिन्दु का दुखी मन किरण के आत्मीयता भरे शब्दों से आश्वस्त हो गया। शिक्षा-कक्ष में किरण ने तीन प्रशस्त कमरे देखे। एक में पुस्तकालय था। दूसरे

किरण ने बिन्दु को वचन दिया कि वह अब कुछ न कुछ समय निकाल कर अपने को मन्दिर की सेवा में लगायेगी।

अन्त में बिन्दु किरण को लिये फिर उसी कमरे में लौट आयी जहाँ पहले उसे कांति बाबू मिले थे। इस बार वहाँ कांति बाबू के बदले अरविन्द को देखकर किरण कुछ अकचकाई। अरविन्द ने मुस्काते हुए उठकर किरण का स्वागत किया। बोला, "हमारे सौभाग्य से आज आप खुद ही आ गयी भाभी! मैंने तो आज कई बार कोशिश की। किंतु आपसे भेंट हो नहीं हुई।"

अभी-अभी मन्दिर के जीवन से परिचित होकर किरण के मन मे हुलास छा गया था। अरविन्द के प्रति उसकी आस्था और भी दृढतर हो गयी थी। दिनभर के मानसिक तनाव के बाद अरविन्द को एकाएक सामने देख किरण समझ नहीं पायी कि उससे क्या बोले। किसी तरह अपने स्वर को संयत करती हुई बोली, "यह मेरा ही दुर्भाग्य था बाबू, कि आज फिर आप से भेंट नहीं हो सकी!"

अरविन्द को लगा जैसे किरण का मान अभी खत्म नहीं हुआ है। उसने वहाँ खड़ी बिन्दु की ओर देखकर कहा, "अब आप जा सकती हैं बिन्दु बहन! भाभी को अब मुझे डेरा पहुँचाना होगा।"

बिन्दु ने किरण और अरविन्द को प्रणाम किया और कमरे से बाहर हो गयी। अब वहाँ किरण और अरविन्द के सिवा दूसरा कोई नहीं था। हाँ, बाहर शामियाने में अभी भी कुछ लोगों के बोलने-चालने की मिश्रित आवाज सुनायी पड़ रही थी।

"आप अभी तक मुझ पर रंज हैं भाभी", अरविंद सहज स्वर में बोला, "मैं ने शायद ऐसी बात कह दी थी जिससे आपके मन को चोट लग गयी। किंतु अनजाने ही यह सब कुछ हो गया। मैं सच कहता हूँ, मैंने जान-बूझकर आपको कोई कष्ट पहुँचाना नहीं चाहा था।"

"अब मुझे और अधिक लज्जित न करें", भावविह्वल किरण पश्चात्ताप के स्वर में बोली, "आप तो बहुत महान हैं। वहाँ तक मेरी क्षुद्र बुद्धि की पहुँच कैसे हो सकती है! सच, मैं आपको पहचान नहीं पायी। आप तो देवता हैं बाबू, मेरे आराध्य हैं।"

किरण प्रबल भावावेश में कुछ क्षणों तक अपने अस्तित्व को जैसे भूल गयी और झुक कर अरविन्द के पैरों को पकड़ लिया। देखते ही देखते उसकी आँखों से गंगा-यमुना बहने लगी। स्तम्भित अरविंद को अचानक यह सब कुछ अकल्पित

में लड़कियाँ पढ़ती थी। तीसरे में लड़कों के पढ़ने की व्यवस्था थी। कमरे की दीवारों पर जगह-जगह महात्मा गाँधी, अरविन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि महापुरुषों के चित्र टँगे थे। कहीं-कहीं लाल रंग के कलात्मक अक्षरों में गीता के प्रसिद्ध श्लोक, गायत्री मंत्र तथा प्रेरक सूक्तियाँ लिखी थी। फर्श पर बेंच कुर्सी के बदले खजूर की चटाइयाँ बिछी थी।

अब किरण एक ऐसे कक्ष की ओर ले जायी जा रही थी जो इधर के कक्षों से सर्वथा अलग एक स्वतन्त्र भवन था। उसमें जाने के लिए स्टील का फाटक पार करना पड़ा। भवन के प्रवेश द्वार पर लिखा था —'चिकित्सा-कक्ष।' उसमें इस समय भी एक डॉक्टर अकेले बैठे कुछ पढ़ रहे थे। उनके सामने एक सजा-सजाया टेबुल था। दरवाजे के हिस्से को छोड़कर दीवारों से संलग्न कई आलमारियाँ खड़ी थी जिनके शीशे से दवाओं की छोटी-बड़ी शीशियाँ झाँक रही थी। बिन्दु ने किरण से डॉक्टर का परिचय कराया। मालूम हुआ कि यहाँ न केवल मन्दिर के सदस्यों, बल्कि बाहर से आये असहाय गरीबों की भी निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। डॉक्टर ने इस कक्ष से थोड़ी दूर आगे पूरब की ओर संकेत किया जहाँ ईंट की चार-पाँच फीट ऊँची दीवार उठाई जा चुकी थी। यहाँ बीस-पचीस रोगियों के लिए एक छोटा-सा वार्ड बनाने की योजना थी। इसी के लिए अर्थ-संग्रह किया जा रहा था।

यहाँ से बिन्दु ने किरण को साथ लेकर एक दूसरा फाटक पार किया। अपने सामने एक लम्बे खपड़ैल कक्ष में दोनों ने प्रवेश किया। वहाँ कई छोटी-बड़ी लड़कियाँ पहले से ही किरण के स्वागत में खड़ी थी। यह एक बड़ा-सा पुराना हॉल था जो लड़कियों के रहने के लिए बनाया गया था। लड़कियों के झुण्ड में किरण बिन्दु के साथ और आगे बढ़ी। उसने छात्रावास का किचन देखा। इसका प्रबन्ध यहाँ की लड़कियाँ ही करती थी। एक तरफ मन्दिर के खुले सब्ज मैदान में प्रचुर मात्रा में साग-सब्जी उगायी जाती थी।

दूसरा गेट पार करने पर अनाथ बच्चों का पृथक आवास मिला। इनके मेंस का प्रबन्ध अलग था। किन्तु मन्दिर की लड़कियाँ यहाँ स्वतंत्रतापूर्वक आती-जाती थी। अनाथ बच्चों में कोई भी किरण को बारह से अधिक उमर का नही मिला। बिन्दु ने बताया कि मन्दिर का वास्तविक जीवन सुबह चार बजे से लेकर संध्या चार बजे तक देखा जा सकता है। इस बीच दो बार सामूहिक प्रार्थना, व्यायाम, खेल-कूद, मनोरञ्जन आदि की व्यवस्था है। मन्दिर से प्रभावित होकर

किरण ने बिन्दु को वचन दिया कि वह अब कुछ न कुछ समय निकाल कर अपने को मन्दिर की सेवा में लगायेगी।

अन्त में बिन्दु किरण को लिये फिर उसी कमरे में लौट आयी जहाँ पहले उसे कांति बाबू मिले थे। इस बार वहाँ कांति बाबू के बदले अरविन्द को देखकर किरण कुछ अकचकाई। अरविन्द ने मुस्काते हुए उठकर किरण का स्वागत किया। बोला, "हमारे सौभाग्य से आज आप खुद ही आ गयी भाभी! मैंने तो आज कई बार कोशिश की। किंतु आपसे भेंट ही नहीं हुई।"

अभी-अभी मन्दिर के जीवन से परिचित होकर किरण के मन में हुलास छा गया था। अरविन्द के प्रति उसकी आस्था और भी दृढ़तर हो गयी थी। दिनभर के मानसिक तनाव के बाद अरविन्द को एकाएक सामने देख किरण समझ नहीं पायी कि उससे क्या बोले। किसी तरह अपने स्वर को संयत करती हुई बोली, "यह मेरा ही दुर्भाग्य था बाबू, कि आज फिर आप से भेंट नहीं हो सकी!"

अरविन्द को लगा जैसे किरण का मान अभी खत्म नहीं हुआ है। उसने वहाँ खड़ी बिन्दु की ओर देखकर कहा, "अब आप जा सकती हैं बिन्दु बहन! भाभी को अब मुझे डेरा पहुँचाना होगा।"

बिन्दु ने किरण और अरविन्द को प्रणाम किया और कमरे से बाहर हो गयी। अब वहाँ किरण और अरविन्द के सिवा दूसरा कोई नहीं था। हाँ, बाहर शामियाने में अभी भी कुछ लोगों के बोलने-चालने की मिश्रित आवाज सुनायी पड़ रही थी।

"आप अभी तक मुझ पर रंज हैं भाभी", अरविंद सहज स्वर में बोला, "मैं ने शायद ऐसी बात कह दी थी जिससे आपके मन को चोट लग गयी। किंतु अनजाने ही यह सब कुछ हो गया। मैं सच कहता हूँ, मैंने जान-बूझकर आपको कोई कष्ट पहुँचाना नहीं चाहा था।"

"अब मुझे और अधिक लज्जित न करें", भावविह्वल किरण पश्चात्ताप के स्वर में बोली, "आप तो बहुत महान हैं। वहाँ तक मेरी क्षुद्र बुद्धि की पहुँच कैसे हो सकती है! सच, मैं आपको पहचान नहीं पायी। आप तो देवता हैं बाबू, मेरे आराध्य हैं।"

किरण प्रबल भावावेश में कुछ क्षणों तक अपने अस्तित्व को जैसे भूल गयी और झुक कर अरविन्द के पैरों को पकड़ लिया। देखते ही देखते उसकी आंखों से गंगा-यमुना बहने लगी। स्तम्भित अरविंद को अचानक यह सब कुछ अकल्पित

लगा। किरण को अपने पैर पकड़कर बैठे देख वह घबड़ा गया। अपने दोनों हाथों से सुबकती हुई किरण को जैसे-तैसे उठाते हुए बोला, "यह आप क्या कर रही हैं भाभी? होश में तो आइये!"

किरण किसी तरह खड़ी तो हो गयी, किंतु अब उसका सिर स्वतः ही अरविंद के वक्ष पर झुक गया। घनीभूत पीड़ा के अचानक विस्फोट से वह अपनी शारीरिक स्थिति कुछ देर के लिए बिल्कुल ही भूल गयी। उसकी रुलाई पहले से भी अधिक फूट पड़ी। अरविंद उसे ढाढ़स बँधाता रहा। आश्वस्त करता रहा। जब कोई उपाय कारगर नहीं हुआ तो जान-बूझ कर कुछ कड़े स्वर में बोला "यह मंदिर है भाभी, जरा होश सम्भालिए! यदि हम दोनों को इस रूप में कोई देख ले तो मेरी वर्षों की साधना पर कालिख पुत जाएगी।"

किरण को मानो साँप सूंघ गया हो। वह बिजली की तरह अरविंद की छाती से अलग हटकर एक ओर खड़ी हो गयी। न जाने क्या सोचकर अरविंद ने उसे वहीं अकेली छोड़ दिया और स्वयं बाहर निकल आया। बाहर आकर उसने रिक्शा बुलाने के लिए एक लड़के को भेजा। यहाँ शीतल चाँदनी में उसे प्रतीत हुआ जैसे कुछ देर तक उसका शरीर भट्ठी में तपाया जाता रहा हो।

नौ

इसके बाद दो दिनों तक किरण अरविंद के कमरे में पढ़ने नहीं गयी। कांति बाबू को भी मालूम नहीं हो सका कि किरण अरविंद के पास पढ़ने नहीं जाती। इन दो दिनों तक वह अरविंद को देखकर भी अनदेखा करती रही। इधर अरविंद भी मंदिर के कामों में बुरी तरह व्यस्त रहा। उसने अनुभव से
था कि भावुक किरण के कुण्ठित नारीत्व में मनोवेगों का
है। आवेश के क्षणों में वह कुछ भी कर सकती है। किंतु सच
यह थी कि अरविंद का अनुशासित मन भी किरण की प्यार

उद्दीपित होने लगा था। आज तक जीवन के कई संघर्षों से लगातार लड़ते रहने के कारण उसके मन में प्रेम की कोई कामना शेष नही रह गयी थी। वह भीतर और बाहर दोनों ओर से यदि चट्टान की तरह दृढ़ हो गया था तो उसी की तरह नीरस भी। अब मानो पहली बार किरण के स्निग्ध सम्पर्क में उसके मन की कठोरता को चीरती हुई कुछ अनजानी लहरें उठने लगी थीं।

आज मंदिर के काम से कुछ अवकाश पाकर अरविंद जब डेरे पर लौटा तो आते ही कमला को पुकारा। कमला के आ जाने पर पूछा, "भाभी जी स्वस्थ तो हैं दाई ?"

"हाँ बाबू," कमला बोली, "वे सही सलामत तो हैं, पर बराबर किसी फिकर में रहती हैं। मुझसे ठीक से बात भी नहीं करती। कितना पूछा कि क्या बात है, किंतु कुछ बताती ही नही। दुखी औरत हैं बाबू! उनके दुखों का क्या पूछना।"

अरविंद ने कुछ सोचकर दुबारे पूछा, "इस समय वे क्या कर रही है ?"

"अभी कुछ देर पहले तो कोई किताब पढते देखा था। आप खुद जाकर समझा काहे नही देते ? आपकी बातों का बहू पर जरूर अच्छा असर होगा।"

कमला की निश्छल बातों को सुनकर अरविन्द सचमुच प्रभावित हो गया। बोला, "तो ठीक है। मैं खुद ही जाकर उन्हें देखता हूँ।"

अरविन्द ने किरण के दरवाजे पर आकर देखा कि किवाड़ बन्द नही है। उढकाये हुए हैं। बाहर खड़े होकर उसने धीरे से पूछा, "अन्दर आ सकता हूँ भाभी ?"

जब भीतर से कोई जवाब नही आया तो अरविंद ने इस बार कुछ तेज आवाज में पूछा, "सो गयी क्या ?"

"आओ लाला," भीतर से क्षीण कण्ठ में आवाज आयी, "मैं जगी ही हूँ।"

स्पष्ट ही किरण ने अरविंद को नलिन समझ लिया था और इसीलिए उसे लाला कहकर सम्बोधित किया। इधर अरविंद को उसका यह सम्बोधन बड़ा प्रीतिकर लगा। भीतर प्रवेश करके उसने देखा कि किरण अपने ट्रंक में से कोई चीज निकाल रही है। मुख दूसरी ओर होने से वह अरविंद का आना देख नही सकी। इतमीनान के साथ ट्रंक बन्द करके जब उसने अपना सिर घुमाया तो एकाएक चौंक पड़ी, "ओह आप ?"

"हाँ भाभी, मैं ही। आपका लाला!" और अरविंद बड़े मीठे ढंग से मुस्काया।

"भूल हो गई बाबू," किरण संकोच में अपने अस्तव्यस्त आँचल को ठीक करती हुई बोली, "मैं समझी, नलिन बाबू पुकार रहे हैं।"

किरण ने आत्मीयता के साथ एक बेंत की कुर्सी अरविंद के आगे खिसका दी। उसपर उसे साग्रह बिठाकर खुद एक मोढे पर बैठ गयी।

"कैसे आना हुआ बाबू," किरण कुछ व्यंग्य भरे लहजे में बोली, "मुझसे फिर कोई गलती तो नही हो गयी?"

"गलती और सही की बात छोड़िए भाभी! गलतियाँ कौन नही करता? किन्तु उनके कारण हमारे काम में बाधा नही आनी चाहिए।"

"लेकिन मैं तो अपना सब काम कर ही रही हूँ।"

"तो आपका पढना-लिखना क्यो बन्द है?" अरविंद ने प्रश्न कर दिया, "आप मुझसे रंज हो सकती है, किन्तु अपनी पढाई-लिखाई से रूठ कर तो आप अपना ही अहित करेंगी।"

"बहुत हित हो चुका बाबू," किरण का स्वर कुछ लडखड़ा गया, "अब तो हित की कोई इच्छा ही शेष नही है। आखिर पढ-लिखकर मैं अपना कौन-सा बड़ा हित कर लूँगी?"

"ऐसा न सोचें भाभी! दुखों को अपनी कमजोरी नही, शक्ति बनाइये। यह जीवन केवल अपने ही लिए तो नहीं है। जिस समाज के खून से बना है, उसके ऋण को भी तो चुकता करना है। विद्या से ही इस ऋण का गौरव समझा जा सकता है।"

"कोई जरूरी नहीं कि ऐसी विद्या पुस्तकों से ही प्राप्त हो," किरण ने अपना तर्क पेश किया, "विद्या प्राप्त करने के दूसरे भी कई उपाय हैं।"

"*माना*," अरविंद बोला, "किन्तु आज मैं आपके पास तर्क करने नही आया हूँ। आपकी पढाई में किसी भी कारण ढिलाई नही होनी चाहिए। यदि आप चाहेंगी तो मैं अपने बदले कोई दूसरा शिक्षक रखवा सकता हूँ। व्यक्तिगत रूप से इससे मुझे कोई दुख नहीं होगा।"

"मेरे लिए सबसे बड़ा दुख तो यही है बाबू", किरण बोली, "कि आप मुझे अब तक समझ नही पाये। आप अपने मन्दिर की दूसरी बहनों की बातों से बुरा नही मानते। किन्तु आपके प्रति मेरी थोड़ी-सी श्रद्धा छलकी नही कि आपको

तपस्या जैसे भंग होने लगती है। पता नहीं, मेरी भावनाओं को निठुराई से कुचल देने में आपको कौन-सा सुख मिलता है।"

बात कुछ इस पीड़ा के साथ निकली थी कि अरविन्द कुछ देर तक निर्वाक-सा किरण की बड़ी-बड़ी काली आँखों में तिरते तरल बिन्दुओं को देखता रह गया।

"यदि बात ऐसी है तो सचमुच मुझसे बड़ी गलती हो गई भाभी", अरविन्द पश्चात्ताप के स्वर में बोला, "किंतु विश्वास रखें, अब से आपकी भावनाओं का पूरा ख्याल रखूँगा।"

इसके बाद कुछ क्षणों तक दोनों मौन बैठे रहे। दोनों की अन्तःचेतना में एक दूसरे के स्निग्ध सामीप्य का बोध तिरता रहा। अरविन्द की सहृदय बातें सुनकर किरण का आहत मन धीरे-धीरे स्वस्थ होता गया। अन्त में किरण ने ही मौन भंग किया, "आप कुछ देर और बैठें बाबू, मैं अभी चाय बनाकर लायी।"

"नहीं-नहीं", अरविन्द कुछ और कहना चाहता था, किन्तु किरण उसे अनसुना करके एकाएक कमरे से बाहर निकल गयी।

अरविन्द को कुछ जरूरी काम से जल्दी ही बाहर निकलना था। किन्तु अब जैसे विवश होकर उसे वहाँ रुक जाना पड़ा। किरण से कुछ और भी बातें करनी थी। वहाँ अकेले बैठे उसकी नजर कमरे में इधर-उधर दौड़ने लगी। आज कमरे के कोने में उसने एक सितार तथा हारमोनियम भी पड़ा देखा। इन चीजों को तो उसने पहले वहाँ देखा नहीं था? ये इतनी जल्दी आ कहाँ से गईं? अरविन्द कुछ सोच ही रहा था कि उसकी दृष्टि किरण के पलंग पर पड़ी एक अलबम जैसी चीज पर गयी। उसे याद आया कि किरण उसे ही अपने ट्रंक से निकाल रही थी। उसने न जाने किस अधिकार से अपना हाथ बढ़ाकर उसे उठा लिया। वह सचमुच अलबम ही था। वह उसे उलट-पुलट कर देखने लगा। उसके एक पृष्ठ में उसे हवाई शर्ट पहने तथा काला चश्मा लगाए एक युवक का फोटो मिला जो एक मीठी मुस्कान की मुद्रा में था। ठीक इसी समय किरण चाय लिये पहुँच गयी। अरविन्द के हाथ में अलबम देखकर उसने चुटकी ली, "वाह जी, मुझसे बिना पूछे मेरी 'पर्सनल' चीज पर हाथ लगाने लगे!"

"क्या आपकी किसी चीज को देखने के लिए भी मुझे पहले आज्ञा लेनी होगी भाभी?"

"ईश्वर करे, आपकी यह भावना सचमुच सच्ची हो", कह कर किरण ने एक अर्थ-भरी मुस्कान ली और प्याले में चाय ढालने लगी।

अरविन्द ने किरण की बाँकी भौहों के नीचे हँसती चंचल आँखों तथा रक्तिम अधरों पर थिरकती मुस्कान को देखकर विचित्र संकोच का अनुभव किया। चाय की चुस्की लेते हुए पूछा, "यह किनका फोटो है भाभी ?"

किरण का ध्यान अभी उस फोटो पर नहीं गया था। उसे देखते ही उसका खिला मुख अचानक विवर्ण पड़ गया। आँखें झुक गईं। एक हाथ से उसने अपने आँचल को कुछ और आगे खिसका लिया। किरण की भावमुद्रा से अरविन्द को समझते देर नहीं लगी कि वह उसके स्वर्गीय पति प्रशान्त का फोटो है। उसे अफसोस हुआ, उसने किरण के मन को नाहक पीड़ा पहुँचाई। किसी उत्तर की आशा छोड़कर वह अलबम के दूसरे पन्ने उलटने लगा। एक पन्ने में उसकी नजर एक निहायत हसीन किशोरी के आकर्षक फोटो में उलझ गयी। ऐसा लगा, उसने उस चेहरे को पहले भी कभी देखा हो। उसने तत्काल प्रश्न किया, "यह लड़की कौन है भाभी ?"

"मेरी एक सहेली है", किरण आपे में आकर बोली, "हम लोग साथ ही पढ़ने जाते थे। नाम इसका शोभा है।"

शोभा ! ....दूरागत स्मृतियों के धुन्ध से निकला हुआ यह शब्द अरविन्द के मन में अपनी हल्की अनुगूँज छोड़ गया। जैसे किसी ने कहीं उसके मर्म को स्पर्श कर लिया हो। अरविन्द इसे अपना भ्रम समझ कर तुरत ही सँभल गया और दूसरे पन्ने पलटने लगा। आगे के पन्नों में कई छोटी-बड़ी लड़कियों के फोटो चिपकाये हुए थे। अरविन्द की दृष्टि पुनः एक फोटो पर आकर रुक गयी और रुकी ही रह गयी। बन्द पड़े अतीत के गहन पटल में जैसे कोई बिजली अचानक कौंध गयी हो। उसने फिर पूछा, "यह लड़की कौन है भाभी ?"

"आप केवल लड़कियों को ही पसन्द करते हैं बाबू", किरण मुस्काकर बोली, "यह मेरे दूर रिश्ते की बहन लगती है।"

"क्या नाम है इसका ?"

"नाम !" किरण कुछ स्मरण करती हुई बोली, "नाम तो अभी भूल रही हूँ ....हाँ, याद आया, शायद सुधा या विभा नाम है इसका !"

"सुधा या विभा —ठीक-ठीक बताइये न", अरविन्द के स्वर में कौतूहल भरा हुआ था।

"हाँ, सुधा ही", अरविन्द को उत्तेजित-सा [illegible] किरण आ[illegible] बोली, "लेकिन बात क्या है ?"

"कुछ नहीं भाभी, कुछ नहीं। यों ही पूछ दिया। एक ऐसी ही लड़की मेरे बचपन की मित्र थी", अरविन्द का स्वर कुछ काँप-सा गया। उसकी दृष्टि उस फोटो पर अटकी ही रह गयी।

"किन्तु यह तो हमारे देश की लड़की है बाबू", किरण जैसे अरविन्द के भ्रम का निवारण करती हुई बोली, "यह आपके बंगाल की कोई बंगालिन मेंमें नहीं है।"

"आखिर सुनूँ भी तो कि यह कहाँ की रहने वाली है? आपको तो मैं पटने का ही बासी मानता हूँ।"

"नहीं तो", किरण बातचीत में रस लेती हुई बोली, "मैं मूलत. बिहार प्रान्त के सारन जिले की रहने वाली हूँ। इसी जिले के एक गाँव में मेरा जन्म हुआ। मेरी पट्टी में ही इस लड़की का ननिहाल पड़ता है। जब मैं किशोरी ही थी तो यह लड़की अपनी माँ शैलजा—नहीं, शैलबाला के साथ कुछ दिनों के लिए आयी थी। थोड़े ही दिनों में हम दोनों में बड़ी दोस्ती हो गयी थी। उसके बाद वह चली गयी। दुबारे उससे मेरी भेंट नहीं हुई। मेरे पिताजी भी सपरिवार पटने में आकर बस गये। आज भी बचपन की उस मित्रता का प्रतीक यह फोटो मेरे अलबम में सुरक्षित है। अब तो सुधा काफी बड़ी हो गयी होगी। शायद शादी-शुदा भी हो चुकी हो।"

"समझा।"

अरविन्द को लगा जैसे किरण ने झटके के साथ उसके अतीत का बन्द कपाट खोल दिया हो। उसने फिर ध्यान से देखा—हाँ, यह ठीक वही फोटो है जिसकी एक कापी वह सुधा के कमरे में टँगा देखा करता था। वही सलवार और समीज, वही दुपट्टा, केशों का वही मोहक विन्यास, चेहरे पर वही चुहलपना, चञ्चल आँखों में वही मुस्कान! अरविन्द उसे एकटक निहारता रह गया।

"बाबू, आपकी आँखों में तो आँसू उमड आये हैं!" किरण ने टोक दिया।

"नहीं तो," अरविन्द जैसे सोते से जगा हो। रूमाल से अपनी आँखें पोंछता झेंपता हुआ-सा बोल गया।

"आपका प्रकृत रूप आज पहली बार देख रही हूँ बाबू!"

अरविन्द ने समझ लिया कि वह किरण के सामने खुल चुका है। उससे अपने को छिपाना व्यर्थ है। इसीलिए उसने किरण की बात का कोई प्रतिवाद

नहीं किया। न जाने कितने वर्षों के बाद उसकी आँखों में वैसे आँसू उमड़े थे। उसने एक बार अपनी सजल दृष्टि से ही किरण की ओर देखा। किरण पहले से ही उसे अपलक निहार रही थी। कुछ क्षणों तक दोनों की नजरें एक दूसरे से मिली और फिर झुक गयीं। किरण को लगा जैसे वह अरविन्द की ऐसी ही दृष्टि की तलाश में रही हो। उसे रोमाञ्च हो आया। दिल जोरों से धड़क उठा।

अरविन्द ने अब तक अलबम को एक तरफ रख दिया था। इच्छा हुई कि वह सुधा के विषय में किरण से कुछ और पूछे। किन्तु सँभल गया। अब तक अपने जीवन के गुम पड़े अध्यायों को एकाएक खोल देने में उसे अनेक तरह की अड़चनें और खतरे दिखाई दिए। एक बार इच्छा हुई कि किरण से सुधा का वह फोटो अपने लिए माँग ले। किरण उसे खुशी-खुशी दे भी देती! किन्तु पीछे उसे यह भी ठीक नहीं जँचा। वह देर तक मौन साधे बैठा रहा।

"वह लडकी क्या अभी भी कही है बाबू?" किरण ने जैसे टोह लेते हुए नीरवता भंग की।

"संभव है, हो भी। किन्तु अब उससे मतलब ही क्या रहा भाभी!"

"क्या वह लड़की सुधा के रूप-रंग की ही थी?"

"हाँ, बिल्कुल ऐसी ही।"

"अभी भी उसकी बड़ी याद आती होगी?" प्रश्न करते-करते किरण का मन एकाएक ईर्ष्यालु हो चला।

जवाब में अरविन्द ने एक बार किरण की काली आंखों में सलज्ज दृष्टि गड़ा दी। मानो कहना चाहता हो—'यह भी कोई प्रश्न हुआ!'

अरविन्द को एकाएक कुछ याद आया। पूछा, "आपके कमरे में इन वाद्यों को तो पहले मैंने कभी नही देखा था भाभी?"

"जी हाँ," किरण बोली, "ये पटने में ही छूट गये थे। पिताजी ने हाल में ही इन्हे मेरे पास भेज दिया है।"

"तो आप गा-बजा भी लेती हैं?"

"कुछ-कुछ," किरण मुस्काकर बोली, "अब तो अभ्यास ही छूट गया है।"

"अच्छा भाभी, मुझे अब जाने दीजिए," अरविन्द अचानक खड़ा होता हुआ बोला, "बात करते-करते सांझ हो गयी। अभी कई काम बाकी पड़े हैं।.... तो कल से आप पढने आ रही हैं न? या किसी दूसरे मास्टरजी को रखवा दूँ?"

"फिर वैसी ही बात मुँह से निकाल रहे हैं ?" किरण रंज भरे शब्दों में बोली, "आपने कुछ ही देर पहले वचन दिया है कि आप मेरी भावनाओं का ख्याल रखेंगे।"

"माफ करें," अरविन्द हँसता हुआ बोला, "मैंने यों ही पूछ दिया। अच्छा, नमस्ते !"

"नमस्ते," कहकर किरण ने भी दोनों हाथ जोड लिए।

किरण के देखते ही देखते अरविन्द बाहर चला गया। इन दो तीन दिनों के भीतर किरण का मन जितना ही दुखी हो गया था, उसमें अब उतनी ही प्रसन्नता भर गयी थी। हृदय हल्का लगा। मन में नई उमंगें, नये स्वप्न मँडराने लगे। खड़ी-खड़ी कुछ देर तक अरविन्द के ही ध्यान में डूबी रह गयी।

□

दस

अरविन्द जब अपने कमरे में लौट कर आया तो मन-प्राणों में एक अजीब-सी थकान महसूस हुई। पूर्व कार्यक्रम के अनुसार उसे अभी मंदिर के लिये चन्दा वसूल करने काशी के कुछ प्रसिद्ध सेठों के पास जाना था। किन्तु अब लगा जैसे आज यह काम हो नहीं सकेगा। अपने लिए जिस कठोर संयम की दीवार खड़ी करने में उसे वर्षों लग गये थे, वही अब एक हल्के आघात से ही ढहती हुई जान पड़ी। स्मृति के इस मामूली झटके ने आज के संयमी अरविन्द को अतीत का भावुक कमल बना दिया था। अलबम का सुपरिचित फोटो उसके मानस-चक्षु के आगे अभी भी नाच रहा था। वह निष्प्राण-सा अपने बिस्तर पर लम्बा हो गया। आँखें मूँदें अपने आकुल मन को हटाकर दूसरी ओर प्रवृत्त करने लगा। उसे एका-एक कुछ याद आया। बिस्तर पर पड़े-पड़े ही सेल्फ में रखी पुस्तकों में से कोई चीज ढूंढने लगा। नहीं मिलने पर वह उठ गया और अपनी पुस्तकों में यत्र-तत्र उसकी खोज करने लगा। जब वह चीज उसे नहीं मिली तो बैठकर याद करने लगा कि

उसने उसे कहाँ रख दिया है। ठीक इसी समय किरण के कमरे के भीतर से हारमोनियम पर ललित कण्ठ में गाये गीत की कड़ियाँ हवा में लहराती हुई उसके कानों में अपना अमृत बिखेरने लगीं—

"तेरे गीत अभी तक गाये!
तेरी ही करुणा का पानी
इन गीतों की मूक कहानी
मन के सूखे वृंत-वृंत पर
नव पल्लव सुधि के लहराये!
तेरे गीत अभी तक गाये!"

गीत की कड़ियाँ अरविन्द ने ही रची थीं, किंतु आज की मानसिक स्थिति में लगा जैसे उसके मन पर किसी भूले-बिसरे स्वप्न-लोक का सम्मोहन छाता जा रहा हो। गीत के जादू से अभिभूत वह अनजाने ही बिस्तर पर लेट गया। आँखें बन्द कर ली। न जाने कैसे उसकी मुँदी पलकों को भेद कर आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें उसके कपोलों को भिगोने लगी। स्वर का एक दूसरा प्रवाह आया और अरविन्द के रहे-सहे धैर्य को भी बहाकर ले गया—

"तेरी ही वंशी के स्वर ले
तेरे ही गीतों के पर ले
तेरे ही मधुमय अनन्त में
छन्दों के कलरव सरसाये!
तेरे गीत अभी तक गाये!"

अरविन्द का हृदय खुलकर बरस पड़ा। जैसे वर्षों से जकड़ा पड़ा हो। अचानक गीत बन्द हो जाने पर भी न जाने कब तक आँखें बरसती रहीं। जब अरविन्द कुछ प्रकृतिस्थ हुआ तो उसे अपनी स्क्रीप्ट की याद आयी। उसे अचरज हुआ, किरण को उसका यह गीत मिल कैसे गया। तभी याद आया कि उसके कमरे की एक चाबी किरण के पास भी थी। संभव है, स्क्रीप्ट वही ले गयी हो। यों तो किरण के प्रति उसका मन पहले से ही श्रद्धालु था। किन्तु आज यह जानकर कि किरण उसकी बालसखा सुधा से अच्छी तरह परिचित थी, अरविन्द का मन किरण की ओर और भी खिंच गया था। अभी के गीत ने पहले के श्रद्धाभाव में प्यार का मीठा आकर्षण भर दिया। लगा जैसे किरण का व्यक्तित्व सुधा की मधुर स्मृतियों के ताने-बाने से ही बना हो। काश, किरण जान पाती

कि उसकी संगीत-माधुरी ने आज किस तरह अरविन्द को कुछ देर के लिए अचेत-सा बना दिया !

जैसे नीद टूट जाने पर व्यक्ति अपने विगत स्वप्नों की कड़ियाँ सहेजने लगता है, वैसे ही किरण के संगीत ने मानो कुछ देर के लिए अरविन्द के मन को धुआँ से भर दिया। अतीत का धुँधलापन बीते स्वप्न की तरह मन पर छाने लगा। दूर पड़ी कड़ियों को जोड़ने में मन सक्रिय हो गया।......

. झक-झक झक-झक ! गाड़ी दौड़ती जा रही है। रात का अंधकार धीरे-धीरे गहराता जा रहा है। भीतर डब्बे में बल्ब की हल्की पीली रोशनी में मुसाफिरों के चेहरे अलग-अलग रंग में दिखाई दे रहे हैं। बन्द खिड़कियों के छिद्रों से आती हवा शरीर में कँपकँपी भर जाती है। डब्बे में लोग ठसाठस भरे हैं। कमल बड़ी देर तक एक कोने में दुबक कर खड़ा रहता है। बैठने को कहीं जगह नहीं। कमल के पैर से सटा एक चटकलिया मजदूर अपनी गठरी के आसन पर इतमीनान के साथ बैठा है। ऊँघते समय प्रायः उसका गोल-मटोल गंजा सिर कमल के पैरों से टकरा-टकरा जाता है। ऐसे समय उसके मुँह से टपकती लार उसके पैरों में भी लग जाती है। कमल को याद आता है कि न तो उसके पास टिकट है, न पैसा। वह कहाँ जा रहा है, उसे इसका भी पता नहीं। कुछ देर तक अपनी दयनीय स्थिति तथा अनिश्चित भविष्य की चिन्ता उसकी हिम्मत तोड़ती हुई-सी प्रतीत होती है। चिन्ताओं के प्रवाह में डूबता-उतराता, पता नही कब, वह डब्बे की फर्श पर ही कुछ जगह बनाकर बैठ जाता है। न जाने कब बैठे-बैठे ही उसकी पलकें झँप जाती हैं।......

कमल के कान में अचानक एक ऊँची आवाज गूँज जाती है। कुछ देर तक आँखें खुलने पर समझ नही पाता कि वह कहाँ है। खुमारी दूर होने पर उसे अपनी स्थिति का धीरे-धीरे अहसास होने लगता है। डब्बे के शीशे से सुबह की मीठी धूप उसके चेहरे पर पड़ रही है। डब्बे में इस समय दो भद्र यात्रियों के सिवा दूसरा कोई नही। इन दो यात्रियों में एक पुरुष और दूसरी महिला है। अधिक सामान होने के कारण शायद ये अभी तक डब्बे में बैठे हैं। दो तीन कुली इनके सामान नीचे उतार रहे हैं। कमल को हक्का-बक्का-सा देखकर पुरुष यात्री पूछते हैं, "अजीब लड़के हो जी ! अभी तक जानवर की तरह सो रहे थे ! आखिर जाना कहाँ है ?"

कमल से कोई उत्तर न पाकर वे सज्जन कुछ झल्लाते हुए-से पुनः बोलते हैं, "अरे, उल्लू की तरह क्या ताकते हो ? यह पहलेजा घाट है। स्टीमर पकड़ना हो तो जल्दी चलो। नही तो यही पड़े रहो।"

कमल पूरी बात समझ नही पाता। हाँ, इतना अहसास जरूर हुआ कि उसे अब उस गाड़ी से उतर जाना है। सो लेने से दिमाग में कुछ ताजगी आ गयी थी। किन्तु तुरत ही अपनी स्थिति का बोध होने पर उसकी घबड़ाहट बढ़ने लगी। जब वे दोनों यात्री कुलियों के साथ डब्बे से उतरकर जाने लगे तो वह भी किसी अज्ञात प्रेरणा से उनके पीछे-पीछे लग गया। लोगों की भीड़ को चीरता हुआ वह भी स्टीमर पर आ गया। जहाँ उन यात्रियों ने बैठने के लिए अपना बिस्तर लगाया, उसी के पास एक कोने में वह भी दुबका हुआ चुपचाप खड़ा हो गया।

पता नही कैसे महिला यात्री का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ। उसने इशारे से कमल को अपने पास बुलाया। जब कमल सकुचाता हुआ-सा उसके नजदीक पहुँचा तो महिला ने प्रश्न किया, "तुम्हारा नाम क्या है लड़का ?"

"कमल।"

"घर कहाँ है ?"

"सारन जिला।"

"कहाँ जा रहे हो ?"

कमल को इसका कोई जवाब नही सूझा। उसे असमंजस में देखकर महिला यात्री को किंचित कौतूहल हुआ। पुनः पूछा, "तुमने टिकट कहाँ का लिया है ?"

"जी, टिकट तो मैंने लिया ही नहीं।"

"क्यों ?" स्त्री अचम्भे में आकर पूछ पड़ी।

"मेरे पास पैसे नही थे। समय भी नहीं था।"

"बिना टिकट सफर करना जुर्म है, जानते हो न ?..........अच्छा, यह तो बताओ, तुम जाओगे कहाँ ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"वाह जी, खूब !"

महिला यात्री हँस पड़ी। किंतु शायद कमल के मुखड़े पर तिरती हुई करुणा तथा निराशा उसे उसकी ओर खींचने में समर्थ हुई। उसने इस बार प्यार से कमल को अपने पास बुला कर बिठाया। उसके बार-बार पूछने पर कमल ने अपनी बीती उससे कह सुनायी। सहृदय महिला ने सब कुछ सुनकर बगल में बैठे पुरुष यात्री के कान में धीरे-धीरे कुछ बातें कीं। अब उस पुरुष यात्री ने कमल से पूछा, "तुम हमारे साथ चल सकते हो ?"

"जी हाँ," डूबते कमल को मानो तिनके का सहारा मिला। उसने बिना कुछ समझे-बूझे अपनी स्वीकृति दे दी""""

गया जाने वाली गाड़ी से कमल कृपालु यात्रियों के साथ गया स्टेशन पर उतरा। अब तक उसे मालूम हो गया था कि दोनो यात्री पति-पत्नी थे। अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ से घर वापस आ रहे थे। पति का नाम कंचन बाबू था। वे बिहार सेक्रेटेरियट में अण्डर सेक्रेटरी के पद पर काम करते थे। दोनों उसे लिये हुए गया टाउन के एक मुहल्ले मे अपने आवास पर आये।""""""

कंचन बाबू के चार बच्चे थे। बड़ा लड़का कालेज में पढ़ता था। उससे छोटी बच्ची थी जो किसी स्थानीय स्कूल मे पढ़ने जाती थी। शेष दोनों बच्चे बहुत छोटे थे और घर पर ही किसी शिक्षक की देख-रेख मे पढ़ते थे। कंचन बाबू और उनकी पत्नी सम्भवतः कमल को अपने घर नौकर रखने के लिए ही ले आये थे। उसने कुछ दिनो तक उनके घर चौका-बासन किया भी। किंतु धीरे-धीरे उसके पढ़े-लिखे होने की बात कंचन बाबू को मालूम हुई। वे बड़े खुश हुए। उन्होने अपने बच्चो को पढ़ाने के लिए रखे गये पुराने मास्टर को हटा दिया और कमल को ही पढ़ाने का भार सौप दिया। कमल बड़े चाव से बच्चों को पढ़ाने लगा। पढ़ाने के क्रम मे ही कंचन बाबू को उसकी कुशाग्र बुद्धि का पता लगा। वे बडे ही उदार विचार के व्यक्ति थे। कमल से प्रभावित होकर उन्होने उसका नाम वहाँ के एक अच्छे हाई स्कूल में लिखा दिया। ' '

तीन-चार वर्षों तक कंचन बाबू के परिवार का अभिन्न अंग बनकर कमल मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुआ। स्कूल में उसका नाम अरविन्द रख दिया गया था जो आज तक रह गया है। कुछ दिनों बाद जब कंचन बाबू को मालूम हुआ कि कमल को जिला छात्रवृत्ति भी मिल गयी है तो उनकी खुशी की सीमा नहीं रही। दोनो पति-पत्नी का स्नेह उसे पहले से भी अधिक मिलने लगा। अब तक कमल ने भी कंचन बाबू के बच्चों को पढ़ाने-लिखाने में भरपूर सहायता पहुँचाई थी। किंतु पता नही क्यों, कंचन बाबू का बड़ा लड़का कमल को ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगा। इस बार की बी० ए० परीक्षा में वह फेल हो गया था। जबसे उसने सुना कि कमल को जिला छात्रवृत्ति मिली है, कमल के प्रति उसकी ईर्ष्या और भी भड़क उठी। उसने कई बार अकेले में कमल से कुछ ऐसी बातें कही जो उसके आत्म सम्मान पर गहरी चोट करने वाली थी। उधर कंचन बाबू की लड़की सरोज सोलह पार कर चुकी थी। वह कमल के ही मार्ग-दर्शन में दसवी श्रेणी में पढ़ रही थी। इधर कुछ दिनों से कमल अपने प्रति

उसका झुकाव देखने लगा था। यह उसे अच्छा नहीं लगा। कमल बाबू के सभी लड़के उसके भाई-बहन की तरह थे। उन्हें अबतक वह इसी भाव से देखता आया था। जब समझाने-बुझाने पर भी सरोजने नहीं माना तो यह कंचन बाबू के परिवार में कमल के अस्तित्व का प्रश्न हो गया। एक ओर से मिलने वाला घोर अपमान तथा दूसरी ओर का अनपेक्षित प्यार—कमल इस विकट द्वन्द्व में झूलने लगा। एक दिन आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए उसे वहाँ से भी किसी अनजान देश के लिए कूच कर देना पड़ा। जाने से पहले उसने कंचन बाबू के नाम एक विनय भरा पत्र लिखा। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। गलतियों के लिए क्षमा माँगी। अपने पूर्व निश्चय के अनुसार वह चुपके गया स्टेशन आया और कलकत्ते जाने वाली गाड़ी में बैठ गया। ... ...

कलकत्ते के घटना-संकुल जीवन ने धीरे-धीरे उसके मन और विचारों को बहुत बदल दिया। यहाँ कई रातें उसने फाकाकशी में बितायीं। कई खुले आसमान के नीचे। कुछ महीनों तक छोटे-बड़े होटलों में काम किया। कभी-कभी कुछ ट्यूशन करके भी उसे अपना गुजारा करना पड़ा। अन्त में एक प्रेस में कम्पोजिटर के रूप में उसकी बहाली हो गयी। अब चालीस रुपये प्रति माह उसे मिलने लगे। किंतु काम का इतना बोझ था कि दिन-रात खटते-खटते उसका स्वास्थ्य गिरता गया। पेचिश हो जाने पर उसे बिस्तर पकड़ लेना पड़ा। खिदिरपुर की एक गन्दी गली में वह मजदूरों के साथ रहता था। मजदूर उसे बहुत मानते थे। दुख की घड़ियों में उसे उन्हीं लोगों से सहारा मिला। अच्छा हो जाने पर उसका परिचय बंगाल के एक प्रसिद्ध मजदूर नेता अशोक भट्टाचार्य से हुआ। उन्होंने उसकी प्रतिभा पहचान कर उसे अपने आफिस में जगह दे दी। वहीं रह कर कमल ने इन्टर की तैयारी की और कलकत्ता युनिवर्सिटी की आई० ए० परीक्षा में प्रथम श्रेणी पाई। अशोक बाबू के सान्निध्य में रह कर सामाजिक समस्याओं के प्रति उसका रुझान होता गया। उसके विचार भी प्रगतिशील होते गये। उसने नये समाज के गठन के लिए अपने को समर्पित कर देना चाहा। अशोक बाबू ने उसे अभी और आगे पढ़ने के लिए प्रेरणा दी। किन्तु उसने स्कूली पढ़ाई बन्द कर दी और खाली समय में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, समाज शास्त्र आदि की प्रामाणिक पुस्तकें अशोक बाबू से माँग-माँग कर पढ़ने लगा। अब इसका उसे अच्छी तरह अहसास होने लगा था कि देश नाम के लिए स्वतन्त्र हुआ है। सामान्य जनता की गरीबी और गुलामी 'जैसी की तैसी है। उसने अपने लिए कई सामाजिक समस्याओं में से केवल एक को चुना—अनाथों

तथा उपेक्षित नारियों का कल्याण। राजनीति में गहरी पैंठ होने पर भी वह स्वयं को उसकी मुख्य धारा के लिए अनुपयुक्त समझता था। अनाथों तथा पतिताओं की कल्याण-भावना उसकी व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल मालूम हुई। इस सिलसिले में उसने कई नगरों का भ्रमण किया। बहुत सारे अनुभव प्राप्त किए। अन्त में अपने विचारों को कार्यान्वित करने के लिए उसने काशी को ही कर्मभूमि बनायी।.......

काशी आने के कुछ दिनों बाद ही उसका सम्पर्क कान्ति बाबू से हुआ। दोनों एक दूसरे के व्यक्तित्व एवं विचारों से प्रभावित होते गये। कांति बाबू को लगा जैसे कमल उन्ही के मन की बातें कह रहा हो। उन्होंने सामाजिक कल्याण के नाम पर कमल को अपनी कमाई की अच्छी खासी पूँजी दी और काशी के कुछ प्रसिद्ध समाज-सेवियों से उसका परिचय कराया। काशी आने के लगभग दो वर्ष बाद ससमारोह मन्दिर की स्थापना हुई। काति बाबू पहले कमल की नई उमर देखकर घबड़ाते रहे थे। किंतु बाद में उसकी कार्य-क्षमता तथा अटूट लगन देखकर मुग्ध हो गये। यहाँ कमल को बहुत समझा-बुझा कर उन्होंने उससे बी० ए० की तैयारी कराई। परीक्षा देने के बाद कमल को इस बार भी प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई।......

और आज कमल को अपना घर छोडे लगभग तेरह वर्ष बीत चुके हैं। इस लम्बे अन्तराल में उसका जीवन कहाँ से कहाँ पहुँच गया है। कभी-कभी फुर्सत के क्षणों में वह अपने बचपन की दूर छूटी कडियों को जोड़ने की चेष्टा करता है। किन्तु आज तक अपने घर मे निकलने के बाद उसे ऐसा कोई सूत्र नही मिला था जो उसके वर्षों पीछे छूटे शैशव एवं किशोर-जीवन के साथ प्रत्यक्ष रूप में जुड़ा हुआ हो। इतने वर्षो के बाद आज पहली बार किरण ने ही उसकी स्मृतियों को प्रत्यक्षतः झटका दिया था। शायद इसी कारण अरविन्द आज जैसे अपना सन्तुलन ही खो बैठा है। विगत जीवन की सम-विषय धारा में उभरते हुए कुछ टापुओं पर दृष्टि डालता हुआ वह फिर वर्तमान में आ पहुँचा है। अभी आज के सन्दर्भ में वह कुछ सोच ही रहा था कि बाहर कुण्डी खटखटाने की आवाज हुई। कमला की आवाज आयी, "खाना तैयार है बाबू!"

"चलो, आता हूँ," अरविन्द ने बिस्तर पर पड़े-पड़े ही कहा और उठने की कोशिश की।

बिस्तर से उठते ऐसा लगा, मानो उसका पूरा शरीर थक कर चूर हो गया हो। थका-हारा-सा वह एक लम्बी जम्हाई लेकर लड़खड़ाते कदमों से खाने चल पड़ा।

ग्यारह

दूसरे दिन जब किरण पढने आयी तो अरविंद ने एक भेद-भरी मुस्कान के साथ कहा, "आप चोरी करना और चोरी के माल को पचा लेना--दोनों में दक्ष है भाभी !"

"सो कैसे ?" किरण कुर्सी पर बैठती हुई मुस्काकर बोली।

"और संगीत में भी," अरविंद किरण की बात अनसुनी करता हुआ बोला।

"बड़ी कृपा से ये तीन खिताब मुझे दिये जा रहे है," किरण हँसती हुई बोली, "किंतु पहले दो खिताबों को तो मैं खुशी-खुशी स्वीकार करती हूँ, अन्तिम खिताब झूठ-मूठ मुझे मिल रहा है !"

"नहीं भाभी," अरविन्द इस बार कुछ गम्भीर पड़कर बोला, "स्वर पर आपका असाधारण अधिकार है। इस गुण को आप अब तक छिपाये रहीं, यही आश्चर्य है !"

"कोई गुण का ग्राहक भी तो हो !" किरण ने मीठी चुटकी ली।

"गुण का गाहक तो सारा संसार है। संसार को यदि अभी छोड़ भी दीजिए तो आपके सामने बैठा यह अरविंद आपकी संगीत-कला पर सचमुच मुग्ध है। कल आपने मेरे एक साधारण-से गीत को जो स्वर दिए, वे अभी भी मेरे कानों में गूंज रहे है। सच कहता हूँ, आपके स्वरों के माध्यम से ही मैं समझ पाया कि अपने गीतों में मेरी अनुभूति की क्या सचाई है !"

अरविंद के चेहरे पर कुछ भूली-बिसरी बातों की रेखायें उग आयी। इधर उसके मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर किरण का मन खिल उठा। अरविंद पुनः

बोला, "मेरी स्क्रीप्ट आपके पास है, यह मैं कल ही जान पाया। इसे चोरी न कहूँ तो क्या कहूँ ?"

"आप स्वयं क्या अपने को चोरी से बरी समझते है ?" किरण मुस्काकर बोली, "पता नही, अबतक कितना चुरा चुके है ! मन्दिर के सम्बन्ध में अपनी योजनायें गुप्त रखना, जान-बूझ कर अपने आपको मुझसे छिपाये रखना—यह सब क्या चोरी से कम है ?"

"तो सुनिये भाभी," अरविंद के होठो पर भी मुस्कान खिल गयी और वह भीतर से अपराधी महसूस करता हुआ बोला, "मन्दिर के लिए आपकी सेवा की सचमुच जरूरत है। यदि मैंने इस सम्बन्ध में अब तक कुछ छिपाया है तो उसके लिये शर्मिन्दा हूँ। अब से मंदिर की हर योजना पर आपकी राय लिया करूँगा। इसका विश्वास दिलाता हूँ। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध है, मैं जैसा भी हूँ, आपके सामने हूँ। हाँ, मेरी कुछ वैसी भी व्यक्तिगत चीज हो सकती है जो दूसरो के लिए व्यर्थ है। स्वभावत: ऐसी चीजो को प्रकट करने के पक्ष में मैं नही हूँ। अभी की स्थिति में मैं अपने लिए नही के बराबर जीता हूँ। बात साफ है।"

"काश, मैं भी वैसा कर पाती !" किरण बोली, "आप समर्थ हैं, इसलिए ऐसा कर लेते है। मैं तो साधारण इंसान हूँ बाबू, इसीलिए अपनी व्यक्ति की सीमायें लाँघ नहीं पाती।"

"अच्छा, यह तो बताइए, मेरी कवितायें आपको लगी कैसी ?" अरविंद बातो को दूसरा मोड़ देता हुआ बोला।

"भले याद दिलायी," किरण इस विषयान्तर से खुश होकर बोली, "आप विश्वास न करें, किंतु आपके गीत मेरे लिए गीता हो गये है। कई गीत मुझे कण्ठस्थ हो चले है। मैं स्वयं कोई कवि या साहित्यकार नही हूँ, किंतु आपके गीत मेरे मन को सपर्श करते है। शायद मैं जिस वस्तु की तलाश में हूँ, उसे इन गीतो में पा गई हूँ। यहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिलता है, एक पीड़ा दूसरी पीड़ा से मिलती है। लेकिन यह तो बताइये, आपके गीतों में ऐसा दर्द उभरा कहाँ से है ?"

अरविंद का आज जैसे पहली बार मालूम हुआ कि किरण के अतुल रूप में बुद्धि और विचार की भी आभा मिली हुई है। कल से ही किरण किसी न किसी बहाने उसके जीवन के बंद पृष्ठों को खोलने लगी है। आज भी किरण की बातो से वह अपनी शारीरिक स्थिति भूल कर जैसे मनोमय होता जा रहा है। कुछ सोचकर वह बोला, "मैं स्वयं भी कोई कवि नही भाभी, अतीत का एक ऐसा

पवित्र बिंदु है जिसने मुझे हठात कवि बना दिया। मैंने अपने सारे गीत स्वांतः सुखाय' लिखे हैं। इसी लिए न तो ये आज तक कहीं प्रकाशित हुए हैं और नहीं इन्हें आज तक आपके सिवा कोई दूसरा देख पाया है। सचाई तो यह है कि यदि मेरा कोई व्यक्ति बच गया है तो वह इन गीतों में ही है। और यह भी सही है कि ये गीत सामाजिक कार्यों में मुझे बड़ी प्रेरणा प्रदान करते हैं।"

"आपके इन गीतों की नायिका कहीं कल वाली लड़की तो नहीं है बाबू ?" किरण ने अर्थभरी मुस्कान के साथ पूछा।

"मैं ना कैसे कहूँ ?" अरविन्द का संक्षिप्त-सा उत्तर था।

"सचमुच धन्य है वह लड़की !" किरण के मन में अचानक ईर्ष्या की आग भड़क उठी। अपने स्वर को संयत करती हुई पुनः बोली, "आपके गीतों की नायिका सचमुच धन्य है।"

अरविन्द ने किरण के एकाएक विवर्ण पड़े चेहरे को देखा। उसे समझने की चेष्टा की। उसे मानो पहली बार मालूम हुआ कि किरण मूलतः नारी है और नारी-मन को समझ पाना आसान नहीं। वह बोला, "खैर, उस लड़की के सम्बन्ध में कोई चिन्ता ही क्यों की जाये भाभी ? वह तो अतीत हो चुकी है। अतीत कभी वर्तमान नहीं होता।"

"और आज यदि वही लड़की आपको कहीं से मिल जाये तो ?" किरण ने एक झिझक के साथ अपने मन की गाँठ खोल दी।

"जिसकी कोई सम्भावना नहीं," अरविन्द का स्वर भारी हो गया, "क्या पता, वह जीती है या मर गयी। जीती भी होगी तो उसकी शादी हो चुकी होगी। उसका घर बस गया होगा। इन तेरह-चौदह वर्षों में मैं कब का उसके मन से मिट चुका होऊँगा। यह तो मेरी मूर्खता समझिए कि मैं आज भी उसे याद कर लेता हूँ।"

अरविन्द का स्वर अन्तिम बात कहते-कहते कुछ लड़खड़ा-सा गया, किन्तु उसने अपने को सँभाल लिया। किरण के मन में जो ईर्ष्या पनपी थी, वह अरविन्द के टटते स्वर से बह गयी। उसका करुणा-भरा नारी-मन पसीज गया। कुछ देर तक वह अरविन्द के मुरझाये चेहरे को अपलक निहारती रह गयी।

"लेकिन बाबू, आप शादी क्यों नहीं कर लेते ?" किरण ने मौन भंग किया।

"शादी ?" अरविन्द एक करुण हँसी हँसकर बोला, "किसके लिए और किससे ? ....अभी तो अकेले में ही बड़ा रस मिलता है भाभी। फिर कौन चाहेगी मुझ जैसे अकिंचन को ?"

"आप यह क्या कहते है ?" किरण ने प्रतिवाद किया, "आपको पाकर कोई भी लड़की अपने को घन्य समझेगी।"

"ऐसी कोई भी लड़की तो मैं चाहता नही भाभी," अरविन्द दृढ़ स्वर में बोला, "मैं चाहता हूँ ऐसी लड़की जिसका कोई खेवनहार न हो।"

"आपके मन्दिर मे ही ऐसी कई लड़कियाँ हैं," किरण लगे हाथों बोली।

"मंदिर से मेरा केवल सेवक और सेव्य का सम्बन्ध है, दूसरा कोई रिश्ता नही ………… फिर, अभी तो मैं शादी करना भी नहीं चाहता"।

किरण चुप हो गयी। उसका हृदय न जाने किस उमंग से नाच उठा। वह कुछ क्षणों तक अपने आप से ही लजा गई और सिर झुकाये कुछ सोचती रही। एकाएक अरविंद ने पूछा, "आपसे एक बात पूछूं भाभी ?"

किरण ने अरविंद की ओर अपनी कजरारी दृष्टि से ही देखकर सूचित कर दिया, 'पूछिए न !'

"आपकी कहानी मैं बहुत कुछ जान चुका हूँ। बडी पीड़ा की जिंदगी जी है आपने। आपमें एक ही जगह उच्च कुल का संस्कार, सुशिक्षा, नैसर्गिक सौंदर्य, दुखों की तपिश में पनपी हुई आत्मशक्ति, यह सब कुछ तो है। फिर भी आपके जीवन में जो खालीपन है, वह कितना दर्द–भरा है ? मैंने कई बार इस पर सोचा है और हर बार बिना कोई समाधान पाये मेरा मन दुखी होता आया है।"

अरविंद खुद नही जान सका कि वह किरण से पूछना क्या चाहता है। उसकी बातें सुनकर किरण भी कुछ नही बोली। सिर लटकाये बैठी रही। अरविंद ने जैसे सचेत होकर पुकारा, "भाभी !"

इसके लगे बाद किरण ने अपनी हथेलियों से अपनी उमड़ी हुई आँखें ढक ली और सुबक पड़ी। अरविंद को ऐसी कोई सम्भावना नहीं थी। वह भौंचक-सा कुछ देर तक किरण को देखता रह गया। उधर किरण की उंगलियों के पोर आँसुओं से तर होते जा रहे थे। अरविंद घबड़ाया-सा बोला "मुझसे बड़ी गलती हो गयी भाभी ! पता नही, मैंने क्या-क्या कह दिया।"

किरण चुप होने वाली नही थी। लगा जैसे उसके हृदय का बाँध एकाएक टूट गया हो और उसका संतप्त मन हजार-हजार धाराओं में उद्वेलित हो रहा हो। अरविंद एकटक करुण मूर्ति किरण को देखता रहा। कुछ देर बाद जब किरण किसी तरह अपने को नियन्त्रित कर पायी तो अरविंद ने फिर

वही बात दुहराई, "बड़ी गलती हो गई भाभी ! मुझे ऐसी व्यक्तिगत बात करनी नहीं चाहिए थी। न तो इसका कोई अवसर था और न मैं इसका उचित पात्र ही था।"

किरण ने इस बार अपनी सजल दृष्टि ऊपर उठाई और उसके धुंधलके में अरविंद को देखा। उसकी गीली पलकों से एक स्पष्ट उलाहना प्रकट हो रही थी, 'तुम कितने नासमझ हो पुरुष ! नारी के आत्मदान को भी नहीं समझ सकते ?'

अचानक अरविंद को जैसे किसी बात की याद आयी। झट से बोला, "आज तो हमलोग अच्छी पढ़ाई-लिखाई करते रहे ! आज तक पढ़ाते समय न तो मैं कोई दूसरी बात करता था और न आपको करने देता था। किंतु आज मैं खुद क्या-क्या बकता रह गया। कुछ तो पढ़िये !"

"यह क्या पढ़ाई नहीं हुई बाबू ?" किरण इस बार अपने स्वर को संयत करती हुई बोली, "इससे बढ़कर दूसरी पढ़ाई क्या हो सकती है ? आज जितना संतोष मुझे इस पढ़ाई से हुआ है उतना दूसरे किसी दिन की शिक्षा-दीक्षा से नहीं हुआ !"

अरविंद निःशब्द सामने रखी किरण की कॉपी के संशोधन में जुट गया।

बारह

किरण अब प्रायः प्रतिदिन मन्दिर में जाने लगी थी। बड़े उत्साह से वह मंदिर के विकास में अरविंद के कंधा से कंधा मिलाकर काम करने लगी ! इस बीच वहाँ के एक-एक सदस्य से उसका परिचय हो गया। कांति बाबू भी उसके इस उत्साह से बड़े प्रभावित थे। अरविंद को तो मानो किरण के रूप में दाहिना हाथ ही मिल गया था। जब तक दोनों मंदिर में रहते, केवल मंदिर के सम्बन्ध की ही बातें होती। व्यक्तिगत बातें या तो डेरे पर होती या कभी-कभी रास्ते में आते-जाते समय।

एक दिन दोनों मंदिर से घर वापस आ रहे थे। संध्या का समय था। आसमान में आज दोपहर से ही बदली छायी हुई थी, किंतु पानी नही पडा था। अरविंद दूसरे दिनों की अपेक्षा आज कुछ ज्यादा थका मालूम हो रहा था। रास्ते में अरविंद ने एक बार जब किरण पर अपनी मुरझाई दृष्टि डाली तो वह किसी विचार में खोयी हुई-सी लगी। अरविंद उससे कुछ कहना चाहता था। किंतु बात जबान तक आते-आते रुक जाती थी। अन्त में साहस बटोरकर बोला, "एक नयी बात आपने सुनी भाभी ?"

किरण ने मानो होश में आकर कुछ चकित दृष्टि से अरविंद की ओर देखा। बोली, "कैसी बात बाबू ?"

"कुछ लोग हमारे एक साथ रहने और साथ-साथ आने-जाने को लेकर दूसरे ढंग से सोचने लगे है," अरविंद के अधर पर एक उदास मुस्कान खिली और बुझ गयी।

"वह क्या ?"

"कि हमारा सम्बन्ध··········!" अरविन्द से इससे आगे नहीं बोला गया। उसके सिर में जोर की पीडा हुई।

किरण ने एक खोज भरी दृष्टि से अरविन्द के पीले पडे चेहरे को देखा। फिर पूछा, "आपको कैसे मालूम ?"

"पिछले चार-पांच दिनों से सुन रहा हूँ। कहने वालों में कुछ मेरे ही दोस्त है और कुछ दूसरे लोग।"

किरण खामोश हो गई। उसे अचरज हुआ कि अरविन्द ने आज तक इस बात को उससे छिपा क्यों रखा था। और यदि ऐसी ही बात थी तो इसमें चिंता करने का कौन-सा बिंदु था! किरण ने पुनः पूछा, "तो इससे आप दुखी हैं बाबू ?"

"दुख की बात ही है भाभी। ऐसी बेसिर पैर की बातों का भी मंदिर के जीवन पर बुरा प्रभाव पड सकता है। हमारी प्रतिष्ठा की हानि मंदिर की नीव को कमजोर बना सकती है।"

अरविंद का चेहरा उतर गया। उसे देखकर किरण के अन्तर्मन में बड़ी पीड़ा हुई। बोली, "सत्य सत्य होता है बाबू, असत्य से क्यों डरा जाये ?"

"जब तक सत्य प्रकट होगा, तब तक असत्य से बहुत कुछ अनर्थ हो चुका रहेगा, अरविंद खिन्न स्वर में बोला, "कहीं पिता जी तक ये बातें पहुँच जायें तो पता नहीं, वे क्या सोचेंगे।"

उनका ताँगा घर के सामने आकर रुक गया। पहले किरण उतरी, उसके बाद अरविंद उतरने लगा। जमीन पर पैर रखते ही उसे चक्कर आ गया। वह गिर पड़ता यदि पास खड़ी किरण उसे संभाल नहीं लेती। चकित हुई-सी किरण उसके शरीर का स्पर्श करके सिहर उठी। घबड़ाकर बोली; 'बाबू, आपको तो तेज बुखार है ?"

"लाला ! ओ लाला !!" घबड़ाई हुई किरण ने दूसरे ही क्षण पुकारा, "जल्द आना तो।"

नलिन बरामदे में अकेला बैठा कोई मैगजिन उलट-पुलट कर देख रहा था। किरण की आवाज सुनकर दौड़ गया। उसके पास आने पर किरण बोली, "बाबू को थाम कर ले चलो तो। इन्हें तेज बुखार है। चक्कर आ रहा है।"

अरविंद पहले तो किसी सहारे के लिए तैयार नहीं हुआ, किंतु अपने को असमर्थ पाकर नलिन के कन्धे का सहारा लिये धीरे-धीरे आगे बढ़ा। वह अपने बिस्तर पर होले ही लिटा दिया गया। किरण दौड़कर थर्मामीटर लायी। बुखार देखकर चौंक पड़ी—१०४° ! उसने घबड़ाकर नलिन से कहा, "इनकी हालत अच्छी नहीं है लाला, पिताजी को जल्दी खबर कर दो और किसी डाक्टर को तुरत बुलाओ।"

"पिताजी तो पता नहीं कहाँ गये हैं। किंतु मैं तुरत डाक्टर बुलाये आता हूँ। तब तक इन्हें आप संभालिये।"

घबड़ाया हुआ नलिन अपनी सायकिल से डाक्टर की खोज में चल पड़ा। इधर किरण अरविंद के पास बैठी धीरे-धीरे हवा करने लगी। कुछ देर बाद ठंढे पानी में तौलिया भिगोकर उसके पूरे चेहरे को पोंछा और उसके बिखरे बालों को अपनी उँगलियों से धीरे-धीरे सहलाने लगी। अरविंद ने अब तक अपनी पलकें बन्द कर ली थी। किरण का मन कई तरह की आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं से भरता जा रहा था। रोने-रोने को जी हो रहा था। किसी तरह अपने को काबू में रखकर उसने धीरे से पुकारा, "बाबू !"

बड़ी कोशिश के बाद कुछ देर के लिए अरविंद की बोझिल पलकें खुली। अपने मुख पर किरण के झुके चेहरे को देखकर उसने बिना कुछ बोले ही तुरत आँखें बन्द कर लीं।

"कहीं कोई दर्द है बाबू ?"

जवाब में अरविंद से कुछ नहीं बोला गया। दो-तीन मिनट के बाद वह पलकें बन्द किए ही क्षीण स्वर में बोलने लगा, " ... ठीक हूँ म...

घबड़ाने की कोई बात नहो ·············· · ! मैं नहीं भी रहूँ तो अब मुझे कोई चिंता नहीं - पिता जो और तुम तो हो ! मंदिर को संभाल लोगी, मैं · '

किरण ने झट से अपने कोमल कर-तल से अरविंद के हिलते होठों को बन्द कर दिया। उसकी झुकी हुई सजल पलकों से दो-चार बूंदें अरविंद के तप्त ललाट पर चू पड़ीं।

"यह क्या कहते हो बाबू ?" किरण के रूंधे कण्ठ से निकला, "तबीयत खराब थी, फिर भी आज दिनभर बिना विश्राम लिए काम करते रहे। मुझसे कहा तक नहीं !··· ···· ······ ओह, कहाँ का इतना सारा पाप किया था मैंने !"

किरण भूल गई कि वह किसी रोगी के पास बैठी है। सुबक-सुबक कर रो पड़ी। अरविंद उसके रोने से बेखबर आँखें मूँदें रहा। न जाने कब तक किरण सुबकती रही कि बाहर से किसी के आने की आहट आयी। नलिन ने डॉक्टर के साथ प्रवेश किया। डॉक्टर बनर्जी ने आते ही रिमार्क दिया, "आप यह क्या कर रही हैं ? रोने से रोगी की हालत और खराब होगी।"

रोगी की जाँच करने के बाद डाक्टर बोले, "बुखार ज्यादा है। इसे कम करने के लिए जल्दी ही बर्फ की पट्टियाँ दीजिए। जो दवा मैं लिख देता हूँ उसे चलाइए। चार घण्टे के बाद फिर मुझे खबर कीजिए।"

इसके बाद नलिन को अकेले मे ले जाकर और उसे कुछ समझा-बुझाकर डाक्टर बनर्जी चले गये। उनके जाने के बाद किरण नलिन के पास गई। पूछा, "क्या कहा डाक्टर ने ?"

"कोई खास बात नहीं। यही कि घबड़ाने की कोई बात नहीं। अच्छे हो जायेंगे।"

नलिन झूठ बोल गया। डाक्टर ने कहा था कि यदि रोगी की ठीक से देख-भाल नहीं की गई तो हालत सिरियस हो सकती है। किरण उद्‌भ्रांत-सी पुनः अरविंद के पास पहुँच गयी। इसी समय कांति बाबू कहीं से घबड़ाये हुए आ गये। डाक्टर बनर्जी से रास्ते में ही उनकी मुलाकात हो गयी थी। उन्होंने डाक्टर के मुख से ही अरविंद की बीमारी की सूचना प्राप्त कर ली थी। उधर से ही बर्फ इत्यादि जरूरी चीजें खरीदते आये थे। आते ही नलिन से बोले, "ताकते क्या हो ? बुखार को पट्टी दे-दे कर कम करना है। जल्दी करो।"

दिनों में गलकर पीला पड गया। किंतु उसकी आत्म-शक्ति पुष्ट होती गयी। अरविंद के बिस्तर के निकट कई रातें उसने जागकर बिताई थी। इनमें से दो रातों की स्मृति वह जीवन भर संजोयेगी। एक रात को अरविंद कुछ स्वस्थ था और बड़े प्यार से किरण की ओर एकटक निहार रहा था। उस समय किरण उसके ललाट पर धीरे-धीरे कोई बाम लगा रही थी। रात का नीरव पहर। आस-पास के सभी लोग सो चुके थे। बिजली के धीमे प्रकाश में अरविंद अपने चेहरे पर झुकी हुई किरण को बड़ी प्रीति के साथ देखता जा रहा था। किरण उस समय उसके ललाट पर हल्के-हल्के उँगलियाँ फेर रहीं थी। अचानक गंगा पार से किसी श्रृगाली के रोने की डरावनी आवाज रात की नीरवता को चीरती हुई-सी किरण के कानों में गूँज गई। दूसरे ही क्षण अरविंद के ललाट पर थिरकती उँगलियाँ कांप गयी। अरविंद ने मानो इस कम्पन का अभिप्राय भाँप लिया। अपने निर्बल हाथ को बढाकर उसने किरण के हाथ को पकड़ लिया। फिर उसे अपनी धड़कती हुई छाती पर दबाकर क्षीण कण्ठ से बोला, "तुम कितनी अच्छी हो भाभी, कितनी महान !'''' '''''' ''''''मैं अभी इस समय मर भी जाऊँ तो मेरे जैसा भाग्यशाली कौन होगा ? '''''' ''''''और यदि बच भी गया तो यह जीवन तुम्हारा ही होगा, हर तरह से तुम्हारा, क्योंकि इसे बचाने वाली तुम्हीं होगी। तुम ''''''!"

अरविंद कुछ और कहता, किंतु तब तक किरण ने अपने दूसरे हाथ की उँगलियों से उसके होठों को बन्द कर दिया। प्यार से बोली, "इतना न बोलो बाबू, थक जाओगे! पहले अच्छे तो हो जाओ। फिर मन भर कर बातें करना। मैं नहीं रोकूँगी।"

अरविंद चुप हो गया। किंतु किरण के कोमल करतल को अपने दुर्बल हाथ से अपनी छाती पर चिपकाये रहा। लगा मानो अपने हृदय की धडकनों के माध्यम से ही अपने मन का सम्पूर्ण आभार, अपने उच्छल प्रेम का निर्वाक निवेदन प्रकट कर देना चाहता हो। किरण ने भी कोई प्रतिरोध नहीं किया। वह उसी तरह अरविंद के वक्ष पर झुकी रही। उसे अनिर्वचनीय प्रेम के आवेश में अपलक निहारती रही। उस रात अरविंद का बुखार उतर गया था। अतः किरण का मन दूसरे दिनों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न और हल्का हो गया था।

इसी प्रकार एक दूसरी रात की स्मृति किरण के लिए बड़ी रोमाञ्चक है। उस रात अरविंद का तापमान अचानक बहुत बढ़ गया था। डॉक्टर आकर देख गये। कुछ उपचार बता गये। रात के ग्यारह बजे तक बुखार कुछ कमा। आशा

जगी और किरण ने मन ही मन भगवान को न जाने कितने धन्यवाद दिए। किन्तु दो बजे रात के लगभग अरविंद द्वारा क्षीण कण्ठ से उच्चरित 'भाभी' सम्बोधन ने किरण को जैसे सचेत कर दिया। वह उस समय वहीं फर्श पर एक चटाई पर बैठी झपकी ले रही थी। अरविंद की आवाज सुनकर जल्दी से उठ बैठी। पास पहुँचकर पूछा, "कुछ चाहिए बाबू ?"

अरविंद होश में नहीं था कि उसकी बात का कोई जवाब देता। बेहोशी के दौड़ में वह कुछ क्षण पहले से ही बड़बड़ाये जा रहा था, "सुधी भाभी को छोड़कर ....मैं मरना नहीं चाहता...... ...... किरण भाभी .... सुधी भाभी " .... तुम्हें क्या दे सकता हूँ " ....मैं .... भाभी ....शोभा ने मुझे बचा लिया ".........बड़ी अच्छी लड़की है"...... मत मारो मुझे मत "......मारो........मैं निर्दोष हूँ.........भाभी ......।"

किरण अधिक देर तक अरविंद की बातें सुनने को नहीं रुकी। उसने तुरत थर्मामीटर लगाया। बुखार देखकर उसके होश उड़ गये—१०५°। वह एक झटके में ही कांति बाबू के सोने के कमरे में पहुँच गयी। उन्हें जगाकर रोती हुई बोली, "बाबूजी, उनकी हालत फिर बिगड़ गयी है। जल्दी कुछ इन्तजाम कीजिए।"

कांति बाबू घबड़ाकर उठे। जाकर स्वयम् भी अरविंद को देखा। बेहोशी में उसका प्रलाप अभी भी जारी था। उसी रात को घबड़ाये हुए डाक्टर के पास गये। डॉक्टर ने आते ही अरविन्द को कोई इन्जेक्शन दिया और कांति बाबू को एकान्त में ले जाकर बोले, "मेरी जितनी सामर्थ्य थी, मैंने किया। किन्तु अब मेरा कोई वश नहीं चल रहा है। जो दवा मैंने दी है, वही चलाते जाइये। ईश्वर पर भरोसा रखिये।"

धीरे-धीरे आस पास के दूसरे कई हमदर्द पड़ोसी जमा हो गये। उस रात कांति बाबू का धीरज जाता रहा। वे बाहर बरामदे में बैठ कर रोने लगे। किंतु किरण का रोना बन्द हो चुका था। वह पत्थर की मूर्ति की तरह अपने कमरे में गई। भगवान शंकर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर बड़ी देर तक खड़ी रही। कुछ देर बाद भक्ति के आवेश में उसकी बन्द पलकों से आँसू बरसने लगे। पता नहीं; वह कबतक इस निःशब्द प्रार्थना में डूबी रही कि कमला दौड़ती हुई आई। बोली, "बाबू होश में आ गये बहू, आपको पुकार रहे हैं। जल्दी चलिए।"

किरण का ध्यान टूट गया। वह कमला के पीछे अरविन्द के नजदीक आयी। अबतक आसमान साफ हो चला था। अरुणोदय की सूचना चिड़ियों की चहचह से मिलने लगी थी। किरण को लगा जैसे अभी अभी बीती रात उसके

जीवन के दुःस्वप्नों की प्रतीक थी। यह प्रभात मानो उसके लिए नया प्रकाश लेकर आ रहा था। उसके यहाँ पहुँचते ही शांति बाबू बोले, "अब डरने की कोई बात नहीं बेटी, भगवान सब ठीक कर देंगे।"

धीरे-धीरे किरण और ममता को छोड़कर वहाँ पर भीड़ लगाये दूसरे लोग बाहर निकल गये। अरविन्द शांत, किंतु निर्मल दृष्टि से किरण को देख रहा था। क्षीण स्वर में बोला, "मुझे छोड़कर कहाँ चली जाती हो भाभी!"

"मैं कहीं नहीं जाती बाबू", किरण ने मीठे स्वर में कहा, "मैं बराबर आप ही के पास रही और रहूँगी। आप शान्त लेटे रहें।"

और आज वह दिन आया है जब अरविन्द स्वस्थ हो चला है। यों अभी भी उसे बाहर नहीं निकलने दिया जाता। रोग दूर हो चुका है। किंतु कमजोरी अभी भी है। अच्छे हो जाने पर एक दिन उसने किरण के चेहरे पर गौर किया। आश्चर्य से बोला, "भाभी, मुझसे बढ़कर रोगी तो तुम हो गयी हो! तुम्हारे चेहरे में थोड़ा भी खून नहीं है।"

"मैं तो बिल्कुल स्वस्थ हूँ। पहले से भी अधिक", किरण मुस्काती हुई बोली, "शरीर कुछ गला जरूर है। किन्तु मन प्राणों में बड़ी ताजगी और ताकत आ गयी है।"

अरविन्द चाहकर भी फिर कुछ बोल नहीं पाया। जैसे जैसे वह स्वस्थ होता गया, किरण का समय कुछ दूसरे कामों में भी बीतने लगा। किन्तु दवा देने या खिलाने के समय वह नियमित रूप से अरविन्द के पास रहती। अरविन्द का वश चलता तो वह उसे अपने पास से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होने देता। उसे अचरज होता था कि किरण के प्रति उसके मनोभाव में अचानक इतना परिवर्तन कैसे हो गया। कभी कभी उसे लोगों की उस बात का भी स्मरण हो आता था जो उसके और किरण के बीच अनैतिक सम्बन्ध को लक्ष्य करके व्यंग्य-पूर्वक कही गई थी। उस समय ऐसी बातें सुनकर अरविन्द के मन पर कितनी चोट पहुँची थी। किन्तु अभी की स्थिति में मन की वह चोट एक नई शक्ति में बदल गयी थी। उसके कारण उसके मन में एक नया संकल्प जग गया था। वह समाज से लड़ेगा, किंतु किरण का साथ किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ेगा।

आज तड़के ही बाहर गेट पर किसी कार की घर्राहट से अरविन्द की नींद टूट गयी। किसी के बोलने, उतरने या फिर कार पर चढ़ने की सी आवाज हुई। इसके बाद अरविन्द की आँखें कुछ देर के लिए फिर लग गयीं। सुबह में हाथ

मुँह धो लेने के बाद जब किरण के बदले कमला उसे दवा देने आयी तो उसे कुछ आश्चर्य हुआ। कुछ रंज-भरे स्वर में पूछा, "भाभी क्या कर रही हैं दाई ?"

"आज उनके कुछ मेहमान आ गये हैं बाबू", कमला बोली, "बहू जी उन्हीं के स्वागत-सत्कार में लगी हैं। कुछ देर में आकर वे आप से मिल लेंगी !"

अरविन्द कड़वी दवा को हलक के नीचे उतारता हुआ पूछ पड़ा, "कौन हैं ये मेहमान ?"

"मुझे नहीं मालूम। बहू जी की सम्बन्धी जान पड़ती हैं। एक अधेड़ उम्र की औरत है। दूसरी उनकी बेटी है। साथ में एक नौकर भी है। ये लोग तुरत चले जाना चाहते थे। पर बहू जी ने बहुत कह-सुनकर उन्हें रोक रखा है।"

"ठीक है" अरविन्द अपने बिस्तर पर लेटता हुआ बोला, "भाभी को थोड़ी देर के लिए भेज देना। जरूरी काम है !"

"बहुत अच्छा", कहकर कमला कमरे से बाहर हो गयी।

अरविन्द किरण की प्रतीक्षा करने लगा। उसकी इस लम्बी बीमारी में, पता नहीं, मन्दिर की क्या हालत हुई है। किरण और कांति बाबू भी तो उसी की बीमारी को लेकर उलझे रह गये। अरविन्द कुछ यही सोचता रहा कि किरण मुस्काती हुई उसके पास आयी। बोली, "कहिए बाबू, क्या आज्ञा है ? शोभा बड़ी अच्छी लड़की है, है न ?"

"यह क्या पहेली बुझा रही हो भाभी ?" अरविन्द कुछ न समझ कर बोला, "तुम्हारे मेरे पास आने में और किसी शोभा के अच्छी होने में क्या सम्बन्ध है आखिर ?"

"जिसकी तुम प्रशंसा करो, वह सचमुच अच्छी लड़की होगी", किरण भी अब जान-बूझ कर 'तुम' का प्रयोग करती हुई बोली। किन्तु अरविंद इसे लक्ष्य नहीं कर सका, मानो उसके और किरण के बीच 'तुम' या 'आप' की अब कोई दीवार ही न हो।

"मैं प्रशंसा करूँ।" अरविन्द हैरान होकर बोला, "किसकी ?"

"शोभा की।"

"किन्तु शोभा नाम धारिणी किसी लड़की को मैं जानता तक नहीं।"

"तुमने तो अपनी बेहोशी में शोभा का नाम कई बार लिया। उसका गुण-गान भी किया और किसी सुधी भाभी को भी याद करते रहे।"

"आश्चर्य है !" अरविन्द के स्वर में कौतूहल था, "सुधी नाम की एक लड़की थी जरूर। किन्तु उसे भाभी कैसे बना दिया मैंने ? अबतक के जीवन में केवल आप ही को भाभी कहकर पुकार सका हूँ। जहाँ तक शोभा का प्रश्न है, उसे मैं जानता तक नहीं।"

"संभव है," किरण अब कुछ गम्भीर पड़कर बोली, "बेहोशी की हालत में होश तो ठिकाने रहता नहीं। मुँह से बहुत कुछ अनाप-सनाप निकल जाता है। किन्तु मैंने शोभा की चर्चा इसलिए की कि इसी नाम की मेरी एक प्रिय सहेली पटने से आज ही आई है। उसकी चर्चा मैंने पहले भी एक बार तुमसे की थी।"

"ओ, समझा," अरविन्द कुछ याद करता बोला, "शायद तुम्हारे अलबम में उसी का फोटो मैंने देखा था।"

"बस-बस, बिल्कुल वही है वह," किरण उल्लास के साथ बोल गयी, "साथ में उसकी माँ भी आयी है। तुम्हें उनसे जरूर मिलाऊँगी। उनके विचार तुम्हें पसन्द आयेंगे। बड़ी तेजस्वी महिला हैं। यह शोभा तो शोभा ही है। बी० ए० में पढ़ रही है। दोनों पन्द्रह-बीस दिनों के लिए बनारस आयी हैं। डेरे का प्रबन्ध दूसरी जगह कर लिया था। किन्तु मैंने इन्हें अपने यहाँ ही रोक रखा है।"

"अच्छा किया," अरविन्द आश्वस्त होकर बोला, "अतिथि देवो भव ---- अच्छा, आपसे एक निवेदन भी करना है।"

"निवेदन के पहले एक बात जानना चाहती हूँ," किरण मुस्काती हुई बोली, "यह 'आप' और 'तुम' का झमेला कब तक चलता रहेगा ? क्यों न कोई एक ही रास्ता पकड़ा जाये ?"

"तो आप दो रास्ते कैसे मान लेती हैं ?" अरविन्द भी मुस्काया, "हमारे और आपके बीच अब आप और तुम का कोई झमेला ही नहीं। इतना ही कह सकता हूँ कि पहले के आप और अभी के आप में बड़ा अन्तर है—यह 'आप' तुम का ही पर्याय है।"

"मान गयी," किरण मीठी हँसी हँसकर बोली, "बीमार क्या पड़े कि मेरी जबान भी बदल दी !·········अच्छा, अब निवेदन करो बाबू ! सुनने को तैयार हूँ।"

"मैं यही कहना चाहता था कि आज तो मुझे मन्दिर ले चलो। मैं अब अच्छा हो गया। वहाँ देखना चाहता हूँ कि कैसा काम चल रहा है।"

"अभी बाहर जाने का नाम तक न लो," किरण आदेश के स्वर में बोली, "*डॉक्टर ने मना किया है। अभी कम से कम दस दिन और बचा लो।* मन्दिर की हालत ठीक-ठाक है। पिताजी तो वहीं जाते ही रहते हैं। आज भी वे वहीं गये हैं।"

"दस दिन तो अब बिस्तर पर पड़ा नहीं रह सकूंगा भाभी," अरविन्द दुखी स्वर में बोला, "यह भी कोई जीवन है। बिस्तर पर पड़े रहो! अकेले कमरे में मन नहीं लगता।"

"ओ, यह बात!" किरण पुनः मुस्काकर बोली, "इसीलिए तो कहती हूँ कि शादी कर लो! बिना गृहिणी के मन लगे भी तो कैसे?··· "अच्छी बात है, मैं अब तुम्हारे पास हो बैठूंगी। जब तक तुम अपने लिए किसी को खोज नहीं लाते।"

"खोजने की जरूरत क्या है भाभी," अरविन्द शरारत के स्वर में बोला, "*जो अपना होगा, खुद ही नजदीक आ जायेगा।*"

"उहूँ!" किरण चुहल की मुद्रा में हँस कर बोली।

"ऐसी बेवकूफ और बेशर्म लड़की कौन होगी! अपना सौदा इतना सस्ता मत समझो।"

अरविन्द कुछ बोलने को सोच ही रहा था कि किरण बिजली की तरह कमरे से बाहर हो गयी।

चौदह

जब से निर्मलादेवी शोभा को साथ लेकर बनारस आयी हैं, किरण का उदास मन हरा-भरा हो गया है। एक तो अरविन्द का निरोग हो जाना और दूसरे अपने प्रियजनों के साथ इतने दिनों के बाद की मुलाकात—ये दोनों खुशियाँ जैसे किरण के मन में अँट नहीं पा रही हैं। शोभा के लिए किरण और किरण के लिए शोभा पहले से बदली हुई जान पड़ती है। दोनों का पत्र-व्यवहार बराबर

होता रहा था, अतः एक दूसरे के विचारों से वे अवश्य परिचित होती रही थी। किन्तु इन कुछ महीनों में ही एक दूसरे को देखकर दोनों ने ही एक दूसरे के शारीरिक विकास और पहनावे पर आश्चर्य व्यक्त किया। शोभा की नजर में किरण पहले से दुबली-पतली अवश्य हो गयी है, किन्तु इस दुबलेपन में भी एक ऐसा आकर्षण है जैसा पहले उसके स्वस्थ शरीर मे भी नही था। किरण की दृष्टि से भी शोभा में कई परिवर्तन हुए है। शोभा के अंग-प्रत्यंग पहले से अधिक मांसल, सुन्दर और सुडौल लग रहे है। उसके गोरे रंग में भी अधिक निखार आ गया है।

किरण ने दोनों माँ-बेटी के लिए एक अलग कमरा दे दिया है। कमरे में जरूरत के सभी सामान रख दिए गये हैं। किन्तु यहाँ आने के बाद निर्मला देवी को अपने कमरे में प्रायः अकेले ही रहना पड़ता है। शोभा दिन को तो किरण का साथ छोड़ती नही, रात मे भी अक्सर उसी के साथ सोती है। अरविन्द इस बीच पूर्णतः स्वस्थ हो गया है। आज बहुत दिनों के बाद वह नलिन को साथ लेकर मन्दिर घूमने गया है। इसीलिए किरण आज शोभा के साथ अपने को बहुत फ्री महसूस कर रही है। कान्ति बाबू को किरण के पिता के पत्र से निर्मला देवी और शोभा का परिचय पहले ही मिल चुका था। उसी पत्र से उन्हें इनके काशी आने की तिथि और समय की भी जानकारी हो गई थी। अतः उनके आने के दिन स्वागत में कान्ति बाबू स्वयं गाड़ी लेकर स्टेशन पर पहुँच गये थे। उन्हे अपने साथ ही घर लेते आये थे। धीरे-धीरे कान्तिबाबू की भी इन दोनों के साथ आत्मीयता बढती गई। निर्मला देवी के साथ गाहे-बे-गाहे सामाजिक और धार्मिक विषयो पर उनकी बातें भी चलने लगी थीं। कान्तिबाबू के साथ निर्मला मंदिर भी देख आयीं है। वहाँ की व्यवस्था और सेवा-भाव ने उनका मन मोह लिया है। मन्दिर के कल्याण-कार्यों से प्रभावित होकर उन्होंने स्वतः उसे पाँच हजार रुपये का दान भी कर दिया है। किन्तु उनके लिए सबसे बड़ी प्रशंसा और विस्मय का विषय है यह अरविन्द। इस युवक का चरित्र धीरे धीरे उन्हें अपनी ओर खीचता जा रहा है। इतनी अल्प वयस मे इतनी लगन और प्रतिभा का धनी यह युवक वास्तव में कर्मवीर है। निर्मला ने ऐसी बात कई बार किरण, शोभा तथा कांतिबाबू के सामने कही है। कान्तिबाबू तथा किरण के मुँह से वे अरविन्द के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अबतक कई बातें सुन चुकी हैं। एक दो बार अरविन्द से भी उनकी हल्की बातचीत हो चुकी है।

"वह लड़की है कौन ?"

"मैं नहीं जानती।"

"मन का रहस्य बड़ा विचित्र है," किरण बोली, "विरक्ति कभी-कभी आसक्ति बन जाती है। आसक्ति भी कभी-कभी विरक्ति में बदल जाती है।"

"और मैं तो अब सोचने लगी हूँ दीदी," शोभा ने मानो किरण की बात सुनी ही नहीं हो, भावावेश में बोली, "विनोद भैया के साथ जैसे मैंने ही अन्याय किया हो। वे गलती करते थे जरूर, उनके चरित्र में खामियाँ थीं जरूर। किन्तु मैं चाहती तो अपने प्रेम के बल से उनकी सारी कमियों को दूर कर सकती थी। इसके बदले मैं उनसे कतराती गई, घृणा करती गई। उनकी अच्छाइयों पर मेरा ध्यान ही नहीं गया। मैं भूल गई कि वे मेरे बाल सखा हैं और उनके और मेरे बीच मित्रता के कई मजबूत धागे हैं। अपने मिथ्यादंभ और अभिमान के चलते मैंने उन्हें हमेशा के लिए खो दिया।"

किरण ने लक्ष्य किया कि शोभा की वाणी लड़खड़ा रही है। किन्तु उसे यह आशा नहीं थी कि अपनी बात कहकर शोभा रोने लगेगी। जब वह सिसकने लगी तो किरण उसके आँसू पोंछती हुई सान्त्वना भरे शब्दों में बोली, "हमारे भाग्य का नियंता ईश्वर है बहन! वह जो कुछ करता है, कुछ सोच कर ही करता है। हम यदि उसी के चरणों में अपनी इच्छायें सौंपकर चलें तो शायद हमारी जिन्दगी कुछ अधिक खुशहाल हो जाये""। तुम तो हर तरह से योग्य हो, एक अच्छी लड़की के सारे गुण तुममें हैं। यदि विनोदजी तुमसे अधिक योग्य पत्नी पा सकते हैं तो तुम भी उनसे अधिक योग्य पति पा सकती हो। जहाँ तक अपमान की बात है, वह मात्र तुम्हारी मानसिक सृष्टि है। विनोदजी ने जो काम अपने आत्म-सुख के लिए किया, उससे तुम्हारा अपमान कैसे हो सकता है? उनके सुख को अपने सुख की तरह समझो। तुम्हारी सारी पीड़ा दूर हो जायेगी।"

"मेरा मन बहुत कमजोर है दीदी," शोभा उसी तरह सुबकती हुई बोली, "क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसे मैं ठीक से समझ नहीं पाती। मुझे दुख है कि विनोद भैया मुझसे नाखुश हो गये। हम दोनों का एक दूसरे से विवाह न भी होता तो भी हम भाई-बहन के रूप में अपना स्नेह बाँट सकते थे। भाग्य को यह भी मंजूर नहीं था। जो इतना प्रिय था, वही अब इतना अप्रिय हो गया।"

किरण को मन ही मन मनुष्य की प्रकृति पर आश्चर्य हो रहा था। जो शोभा कुछ दिनों से स्वयं विनोद के स्वभाव से असंतुष्ट थी और उससे छुटकारा

आज सुबह से ही तेज हवायें चलने लगी थी। धूल-गर्द उड़ने के कारण दिन का रंग कुछ उदास-उदास लगता था। शोभा और किरण कमरे की खिड़कियाँ बन्द किए एक ही बिस्तर पर पड़े-पडे अपने जीवन की कुछ गुत्थियाँ सुलझा रही थीं। बातचीत का विषय था विनोद।

"कहाँ तो मैंने सोचा था कि तुम विनोद बाबू को भी बनारस ले आओगी," किरण ने खिन्न स्वर में कहा, 'कहाँ यह सब नई बातें सुन रही हूँ।"

"क्या कीजिएगा दीदी," शोभा दुःखी स्वर में बोली, "यह सब मेरे भाग्य का ही दोष है। मुझे अपने लिए जितनी चिन्ता नहीं, उतनी माँ के लिए है। गोपाल चाचा के स्वर्गवासी हो जाने के बाद विनोद भैया के व्यवहारों में जो इतना परिवर्तन हुआ है, उससे माँ के हृदय पर बड़ी ठेस पहुँची है। आप खुद भी तो माँ के मुँह से सब कुछ सुन ही चुकी हैं।"

"किन्तु तुम्हें तो इससे खुशी ही होनी चाहिए। तुम्हारे पत्रों को पढ़ कर मुझे ऐसा लगा जैसे तुम खुद विनोद बाबू से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहती हो। अब जब ईश्वर ने तुम्हारे रास्ते को साफ कर दिया तो फिर अफसोस किस बात का?"

"मुझे खुद भी इस पर अचरज है दीदी," शोभा बोली, "पहले मैं इससे जरूर खुश हुई थी। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, विनोद भैया का अपमान जहर की तरह मेरे मन-प्राणों में फैलता गया। हालत ऐसी हो गयी है कि मानसिक रूप से अब मैं किसी भी युवक को अपने जीवन-साथी के रूप में स्वीकार करने के योग्य नहीं रह गई हूँ। मैं तो हमेशा के लिए लांछित, अपमानित और पराजित कर दी गई हूँ। इस खेल में विनोद भैया ही विजयी हुए हैं।"

इसके बाद दोनों कुछ देर तक मौन हो गयीं। कुछ सोच कर किरण ने फिर पूछा, "आखिर विनोद जी ने तुम्हारे साथ सम्बन्ध करने से खुद ही इन्कार कैसे कर दिया? सम्भव है, तुम्हारी उदासीनता देख कर ही उन्होंने ऐसा कदम उठाया हो।"

"मुझे तो इसके सिवा एक और कारण मालूम हुआ है," किरण के स्वर में अचानक ईर्ष्या का रंग गहरा गया, "उन्हें मुझसे भी अच्छी एक दूसरी लड़की मिल गयी है। उसी के चलते शायद उन्होंने मुझसे मुख मोड़ लिया।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम?"

"एक दिन वे अपने एक मित्र के साथ कुछ इसी ढंग की बातें कर रहे थे। उनसे उस लड़की की प्रशंसा का पुल बाँध रहे थे। मैंने पर्दे की ओट में सब कुछ सुन लिया था।"

"वह लड़की है कौन ?"

"मैं नहीं जानती।"

"मन का रहस्य बड़ा विचित्र है," किरण बोली, "विरक्ति कभी-कभी आसक्ति बन जाती है। आसक्ति भी कभी-कभी विरक्ति में बदल जाती है।"

"और मैं तो अब सोचने लगी हूँ दीदी," शोभा ने मानो किरण की बात सुनी ही नहीं हो, भावावेश में बोली, "विनोद भैया के साथ जैसे मैंने ही अन्याय किया हो। वे गलती करते थे जरूर, उनके चरित्र में खामियाँ थीं जरूर। किन्तु मैं चाहती तो अपने प्रेम के बल से उनकी सारी कमियों को दूर कर सकती थी। इसके बदले मैं उनसे कतराती गई, घृणा करती गई। उनकी अच्छाइयों पर मेरा ध्यान ही नहीं गया। मैं भूल गई कि वे मेरे बाल सखा हैं और उनके और मेरे बीच मित्रता के कई मजबूत धागे हैं। अपने मिथ्यादंभ और अभिमान के चलते मैंने उन्हें हमेशा के लिए खो दिया।"

किरण ने लक्ष्य किया कि शोभा की वाणी लड़खड़ा रही है। किन्तु उसे यह आशा नहीं थी कि अपनी बात कहकर शोभा रोने लगेगी। जब वह सिसकने लगी तो किरण उसके आँसू पोंछती हुई सान्त्वना भरे शब्दों में बोली, "हमारे भाग्य का नियंता ईश्वर है बहन! वह जो कुछ करता है, कुछ सोच कर ही करता है। हम यदि उसी के चरणों में अपनी इच्छायें सौंपकर चलें तो शायद हमारी जिन्दगी कुछ अधिक खुशहाल हो जाये""। तुम तो हर तरह से योग्य हो, एक अच्छी लड़की के सारे गुण तुममें हैं। यदि विनोदजी तुमसे अधिक योग्य पत्नी पा सकते हैं तो तुम भी उनसे अधिक योग्य पति पा सकती हो। जहाँ तक अपमान की बात है, वह मात्र तुम्हारी मानसिक सृष्टि है। विनोदजी ने जो काम अपने आत्म-सुख के लिए किया, उससे तुम्हारा अपमान कैसे हो सकता है? उनके सुख को अपने सुख की तरह समझो। तुम्हारी सारी पीड़ा दूर हो जायेगी।"

"मेरा मन बहुत कमजोर है दीदी," शोभा उसी तरह सुबकती हुई बोली, "क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसे मैं ठीक से समझ नहीं पाती। मुझे दुख है कि विनोद भैया मुझसे नाखुश हो गये। हम दोनों का एक दूसरे से विवाह न भी होता तो भी हम भाई-बहन के रूप में अपना स्नेह बाँट सकते थे। भाग्य को यह भी मंजूर नहीं था। जो इतना प्रिय था, वही अब इतना अप्रिय हो गया।"

किरण को मन ही मन मनुष्य की प्रकृति पर आश्चर्य हो रहा था। जो शोभा कुछ दिनों से स्वयं विनोद के स्वभाव से असंतुष्ट थी और उससे छुटकारा

तो मैंने उनसे भी पूछा था कि उसका क्या मतलब था। उन्हें खुद आश्चर्य हुआ और वे बोले कि शोभा नाम की किसी लड़की को वे जानते तक नहीं।"

"सचमुच, अचरज की बात है," शोभा उत्कण्ठा से बोली; "किंतु इतना स्पष्ट है कि इनके मन में बड़ा कम्प्लेक्स है। इनका जीवन कड़े संघर्षों में बीता है, यह तो आप ही के मुँह से सुन चुकी हूँ।"

"हाँ, सो तो ठीक है," किरण कुछ सोचती हुई बोली।

इसी बीच बंद दरवाजे के बाहर से निर्मला की आवाज आयी, "अभी सोयी ही हो बेटी ? अन्नपूर्णा के दर्शन करने नहीं चलोगी ?"

किरण ने हड़बड़ा कर दरवाजा खोला। बोली, "आइए चाची, हम दोनों जगी ही हैं।"

"तुम दोनों की बातचीत तो जैसे इस जनम में पूरी ही नहीं होगी," निर्मला हँसती हुई बोलीं और एक कुर्सी पर बैठ गयीं।

पन्द्रह

आज जैसे ही किरण अरविंद के कमरे में आयी, अरविंद ने उससे एक प्रश्न पूछ दिया, "भाभी, तुमसे एक बात पूछनी है। शोभा जी का पैतृक मकान क्या पटने में ही है ? या उनकी माँ कहीं देहात से आकर पटने में बस गयी है ?"

"मेरी समझ में आपको इस बात का जवाब खुद शोभा ही दे तो अच्छा।"

और किरण अरविन्द के कमरे के बाहर खड़ी शोभा को घसीटती हुई-सी भीतर लायी। हँसती हुई बोली, "बहुत आरज़ू-मिन्नत के बाद आज किसी तरह इसे आपके सामने ला सकी हूँ। ऐसी शर्मीली लड़की है कि क्या कहूँ! कालेज में लड़कियों के साथ धमा-चौकड़ी मचाती रहती है और यहाँ लाज!"

अरविन्द को शोभा के इस नाटकीय प्रवेश पर हँसी आयी। किरण पर मन-ही-मन खीझ भी हुई। जो आदमी संकोच या किसी दूसरे कारण से कहीं नहीं

बहन, क्षमा करेंगी, मैं भाभी से अभी-अभी पूछ रहा था कि आपका घर कहाँ पड़ता है—क्या पटने में ही ?"

अरविंद के मुँह से 'बहन' सम्बोधन सुनकर शोभा के मन को झटका-सा लगा। इस एक शब्द ने ही जैसे उसका सारा संकोच दूर कर दिया। वह मन ही मन अरविंद के प्रति और भी श्रद्धालु हो गयी। नम्र स्वर में बोली, "बिहार प्रांत के सारन जिले में सोनपुर एक बस्ती है – वहीं।"

अरविंद का मन शोभा को लेकर कल रात से ही उलझा हुआ था। वह समझ नहीं पा रहा था कि शोभा नाम से परिचय की कैसी गंध उसके मन में फूट रही थी। निर्मला देवी को देखकर भी उसे ऐसा लगा था जैसे उस चेहरे को उसने पहले भी कभी देखा हो।

"दूसरे के घर-ठिकाने की बात तो आप बड़ी आसानी से पूछ लेते हैं," किरण ने उलाहना के स्वर में कहा, "किंतु जब दूसरे लोग श्रीमान का अता-पता जानना चाहते हैं तो चुप्पी साध लेते हैं !"

"भाभी," अरविंद अपने को संभालता हुआ बोला, "आप तो जानती ही हैं कि मेरी कर्म भूमि बंगाल है। मैं अपनी कर्म-भूमि को ही जन्मभूमि मानता हूँ।"

"मैं नहीं मानती," किरण तर्क के आवेश में बोली, "कोई जरूरी नहीं कि किसी की कर्म भूमि उसकी जन्म भूमि भी हो जाये।"

अरविंद ने किरण के रंज-भाव को लक्ष्य करते हुए कहा, "आप तो बुरा मान गयी भाभी ! आप ऐसा समझिए कि मेरी भी जन्मभूमि बिहार में ही कहीं है। कई कारणों से मैं अभी उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने की स्थिति में नहीं हूँ। क्षमा करेंगी।"

अनजाने ही बातचीत एक ऐसे मोड़ पर आ गयी थी जिसे कोई पसन्द नहीं कर रहा था। किरण को अफसोस हुआ कि अरविन्द के लिए यदि कोई गोपनीय बात है तो उसमें वह दखल देना क्यों चाहती है। उसने बड़ी चतुराई से वातावरण के भारीपन को मिटाने के लिए कहा, "मैं समझती हूँ, बिना चाय की चुस्की लिए बातचीत का आनन्द नहीं मिलेगा। मैं तुरत चाय लेकर आयी।"

किरण को एकाएक कमरे से बाहर जाते देख शोभा कुछ घबड़ा-सी गई। अरविन्द ने इसे भाँप लिया और बोला, "भाभी की यही आदत है बहन ! अब क्या कर बैठेंगी, कोई नहीं जानता।"

जाना चाहता, उससे ऐसी जबरदस्ती करने की क्या जरूरत ! वह कुछ क्षणों तक हतप्रभ-सा बैठा रह गया। उसके सामने ही शोभा अपना मुँह छिपाये चुपचाप खड़ी थी। किरण भी एक ओर खड़ी होकर मुस्का रही थी। अरविन्द ने शोभा का नाम भर सुना था। उसे ठीक से देखने का मौका आज तक नहीं मिला था। कीमती कांजीभरम की बासन्ती साड़ी में शोभा के दमकते हुए सुगठित गोरे शरीर को देख कर अरविन्द मुग्ध रह गया। कमरे में आते ही शोभा ने अपनी साड़ी के बंगाली ढंग से फटे आँचल को खींच कर अपने सिर पर कर लिया था। साड़ी से ढका होने पर भी कलात्मक ढंग से कढा अजन्ता जूड़ा अपना मोहक उभार प्रकट कर रहा था। एक बचकाने संकोच की मुद्रा में वह अपनी उंगली को साड़ी के छोर के साथ मुँह में दबाये हुए थी। नीचे बायें हाथ की शुभ्र कलाई पर सोने की चेन वाली घड़ी चमचमा रही थी। इस लाजभरी सुन्दरता से मुग्ध बना अरविन्द मानो होश में आकर नम्रता के साथ बोला, "एक तो भाभी ने गलती की कि वे आपकी इच्छा का ख्याल किए बिना आपको जबरन घसीट कर यहाँ लाईं। दूसरे आपका अकारण संकोच देखकर मैं खुद लज्जित हो रहा हूँ। आप बैठिए भी तो सही।"

इस बार शोभा ने अपनी हिरणी की तरह चञ्चल आँखों से अरविन्द की ओर देखा। फिर दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया। अरविन्द ने भी नमस्ते का जवाब दिया। अब तक दोनों अरविन्द के सामने कुर्सियों पर बैठ गई थी। अरविन्द की आँखें जैसे शोभा के झिलमिल सौन्दर्य को सह नहीं पा रही थी। उसे देखते ही झुक जाती थी। शोभा के पतले लाल अधर पर हल्की लिपस्टिक की अरुणाई तथा उसपर खिली मंद-मंद मुस्कान बड़ी उद्दीपक लग रही थी। गोरे कपोलों के दोनों ओर कुछ विशेष लाली दौड़ गयी थी। पतली-सी नाक का अगला सिरा बड़ा ही सम्मोहक था। अरविन्द का चेहरा देखकर ही किरण ने भाँप लिया कि शोभा के रूप का निशाना ठीक बैठा है। उसने एक दुष्ट मुस्कान के साथ मौन भंग किया, "क्यों, आपे में तो हो बाबू ? केवल घूर कर देखोगे या बात भी करोगे ?"

किरण के इस मजाक से शोभा उस पर मन-ही-मन झुंझला गई। उसने अपना विरोध किरण की पीठ में चिकोटी काट कर प्रकट किया। उधर अरविन्द को ऐसा लगा मानो उसके मन के चोर को किसी ने रंगे हाथों पकड़ लिया हो। वह लजा कर अपने स्वर को सहज बनाता हुआ बोला, "भाभी तो मजाक करते समय स्थान और समय का ख्याल भी भूल जाती हैं।..................अच्छा शोभा

बहन, क्षमा करेंगी, मैं भाभी से अभी-अभी पूछ रहा था कि आपका घर कहाँ पड़ता है—क्या पटने में ही ?"

अरविंद के मुँह से 'बहन' सम्बोधन सुनकर शोभा के मन को झटका-सा लगा। इस एक शब्द ने ही जैसे उसका सारा संकोच दूर कर दिया। वह मन ही मन अरविंद के प्रति और भी श्रद्धालु हो गयी। नम्र स्वर में बोली, "बिहार प्रांत के सारन जिले में सोनपुर एक बस्ती है - वहीं।"

अरविंद का मन शोभा को लेकर कल रात से ही उलझा हुआ था। वह समझ नहीं पा रहा था कि शोभा नाम से परिचय की कैसी गंध उसके मन में फूट रही थी। निर्मला देवी को देखकर भी उसे ऐसा लगा था जैसे उस चेहरे को उसने पहले भी कभी देखा हो।

"दूसरे के घर-ठिकाने की बात तो आप बड़ी आसानी से पूछ लेते हैं," किरण ने उलाहना के स्वर में कहा, "किंतु जब दूसरे लोग श्रीमान का अता-पता जानना चाहते हैं तो चुप्पी साध लेते हैं !"

"भाभी," अरविंद अपने को संभालता हुआ बोला, "आप तो जानती ही हैं कि मेरी कर्म भूमि बंगाल है। मैं अपनी कर्म-भूमि को ही जन्मभूमि मानता हूँ।"

"मैं नहीं मानती," किरण तर्क के आवेश में बोली, "कोई जरूरी नहीं कि किसी की कर्म भूमि उसकी जन्म भूमि भी हो जाये।"

अरविंद ने किरण के रंज-भाव को लक्ष्य करते हुए कहा, "आप तो बुरा मान गयी भाभी ! आप ऐसा समझिए कि मेरी भी जन्मभूमि बिहार में ही कहीं है। कई कारणों से मैं अभी उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने की स्थिति में नहीं हूँ। क्षमा करेंगी।"

अनजाने ही बातचीत एक ऐसे मोड़ पर आ गयी थी जिसे कोई पसन्द नहीं कर रहा था। किरण को अफसोस हुआ कि अरविन्द के लिए यदि कोई गोपनीय बात है तो उसमें वह दखल देना क्यों चाहती है। उसने बड़ी चतुराई से वातावरण के भारीपन को मिटाने के लिए कहा, "मैं समझती हूँ, बिना चाय की चुस्की लिए बातचीत का आनन्द नहीं मिलेगा। मैं तुरत चाय लेकर आयी।"

किरण को एकाएक कमरे से बाहर जाते देख शोभा कुछ घबड़ा-सी गई। अरविन्द ने इसे भाँप लिया और बोला, "भाभी की यही आदत है बहन ! अब क्या कर बैठेंगी, कोई नहीं जानता।"

अरविन्द की बात सुन कर शोभा मुस्काई। अवसर अनुकूल पाकर अरविंद ने अपने मन का संदेह शोभा के सामने रख दिया, 'आपका सारन जिले की एक बस्ती किसनपुर में कोई सम्बन्ध पड़ता है?"

शोभा ने अकचकाई नजरों से एक बार अरविंद की ओर देखा। फिर सिर झुकाये कौतूहल-भरी वाणी में बोली, "किसनपुर में मेरा कोई सम्बध तो नहीं। हाँ, मेरे स्वर्गीय पिता जी के एक मित्र का घर वहीं पड़ता है। इसी नाते वहाँ आना-जाना होता है।"

"आपके पिता जी के मित्र का नाम क्या है?"

"राय साहब ठाकुर गोपाल सिंह।"

"क्या आप भी उनके यहाँ कभी गई हैं?

"जी हाँ, कई बार। बचपन से ही जाती रही हूँ। पर इधर सात-आठ साल से नहीं गयी हूँ।"

इस समय यदि कोई अरविंद की छाती पर हाथ रखता तो उसकी धौंकनी की तरह चलती हुई तेज धड़कनों से घबड़ा जाता। अपने भावावेश को किसी तरह काबू में रखते हुए अरविंद ने दूसरा सवाल कर दिया, "ठाकुर साहब के एक लड़का थे शायद। क्या नाम था उनका?"

"विनोद कुमार सिंह।"

शोभा की हृदय-गति भी धीरे-धीरे तेज होती जा रही थी।

"उनके साथ शायद आप वहाँ के स्थानीय स्कूल में भी जाया करती थी?"

" जी हाँ, कभी-कभी चली जाती थी।"

"अच्छा, उस स्कूल में कमल नाम का एक लड़का पढ़ा करता था। उसकी याद है आपको?"

"कमल?" शोभा के मन के आकाश में मानो अचानक बिजली कड़क गयी हो। उसने एक बार पुनः अरविंद को चकित दृष्टि से देखा और बोली, "अच्छी तरह याद है मुझे। उसे विनोद भैया ने एक बार बुरी तरह पीट दिया था, सो भी याद है। बड़ा भोला-भाला और तेजस्वी लड़का था।"

अब अरविंद चुप हो गया। कुछ दिन पहले से उसके मन के अतल गर्भ को चीरता हुआ कुछ प्रकट होना चाहता था आज वह साफ हो गया। उसने इस बार बड़ी आत्मीयता भरी नजरों से शोभा को देखा जो पहले से ही उसे खोज भरी दृष्टि से निहार रही थी। अरविंद को एकाएक विश्वास नहीं हुआ कि वह अपनी किशोरावस्था की उस छोटी विनम्र लड़की के सामने ही बैठा है। दोनों

की नजरें बार-बार एक दूसरे से टकराती रहीं। अरविंद ने इस बार मुस्काकर पूछा, "आप भी कुछ जानना चाहती हैं शायद ?"

"यही कि आप किसनपुर या वहाँ के रहने वालों, अथवा कमल को कैसे जानते हैं ?"

"कमल जी मेरे सम्बन्धी थे। एक बार उन्होंने अपनी आप-बीती मुझसे कह सुनाई थी। इसी से यह सब जानने का मौका मिला।"

"किन्तु उसकी तो ट्रेन में एक्सीडेण्ट हो जाने से कई साल पहले मृत्यु हो गयी ?"

"क्या कहा ? मृत्यु हो गयी ?" अरविन्द के स्वर में आश्चर्य घुल-मिल गया, "आप यह कैसे जानती हैं ?"

"कुछ महीनों के बाद जब मैं फिर किसनपुर गयी तो कमल के नानाजी ने मेरी माँ को यही बताया था। वे बोले थे कि कमल घर छोड़कर ट्रेन से कहीं भागा जा रहा था। दुर्भाग्यवश चलती गाड़ी से गिर जाने के कारण उसकी मौत हो गई।"

"ओ, हाँ हाँ; ठीक कहती हैं," विस्मित अरविन्द अपने को सम्भालता हुआ बोला, "इस दुर्घटना के पहले ही उससे मेरी भेंट हुई थी।"

"लेकिन आप इतनी दूर निपट देहात के उस गरीब लड़के से कैसे मिल पाये ?"

अरविंद इसका कुछ जवाब सोच ही रहा था कि किरण ट्रे में चाय लिए आ गयी। पहुँचते ही बोली, "हाँ हाँ, बातचीत जारी रहे। हाँ, यदि कोई 'प्राइवेसी' हो तो मैं चली जाऊँ।"

"आप पहले चाय तो पिलायें भाभी," अरविंद हँसता हुआ बोला, "आप खुद ही सबसे बड़ी प्राइवेसी हैं।"

किरण कुछ न बोलकर मुस्काती हुई चाय बनाने चली। किंतु शोभा ने उसका हाथ थामते हुए कहा, "मैं यहाँ मौजूद हूँ दीदी, मेरे रहते आप चाय नहीं बना सकतीं !"

"अच्छा भई, यही सही," कहकर किरण सामने रखी कुर्सी पर बैठ गयी।

शोभा चाय बनाने लगी। बीच-बीच में कनखियों से अरविंद को देख लेती थी जो किसी गहरे विचार में डूबा हुआ-सा लगा। शोभा को इतना विश्वास हो गया था कि अरविंद उससे कुछ छिपा रहा था। उसकी झूठी दलील पकड़ी जा चुकी थी। किंतु आखिर यह है कौन ? उस दीन-हीन बालक कमल से इसका

कैसा रिश्ता ? फिर जिस तरह उसने कमल की बातों को स्मरण किया और बताया है उससे तो यही लगता है, मानो उसने खुद अपनी आँखों सब कुछ देखा हो। ......कहीं यह कमल तो नहीं ? किंतु कमल की अकाल मृत्यु के विषय में तो कई लोग कह रहे थे। यदि किसी तरह वह बच भी गया हो तो वह अरविंद कैसे हो सकता है ? कहाँ गरीबी और अभावों का प्रतीक कमल, कहाँ त्याग और तेज से दमकता अरविंद का सौम्य व्यक्तित्व !......लेकिन यह कहीं कमल ही हुआ तो ?......शोभा ने कप में चाय और दूध डालते हुए अरविंद पर एक बार और अपनी खोजी नजर डाली और पूछा, "आपके लिए चीनी कितना दूँ ?"

"कुछ अधिक," अरविंद कुछ चौंकता हुआ-सा बोला, "मैं चाय नहीं, शरबत पीता हूँ।"

आत्म-विस्मृत अरविंद ने हाथ की उँगलियों से अपना सिर खुजलाया, किरण पर एक उड़ती हुई नजर डाली और खोया-खोया-सा शोभा के हाथ से कप ले लिया। किंतु जैसे ही उसने कप होठों से लगाया, उसका हाथ काँप गया। चाय की कुछ गर्म बूँदें छलककर उसके सफेद पायजामे पर आ गिरीं।

"सम्भल के बाबू," किरण एक शरारत भरी मुस्कान लेकर चाय की चुस्की लेती हुई बोली, "यह शोभा की चाय है जो न केवल होठों को, बल्कि दिल तक को जला देती है!"

"आपको तो हर वक्त मजाक ही सूझता है दीदी!"

शोभा के कपोल आरक्त हो गये, आँखें मुस्काईं और बाँकी चितवन ने किरण को डाँट बतायी।

उधर अरविंद चाय गिर जाने से कुछ झेंप-सा गया। मुस्काने की कोशिश करता हुआ बातचीत का रुख मोड़ता बोला, "आप कभी इनको मन्दिर नहीं ले गयी भाभी ?"

"अब तक दो बार ले जा चुकी हूँ," किरण बोली।

"कहिये शोभा जी, आपको मन्दिर कैसा लगा ?"

शोभा इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थी। वह खाली पौट को ट्रे में रखकर एक हाथ से अपना आँचल ठीक करती हुई बोली, "ऐसी चीज तो मैंने कभी देखी नहीं थी। किंतु मन्दिर सचमुच समाज की एक बड़ी जरूरत को पूरा कर रहा है।"

"किंतु मैं ऐसा नहीं मानता," अरविंद फीकी हँसी हँसकर बोला, "यह मन्दिर समाज की सबसे छोटी जरूरत भी पूरा करे तो मैं अपना अहोभाग्य मानूँ।

......सदियों से शोषित भारतीय समाज के सामने तो समस्याओं, कठिनाइयों और उलझनों का महासमुद्र लहरा रहा है। हमारा यह नाचीज प्रयास समुद्र पर कागज की एक छोटी नाव है बहन !"

अरविंद ने एक बार गम्भीर दृष्टि से शोभा की ओर देखा और फिर किसी आवेश में बोलने लगा, "कभी-कभी सोचता हूँ कि इस मन्दिर के साथ अपने को जोड़कर मैं सभी तरफ से कट गया हूँ ....यह कागज की नाव खेता मैं कब तक, कहाँ तक चल सकूँगा ? यह तो एक छोटी लहर का भी धक्का बर्दाश्त नहीं कर सकती। फिर सोचता हूँ कि नाव डूबेगी भी तो विजय इस नाव की ही होगी, लहर की नहीं। इसी विश्वास पर तो बढ़ा जा रहा हूँ। नाव डूबेगी भी तो लहरों के अन्तर को बेधती हुई नीचे जायेगी। ये ही छोटे-छोटे बेधन एक दिन सुगठित होकर सम्पूर्ण प्रवाह की ही दिशा मोड़ देंगे। .. जरूरत तो इस बात की है कि कागज की ऐसी हजारों नावें एक साथ छोड़ी जायें। हजारों बार उनकी जल-समाधि की चेतना समुद्र की लहरों में फैलाई जाये। ....मनुष्य के हृदय को बदलना है, मूल बात तो यही है।"

अरविंद खुद नहीं जान सका कि वह अचानक किस प्रवाह में अपने को बहाये जा रहा है। शोभा को पहचानते ही उसके मन-प्राणों में एक अजीब-सी आँधी घुमड़ने लगी थी। मानो अब तक वह अपने आप से कुछ बोलता रहा, कुछ पूछता रहा। अन्त में अपने अप्रासंगिक आवेश पर वह कुछ लज्जित हुआ-सा लगा। उधर शोभा और किरण समझ नहीं पायीं कि एकाएक अरविंद के मूड में यह कैसा बेतुका-सा परिवर्तन आ गया। किरण ने आज तक उसे इस प्रकार उत्तेजित होते हुए नहीं देखा था। शोभा बेचारी समझ नहीं पाई कि वह क्या करे। इतना तो उसने भाँप ही लिया कि अरविंद अपने स्वाभाविक रूप में नहीं है। वह कहाँ का कहाँ बहा जा रहा है। वह एकाएक उठ खड़ी हुई और किरण की ओर देखकर बोली, "दीदी, मैं अभी बाहर से आयी। माफ करेंगी।"

इसके पहले कि अरविंद या किरण शोभा से कुछ कहते, वह लपककर दरवाजे के पर्दे को हल्का-सा झटका देती हुई कमरे के बाहर हो गयी। उसके जाने के बाद भी अरविंद और किरण दोनों कुछ देर तक अपने-अपने में खोये मौन बैठे रहे।

" मैं पागल हूँ भाभी, कुछ ज्यादा बक गया", कुछ क्षणों के बाद अरविंद अपने को संयत करता हुआ बोला, "शायद शोभा बुरा मान गयी।"

किरण ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह पहले की तरह ही सिर लटकाये बैठी रही।

"क्यों भाभी, तुम भी बुरा मान गयी ?" अरविंद किरण की ओर खिसक कर प्यार से बोला, "मान जाओ भाभी ! गलती हो गई।"

किरण ने इस बार किसी तरह उसकी ओर देखकर कांपते होंठों से कहा, "मेरी बात से तुम बुरा मान गये न ?"

"तुम्हारी बात ?...... ओ, समझा !" अरविंद कुछ याद करता हुआ मुस्काकर बोला, "यह भी खूब रहा ! दोनों को दोनों से आशंका। किंतु मैं ठीक कहता हूँ भाभी, मैं बिल्कुल रंज नहीं। आपकी कोई बात मुझे बुरी नहीं लगी।"

जब किरण ने फिर कोई बात नहीं की तो अरविंद कुछ देर मौन रहकर पुनः बोला, "मेरे पागलपन से तुम्हें तकलीफ हुई, इसका मुझे ज्यादा गम नहीं, क्योंकि तुम्हें मैं मना लूंगा। किन्तु वह शोभा !.......आज पहली बार ही मुझसे मिलने आयी। न जाने क्या-क्या बक-झक कर उसके मन को भी दुखा दिया। मुझे निरा पागल ही समझी होगी वह!......आश्चर्य, मैं यह क्या होता जा रहा हूँ!"

अरविंद अपने बिस्तर पर अधलेटा सा दाहिने हाथ की हथेली पर सिर टिकाये फिर कुछ सोचने लगा। ..तो यह हैं शोभा ! बचपन की दूर छूटी हुई कड़ी ! वही पवित्र आत्मा जो मुझे पिटते देखकर रो पड़ी थी। जिसने मेरी रक्षा की थी। आज वही यौवन के भार से लदी वासन्ती लता की तरह मुझसे मिलने आ गयी। आज भी इसका मन उतना ही कोमल, उतना ही उदार नहीं होगा ?... अरविंद के मन की आँखों के सामने एक-एक करके कई चित्र घूम गये—बड़े-बड़े रईसों का गाँव किसनपुर, वहाँ का स्कूल, उसके आगे खुला बड़ा-सा मैदान, जेठ की दुपहरी, शोर मचाते हुए लड़के, कनैल की एकांत छाया, विनोद की निर्मम दुष्टता, शोभा की करुण सिसकी ......अरविंद को अफसोस है कि उसे अपनी जन्मभूमि के विषय में जब-तब ऐसी मनगढ़न्त बातें कहनी पड़ती हैं। किंतु आखिर दूसरा उपाय क्या है ? अपने बचपन, जन्मस्थान आदि को लेकर उसके मर्मस्थान में जो काम्प्लेक्स बन गया है, उससे वह अब भी अपने को मुक्त नहीं कर पाया है। वह नहीं चाहता कि कोई दूसरा भी उसके दुखद अतीत का साझेदार बने।.......बचपन और तरुणाई के इस लम्बे अन्तराल में उसे शोभा और किरण को छोड़कर अबतक अपने लिये प्रत्यक्ष सूत्र नहीं मिले थे। ये दोनों अपने-अपने ढंग से उसके बीते दिनों के कुछ मार्मिक अंशों के साथ मानो स्वयं भी एकाकार दिखाई देती हैं। शायद इसीलिए आज शोभा के रूप में इस दोहरे आश्चर्य को पाकर वह या तो अपने स्व में नहीं है या स्व में लौट आया है।.......

अपने में खोये अरविंद का ध्यान एक बार फिर किरण की ओर गया, जैसे वह सोते से जगा हो। जब किरण की जगह खाली कुर्सी दिखाई दी तो वह धड़-फड़ा कर उठ बैठा। जिस समय अरविंद अपने विचारों में खोया पड़ा था, उसी समय मौका पाकर किरण कमरे के बाहर चली गई थी। अरविंद को यह सब कुछ स्वप्न जैसा लगा। उसे दुख हुआ यह सोचकर कि उसी के कारण शोभा और किरण दोनों बारी-बारी से कमरा छोड़कर भाग गयी।......अरविंद को अपने पर बड़ी झुंझलाहट हुई। वह इतनी देर तक अतीत के सारहीन चिंतन में उलझा ही क्यों रहा? उसने तो अपने जीवन की एक-एक सांस को राष्ट्र और समाज के लिये दे दिया है। ऐसी हालत में अतीत के नाम पर यह विराम कैसा? निरर्थक मान-मनौअल की यह लाचारी कैसी? अचानक अरविंद एक नई स्फूर्ति के साथ उठ खड़ा हुआ। उसे याद आया कि एक जगह अपना नया डेरा ठीक करने उसे इसी समय जाना है। उसके मित्र श्यामाकांत ने उसे इसी सम्बन्ध में अपने घर बुलाया है।...... हाँ, उसे यह घर अब छोड़ना ही होगा। अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के लिए उसे ऐसे सारे मोहों से अपना सम्बन्ध तोड़ना होगा। कांति बाबू के ऊपर बराबर के लिए भार बनकर रहना ठीक नही। भगवान ने हाथ-पैर दिए हैं। इनसे कुछ न कुछ तो वह उपार्जित कर ही लेगा। कांति बाबू भी समझाने-बुझाने पर जरूर मान जाएँगे।... और भाभी? शोभा?........ इनके पचड़े में वह फिर नही पड़ना चाहता। उसने जल्दी-जल्दी कपड़े बदले। बिस्तर के सिकुड़न को ठीक किया। घड़ी में चाबी दी और बाहर जाने के लिए तैयार हो गया। उस समय सुबह के नौ बज रहे थे। वह पैर में चप्पल डाल ही रहा था कि सामने पर्दा हिला और कमला ने प्रवेश किया। भीतर आकर वह अरविंद के हाथ में एक नीला लिफाफ थमाती हुई बोली, "यह कही से आपके नाम चिट्ठी आयी है बाबू, बहूजी ने आपको देने के लिए भेजा है।"

अरविंद ने आश्चर्यपूर्वक लिफाफ को उलट-पुलट कर देखा। ऊपर कही भी कुछ नाम-पता नही लिखा था। कमला उसे पत्र देकर चली गयी। अरविंद को कौतूहल हुआ कि पत्र किसका है, कहाँ से आया है। उसने जब लिफाफ खोला तो चकित रह गया। पत्र स्वयं किरण का था। अक्षर बड़े साफ और सुडौल थे। किंतु बीच-बीच में कई जगह काट-कूट किया गया था। जैसे बड़ी जल्दबाजी में लिखा गया हो। सबसे पहले अरविंद की दृष्टि पत्र में लिखित सम्बोधन पर गयी और कुछ देर वहीं ठिठकी रह गयी। सम्बोधन के निकट भी कुछ काटकर लिखा गया था, 'मेरे!' किरण के इस प्यार भरे सम्बोधन से कुछ क्षणों तक

अरविंद के मन में एक अजीब-सी सिहरन व्याप गयी। अब उसने चिट्ठी पढ़ना शुरू किया -

"यह अप्रत्याशित पत्र बेमौके पाकर तुम्हें अवश्य ही अचरज होगा। तुम्हारे कमरे से चुपके चली आयी। इसके लिए क्षमा चाहती हूँ। चुपके आने की कोई खास बात नही थी। किन्तु मैंने तुम्हें डिस्टर्ब करना उचित नही समझा। पता नही, आज तुम एकाएक ऐसा क्यों हो गये थे। शायद मैंने मजाक में कोई ऐसी बात कह दी थी जिससे तुम्हें बुरा लग गया। यों मैंने बाद में अनुभव किया कि तुम्हारे विचलित होने का मूल कारण शायद कुछ दूसरा था। वह क्या था, मैं नही जानती। शोभा के साथ बातें करते-करते एकाएक तुम उत्तेजित हो चले। शोभा आज तुमसे पहली बार मिलने गई थी। तुम्हें उत्तेजित और मानसिक रूप से अस्वस्थ देखकर ही शायद वह भी कमरे से खिसक गई। जब मैं अपने कमरे में वापस आई तो शोभा मेरे ही बिस्तर पर पड़ी-पड़ी सुबक रही थी। मुझे देखकर वह कुछ सकपकाई। जल्दी से अपनी आँखों को रूमाल से पोंछा और उठ बैठी। जब मैंने उससे रोने का कारण पूछा तो वह सिर्फ 'यों ही' कहती हुई लजायी हुई-सी मेरे कमरे से भी भाग गयी। मैं समझ नही पाती, आज खुशियों के माहौल में एकाएक कौन-सा जहर फैल गया जो हममें से प्रत्येक के मन को दुखाकर स्वयं अनदेखे ही विलीन हो गया।

"पत्र लिखने के बदले मैं स्वयं आकर तुमसे मिल सकती थी। किन्तु आज मौखिक रूप से कुछ कहने में मन हिचक-सा रहा है। जबसे तुम्हें देखा है, मैं बदलती ही गई हूँ। कहाँ गई मेरी उदासीनता और मन को तपाने वाली वेदना? अब तुमसे कुछ भी कहने में, कुछ भी बोलने में, मुझे कोई संकोच नही होता। तुम मेरे लिए कितने बड़े हो, इसे शब्दों मे व्यक्त नही कर सकती। वस्तुतः तुमसे अलग मैं अब रह नहीं पायी हूँ। भले ही तुम्हारी ऊँचाई तक मैं नहीं पहुँच सकती। तुमने एक रात अपनी बीमारी की हालत में बड़े प्यार से मुझसे कहा था, 'मेरा सम्पूर्ण जीवन तुम्हारा रहेगा भाभी!' किन्तु मैं स्वयं इतनी बड़ी कामना करने की ढिठाई नही कर सकती। मैं कुछ ज्यादा नही चाहती। अपने हृदय का एक छोटा-सा कोना ही मुझे दे देना, वही मेरा सर्वस्व हो जायेगा। उसी में मैं आजीवन उड़ा करूँगी, गाया करूँगी। कभी-कभी मुझे अब एक अजीब-सा भय भी होने लगा है—कहीं तुम मुझे भुला दोगे तब?...... तब क्या होगा? इसकी कल्पना भी मेरे लिए भयावह है।

"शायद यह पत्र मुझे लिखना ही नहीं चाहिए था। पता नहीं, तुम क्या

सोचोगे। मुश्किल तो यह है कि मैं चाहकर भी इस पत्र में अपने मन की गुह्य परतों को खोल नहीं पायी। मन में जो है उसे शब्दों से पकड़ना मेरे लिए बड़ा दुष्कर है। खैर, मेरी इस धृष्टता को माफ कर देना। और हाँ, उस पगली शोभा की गलतियों को भी ध्यान में न लाना। वह तो निरी बच्ची है अभी। तुम्हारे कमरे से अकारण भाग आई। शायद इसीलिए रो रही थी। भाग तो मैं भी आयी। किन्तु मैं तो अभी मुस्का रही हूँ। अपने जीवन में केवल दो को ही तो जानती हूँ—एक तुम और एक यह नटखट और नासमझ शोभा!

हर तरह से तुम्हारी,
भाभी"

पत्र पढ़कर अरविन्द कुछ देर तक कमरे में गुमसुम बैठा रह गया। पत्र की कुछ बातें उसके अन्तर्मन में अपनी गूँज और अनुगूँज छोड़ती जा रही थी। इसी सिलसिले में पत्र का एक वाक्य उसके मन पर प्रश्न-चिह्न बन कर उतर आया—'शोभा रो रही थी!' तो क्यों रो रही थी वह ?.......'मेरे' और 'शोभा रो रही थी!'......

अरविन्द जब कमरे से बाहर आकर श्यामाकान्त के घर की ओर चला तो मानो अपने कदमों की गति से लापरवाह-सा किन्हीं हवाई पंखों पर कहीं उड़ा जा रहा था।

सोलह

रास्ते में अरविन्द श्यामाकान्त को लेकर कई चिन्ताओं में डूबता-उतराता आया। श्यामाकान्त उसका परम मित्र था। किन्तु वह शुरू से ही कान्ति बाबू का कट्टर विरोधी था। पता नहीं, कान्ति बाबू के विरुद्ध उसके मन में कौन-सी गाँठ बन गयी थी जिसे अरविन्द बार-बार कोशिश करने पर भी खोल नहीं पाता था। उसका यही स्वभाव अरविन्द को नापसन्द था। अच्छी या बुरी जो बात उसके मन में एक बार बैठ जाती थी उसे फिर निकाल पाना कठिन हो जाता था। अरविन्द स्वयं किसी में जल्दी विश्वास कर लेता था और श्यामाकान्त अपना काम अविश्वास से ही शुरू करता था। दोनों मित्रों की प्रकृति में यह

मूलभूत अन्तर था। खासकर श्यामाकान्त के मुँह से कान्ति बाबू की आलोचना सुनना अरविन्द को बिल्कुल पसन्द नहीं था। कान्ति बाबू उसके लिए एक आदर्श थे। उस आदर्श की कोई भी निन्दा उसके प्राणों में काँटे-सी चुभती थी। पिछले कई महीनों से श्यामाकान्त उसे अपने घर पर ही आकर रहने के लिए प्रेरित करता रहा था। अरविन्द स्वयं भी यह चाहता था। किन्तु श्यामाकान्त की तीखी आलोचनाओं के चलते अबतक उसकी हिम्मत नहीं हुई थी कि वह अपना डेरा बदल सके।

आज जीवन की नई परिस्थितियों में डेरा बदलना उसके लिए अनिवार्य-सा लगा। अब जैसे भी हो, श्यामाकान्त की कड़वी बातों का मुकाबला करते हुए उसे नये डेरे में आ जाना होगा। कुछ यही सोचता हुआ अरविन्द जब श्यामाकान्त के घर पहुँचा तो उसकी बूढ़ी माँ विद्या देवी ठीक उसी समय बाबा के दर्शन करके लौट रही थी। वे नाटे कद और दोहरे शरीर की भद्र महिला थी। धप-धप गोरे शरीर पर बिना पार की सफेद साड़ी। चौड़े ललाट पर मलय चन्दन की टीका। बाल सबके सब सफेद हो चले थे जो उनके कन्धे के दोनों ओर बेतरतीबी से झूलते रहते थे। ललाट पर तथा आँखों के नीचे कई सिकुड़नें पड़ चुकी थीं। पैरों में सूत के चप्पल पहने और हाथ में ताँबे के चमचमाते लोटे में गंगाजल लिए जब वे सामने से गुजरी तो अरविन्द ने झुककर उनके चरणों का स्पर्श किया।

"जीते रहो बेटा," अरविन्द को देखकर वे कुछ उदास स्वर में बोलीं, "बहुत दिनों पर दिखाई पड़े हो। अच्छा किया, आ गये। मैं श्यामू को तुम्हें बुला लाने के लिए भेजने वाली थी।"

इतना कहकर विद्या देवी एकाएक गम्भीर हो गयी। देखते ही देखते उनका चेहरा उतर गया।

"कुछ खास बात है माँजी ?" अरविन्द शंकाकुल मन से पूछ पड़ा, "श्यामू तो कल ही मुझसे मिला था, कुछ बोला नहीं।"

"सब बात श्यामू कैसे जान लेगा बेटा," विद्या देवी का स्वर और भी निर्बल पड़ गया, "भगवान शंकर की इच्छा! जाते समय मुझसे जरूर मिल लेना।"

"जी अच्छा," अरविन्द के मुँह से निकल गया।

विद्या देवी के उदास चेहरे को देखकर उनसे कोई दूसरी बात पूछने का साहस अरविन्द को नहीं हुआ। अपने वर्षों के सम्पर्क में उसने उन्हें इस तरह

उदास नहीं देखा था। क्या बात हो गयी है ? उसका मन बार-बार प्रश्न करता रहा। अन्त में उसे श्यामाकान्त की याद आयी। अपने बेटे के स्वभाव से विद्या देवी बराबर चिढ़ी रहती थी। उसके सनकी स्वभाव पर कई बार उन्होंने अरविन्द से शिकायत की थी। उसे समझाने के लिए कहा था। हो न हो, कुछ ऐसी ही बात है। इस विचार तक आते-आते अरविन्द का मन कुछ हल्का हुआ।

अब तक दोनों एक बड़े से पुराने मकान का जीर्ण शीर्ण फाटक पार करके सामने बरामदे की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे थे। जिस प्रांगण से होकर वे गुजरे उसमें जगह-जगह टूटी-फूटी ईंटों तथा बिखरे पत्थरों की ढेर पर जंगली लतायें फैली हुई थीं। एक तरफ बेर का एक बड़ा-सा पुराना पेड़ खड़ा था। एक ओर भीतर जाने का दरवाजा था जिस पर पुराने जूट का पर्दा झूल रहा था। भीतर जाने पर एक दूसरा बड़ा-सा आँगन मिला जिसके चारों ओर छोटी-बड़ी कई कोठरियाँ थी। कुछ कोठरियों के भीतर से हँसने-बोलने की आवाज आ रही थी। ये सभी कोठरियाँ किराये पर चलती थीं। एक कोठरीनुमा दुमुँहे को पार करने पर तीसरा आँगन मिला जो पहले की अपेक्षा कुछ अच्छा था। सामने की ओर दो तरफ से समकोण बनाती ढहती हुई चहारदीवारी थी। एक तरफ एक बड़ी-सी हवादार कोठरी थी जो किसी जमाने रईसों के दीवानखाने के काम आती होगी। इसी कोठरी के भीतर से तबले की आवाज गूंज रही थी—धा तिरकिट धा तेटे धिन धाड़ा धिन तुना कत ! इस आवाज से इस पुराने मकान की दरारें भी संगीत की प्रतिध्वनि छोड़ रही थी। सामने आँगन में एक जूही कुंज के निकट कुछ काठ की खाली कुर्सियाँ पड़ी थी। एक कोने में ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ थी। ऊपर भी इस मकान के कई ढहते और खड़े सिलसिले नजर आते थे। जब वे दोनों इस सीढ़ी के नजदीक आये तो विद्या देवी ने वहाँ कुछ देर रुक कर कुछ कड़ी आवाज में पुकारा, 'श्यामूऽऽऽ!' दो बार हाँक देने पर भीतर कमरे में तबले की आवाज बन्द हो गयी। श्यामाकान्त अपनी कोठरी से बाहर निकला। अरविन्द को खड़े देखकर प्रसन्न स्वर में हँसता हुआ बोला, "ओ हो, तुम हो दोस्त !"

श्यामाकान्त ने लपककर अरविन्द का दाहिना हाथ अपने हाथ में ले लिया। उधर विद्या देवी जीने चढ़ती हुई ऊपर चली गईं।

"भीतर चलकर तबला सुनोगे या बाहर बैठोगे ?"

"मैं न तो तुम्हारी उस्तादी देखने आया हूँ और न बैठने ही," अरविन्द

बोला, "सबसे पहले कमरा दिखाओ। मेरे आ जाने से तुम्हारी संगीत-साधना में बाधा तो नहीं हुई?"

"अरे, तुम भी क्या कहते हो यार," श्यामाकान्त जैसे लापरवाही से बोला, "अपने राम को बाधा-वाधा किसी बात से नहीं होती। मौज की जिन्दगी है, जीये जा रहा हूँ। हाँ, तो तुम्हें अपना कमरा चाहिए, चलो।"

श्यामाकान्त ने अपनी फटी जैकेट की जेब से एक बीड़ी निकाली। उसे सुलगाकर होठों से लगाया। वह मझले कद और छरहरे बदन का आदमी था। चेहरे पर शीतला के गहरे दाग थे। बड़ी-बड़ी आँखें बाहर की ओर निकली हुई-सी मालूम होती थीं। सिर के बाल बेतरह बढ़े हुए थे और हवा में उड़ रहे थे। चेहरे पर दो-तीन दिनों की दाढ़ी की खूँटी दिखाई दे रही थी। कपोल कनपट्टी से ठुड्डी तक अण्डाकार रूप में फैले थे। गर्दन में खादी का एक मटमैला कुर्ता और उस पर एक जैकेट, कमर में खादी का ही एक पायजामा। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से एक बेलौसपने का भाव प्रकट हो रहा था। हिन्दू विश्वविद्यालय से विज्ञान की स्नातक डिग्री लेकर वह कुछ महीने एक स्थानीय स्कूल में विज्ञान का शिक्षक रहा था। किन्तु उसे कम्यूनिस्ट समझ कर स्कूल की कार्य समिति ने उसे रखने से इन्कार कर दिया था। तब से वह बेकारी की जिन्दगी जी रहा है। उसके स्वर्गीय पिता बयालीस के आन्दोलन में पुलिस की गोली के शिकार हुए थे। परिवार में उसकी माँ विद्या देवी के अलावा उसकी एक बड़ी विधवा बहन शांति देवी थी। वह पिछले कई वर्षों से उसी के परिवार के साथ अपना गुजारा कर रही थी। श्यामू से छोटी एक और बहन थी जिसका नाम प्रीति था। शांति देवी पिछले कई महीनों से मन्दिर के शिल्प-कक्ष में शिक्षिका के रूप में काम कर रही थीं वहाँ उसकी नियुक्ति अरविन्द के कारण ही हुई थी। इधर पिछले दो-तीन सप्ताहों से वह अस्वस्थता के कारण मन्दिर नहीं जा रही थी। पहले श्यामाकान्त की एक बड़ी जमीन्दारी थी। चलती के दिनों में उसके पूर्वजों ने काशी में कई कोठे मकान बनवाये थे। इस मकान को छोड़कर शेष सारे मकान या तो बिक चुके हैं, या ढह गये है। कुछ दान में भी दिये जा चुके हैं। इस बड़े से मकान के कुछ हिस्से में कुछेक किरायेदार रहते हैं। महीने के अन्त में वे जो कुछ दे देते हैं उसी से विद्या देवी किसी तरह अपनी गृहस्थी चलाती हैं। श्यामाकान्त की हॉबी है तबला-वादन। तबला बजाने से जो समय बचता है उसमें वह साम्यवादी साहित्य पढ़ता है। इस विषय पर उसके पास पुरानी और नई पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। मन्दिर का जो पुराना भवन है वह इसी ने मन्दिर के नाम दान कर दिया है। अरविन्द को इस प्रगतिशील विचार के युवक में ऐसी जिन्दा-

दिलो, तेज और उदारता के दर्शन हुए कि काशी आने के कुछ दिनों बाद ही वह इसके निकट सम्पर्क में आ गया।

"यह क्या बुरी लत लगा रखी है तुमने!" अरविन्द श्यामाकान्त को बीड़ी पीते देख कुछ डांट के स्वर में बोला, "एक तो भालू की तरह केश बढ़ा लिया है। तिसपर बीड़ी का धुआँ; बाहर निकलोगे तो या तो कोई पाकिटमार समझेगा, या पागल, या........"

"बस रहने भी दो दोस्त," श्यामाकान्त प्यार से अरविन्द की पीठ थपथपाते हुए और अपनी मुस्कान पर धुएँ का बादल उड़ाते हुए बोला, "कोई दूसरा मुझे देखकर क्या समझेगा, इसकी परवाह मैं नहीं करता। और तुम ..... तुम मुझे भालू भले समझ लो, पाकिटमार या पागल नहीं समझ सकते। इसका मुझे यकीन है।"

"अच्छा, रहने दो अपनी दलील," अरविन्द मुस्काकर बोला, "पहले मुझे आ जाने दो यहाँ। तब तुम्हारी खबर लूंगा!"

"ऐसे तो मैं खुद भी चाहता हूँ दोस्त," श्यामाकान्त अरविन्द के साथ आगे बढ़ता हुआ बोला, "पहले तुम आ तो जाओ यहाँ। फिर जैसा कहोगे, वैसा ही करूँगा। हाँ, केवल बीडी पीना नहीं छोड़ सकता। इसके बिना तो दम घुटने लगता है।"

दोनों मित्र अब एक ऐसे दरवाजे के सामने खड़े थे जो दीवानखाने के सटे पूरब में था। श्यामाकान्त ने कमरे की सिटकिली खोली और अरविन्द के साथ भीतर प्रवेश किया। भीतर पहुँचते ही पंख फटकारने के साथ दो-तीन आवाजें एक साथ गूंज गयी—तित्ति रित्ति! अरविन्द डरकर एक कदम पीछे हट गया। बोला, "तुम कैसे भुतहे घर में ले आये यार!"

कमरे में अभी अन्धकार था। श्यामाकान्त ने जैसे ही खिड़कियाँ खोलीं, वहाँ रोशनी आ गयी। ऊपर छत के काले पड़े शहतीर से लटके हुए कुछ चमगादड़ दिखाई पड़े। अचानक रोशनी आ जाने से उनकी मण्डली में एक हलचल-सी मच गई। कमरे की फर्श बीच-बीच में टूटी-फूटी नजर आ रही थी।

"कहो, पसन्द करते हो?" श्यामाकान्त ने पूछा।

"पसन्द तो जरूर है, किंतु इन सबके रहते मैं यहाँ कैसे रह सकूँगा?" अरविंद ने चमगादड़ों की ओर इशारा करते हुए कहा।

"इनकी परवा मत करो। पशु-पक्षी आदमी से अधिक अच्छे होते हैं। ये तुम्हारे हर तरह के व्यवहार को समझते हैं। यदि इनसे प्रेम करोगे तो ये रहेंगे। यदि नफरत करोगे तो कहीं दूसरी जगह चले जायेंगे। बात बिल्कुल साफ है।"

"तुम्हारे लिए साफ है, मेरे लिए नहीं," अरविंद चिढ़कर बोला, "ये सब मेरा यहाँ रहना दूभर कर देंगे। तब भी बात साफ ही रहेगी न?"

"अरे, इतना काहे को घबड़ाना?" श्यामाकान्त हँसकर बोला, "ये बेचारे नासमझ हैं। लेकिन मनुष्य जो अपने विवेक पर घमण्ड करता है, इनसे कई-गुना ज्यादा तबाही मचाता रहता है। फिर भी यदि उसे कोई चमगादड़ कहकर पुकारे तो लाठी लेकर पड़ेगा। खैर, तुम आ तो जाओ। ये चमगादड़ किसी दूसरे घर में छोड़ दिए जायेंगे। मेरा तो पूरा मकान ही चमगादड़ों, कबूतरों और भूतों का अड्डा है।"

"भूत, ?" अरविंद की हँसी उसके मुँह में ही अटकी रह गयी।

"हाँजी, भूत! शायद तुम उन पर विश्वास नहीं करते। यहाँ आकर उनसे भी साक्षात्कार हो जायेगा। लेकिन मेरे मकान के भूत भी अच्छे स्वभाव के हैं। सताने वाले नहीं।"

"बाप रे! तुम क्या मेरी जान लेने के लिए मुझे यहाँ बुला रहे हो?"

"ठीक इसके उल्टा। तुम्हारी जान में कुछ और अपरिचित जानों की शक्ति भरने के लिए। तुम समाज के सुधारक हो न? तुम्हारा निश्छल सुधारवादिता के पीछे कितनी पशुता काम कर रही है, इसे तुम जानते हो? तुम मुझे पागल कहा करते हो। मेरा पागलपन इतना ही है कि मैं प्रगतिशील विचारों का होकर भी भूतों में विश्वास करता हूँ। किंतु अन्याय और जुर्म के खिलाफ संघर्ष करता हूँ। मेरा यह पुराना खंडहर कांति बाबू के सुन्दर बंगले से कोई तुलना नहीं रखता। तुम्हें वहाँ की सुख-सुविधा शायद यहाँ नहीं मिलेगी। फिर भी महात्मा कांति चरण जी के मकान से मेरा मकान भीतर से काफी साफ-सुथरा और पवित्र है।"

"बस-बस!" अरविंद रोष-भरे शब्दों में बोला, "अब शुरू हो गयी तुम्हारी अनर्गल बातें।"

श्यामाकान्त ने इस बार कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप अरविंद की बाँह पकड़कर उसे अपनी कोठरी में ले गया। कोठरी के दरवाजे किसी जमाने में बड़े सुन्दर रहे होंगे। किंतु अब काठ पर की गई सुन्दर नक्काशी कई जगह झड़ गई थी। भीतर एक तरफ साधारण चारपाई बिछी थी। चारपाई के सिरहाने एक पुरानी आलमारी में नीचे से ऊपर तक ठसाठस पुस्तकें भरी थीं। कमरे के कोने में तबला रखा था। काली पड़ी हुई छत के कोने में मकड़ी के जाले भरे हुए थे। श्यामाकान्त अरविंद की ओर एक कुर्सी खिसकाता हुआ बोला, "बैठा जाय।"

जब दोनों बैठ गये तो अरविंद बोला, "तुममें एक बड़ी खराबी है श्यामू ! इसी वजह से तुम न तो खुद सुख से रह पाते हो, न दूसरों को रहने देते हो। छिद्रान्वेषण करना बुरी चीज है। गलतियाँ तो सबों से होती है। यदि कांति बाबू कोई गलती भी करते हैं तो इसमें इतना बुरा मानने की कौन-सी बात है ? उनकी जो उपलब्धियाँ हैं, उनका जो त्याग-भाव है, उनकी ओर तुम क्यों नही देखते ? ठीक है, तुम उन्हें मेरी अपेक्षा अधिक दिनों से जानते हो। किंतु यह भी तो सही है कि मैं उनके निकट सम्पर्क में रहा हूँ। अतः अधिकार के साथ कह सकता हूँ कि उनके चरित्र में कही कोई खोटापन नही है। असल में कल के पहले मैंने सोचा भी नही था कि मुझे इतनी जल्दी डेरा बदलना पड़ जायेगा।"

"आखिर कल ऐसी क्या बात हो गयी ?" श्यामाकांत अपने लम्बे बालों को उँगलियों से कंघी की तरह संवारता हुआ पूछ पड़ा, "अब गुरुजी में, या उनके मकान में अचानक ऐसी क्या खराबी आ गयी ?"

"उनमें कोई खराबी नहीं आयी है," अरविंद कुछ उदास होकर बोला, "जब से मैं बीमार पड़ा, मेरी भावनाओं में ही कहीं कुछ खराबी आ गयी है। इसे दूर करने के लिए मेरा डेरा बदल लेना जरूरी हो गया है।"

"तुम्हारे मन में कहाँ क्या खराबी आ गयी है, यह मैं जानता हूँ," श्यामाकांत दाहिने हाथ की तर्जनी से अपनी ओर इशारा करता हुआ बोला, "एक मैं ही तुम्हें सही-सही जानता हूँ। काशी के कितने मनचले तुम्हें गलत समझने लगे हैं। खैर, उनकी परवा तुम्हें नहीं करनी है। कुत्ते भौंकते हैं, भौंकने दो। किंतु..........अच्छा, तुम किरण से विवाह क्यों नही कर लेते ?"

"क्या कहा ?" अरविंद चौंककर बोला, मानो कहीं उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो, "तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"जी, मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ," श्यामाकांत अरविंद के चौंकने का रस लेता हुआ बोला, "किरण के साथ तुम्हारी शादी जितनी जल्दी हो जाये, तुम्हारे हित में उतना ही अच्छा रहेगा।"

"क्यों ?" अरविंद दुबारे चौंका।

"इसलिए कि इसमें तुम जितनी देर करोगे, तुम्हारी प्रतिष्ठा उतनी ही खतरे में पड़ जायेगी। किरण को पाना भी मुश्किल हो जायेगा। यदि तुम सही अर्थ में समाज-सुधारक हो तो इस दखी औरत को अविलम्ब अपना बना लो। इसके चलते यदि तुम्हें किसी पूज्य जन से विद्रोह भी करना पड़े तो डरो मत।"

"पूज्य जन ? कौन ? किससे विद्रोह ?"

"तुम्हारे लिए साफ है, मेरे लिए नहीं," अरविंद चिढ़कर बोला, "ये सब मेरा यहां रहना दूभर कर देंगे। तब भी बात साफ ही रहेगी न ?"

"अरे, इतना काहे को घबड़ाना ?" श्यामाकान्त हँसकर बोला, "ये बेचारे नासमझ हैं। लेकिन मनुष्य जो अपने विवेक पर घमण्ड करता है, इनसे कई-गुना ज्यादा तबाही मचाता रहता है। फिर भी यदि उसे कोई चमगादड़ कहकर पुकारे तो लाठी लेकर पड़ेगा। खैर, तुम आ तो जाओ। ये चमगादड़ किसी दूसरे घर में छोड़ दिए जायेंगे। मेरा तो पूरा मकान ही चमगादड़ों, कबूतरों और भूतों का अड्डा है।"

"भूत, ?" अरविंद की हँसी उसके मुँह में ही अटकी रह गयी।

"हांजी, भूत। शायद तुम उन पर विश्वास नही करते। यहाँ आकर उनसे भी साक्षात्कार हो जायेगा। लेकिन मेरे मकान के भूत भी अच्छे स्वभाव के हैं। सताने वाले नही।"

"बाप रे ! तुम क्या मेरी जान लेने के लिए मुझे यहाँ बुला रहे हो ?"

"ठीक इसके उल्टा। तुम्हारी जान में कुछ और अपरिचित जानों की शक्ति भरने के लिए। तुम समाज के सुधारक हो न ? तुम्हारी निश्छल सुधारवादिता के पीछे कितनी पशुता काम कर रही है, इसे तुम जानते हो ? तुम मुझे पागल कहा करते हो। मेरा पागलपन इतना ही है कि मैं प्रगतिशील विचारों का होकर भी भूतों में विश्वास करता हूँ। किंतु अन्याय और जुर्म के खिलाफ संघर्ष करता हूँ। मेरा यह पुराना खंडहर कांति बाबू के सुन्दर बंगले से कोई तुलना नहीं रखता। तुम्हें वहाँ की सुख-सुविधा शायद यहाँ नहीं मिलेगी। फिर भी महात्मा कांति चरण जी के मकान से मेरा मकान भीतर से काफी साफ-सुथरा और पवित्र है।"

"बस-बस !" अरविंद रोष-भरे शब्दों में बोला, "अब शुरू हो गयी तुम्हारी अनर्गल बातें।"

श्यामाकान्त ने इस बार कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप अरविंद की बाँह पकड़कर उसे अपनी कोठरी में ले गया। कोठरी के दरवाजे किसी जमाने में बड़े सुन्दर रहे होंगे। किंतु अब काठ पर की गई सुन्दर नक्काशी कई जगह झड़ गई थी। भीतर एक तरफ साधारण चारपाई बिछी थी। चारपाई के सिरहाने एक पुरानी आलमारी मे नीचे से ऊपर तक ठसाठस पुस्तकें भरी थीं। कमरे के कोने में तबला रखा था। काली पड़ी हुई छत के कोने में मकड़ों के जाले भरे हुए थे। श्यामाकान्त अरविंद को ओर एक कुर्सी खिसकाता हुआ बोला, "बैठा जाय।"

जब दोनों बैठ गये तो अरविंद बोला, "तुममें एक बड़ी खराबी है श्यामू ! इसी वजह से तुम न तो खुद सुख से रह पाते हो, न दूसरों को रहने देते हो। छिद्रान्वेषण करना बुरी चीज है। गलतियाँ तो सबों से होती है। यदि कांति बाबू कोई गलती भी करते है तो इसमें इतना बुरा मानने की कौन-सी बात है ? उनकी जो उपलब्धियाँ है, उनका जो त्याग-भाव है, उनकी ओर तुम क्यों नही देखते ? ठीक है, तुम उन्हें मेरी अपेक्षा अधिक दिनों से जानते हो। किंतु यह भी तो सही है कि मैं उनके निकट सम्पर्क में रहा हूँ। अतः अधिकार के साथ कह सकता हूँ कि उनके चरित्र मे कही कोई खोटापन नही है। असल में कल के पहले मैंने सोचा भी नही था कि मुझे इतनी जल्दी डेरा बदलना पड़ जायेगा।"

"आखिर कल ऐसी क्या बात हो गयी ?" श्यामाकांत अपने लम्बे बालों को उँगलियों से कंघी की तरह संवारता हुआ पूछ पड़ा, "अब गुरुजी में, या उनके मकान में अचानक ऐसी क्या खराबी आ गयी ?"

"उनमें कोई खराबी नहीं आयी है," अरविंद कुछ उदास होकर बोला, "जब से मैं बीमार पड़ा, मेरी भावनाओं में ही कहीं कुछ खराबी आ गयी है। इसे दूर करने के लिए मेरा डेरा बदल लेना जरूरी हो गया है।"

"तुम्हारे मन में कहाँ क्या खराबी आ गयी है, यह मैं जानता हूँ," श्यामाकांत दाहिने हाथ की तर्जनी से अपनी ओर इशारा करता हुआ बोला, "एक मैं ही तुम्हें सही-सही जानता हूँ। काशी के कितने मनचले तुम्हें गलत समझने लगे हैं। खैर, उनकी परवा तुम्हें नही करनी है। कुत्ते भौंकते हैं, भौंकने दो। किंतु..........अच्छा, तुम किरण से विवाह क्यों नही कर लेते ?"

"क्या कहा ?" अरविंद चौंककर बोला, मानो कही उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो, "तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"जो, मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ," श्यामाकात अरविंद के चौंकने का रस लेता हुआ बोला, "किरण के साथ तुम्हारी शादी जितनी जल्दी हो जाये, तुम्हारे हित में उतना ही अच्छा रहेगा।"

"क्यों ?" अरविंद दुबारे चौंका।

"इसलिए कि इसमें तुम जितनी देर करोगे, तुम्हारी प्रतिष्ठा उतनी ही खतरे में पड़ जायेगी। किरण को पाना भी मुश्किल हो जायेगा। यदि तुम सही अर्थ में समाज-सुधारक हो तो इस दुखी औरत को अविलम्ब अपना बना लो। इसके चलते यदि तुम्हें किसी पूज्य जन से विद्रोह भी करना पड़े तो डरो मत।"

"पूज्य जन ? कौन ? किससे विद्रोह ?"

"मेरा मतलब गुरुजी से है। वे कभी नहीं चाहेंगे कि किरण की शादी तुमसे या दूसरे किसी से भी हो। दूसरी विधवाओं और पतिताओं को मन्दिर में ले आयेंगे। उनके विवाह में दिलचस्पी लेंगे। किंतु अपनी विधवा पुत्र-वधू की शादी वे कभी नही कर सकते। सच तो यह है कि वे ऊपर से ही सुधारक हैं, उनके भीतर केवल कालिख भरी हुई है।"

अरविंद प्रतिवाद करने के लिए तड़प रहा था। मौका पाते ही गरम होकर बोला, "तुम्हारी आदत कभी नही सुधरेगी। एक तो अभी शादी की बात मैं सोचता ही नही। यदि सोचने भी लगूं तो कांति बाबू मेरे और भाभी के बीच दीवार बनकर कभी नहीं खड़े होंगे। जो व्यक्ति मेरी बीमारी में रात-रात भर जगा रह सकता है, मेरी सेवा करने के लिए अपनी पुत्र-वधू को मेरे कमरे में अकेला छोड़ सकता है, वह ऐसा नहीं कर सकता।"

"गुरुजी जितना तुमको जानते हैं उतना तुम उन्हें नही जानते। वे अच्छी तरह जानते हैं कि दूसरे की बहू-बेटी के साथ तुम्हारा कोई गलत रिश्ता नहीं हो सकता। किरण पर उनका विश्वास न भी हो, तुम पर तो है ही। लेकिन ऐसा न समझना कि तुम दोनों पर उनकी कड़ी नजर नहीं रहती। किरण को तुम्हारे साथ लगा देने में, अथवा उसे मन्दिर जाने देने में उनका उद्देश्य कोरा प्रचारात्मक है। लोग यह समझें कि कांति बाबू अपनी पुत्र-वधू तक को मन्दिर की सेवा में अर्पित कर चुके हैं। बस वे इतना ही चाहते हैं।"

"आखिर इसमें उनका व्यक्तिगत लाभ क्या है? इससे उनका कौन-सा बड़ा प्रयोजन सिद्ध हो रहा है?"

"उनका लाभ प्रत्यक्ष है," श्यामाकांत उसी गम्भीरता के साथ बोलता गया, "यश-लिप्सा उनकी वासना है। वे जब से काशी आये हैं, यहाँ की श्रद्धालु जनता के बीच अपने को बहुत महत्त्वपूर्ण साधक दिखाते रहे हैं। वे नलिन को समाज-सुधार में नहीं लगा सकते। उसे उन्हें आई० ए० एस० अफसर बनाना है। वे समाज के सुधार में लगायेंगे तुमको, क्योंकि तुम प्रतिभाशाली और विश्वासपात्र भी हो और उनकी नजर में बुद्धू भी हो। तुम्हें आगे करके चलने से उनका कोई भी कुत्सित प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। यदि तुम नहीं रहते तो अब तक मन्दिर का पाप छप्पड़ फाड़कर बाहर आ गया होता। मैंने सचमुच बड़ी भूल की कि ऐसे पापाचारों के लिए अपने भवन को दान दिया।"

श्यामाकांत न जाने किस आवेश में बोल रहा था। अरविंद अच्छी तरह जानता था कि वह आज के ढोंगी समाज और उनकी बुराइयों पर हथौड़े की

चोट करने वाला खरा आलोचक है। उसकी नजर किसी अच्छाई पर जितनी जल्दी नही जाती उतनी जल्दी किसी बुराई को पकड़ लेती है। किंतु आज जिन शब्दों में उसने काशी नगरी के एक लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति कांति बाबू की आलोचना की, उससे अरविंद का मन मिचला गया था। अन्त में वह समझ गया कि श्यामाकांत अपना हठ छोड़ेगा नहीं और न अपनी भूल स्वीकार करेगा। ऐसी स्थिति में उसने उस विषय पर चुप रहना ही बेहतर समझा। जब श्यामाकांत अपनी बात बोल चुका, अरविंद के होठों पर न जाने कहां से हँसी खिल गयी। बोला, "अच्छा भई, अब भी तो चुप रहो! बुलाया था मुझे कमरा दिखाने को और पिला रहे हो दुनिया भर की फिलासफी!"

"कमरा तो देख ही चुके," श्यामाकांत बोला, "तुम यहाँ आ रहे हो कब?"

"यह कहना अभी मुश्किल है। जल्दी ही आने की कोशिश करूँगा।"

"मेरी बात मानो। तुम जल्दी से जल्दी यहाँ आ जाओ। आज शाम तक मैं तुम्हारे कमरे में फर्नीचर लगवा दूंगा। असल बात तो यह है कि तुम इस गन्दे समाज का उद्धार करना चाहते हो और मैं तुम्हारा उद्धार करना चाहता हूँ।"

अन्तिम बात पर दोनों मित्रों ने एक साथ ठहाका लगाया। अभी दोनों हँस ही रहे थे कि बाहर दरवाजे पर विद्या देवी ने दस्तक दी। भीतर आकर बोलीं, "अरविंद बेटा, तुम अभी मेरे साथ ऊपर चलोगे?"

"चल ही रहा हूँ माँजी," अरविंद हँसना बन्द करके एकाएक उठ खड़ा हुआ और श्यामाकांत की ओर देखकर बोला, "तब, कुछ देर के लिए ......"

"हाँ भाई, जाओ," श्यामाकांत भी खड़ा होता हुआ बोला, "तब तक मैं तबले को खबर लूं। तुम्हारे आ जाने से भर पेट बजा नहीं पाया।"

विद्या देवी चुपचाप आगे बढती गईं। अरविन्द उनके पीछे चलता गया। दोनों जीने से ऊपर चढने लगे। सीढ़ियों की हालत खस्ती हो गई थी। उनपर जहाँ-तहाँ घिसी-पिटी ईंटें कुछ सूखी और कुछ हरी दूबों के बीच झांक रही थी। ऊपर जाने पर एक ओर पुरानी दीवार, दूसरी ओर ईंटों की ही काली पड़ी रेलिंग के बीच एक पतला रास्ता। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक बड़ा-सा आंगन। आंगन के एक कोने में पानी के नल के नीचे एक नेपाली लडका बरतन साफ कर रहा था। खुले आंगन के बीच में एक चौकी पड़ी थी जिसपर खादी की सफेद चादर बिछी थी। सूर्य की मीठी धूप चारो कोने फैल रही थी। भीतर किचन में प्रीति कुछ तल रही थी। तलने की छन-छन आवाज के साथ एक

सोंधी गन्ध आंगन में व्याप रही थी। नीचे श्यामाकांत के तबले की आवाज पुन: शुरू हो गयी थी। विद्या देवी ने अरविंद को ले जाकर चौकी पर बिठाया। स्वयं उसके सामने एक पीढ़े पर बैठ गयीं। वहीं से पुकारकर बोलीं, "कुछ गरम-गरम पकौड़े लेती आना प्रीति !"

अब वे अरविन्द की ओर मुड़ कर बोली, "तुम्हारे मन्दिर का काम ठीक से चल रहा है न ?"

अरविन्द को उनके स्वर से किसी गहरे व्यंग्य की गन्ध मिली। किंतु इसे अपने मन का भ्रम समझकर बोला, "जी हाँ, इधर तो कोई खास बात नहीं हुई। जो आर्थिक संकट बीच में आया था, वह भी अब खत्म हो गया है।"

विद्या देवी ने फिर कुछ नही पूछा। वे सिर लटकाये बैठी रहीं। चेहरा पीला पड़ा हुआ था। जैसे उसमें कुछ भी खून न हो। अरविन्द प्रतीक्षा ही करता रहा कि अब वे श्यामू की शिकायत शुरू करेंगी। इसी बीच प्रीति तश्तरी में पकौड़े लेकर आ गयी। अरविंद ने उसके हाथ से तश्तरी लेकर खाना शुरू कर दिया। प्रीति पुनः चौके में चली गयी। अरविंद अपने मुँह में पकौड़े डालता हुआ कुछ सोच ही रहा था कि विद्या देवी ने फिर पुकारा, "अब छोड़ दे बेटी। नीचे जाकर श्यामू के कमरे की सफाई तो कर दे और तू बहादुर," वे नौकर की ओर मुँह करके बोली, "नीचे आंगन में झाड़ू लगा दे। बरतन तो सब धुल ही चुके।"

इन दोनों के चले जाने के बाद आंगन में विद्या देवी, अरविंद तथा नीचे फर्श पर फुदकते कुछ कबूतर बच गये। विद्या देवी अब अरविंद की ओर व्यथित दृष्टि से देखती हुई बोलीं, "अब बताओ अरविंद, मैं क्या करूँ ?"

विद्या देवी की निस्तेज आँखें एकाएक भर आयीं। अपने को जबरन काबू में रखती हुई वे एक गहरी साँस छोड़ती हुई बोलीं, "यों तो जीवन भर दुख सहती आयी। किन्तु यह दुख, यह अपमान, यह बेइज्जती ! "..........समझ में नहीं आता, क्या करूँ ! सोचा कि तुम्हीं से सब कहूँ, क्योंकि तुम्ही इसके जिम्मेदार हो, तुम्ही ! तुम्हारे ही कारण मैंने अपनी बेटी को मन्दिर में जाने दिया।"

विद्या देवी का आंसुओं से तर चेहरा एकाएक कठोर और बीभत्स दिखने लगा। मानो किसी प्रतिहिंसा की ज्वाला से उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व धधक उठा हो। भौंचक अरविंद का हृदय धक-से रह गया। लगा जैसे दूसरे ही क्षण उसपर कोई अकल्पित वज्रपात होने वाला है। घबड़ाहट में वह बिना कुछ बोले विद्या देवी को देखता रह गया।

"मैं जानती हूँ बेटा, इसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं है," विद्या देवी अपने को कुछ संयत करती हुई बोली, "यह काम कुछ दूसरे दरिन्दों का है। मैं उससे लाख पूछती हूँ कि वह कौन है, किन्तु वह चुड़ैल कुछ बताती ही नहीं। अन्न-दाना छोड़कर खाट पर पड़ी-पड़ी झूठ-मूठ के सुबका करती है............उसके पेट में तीन महीने का बच्चा है!"

"जी?" अरविंद जैसे चीख पड़ा। उसके चेहरे का रंग एकाएक उड़ गया। लगा जैसे नीचे जमीन नाच रही है और वह किसी भी क्षण धड़ाम से गिर पड़ेगा।

उधर विद्या देवी ने मानो अरविंद की कोई आवाज सुनी ही नहीं हो। वे कहती गईं, "मेरे सिवा अब तक इस बात को कोई नहीं जानता। पर ऐसी बात ज्यादा दिन छिपी नहीं रहती। श्यामू को यदि मालूम हो जाये तो वह शांति की हत्या कर डालेगा, हत्या!.... ....मैं क्या करूँ, हे भोलेनाथ!"

विद्या देवी का गला रूँध गया। वे आँचल में मुँह छिपाकर सिसक पड़ी। बुत बना अरविंद समझ नहीं सका कि क्या बोले, क्या करे। उसका दिमाग सुन्न हो गया। आँखों के आगे अन्धकार छा गया। नीचे तबले की आवाज लगातार तेज होती जा रही थी। उसकी एक-एक थाप अरविंद के मस्तिष्क की शिरा-शिरा को कँपाने लगी। मानो वह थाप नहीं, साक्षात् मृत्यु का चीत्कार हो। अरविंद न जाने कब तक संज्ञाहीन-सा निर्वाक बैठा रहा। अचानक उसके कान में आवाज आयी, "अब रोकर या घबड़ाकर हमलोग कर भी क्या सकते हैं बेटा! पहले कोई उपाय तो सोचो। नहीं, मैं तो गङ्गा में डूब मरूँगी!"

"केवल चौबीस घण्टे का समय मुझे दीजिये माँजी," न जाने कौन-सी शक्ति अरविंद के मुख से एकाएक फूट पड़ी। उसने विद्या देवी के आँसू-भरे चेहरे को एक बार फिर देखा। फिर नजरें नीची किए किसी निश्चय के स्वर में बोला, "उपाय के लिए मैं कल ठीक इसी वक्त आप से मिलूँगा। तब तक के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

अरविंद तत्क्षण उठ खड़ा हुआ। विद्या देवी को प्रणाम करना तक भूल गया और उसके उद्भ्रांत पैर आगे बढ़ चले। लगा जैसे पीछे से उसे कोई खदेड़ रहा हो। जीने से गिरता-पड़ता नीचे आया। अपने पीछे तबले की द्रुत थाप से किसी तरह अपना पिण्ड छुड़ाता हुआ वह बिजली की फुर्ती से आंगन से बाहर हो गया।

सतरह

शोभा के मुख से सुनी कमल की आपबीती ने किरण को विस्मित कर दिया था। इस अरविंद नामधारी कमल के दुख-भरे अतीत की स्मृति में दोनों सहेलियों की आँखें गीली हो गयीं। शोभा को यह पक्का विश्वास हो गया था कि अरविंद वस्तुतः कमल ही है। इस विश्वास को प्रमाणित करने वाली कई बातें थी—आज की बातचीत, अरविंद का अचानक उत्तेजित हो जाना, 'स्मृति के फूल' की स्क्रीप्ट में 'कमल' नाम का प्रयोग, बेहोशी की अवस्था में शोभा का नामोच्चारण आदि। 'अरविंद' नाम रखने का यही प्रयोजन भी मालूम होता था। इस रहस्योद्‌घाटन से किरण की आँखों के सामने से जैसे एक-एक पर्दा हटता गया। अरविंद के अपने जन्म स्थान तथा अतीत के प्रति उदासीनता का अर्थ भी खुलता गया। अरविंद के प्रति अबतक किरण के जो श्रद्धा-भाव थे और उनके भीतर अपनी जड़ जमाती हुई जो प्रेम-भावना अंकुरित हो रही थी, उन सब में एकाएक सैलाब आ गया। यदि इस समय अरविंद वहाँ होता तो शायद किरण उसके चरणों पर लोट-पोट कर रोती। अपने आँसुओं से ही अरविंद की जिन्दगी के गहरे घावों को धो डालती। बड़ी बेचैनी से वह अरविंद के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। लग रहा था जैसे अब वह एक सर्वथा नये अरविंद के दर्शन करेगी।

इधर शोभा के मन की भी एक विचित्र-सी गति हो गयी थी। अरविंद की कविताओं की स्क्रीप्ट को किरण ने उसे दिखाया था। किन्तु उस समय समर्पण के नीचे लिखा कमल शब्द का कोई भी अभिप्राय उसकी समझ में नहीं आया था। वह तो 'कमल' नाम को, उसकी स्मृतियों को, कब का न भूल चुकी थी। किन्तु जब स्वयं अरविंद ने किसनपुर से सम्बद्ध उसकी बचपन की स्मृतियों को कुरेद-कुरेद कर जगाया तो उसके स्मृति-पटल पर कमल को आते देर नहीं लगी। अरविंद के पूछने के ढंग तथा उसके निर्बल तर्कों से शोभा की शंका पुष्ट होती गयी—हो न हो, यह कमल ही है। किरण के मुख से उसने अरविंद की जो यशोगाथा सुनी थी, उसने उसके मन में अरविंद की एक भव्य मूर्ति गढ़ दी थी। आज जब किरण उसे जबरन खोंचकर अरविन्द के सामने ले गयी तो अरविंद उसके मन की कल्पित मूर्ति की अपेक्षा कहीं अधिक भव्य और सुन्दर लगा। पीछे जब उसके मन में इसका अहसास हो गया कि अरविंद कमल ही है तो

उसके दिल की धड़कन अचानक तेज हो गयी। उसे लगा, वह उस कमरे में अपने को संभाल नहीं पायेगी। इसीलिए मन पर एक विचित्र बोझ लिए वह एकाएक कमरे से बाहर हो गयी थी जिससे उसकी बेचैनी पकड़ी न जाये। किरण के बिस्तर पर औंधे मुंह गिर कर वह कुछ देर तक अपनी सांसों को काबू में करने की कोशिश करती रही। किन्तु कर नहीं पायी। धीरे-धीरे आँखें उमड़ आयी। न जाने कब तक सुबक-सुबक कर वह अपने मन के भार को हल्का करती रही। किरण ने आकर उसका स्वप्न भंग किया। चूंकि वह अभी आश्वस्त नहीं हो पायी थी, इसीलिए किरण के कमरे से भी उसे भागना पड़ा। अपने कमरे में गयी तो अपनी माँ को वहाँ नहीं देखा। माँ की अनुपस्थिति उसे बड़ी भली लगी। वहाँ भी बिस्तर पर पड़ी-पड़ी अनाम के पन्ने ही उलटती रही। इसी क्रम में अरविंद के चुम्बकीय व्यक्तित्व की ओर उसका श्रद्धालु मन अनायास खिंचता चला गया। मानो जिसे इतने दिनों से खोज रही थी, उसे आज अचानक ही पा लिया हो। वह समझ नहीं पा रही थी कि उसके आँसू हर्ष के हैं या विषाद के। अरविंद की ऊँचाई के सामने विनोद उसे बौना दिखाई देने लगा। उसे आश्चर्य हुआ कि जब समाज में अरविंद जैसे युवक वर्तमान हैं तो वह विनोद जैसे सामान्य युवक के लिये क्यों पछता रही थी। वह कुछ ऐसे ही विचारों में खोयी हुई थी कि किरण ने पीछे से आकर उसकी गीली आँखों को अपने हाथों से ढक लिया। वह बिस्तर पर बैठने की कोशिश करती हुई हँसकर बोली, "ओह दीदी, आँखें दुख रही हैं, छोड़िये भी!"

"झूठ काहे को बोलती हो री," किरण ने हँसते हुए उसकी आँखों पर से हाथ हटा लिए और अपनी आँसू-सनी उँगलियों को शोभा से दिखाती हुई बोली, "आँखें नहीं दुख रही है, दिल दुख रहा है, कसक रहा है—इसका प्रमाण है, यह!"

शोभा ने लजाकर सिर नीचे कर लिया। मुस्काती हुई बोली, "सच दीदी, बात इतनी सिरीयस हो जायेगी, मैं क्या जानती थी!"

"आखिर हुआ क्या?" किरण ने उत्सुक होकर पूछा, "तुम वहाँ से चली क्यों आयी? अरविंद बाबू तुम्हारे अचानक चले आने से बहुत दुखी हो गये थे।"

"क्या सच?" शोभा मन ही मन किरण की बातों का रस लेती हुई बोली, "किन्तु मैं वहाँ अपनी साँसों को रोके कब तक रह सकती थी दीदी? मैं क्या जानती थी कि बनारस मेरे लिए आठवाँ आश्चर्य सिद्ध होगा!"

"कुछ बताओगी भी या यों ही बकती जाओगी?"

जब किरण की उत्सुकता अपनी सीमा पार कर गयी तो शोभा ने आदि से अन्त तक कमल की आश्चर्यभरी गाथा कह सुनायी। जब कहानी का शतांश समाप्त हो गया तो दोनों ने अपनी-अपनी गीली पड़ी पलकों को पोंछा। कुछ देर के लिए खामोशी छायी रही। न जाने क्यों आज पहली बार शोभा की सजल आँखें किरण को भली नही लगीं। मानो कमल की किसी बात पर आँसू बहाने का अधिकार शोभा को नहीं था। इसे अपनी कमजोरी समझ कर मन ही मन अपने को कोसती हुई कुछ देर बाद किरण अपने कमरे में चली आयी। दूसरे दिनों की तरह शोभा किरण का साथ उसके कमरे तक नही दे सकी। किरण के चले जाने पर शोभा ने अपने नौकर जीतन को बुलाया। पूछा, "माँ कहाँ गई है, जीतन ?"

"शायद मन्दिर गई हैं। बाबा (कान्ति बाबू) के साथ जाते हुए उनको देखा था।"

"कब आयेंगी ?"

"सो तो उन्होंने कुछ नहीं बताया।"

शोभा मन ही मन झुझलायी। उसे अकेली छोडकर माँ कहाँ चली जाती हैं ! ऐसी झुझलाहट उसे पहले कभी नहीं हुई थी। आज जिस सत्य का साक्षात्कार उसने किया था वह उसके लिए अत्यन्त उत्तेजक था। उसे अपनी माँ से जल्द से जल्द खोलकर वह अपने मन का भार हल्का करना चाहती थी। इसी बहाने वह अरविन्द के प्रति अपनी माँ की सहानुभूति एवं श्रद्धा जगाकर अपने मन के इस नये झुकाव को भी प्रकट कर देना चाहती थी। कुछ देर में वह गुसलखाने में गई। वहाँ वाश-वेसिन के शीशे के सामने खड़ी होकर अपने चेहरे को साबुन से अच्छी तरह साफ कर दिया। फिर कमरे में आकर ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठ गई। बारीक क्रीम और पाउडर के मेल से चेहरे को चिकना बनाया। स्वभाव से ही लाल होठों पर लिपस्टिक की बारीक लाली चढाई। केशों को नये ढंग से सजाया-सँवारा। आँखों में अंजन लगाया। अब वह आदमकद शीशे के सामने खड़ी अपने रूप को देख-देख कर मुस्काती रही। उसके मन ने विश्वास के साथ कहा, 'घबड़ाओ मत शोभा, तुम्हारे रूप का जादू अरविन्द पर चल कर रहेगा।' आइने में वह अप्सरा-सी सुन्दर लग रही थी। आज उसके शरीर का वासन्ती परिधान अपने पूरे आकर्षण पर था ! न जाने कितनी देर वह अपनी आँखों में नशीली चमक लिए आत्मविभोर-सी खड़ी रही। इसी बीच पीछे से बन्द दरवाजे पर दस्तक हुई। निर्मला देवी ने पुकारा, "शोभा !"

शोभा की तन्द्रा भंग हो गई। उसने किवाड़ खोलकर मुस्काते हुए माँ का स्वागत किया।

"सो रही थीं क्या ?" निर्मला देवी शोभा के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना बोलीं, "आज तुमसे एक जरूरी राय लेनी है शोभा !"

शोभा ने उत्सुक होकर माँ के चेहरे को देखा। उनका चेहरा किसी सुखद भावना के रंग में रंगा हुआ-सा लगा। शोभा के सामने कुर्सी पर बैठती हुई वे फिर बोलीं, "जो सोचा था सो तो नहीं हुआ। विनोद ने बड़ा धोखा दिया !"

इतना कहकर निर्मला देवी कुछ गम्भीर पड़ गयी। कुछ देर चुप रहकर पुनः बोलीं, "लेकिन हुआ अच्छा ही। ठाकुर भैया की मृत्यु के बाद विनोद की प्रकृति पहले से भी अधिक उद्धत हो गई थी। यों तो वह बचपन से ही नटखट था, किन्तु मैंने सोचा था कि आगे चलकर संभल जायेगा। पर....खैर, जाने दो। अब वह अच्छा हो या बुरा, उससे मतलब ही क्या रहा ! कभी-कभी यही सोच कर दुख होता है कि तुम्हारे पापा की अन्तिम इच्छा पूरी नहीं कर पायी। शायद ईश्वर को यह मंजूर नहीं था। उन्हें तुम्हें विनोद से कई मानों में देकर पति देना था।"

निर्मला देवी ने कुछ मुस्काकर शोभा की ओर देखा। [illegible] अपनी माँ की मुस्काती हुई आँखों से अपनी नजरें नहीं मिला सकी। लजाकर सिर झुका लिया। उसका हृदय आगे की बात सुनने के लिए धड़क उठा।

"मेरा मतलब इस अरविन्द से है बेटा," निर्मला देवी [illegible] करती हुई बोलीं, "यों तो अपनी पहली मुलाकात में ही [illegible] मुझे लुभा लिया था। किन्तु पीछे चलकर जैसे-जैसे मैं [illegible], इससे और भी मुग्ध होती गई। गुरुजी के साथ [illegible] तुम्हारी शादी की चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने [illegible] अरविन्द की ओर आकृष्ट किया। वे बोले [illegible] से योग्य रहेगा। यदि हमारी पसन्द [illegible] राजी कर देंगे। अरविन्द उनकी बात [illegible] व्यक्तित्व है, वह काशी में किसी से [illegible] है। धन की मुझे कोई चिन्ता नहीं। [illegible] खड़ा नहीं है तो हमें इसकी कोई [illegible] कोई भी निश्चय करने से [illegible]।"

निर्मला देवी ने [illegible] हो मन बाँसों [illegible]

झुकाये ही बोली, "अरविन्द बाबू अपनी ही तरफ के हैं माँ, गोपाल चाचा के इलाके के ही। गाँव का नाम मैं नहीं जानती।"

"तुम यह कह क्या रही हो?" निर्मला देवी चकित होकर पूछ पड़ी, "तुम्हें यह कैसे मालूम?"

"आपको कमल नामक एक लड़के की याद होगी शायद। कई वर्ष पहले की बात है। उसे स्कूल में विनोद भैया ने नाहक ही पीट दिया था। उल्टे चाचाजी से उसके विरुद्ध शिकायत भी कर दी थी। इस पर वे कमल के नाना पर बहुत बिगड़े थे। हेडमास्टर को भी स्कूल से निकालने पर उतारू हो गये थे। तब मैंने चाचा जी को सही बात की जानकारी दे दी थी। इस पर उन्होंने विनोद भैया की बड़ी पिटाई की थी और "

"बस-बस," निर्मला देवी शोभा की बातों को बीच में ही काटती हुई आश्चर्यपूर्वक बोली, "मुझे खूब याद है वह सब। किन्तु अभी यहाँ उस कमल के जिक्र से क्या मतलब है तुम्हारा?"

"यही कि अरविन्द बाबू कमल ही हैं।"

"झूठ, यह तुमसे किसने कह दिया? उसकी तो ट्रेन में कट जाने से मृत्यु हो गई!"

इस पर शोभा ने अपनी माँ से आज की सारी घटना का संक्षेप में वर्णन कर दिया। निर्मला देवी अचरज से मुँह खोले सब कुछ सुनती रहीं। अन्त में खुश होकर बोली, "यदि तुम्हारा कहना सही है बेटा, तब तो यह दोहरी खुशी की बात है। कमल तो अपनी ही बिरादरी का लड़का था। गरीब था तो क्या, संघर्षों ने उसे तपा-तपाकर खरा सोना बना दिया है अब। यह तो अद्भुत संयोग है। जिस कमल की तुमने रक्षा की थी, जिसे पिटते देख कर तुम मूर्च्छित भी हो गई थी, आज उसी कमल से इतने वर्षों के बाद, तुम फिर मिलने आयी हो। मुझे पूरा विश्वास है, वह भी तुम्हें पहचानकर बहुत खुश हुआ होगा।....तो मैं बात आगे बढाऊँ न?"

शोभा ने संकोच से अपना सिर झुका लिया। उसकी हँसती हुई आँखों को देखकर निर्मला देवी उसके मन की बात भाँप गयी। मुस्काकर बोली, "मैं समझ गयी बेटा, तुमने अपने योग्य ही चुनाव किया है।...मैं जरा गुरुजी से यह कहानी कहूँ। वे सुनकर चकित रह जायेंगे।"

निर्मला देवी बाहर निकलने के लिए खड़ी हो गयी। शोभा ने कहना चाहा कि इतनी जल्दबाजी की क्या जरूरत। किन्तु कह नहीं पायी। जब वे कमरे से

बाहर हो गयीं तो शोभा कुछ क्षण अनिश्चय की मुद्रा में खड़ी रही। उसे रह-रह कर चिन्ता होती थी—अरविन्द कहीं इन्कार कर दे तब ? इसी समय उसे किरण की याद आयी। उसने सोचा, इस विषय में दीदी की राय लेना अच्छा रहेगा। फिर सोचा, अभी इतनी जल्दी उनसे कुछ भी कहना ठीक नहीं। सोचेंगी कि एक दिन की छोटी-सी मुलाकात में ही शोभा दीवानी हो गयी। नहीं नहीं, आज नहीं, कल या परसों उनसे बताना ठीक रहेगा।

अठारह

मणिकर्णिका घाट के एक कोने में बैठा अरविन्द सामने गंगा की शांत धारा को एकटक देख रहा है। ढलते सूरज की लाल किरणें लहरों पर झलमला रही हैं। घाट की एक तरफ तीन-चार लाशें जल रही हैं। लाशों के जलने की चट-चट आवाज रह-रह कर उसके कानों में गूँज जाती है। वह वहाँ बैठा-बैठा समय के प्रवाह में खुद को भी प्रवाहित होता हुआ अनुभव कर रहा है। इस धारा में प्रिय से प्रिय वस्तु की याद भी धुँधली पड़ जाती है। कालांतर में मिट भी जाती है। फिर, अरविंद जैसे अनाथ, अकिंचन व्यक्ति की किसे याद होगी ! उसने जब से जन्म लिया, केवल संघर्ष ही तो झेलता आया है। उसे माँ-बाप ने ठुकराया। सुधा ने शायद गलत समझा। उसकी एक मात्र श्रद्धा की अधिकारिणी गीता देवी भी उसे भूल गयी। वह जहाँ भी गया, ठगा गया। धोखे में डाला गया। पीड़ित किया गया। बार-बार उमडती हुई आँखें पोंछकर वह प्रवाह को देख रहा है जो निरन्तर आगे ही सरका जा रहा है। न जाने किन किनारों से गुजरता आया होगा और गुजरता जायेगा ! संध्या का निस्तेज प्रकाश धीरे-धीरे सलेटी रंग में बदलता जा रहा है। फागुन महीने की तन्वी गंगा में कुछ नाविक अपनी नौकाएँ खेते निकले जा रहे हैं। पार के धूमिल कछार पर कुछ आदमियों की ठिगनी काली रेखाएँ कहीं पूरब की ओर बढ़ी जा रही हैं। उनसे भी दूर क्षितिज से संलग्न वृक्षों की कतार दिख रही है। उनसे मेघाकार पर्वत-श्रेणी का भ्रम हो जाता है।

अरविंद आज यहाँ गंगा के किनारे घण्टों टहलता रहा था और अब जैसे थका-हारा बैठकर कोई समाधान पाना चाहता है। उसकी समझ में कुछ नहीं

आता, वह क्या करे ! यदा कदा श्यामू के तबले की कर्कश थाप से उसके प्राण अभी भी बेचैन हो जाते हैं । विद्या देवी का मुर्झाया चेहरा, उनकी दर्दभरी वाणी उसके सामने जैसे प्रत्यक्ष होकर खड़ी है...... तो क्या श्यामू का कहना सच था ? जिस मन्दिर को खड़ा करने में उसने वर्षों तक पसीना बहाया है, वही क्या सच-मुच अनाचार का अड्डा बना हुआ है ? नहीं, यह मानने की बात नहीं । कांति बाबू के उज्ज्वल चरित्र पर सन्देह करना व्यर्थ है । जो व्यक्ति अवस्था में लगभग साठ का हो, जो मन्दिर की प्रत्येक सदस्या को बेटी कहकर पुकारता हो, उसे ऐसा लाछन लगाना आश्चर्य है, पाप है । यह सच है कि वे कभी-कभी बड़ी रात तक मन्दिर के कामों में उलझे रहते हैं । किसी-किसी दिन मन्दिर के कार्यालय में ही सो कर रात बिता देते हैं । किन्तु इससे क्या हुआ ? वह खुद भी तो कई बार कार्यालय में उनके साथ रात-रात भर रहा है ।.. तब शांति देवी के साथ यह सब हो कैसे गया ? वह तो मन्दिर में रहती भी नही । अपने घर से केवल दिन में ही वहाँ जाती है और शाम होते-होते घर वापस आ जाती है । नही नही, इसमें मन्दिर का कोई भी हाथ नही । शांति स्वयं ही अपने अच्छे या बुरे चरित्र की जिम्मेदार है । सम्भव है, घर आते-जाते रास्ते में ही उसका किसी के साथ अनैतिक सम्बन्ध हो गया हो ।......किंतु विद्या देवी तो अरविंद को ही जिम्मेदार मानेंगी । कोई दूसरा भी सुनेगा तो इस घटना का सम्बन्ध मन्दिर से ही जोड़ेगा । उसकी प्रतिष्ठा पर भी कीचड़ उछाला जायेगा । यदि यह बात कहीं श्यामाकांत के कानों में गयी ?.. ...अरविंद काँप गया । विद्या देवी का कहना ठीक था कि वह अपनी बहन की हत्या तक कर सकता है । यही नही, इस अपमान का बदला लेने के लिये वह किसी भी सीमा तक जा सकता है । काति बाबू का जीवन खतरे में पड़ जा सकता है...... श्यामाकांत का वश चला होता तो वह अपनी सुशील और तरुणी विधवा बहन की शादी कब न कर दिये होता । इस विषय में उसने कई बार अरविंद से चर्चा भी की थी । किंतु केवल दो कारणो से वह लाचार हो जाता है । एक तो उसकी धर्मभीरु माता अपनी पुत्री को पुनर्विवाहित देख कर अपना सिर फोड ले सकती हैं । दूसरे, शाति से विवाह करने वाला कोई युवक भी तो चाहिए ! आज के समाज में ऐसे युवक कितने हैं जो अच्छी से अच्छी विधवा से भी शादी करने को तैयार हों ?... . आज वही भोली और सच्चरित्र दुखिया शांति एकाएक दुश्चरित्र हो गयी है । जाने-अनजाने की गई एक छोटी-सी भूल के कारण उसका सारा जीवन तबाह होने जा रहा है । स्थिति ऐसी है है कि वह किसी से मुँह दिखाने के काबिल भी नही । मानव व्यक्तित्व के मूल्यांकन का यह कितना गलत दृष्टिकोण है ?.......

अरविंद का मस्तिष्क झन्ना उठा था। अब तक रात की कालिमा चारों ओर व्याप गयी थी। केवल पश्चिमी आकाश में सप्तमी का चाँद अपनी धूमिल किरणें बिखेर रहा था। अभी-अभी दूर प्रवाह में किसी नाविक के निर्गुन गाने की करुण आवाज अरविंद के मन-प्राणों में एक अजीब-सी उदासी भर रही है। घाट पर अब भी इक्के-दुक्के कुछ लोग आ-जा रहे हैं। लाशों का जलना अभी भी जारी है। दूर राजघाट पुल से ट्रेन की चीखती हुई सीटी सम्पूर्ण प्रांतर को कँपा-सी देती है। अरविंद कुछ तय करके ही यहाँ से उठना चाहता है। अचानक बहुत देर के बाद उसके मन में एक धुँधला-सा प्रकाश दिखाई देता है। धीरे-धीरे वह प्रकाश उसके प्राणों में नई ताजगी और शक्ति का बोध कराने लगता है।...... हाँ, वह शांति से ही शादी करेगा। उसे ही अपनी धर्मपत्नी बनायेगा। विद्या देवी को अब इसके लिये तैयार कर लेना उतना मुश्किल नहीं जितना पहले था। शांति की आत्महत्या, अपनी आत्महत्या अथवा अपनी प्रतिष्ठा को हानि से वे इसे जरूर अच्छा मानेंगी। शांति के गर्भवती होने की बात केवल तीन जनों—अरविंद, शांति और विद्या देवी—तक ही सीमित रह जायेगी। जो बच्चा होगा, उसका पिता अरविंद बनेगा। आखिर उस आनेवाले बच्चे का कसूर ही क्या है? अरविंद का वश चले तो वह अकेले संसार के ऐसे सारे उपेक्षित और अनाथ बच्चों का पिता बन जाये। एक शांति का बच्चा हुआ तो क्या हुआ!......और श्यामाकांत? आह, वह कितना खुश होगा अरविंद का निश्चय सुनकर? दोनों की मित्रता एक सरस सम्बन्ध में बदल जायेगी। कल ठीक दस बजे दिन में वह यही प्रस्ताव लेकर विद्या देवी के पास जायेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं। अपनी, विद्या देवी, शांति, श्यामाकांत, कांति बाबू और सबसे बढ़कर मन्दिर की प्रतिष्ठा की रक्षा इसी उपाय से हो सकती है। शांति भी अच्छी पत्नी सिद्ध होगी, उसे पूरा विश्वास है। मन्दिर की दूसरी सभी अध्यापिकाओं में वह अधिक विचारशील, पढ़ी-लिखी और नेक महिला है ...और किरण? उसका क्या होगा?... नहीं नहीं, शांति के जीवन और मरण का प्रश्न है। किरण तो कई दृष्टियों से शांति से अधिक सुखी है।

अब अरविंद खड़ा हो गया। खड़ा होते ही उसे अपनी कमजोरी का अहसास हुआ। दिन भर का भूखा था। कुछ देर तक आँखों को कुछ सूझा ही नहीं। विद्या देवी के घर से पकौड़े खाने के बाद वह सीधे गंगा के किनारे आ गया था। अब तक घाट सूना पड़ चुका था। वह जल्दी-जल्दी लड़खड़ाते कदमों से अपने डेरे की ओर चल पड़ा। करीब आधा मील पैदल चलना था। किंतु शरीर थककर चूर हो गया था। रास्ते में कई जगह गश्त लगाती पुलिस

दिखाई पड़ी। कुछ मित्रों के घर-द्वार मिले। कहीं-कहीं पान-बीड़ी या चाय की दुकानों पर अभी भी कुछ लोग खड़े या बैठे दिखाई दिये। जब अरविंद मुख्य सड़क से मुड़कर एक गली में घुसा तो उसे उस सूनी अँधेरी गली में एक महिला की काली छाया बड़ी तेजी से उसी की ओर आती दिखाई पड़ी। अरविंद को सामने से आते देख वह जैसे सहम कर एक ओर हट गयी। फिर दौड़ती हुई-सी उस गली से फूटने वाली दूसरी गली में ओझल हो गई। इस रात में यह अकेली कहाँ जा रही है? कौन है? अरविंद सोचता रहा। सम्भव है, कोई अभिसारिका हो या श्यामाकांत की कोई भूतनी! उस हालत में भी अरविंद के होठों पर मुस्कान खिल गई।

जब अरविंद कांति बाबू के बँगले के फाटक तक आया तो लोहे का फाटक भीतर से बन्द किया हुआ मिला। ज्यादा रात हो जाने पर फाटक बन्द कर दिया जाता था। वह चाहता तो किसी को पुकार कर फाटक खुलवा सकता था। किंतु इतनी रात में किसी का कच्ची नींद से जगाना उसने उचित नहीं समझा। अपने चप्पल खोलकर उसने फाटक की छड़ों के बीच से भीतर की ओर गिरा दिया। स्वयं छड़ों की सहायता से फाटक पर चढकर दूसरी ओर लुढक गया। नीचे उतरने पर फाटक से खट-सी आवाज हुई और इसी के साथ अरविंद का दिल भी धड़क उठा। कहीं कोई जग गया हो तो? कुछ देर खड़ा रह कर उसने आहट ली। कहीं से कोई आवाज नहीं आयी। तब वह पैरों में चप्पल डालकर चोर की तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ा। बाहर बरामदे में जीतन चटाई डाल कर सोया था। नाक से घर-घर आवाज हो रही थी। अरविंद ने धीरे से अपने कमरे का ताला खोला। भीतर जाकर बिजली की स्वीच दबाई। कमरा प्रकाश से भर उठा। तब उसने आहिस्ते दरवाजे को भीतर से बन्द कर लिया। अब उसकी जान में जान आयी। मानो कोई चोरी करके कहीं से भागा आ रहा हो। टाइम-पीस में उस समय रात के साढ़े बारह बज रहे थे। वह बड़ी देर तक बिस्तर पर बैठा-बैठा न जाने क्या-क्या सोचता रहा। जब घड़ी की सुई डेढ़ पर चली गई तो सोने चला। बत्ती बुझाकर चादर तान ली। बिस्तर पर पसर गया। आँखें बन्द करने पर भी नींद नहीं आ रही थी। कल का दिन कितना अकल्पित होगा, कितना अप्रत्याशित ......!

उन्नीस

अरविंद विवाह की पोशाक में सज-धज कर अपनी भावी पत्नी शांति के सामने खड़ा है। आस-पास बहुत से स्त्री-पुरुषों की भीड़ दिखाई देती है। भीड़ में से वह कुछ को पहचानता है, कुछ को नहीं पहचानता। सभी की देह पर लाल वस्त्र दिखाई पड़ते हैं। शांति की साड़ी गहरे लाल इकरंगे की है। अरविंद की अपनी धोती, अचकन सभी लाल रंग के ही हैं। कहीं दूर से शहनाई की सुरीली आवाज आती है। यह आवाज न जाने क्यों अच्छी नहीं लगती। लगता है, कोई सुरीले कण्ठ से रो रहा हो। कुछ ही देर में शहनाई की आवाज तबले की कर्कश थाप में बदल जाती है। तबले का शोर इतना बढ़ जाता है कि कान बहरे हो जाते हैं। इसी बीच भीड़ में कुछ हलचल होती है। भीड़ को फाड़ती हुई-सी एक लाल डोली शांति के निकट रख दी जाती है। कहारों को अरविंद पहचान नहीं पाता। उधर तबला-वादन से मन व्याकुल हो रहा है। शांति डोली में चढ़ जाती है। डोली में सुबकने की करुण ध्वनि तबले की आवाज को चीरती हुई-सी चारों ओर व्याप जाती है। किसी अज्ञात प्रेरणा से अरविंद भी डोली के पीछे-पीछे चल देता है। कुछ ही देर में डोली कहीं विलीन हो जाती है। दूसरे लोग भी दिखाई नहीं पड़ते। अब अरविंद किसी रेगिस्तान में खड़ा है। आसपास केवल बालू ही बालू। किंतु तबले की आवाज यहाँ भी पहुँच रही है। अरविंद यहाँ से कहीं दूर भागना चाहता है। किंतु रास्ता मालूम नहीं। गीली रेत में उसके पैर अटक जाते हैं। इसी समय कुछ दूरी पर उसे कुछ आदमियों की काली रेखाएँ लाल-सी डोली लिये कहीं जाती हुई दृष्टिगोचर होती है। अरविंद अपनी पूरी ताकत लगाकर उधर दौड़ना चाहता है। किंतु उसके भारी पड़े कदम कोशिश करने पर भी उठ नहीं पाते। सामने डोली ले जाता हुआ कोई कहार निर्गुन गाना शुरू करता है। आवाज दूर से दूरतर होती जा रही है। अरविंद को न जाने क्यों बड़ी रुलाई आती है। वह वहीं बालुओं की ढेर पर सिसक-सिसक कर रो पड़ता है....... ।

अरविंद ! अरविंद !! ...आवाज सुनकर अरविंद आस-पास देखता है। इसी क्रम में उसकी पलकें खुल जाती हैं। बाहर से अभी भी आवाज आ रही है, "अरविंद बेटा, कबतक सोये रहोगे ?"

अरविंद कुछ देर तक अपने को समझने की कोशिश करता है। उसके गाल

अभी भी आँसुओं से तर है। साँसें तेज चल रही हैं। देह पसीने से लथपथ हो गयी है। खिड़की के शीशे से छनती सूर्य की लाल किरणें उसके चेहरे पर पड़ रही हैं। वह आपे में आकर हड़बड़ा कर उठ बैठता है। बाहर कांतिबाबू को पुकारते सुनकर बोलता है, "जाग रहा हूँ, पिताजी!"

वह झटपट तौलिए से आँख-मुँह पोंछकर दरवाजा खोलता है। कांतिबाबू उसकी लाल-लाल सूजी हुई आँखें देखकर आश्चर्यपूर्वक पूछते हैं, "तुम्हारी आँखें इतनी लाल क्यों हो गई हैं? लगता है, रातभर के जगे हो!"

"जी हाँ, रात कुछ देर से नींद आयी।"

"कल सुबह से ही कहाँ गायब हो गये थे? मन्दिर भी तो नहीं गये?"

"जी, एक मित्र के यहाँ चला गया था," अरविंद अपनी आँखें मींसता हुआ बोला, "वहीं देर हो गयी।"

"अच्छा, कोई बात नहीं," कांतिबाबू अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले, "आज तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं बेटा, जरा जल्दी तैयार होकर मेरे कमरे में आ जाना।"

"जी अच्छा," अरविंद बोला।

अरविंद फिर अपने कमरे में आ गया। घड़ी में सुबह के सात बजने जा रहे थे। आमतौर पर वह सुबह चार बजे ही उठ जाता है। आज इतनी देर से जगने पर उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। तुरत ही याद आया कि दस बजे तक विद्या देवी के पास पहुँचना है। अभी कुछ पहले देखे भयावह स्वप्न की याद आते ही उसके मन में न जाने कैसी कँपकँपी समा गयी। किसी तरह स्वप्न की बातों को भूल कर उसने जल्दी-जल्दी नित्य क्रिया से छुट्टी पाई। साढ़े आठ बजे तक बाहर जाने के लिए तैयार हो गया। पता नहीं क्यों, उसे ठीक इसी समय किरण की याद आ गयी। कल जब से किरण और शोभा उसके कमरे से चली गई थीं तब से लेकर अब तक दोनों में से किसी से उसको भेंट नहीं हो पायी थी। किरण के प्यार भरे पत्र की स्मृति भी ताजी हो गयी। फिर उसने सोचा, प्यार करना और चाहना दूसरी चीज है। शादी करना एक दूसरी ही चीज। शादी के लिए प्रेम जरूरी हो सकता है। किन्तु प्रेम के लिए विवाह की जरूरत नहीं भी हो सकती। किरण अरविंद से प्रेम करती है और वह स्वयं भी उसे चाहता है। तो इसमें बाधा ही क्या है? किंतु शादी? यह तो अब शांति से ही होनी है। दूसरा कोई विकल्प बच भी नहीं गया है।.......

अरविंद तैयार होकर कांतिबाबू के कमरे में पहुँचा। वहाँ पहले से ही निर्मला देवी बैठी थीं। पहुँचते ही उसने उन्हें प्रणाम किया और सोफासेट के एक

हिस्से में बैठ गया। कांति बाबू भी बाहर से आकर अरविंद और निर्मला देवी के सामने बैठ गये। प्रशस्त ड्राइंग रूम काफी आकर्षक था। रोशनदान और खुली खिडकियों से सूर्य की चमकती किरणें प्रवेश कर रही थीं। एक तरफ हाथी दाँत की खूंटी से तीन-चार श्वेत स्फटिक की मालायें लटक रही थी। दूसरी ओर दीवार के सहारे कांति बाबू का आदमकद भव्य तैल चित्र सुनहले फ्रेम में जड़ा रखा था। फर्श पर हरे और लाल रंग की मखमली दरी बिछी थी। कांति बाबू के बैठते ही किरण और कमला चाँदी के कलात्मक टी-सेट और तश्तरियों में चाय और जलपान का सामान ले कर आ पहुँची। लगा जैसे यह सब तैयारी पहले से ही की जा चुकी थी। केवल अरविंद की प्रतीक्षा की जा रही थी। किरण ने नाश्ते का सजा हुआ प्लेट पहले निर्मला देवी की ओर बढा दिया। प्लेट देखते ही अरविंद के मुँह में पानी भर आया। उसने निर्मला देवी तथा कांतिबाबू की नजर बचाकर किरण को इशारा किया कि उसका पेट खाली है, इतने से नहीं भरेगा। किरण समझ गई। धीरे से मुस्काई। एक प्लेट में जितना काजू, फल और बिस्कुट बचा था, उन्हें एक बड़े प्लेट में रखकर उसकी ओर बढा दिया। कांति बाबू सुबह में केवल सूखा फल और दूध लेते थे। उन्हें ये ही चीजें दी गईं।

"तुम भी बैठ जाओ बेटी," निर्मला देवी ने किरण से कहा, "आज हम सब साथ ही नाश्ता करें।"

"जी, आपलोग पहले खा लें न," किरण ट्रे में चाय के प्लेटों को ठीक करती हुई बोली, "मुझे अभी चाय बनानी है। मैं तो पीछे खा लूंगी।"

"तो शोभा को भी क्यों नहीं बुला लेतीं?" निर्मला देवी ने इस बार कमला की ओर देख कर कहा "शोभा को जरा जल्दी भेज तो देना। चाय वही बना देगी।"

किरण सब के सामने वहाँ बैठने से झिझकी। किंतु गुरुजनों का आदेश था। बैठना ही पड़ा। निर्मला देवी की बगल में ही उनकी बायीं ओर बैठ गयी। अरविंद उसके सामने ही पड़ता था। किंतु जब से वह कमरे में आयी थी, संकोच के कारण किरण ने उसकी ओर अभी ठीक से देखा तक नहीं था। अरविंद इस बात पर शुरू से ही गौर कर रहा था। कुछ देर में किरण ने अपने प्लेट से एक काजू मुँह में रखते हुए कनखियों से अरविंद को देखा। उसकी नजरें कुछ क्षणों के लिए अरविंद की उदास दृष्टि से टकराईं। उसे अरविंद का उतरा चेहरा देखकर किंचित आश्चर्य हुआ। कल बारह बजे रात तक वह खाने के लिए अरविंद की प्रतीक्षा करती रही थी। जब वह नहीं आया तो उस पर मन ही

मन झल्लाती हुई शोभा के साथ सो रही। आज जब से उसकी नींद टूटी, अरविंद को देखने तथा उससे बातें करने के लिए उसका मन बेचैन हो गया। एक बार मौका पाकर अरविंद के कमरे की तरफ गई थी। किंतु उसे भीतर से बन्द पाकर फिर लौट आयी।

कमरे में शोभा के आते ही जैसे एक नई रौनक, नयी जिन्दगी की लहर दौड़ गयी। वह नीचे से ऊपर तक आकर्षक पहनावे में थी। अंगों की सायास सजावट से लगता था मानो वह वहाँ किसी साक्षात्कार के लिए आयी हो। उसकी एक-एक भंगिमा काफी सजग थी और संकोच के कारण और भी मोहक लग रही थी। कमरे में आते ही वह बिना किसी से कुछ पूछे चाय बनाने लगी।

शोभा के वहाँ पहुँचने के कुछ पहले से ही कांति बाबू ने अपनी बातों का सिलसिला शुरू कर दिया था। वे बोल रहे थे, "कमल तो कीच में ही खिलता है बेटा! जब तुम काशी में आये और तुमसे मेरा सम्पर्क बढ़ा तो मैं उसी समय समझ गया कि तुम्हारी तेजस्विता कहीं संघर्षों की तेज आंच में पकायी गयी है। इसीलिए उसमें इतना दम है, इतना आकर्षण है। तुम मुझसे अपने अतीत के सम्बन्ध में कुछ कहने से झिझके थे। मैंने भी फिर तुमसे उस विषय में कुछ नहीं पूछा। उसकी जरूरत ही नहीं समझी। अपने स्वप्नों को साकार करने के लिए मुझे जिस चरित्र की आवश्यकता थी, मैंने तुम में वह अनायास पा लिया। 'गुणाः पूजास्थानं गुणिपु न च लिङ्गं न च वयः;' तुममें सार्थक और चरितार्थ होते देखा। किंतु कल जब निर्मला बहन ने तुम्हारे बीते दिनों के कुछ चित्र मेरे सामने रखे तो मैं खुशी, आश्चर्य तथा दुख के मिले-जुले ज्वारों में डूब-सा गया। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह लगा कि शोभा और तुम एक दूसरे के पूर्व परिचित हो। परिचय की यह गाथा जितनी ही नाटकीय है, उतनी ही दुखद।"

इतना कहकर कांति बाबू कुछ देर के लिए चुप हो गये और अरविंद के उदास पड़े चेहरे की ओर देखा। शोभा को छोड़कर वहाँ उपस्थित सभी लगभग एक साथ ही अरविंद के चेहरे पर बनने-मिटने वाले रंगों को कुछ देर तक देखते रहे। अरविंद एकाएक इतनी नजरों का सामना नहीं कर सका। उसकी दृष्टि नीचे झुक गयी। वह इतना तो समझ गया कि वहाँ उपस्थित सभी लोग उसे अपने वास्तविक रूप में पहचान गये हैं। किन्तु यह नहीं सोच सका कि कांति बाबू की बात पर उसे भी कुछ कहना चाहिए या चुप रहना चाहिए। अरविंद को छोड़कर अब तक चाय सबकी ओर बढ़ायी जा चुकी थी। किंतु जब शोभा अन्त में अरविंद की ओर कप बढ़ाने लगी तो उसके हाथ कुछ काँपने-से लगे। हृदय धड़कने लगा। अपना काम खतम करके वह धीरे से कमरे से बाहर खिसक गयी।

रह सकते हो। शादी के बाद मेरी सारी सम्पत्ति तुम्हारी और शोभा की ही तो होगी।"

निर्मला देवी ने अपना भाषण समाप्त करके एक बार फिर अरविंद की ओर देखा। उधर किरण की हालत पतली हो गई थी। उसके सिर में बार-बार चक्कर आ रहे थे। दिल बेतरह उफन रहा था। निर्मला देवी की बातें उसकी पूरी शख्सीयत को शाप-दग्ध करती जा रही थी। इस बीच उसने कई बार चाहा कि शोभा की तरह वह भी चुपचाप कमरे से खिसक जाये। किंतु बाहर जाने से कहीं निर्मला देवी बुरा न मान जायें, यही सोच कर वह किसी तरह वहाँ बैठी रह गयी थी। अरविंद की ओर ताकने की हिम्मत नहीं हो रही थी। उधर अरविंद की मानसिक स्थिति कुछ दूसरी ही थी। वह निर्मला देवी की बातों की अपेक्षा कभी किरण के पीले पड़े चेहरे पर और कभी सामने टिक-टिक करती दीवार-घड़ी पर ज्यादा ध्यान देता रहा था। उसका मन अपनी बेचैनी में घड़ी के पेण्डुलम की तरह इधर से उधर डोलता जा रहा था। दस बजने में केवल कुछ मिनटों की देर थी। उसे दस बजते-बजते विद्या देवी के पास पहुँचना था। इस मनःस्थिति में वह निर्मला देवी की लम्बी बातों पर मन ही मन झुंझलाता रहा। जब निर्मला देवी चुप हो गयीं तो उसने एक बार उनकी ओर और एक बार कांति बाबू की ओर देखा। फिर विनीत स्वर में कहा, "मैं माँजी की सारी बातें सुन गया पिता जी! मुझे खुशी ही है कि आप लोग मेरे बीते दिनों के विषय में बिना मेरे कुछ कहे खुद ही जान गये। रही मेरी शादी की बात। शोभाजी को पाकर कोई भी नौजवान अपने को धन्य मानेगा। किंतु मैं खुद किसी भी तरह अपने को उनके योग्य नहीं पाता। मेरी जिन्दगी की अटपटी रफ्तार है। जिन्दगी जीने का मेरा अपना ढंग है। उससे शोभाजी को मैं कभी सुखी नहीं कर पाऊँगा। इतना होने पर भी शायद मैंने आपकी बात मान ली होती, यदि यही प्रस्ताव कल तक मेरे सामने आया होता। आज तो मैं विवश हूँ। पहले ही कुछ दूसरा निर्णय ले चुका हूँ। मुझे अफसोस है। एक दूसरी लड़की '.....।"

"यह क्या कहते हो तुम?" कांति बाबू एकाएक बीच में ही बात काट कर गरजते हुए-से बोले, "यह कैसा निर्णय है जो मुझसे छिपा कर लिया गया? कौन है वह लड़की?"

एकाएक सबकी नजरें फिर अरविंद के ऊपर केन्द्रित हो गयी। न जाने किस उत्सुकता से किरण भी अरविंद की ओर देखने लगी। मानो अरविन्द उसी के जीवन या मृत्यु के सम्बन्ध में कुछ घोषणा करने जा रहा हो।

बोल रहे हो ! साधारण-सा प्रस्ताव था। नहीं मानना था, सीधे कह देते कि मुझे नामंजूर है। बात वहीं खत्म हो जाती।"

अरविन्द कान्ति बाबू से अपनी अशिष्टता के लिए माफी माँगने की बात सोच ही रहा था कि बाहर बरामदे में किसी की घबड़ाई हुई आवाज सुनाई पड़ी, "गुरु जी कहाँ हैं ? किधर चले गये ?"

"उधर जाइए। अपने कमरे के भीतर बैठे हैं," शायद नलिन की आवाज थी।

आँधी की तरह एक अपरिचित आदमी कमरे में घुस आया। मानो दूसरा कोई उस कमरे में हो ही नहीं, वह घड़घड़ाता हुआ कान्ति बाबू के सामने जाकर संत्रस्त वाणी में बोला, "शान्ति देवी ने गंगा में डूबकर आत्महत्या कर ली गुरुजी !"

"एँ ?" एक साथ ही कई आवाजें निकलीं। एक साथ ही कई नजरें झुक गयीं। किन्तु आवाज-आवाज में अन्तर था। नजर-नजर में फर्क था।

बीस

"पूज्या माँ,

आपकी यह अभागन पुत्री आज आपसे अन्तिम विदाई माँग रही है। जबसे मैंने जन्म लिया, मेरे कारण आपको न जाने कितने कष्ट झेलने पड़े। कितनी चिन्ताओं और दुखों का शिकार होना पड़ा। किन्तु आज उन सबका अन्त आ गया है। मेरे पेट का यह भाग्यहीन बच्चा आज मेरी आँखों में भी चुभ रहा है। कितना आश्चर्य है ! पतिदेव के संक्षिप्त जीवन-काल में मैं ऐसे सुख के लिए तरसती रह गयी। ईश्वर ने मेरी कोई विनती नहीं सुनी। यह ललक मेरे मन में रह गयी कि मेरी गोद भरे। किन्तु आज न जाने यह कैसे मेरे उदर में समा गया है। यह अभागा यह भी नहीं जानता कि यदि किसी तरह यह बाहर भी आ जाये तो इसकी डायन माँ खुद अपने हाथों इसका गला टीपकर मार डालेगी। कहाँ आना चाहता है यह ? क्या इसे नहीं मालूम कि इसका बूढ़ा बाप कितना बड़ा ठग, ढोंगी और धूर्त है ? धर्मात्मा के वेश में पापात्मा है ?

"कल अरविन्द दा के साथ आपकी जो बातें हुईं, उन्हें मैं ने भी लुक-छिप कर सुन लिया था । आप ने यह क्या कर दिया माँ ? जिसे मैं ही क्यों, मन्दिर के सभी छोटे-बड़े सदस्य देवता की तरह पूजते हैं, उसी के सामने मेरे पाप की गठरी खोलने में आपको तनिक भी सकोच नहीं हुआ ? यह सब सुनकर उस पवित्र और निश्छल आत्मा को कितनी चोट पहुँची होगी ? मुझ पतिता के कारण आपकी तरह उसके मन को भी कितना आघात लगा होगा ? फिर भी बातें खुल जाने पर आज मैं अपने को बहुत हल्का महसूस कर रही हूँ । मेरा निश्चय अब इसलिए पक्का हो गया है । अब मुझे केवल माँ गंगा ही शरण दे सकती है .. अरविन्द दा मुझे कितना नीच समझ रहे होंगे ? मेरी वजह से उनके मन्दिर की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गयी । . ..... नही नहीं, मेरे सामने अब एक ही रास्ता है, एक ही मंजिल है । इस पत्र को पूरा कर लेने के बाद मैं वही जा भी रही हूँ ।

"अन्तिम समय अरविन्द दा के हित को एक बात कहे जा रही हूँ । मेरी ओर से आप उन्हें अवश्य बता देंगी । कुछ महीनों से मन्दिर का पवित्र आदर्श बड़ी बारीकी और चालाकी से कलुषित किया जा रहा है । दूसरे किसी को इसकी भनक तक नही मिलती । मन्दिर की जिन भाग्यहीन सदस्याओं के साथ इस तरह का अभद्र बर्ताव किया जाता है, उन्हें पहले कई तरह के लालच और प्रलोभन दिए जाते हैं । एक प्रलोभन यह भी होता है कि जिनके साथ रात बिताने के लिए उन्हे छूट दी जा रही है, उन्हीं के साथ उनका विवाह कर दिया जायेगा । इस तरह एक-दो बार नैतिक पतन हो जाने पर सम्बद्ध सदस्यायें भी चरित्र के मामले में ढीली पड़ती जाती हैं । जो विरोध करती है उनको जान लेने तक की धमकी दी जाती है । मुझे ही लीजिए । मैं जब मन्दिर के अहाते से निकलकर घर आने लगती थी तो प्रायः एक हँसमुख और आकर्षक नौजवान मुझे गेट पर ही मिल जाता था । मिलने पर मुझे नमस्ते करता । समाचार पूछा करता । पहले कुछ दिनों तक मैं कुछ भी प्रभावित नही हुई और न कुछ ठीक से समझी ही । पीछे मैं खुद भी उसकी ओर खिंचती चली गई । धीरे-धीरे वह मुझे रास्ते में पड़ने वाले एक सुन्दर बंगले में ले जाने लगा । जब सम्बन्ध कुछ अधिक हो गया तो वह मुझसे शादी करने का प्रस्ताव करने लगा । मेरी नासमझी ऐसी थी कि मैंने उसकी मीठी बातों पर विश्वास कर लिया । बात यहीं तक खत्म नही हुई । मेरी आँखें उस दिन खुलीं जब उसने मुझे एक ग्लास शर्बत पीने के लिए दिया । कड़वे शर्बत में पता नही क्या था, मैं पीने के थोड़ी देर बाद ही बेहोश हो गयी । कभी-कभी शिथिल चेतना के हल्के झोंक में मैं यही अनुभव

करती रही कि मेरी देह से कोई दूसरा भारी शरीर चिपका हुआ है। उसके लम्बे-लम्बे बाल मेरी नंगी छाती पर रगड़े लग रहे हैं। होश में आयी तो मेरा प्रेमी युवक मेरी बगल में बैठा मन्द-मन्द मुस्का रहा था। मुझमें उठकर बैठने की भी सामर्थ्य नहीं थी। उसने मुझे अपने हाथों उठाना चाहा। किन्तु मैं ने उसे झिड़क दिया और दो-चार अपशब्द सुनाये। इस पर उत्तेजित होकर उसने मुझे रिवाल्वर दिखाई। बोला कि यदि यह बात किसी दूसरे को मालूम हुई तो उसी से मेरा अन्त कर दिया जायेगा। मैं किसी तरह लड़खड़ाते कदमों से बँगले से बाहर होने लगी। तभी बँगले के बरामदे के एक कोने बैठा कान्तिचरण मुझे दिखायी दिया। जिसे आज तक गुरुजी कहकर पुकारती आयी थी, उस नर-पशु को देखकर मेरी देह में आग लग गयी। मैं समझ गयी, मुझे कलंकित करने में उसी का हाथ था।

'उस दिन मैं कुछ देर करके घर लौटी थी। तभी से अपनी अस्वस्थता का बहाना करके मैंने मन्दिर जाना ही छोड़ दिया। किन्तु अपने अन्दर के जीव का मुझे उस समय कोई पता नहीं था। इसे तो पिछले कुछ दिनों से ही अनुभव कर रही हूँ। जब आपने भी, बिना मेरे कुछ कहे ही, उसे लक्ष्य कर लिया तो मेरे लिए यह पतित जीवन पहाड़ हो गया। मैं अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढने लगी।

"आज इस अन्तिम समय में उस युवक का नाम भी मैं यहाँ दे सकती थी जिसने मुझे बर्बाद किया। किन्तु सोचती हूँ, मैंने कुछ दिनों तक सचमुच ही उससे प्यार किया था। अपने उसी प्यार के नाम पर मैं उसे क्षमा कर देती हूँ। उसके साथ अच्छे या बुरे का न्याय ईश्वर करेगा। किन्तु कान्तिचरण? उस दरिन्दे का पीछा मेरी विद्रोही आत्मा भी करेगी। बाद में मुझे पता चला कि मेरी तरह कुछ और दुःखी बहनों को वह बरबाद कर रहा है। अरविन्द दा की सबसे बड़ी कमी यह है कि वे जरूरत से ज्यादा सीधे हैं। किसी पर बहुत जल्दी विश्वास कर लेते हैं।

"रात गहराती जा रही है। चारों तरफ सन्नाटा है। आपके सोने की आवाज यहाँ मेरे बिस्तर तक पहुँच रही है। अपने बिस्तर पर मैं अकेली हूँ। पहले प्रीति मेरे साथ सोती थी। किन्तु जब से आपको मेरा पाप मालूम हुआ, आपने उसे मेरे पास सोने से मना कर दिया। मैं सबसे उपेक्षित अकेली रहने लगी। आज इस महायात्रा के दिन भी अकेली ही हूँ। जी चाहता है कि चलने के पहले आपके और प्रीति के बीच थोड़ी देर के लिए भी सो लूँ। प्रीति को एक बार चूम लूँ। आपके चरणों की धूल मस्तक से लगा लूँ। किन्तु इच्छा रहते हुए

भी मैं यह कुछ नही करने जा रही हूँ। अपने पापी शरीर के स्पर्श से किसी को दूषित करना मैं नही चाहती। माँ गंगा मुझे अपनी गोद मे समेट लेने के लिए व्याकुल हो रही है। मुझे देर हो रही है। अन्त मे, प्रीति को मेरा प्यार, आपको मेरा शत-शत नमन, श्यामाकान्त को शुभ स्नेह और अरविन्द दा के चरणों में मेरी श्रद्धा का एक अश्रुकण !

आपकी,
अभागन शान्ति

"पुनश्च। एक बात लिखना भूल गयी। यदि सम्भव हो तो मेरी इस अन्तिम इच्छा को पूरा करने की कृपा करेंगी। पगले श्यामू को न तो यह पत्र दिखायेंगी और न उससे मेरी आत्म-हत्या का स्पष्ट कारण ही बतायेंगी। नही तो वह मुझे कभी भी क्षमा नही कर सकेगा।"

अरविन्द ने पत्र पढ़कर फाड़ डाला। विद्या देवी का ऐसा ही आदेश था। अपनी उमड़ी आँखों को पोंछकर कुछ देर तक साँसों पर काबू करने का प्रयत्न करता रहा। उसके सामने ही आंगन में प्रीति सिसक-सिसक कर रो रही थी। विद्या देवी सिर पकड़े एक कोने में जड़वत बैठी थी। श्यामाकान्त आज सुबह से ही शान्ति का शव खोजने के चक्कर में गंगा के किनारे गया था। पुलिस उसका साथ दे रही थी। शायद किसी घाट पर भी शान्ति का लिखा कोई चिट मिल गया था जिसमें उसने अपनी आत्म-हत्या के लिए खुद को ही उत्तरदायी बताया था।

उस दिन अरविन्द करीब बारह बजे दिन में श्यामू के घर आ पाया था। आते ही विद्या देवी के चरण छुए। विद्या देवी कुछ नही बोली। केवल हाथ के इशारे से घर में रखे एक टेबुल को दिखाया। अरविन्द वहाँ गया और टेबुल पर एक खुला पत्र पड़ा देखा। विद्या देवी की गम्भीर आवाज आयी, "पढकर फाड़ देना।"

अरविन्द ने पत्र को बुकनी करके उसे रेलिंग के नीचे आंगन के कूड़े में गिरा दिया। रेलिंग के सहारे खड़ा कुछ सोच ही रहा था कि श्यामाकान्त ने प्रवेश किया। जैसे ही उसकी नजर अरविन्द पर गयी, उसने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और विचित्र ढंग से मुस्काता हुआ बोला, "तुम भी आ गये हो ?" फिर अपनी माँ की ओर देखकर बोला, "शव तो कही नही मिला माँ, मछुए जाल लगाते-लगाते थक गये।" फिर प्रीति को रोते देखकर प्यार-भरी डाँट के साथ बोला, "तू पगली इतना क्यो रोती है रे ? एक दिन तू भी गंगा मे डूब

मरना, बात खत्म हो जायेगी।" अब अरविन्द की ओर देख कर बोला, "तुम भी तो उदास ही लगते हो जी! चलो मेरे साथ नीचे। तबला सुनाकर तुम्हें खुश करूँ।"

श्यामाकान्त अरविन्द को जबरन खींचकर नीचे अपनी कोठरी में ले गया। उसे अपने बिस्तर पर बिठा दिया और स्वयं तबला-वादन की तैयारी करने लगा। बुत बना अरविन्द सोच रहा था कि इस श्यामू का दिल किस पत्थर का बना है। लगता है, इसे बहन के मरने का कोई गम ही न हो। फिर भी श्यामाकान्त के आचरण से आज, पता नहीं, कैसी करुणा छलक रही थी। स्वयं अरविन्द का मन इतना अशान्त था कि वह अभी तक श्यामाकान्त से एक शब्द भी नहीं बोल पाया था। चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह अपने मित्र को देख रहा था जो आसन लगाकर तबले के बोल ठीक कर रहा था। बोल ठीक हो जाने पर उसकी उँगलियाँ तबले पर थिरकने लगीं। आवाज से कोठरी गूँज उठी। अरविन्द को हठात् अपने सपने की याद आ गयी। जैसे वह अब भी स्वप्न के संसार में ही हो। तबले की आवाज उतनी ही कठोर और अप्रिय लग रही थी। अरविन्द का स्वप्न तब टूटा जब अचानक आवाज बन्द हो गयी। सामने श्यामाकान्त तबले पर ही अपना सिर टेके सुबक रहा था। आज तक उसे अरविन्द ने बहुत कम अवसरों पर उदास होते देखा था। वह कठिन से कठिन घड़ी में भी खुद हँसता और दूसरों को हँसाता था। आज पहली बार पत्थर को पिघला देने वाले उसके करुण रुदन को देखकर अरविन्द का कलेजा दो टूक होने लगा। किसी तरह वह श्यामाकान्त के पास पहुँचा। उसके लम्बे बालों को सहलाता हुआ बोला, "यह क्या करते हो श्यामू? रोने के लिए तो हम सब बने ही हैं। तुम्हीं इस प्रकार रोओगे तो हमें कौन संभालेगा?"

"अब किसको तबला ···· "सुनाऊँगा अरविन्द?" किसी प्रकार गले की खसखसाहट में डूबा हुआ श्यामाकान्त का स्वर सुनायी पड़ा, "घर में···· एक वही थी··········जो·········बड़े स्नेह से·········मेरा तबला ·········सुनती थी ···· ······मैं·········उसे कुछ भी·········सुख नहीं दे सका·········कुछ भी नहीं!"

इसके बाद दोनों मित्र एक दूसरे के गले लगकर उसी प्रकार फफक पड़े जैसे दो दिशाओं से आने वाली दो नदियाँ अचानक मिलकर उफन रही हों।

इक्कीस

उक्त घटना के लगभग दस-बारह दिनों के बाद।

निर्मला देवी कल ही सुबह की गाड़ी से शोभा के साथ पटना चली गयी थी। अरविन्द की श्यामाकान्त के घर रहने की व्यवस्था पूरी हो चुकी थी। शान्ति की आत्म-हत्या के दिन से ही अरविन्द केवल नाम मात्र के लिए कभी-कभार कान्ति बाबू के बंगले पर आता है। हाँ, रात में वह अभी यहीं सोता रहा है। उसी दिन से उसका यहाँ खाना-पीना भी बन्द है। कान्ति बाबू भी अब अरविन्द से बहुत कतराकर रहने लगे हैं। अरविन्द की हर गति-विधि पर अपनी नजर रखे हुए हैं। उस दिन के बाद किरण से भी अरविन्द को फिर मुलाकात नहीं हो पायी है।

इधर अरविन्द मानसिक उथल-पुथल में हो रहा है। आज तक जिनके प्रति उसको अगाध श्रद्धा रही है, विश्वास रहा है, उन्हीं के प्रति एकाएक दुर्भावना जग जाने से उसके मन पर अत्यन्त दुखदायी आघात पहुँचा है। किन्तु वह अपने को और अधिक दिनों तक छल भी नहीं सकता था। जो सत्य है, उसे किसी तरह असत्य नहीं बनाया जा सकता था। यदि शान्ति ने वैसा पत्र नहीं लिखा होता तो अरविन्द दूसरे किसी के भी कुछ कहने से कान्ति बाबू के विरुद्ध नहीं सोच सकता था। उसे विश्वास हो नहीं होता। किन्तु शांति के पत्र ने उसके मन पर से एक झटके के साथ पर्दा हटा दिया था। श्यामाकांत की जो बातें पहले उसे कड़वी लगती थीं, जिन्हें वह घृणा की दृष्टि से देखता था, वे सब आज जैसे कठोर सत्य बनकर उसके सामने प्रत्यक्ष हो गयी हैं। किंतु सत्य को पहचान करने और उस पर अमल करने का अरविन्द का अपना अलग तरीका रहा है। वह श्यामाकान्त की तरह न तो विद्रोही बन सकता है और न ही उसकी तरह बदजबान। अभी भी कांति बाबू के प्रति उसकी निष्ठा बिल्कुल लुप्त नहीं हुई है। आये दिन एक बड़े हादसे को झेलते हुए भी कहीं न कहीं अब भी कांति बाबू के लिए उसके मन में जगह है। काशी आने के बाद से लेकर अब तक उन्होंने इसके लिए जितना कुछ किया है उसे एकबारगी भुलाया नहीं जा सकता। अरविन्द की कृतघ्नता होगी यदि वह उनके उपकारों को भूल जाये। अभी कुछ दिन पहले अरविन्द के बीमारी के दिनों में कान्ति बाबू ने जिस आत्मीयता और स्नेह के

साथ उसकी तीमारदारी की और करायी, उसे क्या भूला जा सकता है ?...... कितना आश्चर्य है कि कान्ति बाबू जैसे चरित्र में एक ही साथ इतने सारे अन्तर्विरोध दिखायी पड़ें ! मानव-प्रकृति की यह कैसी विचित्रता है !

अरविन्द के मनमें उस दिन की बातें अमिट लकीर बन गयी हैं। शान्ति की आत्म-हत्या की खबर लेकर जो आदमी आया था, उसकी बातें सुनकर अरविन्द अपने को संभाल नही पाया था। वह सोफे पर ही अर्धमूच्छित की तरह लुढ़क गया था। यह चोट इतनी आकस्मिक और मार्मिक थी कि उसकी जीवनी शक्ति जैसे छिन्न-भिन्न हो गयी थी। उसी अवस्था में उसने देखा कि कान्ति बाबू उत्तेजित और आशंकित होकर उस आदमी का हाथ पकड़े अपने कमरे के बाहर दरवाजे पर चले गये थे। वहाँ से उन दोनों की फुसफुसाहट के बीच से वह केवल 'पुलिस' शब्द किसी तरह सुन सका था। इधर निर्मला देवी इतनी विचलित हो गयी थी कि कुछ देर ठगी-सी बैठी रह गयी। थोड़ी देर में जैसे वे होश में आ गयीं। अरविन्द के निकट पहुँचकर बड़े प्यार से उसके केशों को सहलाती हुई बोली थीं; "मैं तो तुमको तुम्हारे छुटपन से ही जानती हूँ बेटा ! तुम तो धीरज और सहन शक्ति के मूर्त रूप रहे हो। अभी यह किसी शान्ति का पचड़ा मेरी समझ में बिल्कुल नही आया। वह कौन थी, कैसी थी, क्यों तुमने उसके साथ अचानक शादी कर लेने का निश्चय किया और क्यों इस निश्चय के दूसरे ही दिन उसने आत्म-हत्या कर ली, मैं कुछ नही जानती। फिर भी इतना अनुभव कर रही हूँ कि तुम्हारा यह निश्चय स्वत. बड़ा पवित्र और उदार था। आज के इस अकल्पित आघात से जो तकलीफ तुम्हारे मन को पहुँची होगी, उसे भी मैं समझ रही हूँ। जो भी हो, गुरुजी को तुम्हारे साथ ऐसा सलूक नही करना चाहिए था।"

इसके बाद निर्मला देवी निश्चल पड़े अरविन्द को सहारा देती हुई उसके कमरे में सुला आयी थी। कुछ देर वहीं बैठकर वे अरविन्द को धीरज बँधाती रही थी। अरविन्द को कुछ प्रकृतिस्थ देखकर वे वहाँ से जाने के पहले बोली थीं, "कुछ देर चुपचाप लेटे रहो। चित्त ठिकाने में आ जायेगा।.... ... ... मेरा प्रस्ताव अब भी तुम्हारे सामने है। तुम सोच-समझ लो। यदि शोभा को तुम अपने योग्य समझकर अपना लो तो यह मेरा अहोभाग्य होगा। इसके लिए मैं तुम्हें जल्दी करने के लिए भी नही कहती। अभी समय चुका नही है।"

और जब इस घटना के कुछ दिनों बाद सचमुच ही अरविन्द का चित्त कुछ ठिकाने में आया तो एक दिन बात ही बात में उसने श्यामाकान्त से कहा, "मुझे अफसोस है श्यामू, मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास नही कर पाता था। मन्दिर में

सचमुच मेरे अनजाने कुछ ऐसी बातें हो रही हैं जो हम सबके लिए चिन्ता के विषय हैं। अब तो ऐसा लगता है कि मैं खुद मन्दिर से अपना सम्बन्ध तोड़ लूँ। काशी छोड़कर कही दूसरी जगह चला जाऊँ। अभी के माहौल मे मेरे जैसे आदमी के लिए वहाँ काम करना कठिन जान पड़ता है।"

श्यामाकान्त अरविन्द की बातें सुनकर कुछ गम्भीर पड़ गया। शान्ति की आत्म-हत्या के दिन से ही वह अस्वाभाविक रूप से खोया-खोया-सा रहने लगा था। कुछ सोचकर बोला, "मुझे खुशी है दोस्त, कि तुम भी मेरी ही तरह महसूस करने लगे हो। कान्ति बाबू के खून में ही कही कोई दोष है। उनका अपने घर से वैराग्य ले लेना कोई अर्थ नही रखता। मैं उन्हे अच्छी तरह समझ चुका हूँ। लगता है, उनके प्रति तुम्हारे विश्वास की चट्टान भी कही न कही दरक गई है। तुम्हारे इस नये अहसास का कारण क्या है, यह मैं नहीं जानता। न जानना चाहता हूँ। सम्भव है, इसका सम्बन्ध शान्ति की आत्महत्या से हो। मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि शान्ति ने शायद मन्दिर के चलते ही आत्महत्या की है। इस आत्महत्या के साथ मैं कोई पारिवारिक कारण नहीं देखता। मुझे तो कोई ठीक से बताता भी नहीं है।"

"तो अब बताओ कि अभी की स्थिति में क्या किया जाये? क्या मै काशी छोड़कर चला जाऊँ?"

"देखो अरविन्द, बुजदिली मैं पसन्द नहीं करता। मैं तो अन्याय के विरुद्ध प्रत्यक्ष संघर्ष करने वाला आदमी हूँ। यदि तुम अभी मन्दिर से सम्बन्ध तोड़कर कही चले जाते हो तो यह तुम्हारी कायरताकही जायेगी। इतना ही नही, ऐसा करने से मन्दिर के किसी भी कलंक की जिम्मेदारी आसानी से तुम पर थोप दी जायेगी। इसलिए सबसे पहले तो तुम्हे जल्दी से जल्दी डेरा बदल लेना है। वहाँ रहकर तुम कुछ नही कर पाओगे।"

"डेरा बदल लेने से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा?"

"यह तो तुम्हे बाद में पता चलेगा। कुछ न कुछ रास्ता तो निकालना ही होगा। मन्दिर को चन्द गुण्डो के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता.........अच्छा, यह तो बताओ कि हमलोग इस संघर्ष के लिए कुछ रुपये इकट्ठा कर पायेंगे?"

"कितने रुपये? और किसलिए?"

पैंतालीस हजार रुपये! लगभग गुरुजी की इतनी ही पूँजी मन्दिर में लगी हुई है। मूल भवन मेरा है। किन्तु उसके इर्द गिर्द जो नये भवन बने हैं उनमें तथा कुछ दूसरे मदों में गुरुजी की इतनी ही पूँजी लगी है।"

"पैंतालीस हजार रुपये ? किन्तु इतनी बड़ी धन-राशि को इकट्ठा करने से होगा क्या ?"

"देखो भाई, कांति बाबू जैसे लोग पैसे वाले तो होते हैं, किन्तु पैसे के बड़े लोभी भी होते हैं। अपने स्वार्थ के बाहर एक पैसा तक खर्च करना उनके लिए कठिन होता है। वे प्रायः दो ही जगह अपना पैसा लगाते हैं—एक तो वहाँ जहाँ समाज का शोषण करके भी अधिक से अधिक काला धन कमाया जा सके। दूसरे वहाँ जहाँ पैसे से ईमान, धर्म या इज्जत आसानी से खरीदा जा सके। कान्ति बाबू का पैसा इस दूसरी कोटि का है।"

"मेरे सवाल का अभी पूरा जवाब तुम नहीं दे पाये।"

"तो सुनो। काशी में ही रहकर तुम अपना सम्बन्ध कुछ समय के लिए मन्दिर से तोड़ लो। जैसे ही तुम सीन से हट जाओगे, कान्ति बाबू को बेनकाब होते देर नहीं लगेगी। वैसी स्थिति में वे खुद मन्दिर से भागना चाहेंगे। किन्तु अपने पैसे का लोभ उन्हें रोकेगा। यही मौका होगा कि उनका पैसा किसी तरह उन्हें लौटा दिया जाये। इस पैसे के नहीं मिलने पर वे कब किसपर कैसी चोट करेंगे, यह कहना मुश्किल है।"

श्यामाकान्त की सभी बातों से सन्तुष्ट न होते हुए भी अरविन्द ने ले-दे कर उसकी योजना पसन्द कर ली। उसने एक बार उँगलियों से अपने ललाट का स्पर्श किया और विचार की मुद्रा में बोला, "तुम्हारा मतलब शायद यह है कि मैं कुछ दिनों के लिए अपने मित्रों के साथ मन्दिर के कार्यों से अपना हाथ खींच लूँ। इससे कांति बाबू की खामियाँ धीरे-धीरे खुलती जायेंगी। जनमत उनके विरुद्ध होता जायेगा। पीछे शायद वे खुद मन्दिर से सम्बन्ध तोड़ना चाहें। किन्तु उन्हें अपने पैसे का मोह खींचेगा और इसके लिए वे मन्दिर के अस्तित्व को ही खतरे में डालना चाहेंगे। इसलिए इस मौके पर हो किसी तरह उनके पैसे वापस करके मन्दिर को उनसे बचाया जा सकता है।"

"तुम्हारा सोचना बिल्कुल ठीक है," श्यामाकान्त सूत्र रूप में अपनी योजना की बातें सुनकर खुश होता हुआ बोला, "तो पैसे संग्रह करने के लिए लगाओ अपना दिमाग।"

इस बातचीत के बाद पैसे के लिए अरविन्द बड़ी चिन्ता में पड़ गया। वह जानता था कि पैसे अच्छे या बुरे नहीं होते, उनका व्यवहार ही अच्छा या बुरा होता है। वह हर अच्छी या बुरी परिस्थिति के लिए अपने को तैयार रखना चाहता था। सम्भव है, पैसे की जरूरत नहीं भी पड़े और नहीं कांति बाबू से कोई बड़ा

संघर्ष ही मोल लेना पड़े।"" " पैंतालीस हजार रुपये का प्रश्न उसके दिमाग को धीरे-धीरे चाटने लगा। वह खुद तो अभी एक पैसा भी नहीं कमाता। अभी की स्थिति मे चन्दा भी किस नाम पर उगाहा जायेगा। दो-चार हजार की बात रहती तो कोई उपाय किया जा सकता था। बहुत माथापच्चो करने पर उसे निर्मला देवी के प्रस्ताव की याद आयी। उन्हें वह अच्छी तरह जानता है। काफी धनाढ्य महिला हैं। प्रकृति से उदार और आदर्शवादी भी हैं। यदि वह शोभा से शादी करने को तैयार हो जाये तो एक ही जगह से इतने पैसे जुटाये जा सकते हैं। रही किरण की बात। अभी की स्थिति में किरण को चाहकर भी अपना लेना कठिन ही नहीं, असम्भव है। यदि अरविन्द किरण से अभी विवाह कर भी ले तो उससे उठने वाले बवालों से होड़ लेने में ही उसकी सारी शक्ति खर्च हो जायेगी। वह दूसरा कोई सर्जनात्मक काम नहीं कर पायेगा। फिर, किरण से शादी कर के अरविन्द केवल एक दुखी विधवा का ही कुछ कल्याण कर सकता है। यदि शोभा से वह शादी कर ले तो इस रिश्ते से एक ही साथ समाज की बहुत-सी पतिताओं, विधवाओं और अनाथों की भलाई कर सकता है। इस निश्चय से उसे हँसी भी आई। पहले उसने शान्ति देवी से विवाह करना चाहा, क्योंकि यह उसकी विवशता थी। तो क्या शोभा से वैवाहिक सम्बन्ध कर लेने में उसकी दूसरी विवशता नहीं है? क्या वह सचमुच अभी शादी करना चाहता है? और वह भी शोभा से? नहीं, वह तो पैंतालीस हजार रुपये से शादी करेगा। किन्तु यह तो शोभा के प्रति सरासर अन्याय करना होगा। उसके माथे पर यह कलंक का धब्बा हो जायेगा।.... .. यदि सचमुच ही अरविन्द शोभा को पसन्द करके उससे शादी कर ले, तब भी बात नहीं बनती। शोभा जैसी अप-टू-डेट तथा हर तरह से सम्पन्न लड़की के साथ अरविन्द का कहीं भी कोई योग नहीं बैठता।

निर्मला देवी के पटना प्रस्थान करने के एक दिन पहले अरविन्द ने जीतन से खबर करके निर्मला देवी को अपने कमरे में बुलाया था। उस समय कांति बाबू बँगले पर नहीं थे। उनके आते ही अरविंद बोला था, "माँ जी, आपके साथ मेरे सम्बंध का बीज बहुत पुराना है। बचपन में आपको ठीक से पहचान नहीं पाया था। किंतु इधर जब से आप काशी आई हैं, आपके प्रगतिशील विचारों ने मेरे मन पर गहरी छाप छोड़ी है। उस दिन सबके सामने जो प्रस्ताव आपने रखा था, उस दिन के माहोल में मैं उसपर किसी भी तरह अपनी सहमति नहीं दे सकता था। किंतु आज आपका विचार मुझे पसंद है। तब भी एक शंका है।"

"जीते रहो बेटा," निर्मला देवी गद्-गद् कण्ठ से बोलीं, "तुमने मुझ बुढ़िया को कृतार्थ कर दिया। मैं तो कल ही पटना जा रही हूँ। सुबह छह बजे की गाड़ी से। यदि तुम्हें समय मिल सके तो... .."

"हाँ माँजी, मैं आपको स्टेशन छोड़ने जरूर चलूँगा," अरविन्द बीच में ही बोला और फिर कुछ याद करके अपनी बात जारी रखी, "आप तो शायद जानती है, मैं इस वर्ष एम० ए० की परीक्षा में बैठने जा रहा हूँ। परीक्षा की तैयारी किसी तरह पूरी कर ली है। इम्तहान होने में लगभग दो महीने की देर है। मेरा खयाल है, शादी की तिथि मेरी परीक्षा के बाद ही निश्चित की जाये। इससे मुझे सुविधा होगी। दूसरी बात, कई व्यक्तिगत कारणों से मैं अपने विषय में कोई भी सूचना अपने घर वालों को नहीं देना चाहता। विवाह के समय किसी प्रकार का तड़क-भड़क न हो तो अच्छा। मैं बनारस से अकेले ही आऊँगा और सीधे आपके बंगले पर ही पहुँच जाऊँगा। आशा है, इससे आपको कोई असुविधा नहीं होगी।"

"नहीं तो," निर्मला देवी झट से बोलीं, "तुम्हारी हर सुविधा का ख्याल करूँगी। पटना जाने पर शादी की तारीख निश्चित करके तुम्हें सूचित कर दूँगी। शादी में बेमतलब का तड़क-भड़क खुद मुझे भी पसन्द नहीं।"

दोनों अपने-अपने विचारों में खोये कुछ देर तक चुप हो गये। निर्मला देवी ने ही मौन भंग किया, "तुम तो शायद कहीं दूसरी जगह डेरा ठीक कर रहे हो। मेरे ख्याल से भी यह अच्छा रहेगा। इधर कुछ दिनों से कान्ति बाबू का रवैया मुझे ठीक नहीं लग रहा है। उस दिन वे तुम पर अकारण उबल पड़े थे। मुझे तनिक नहीं सुहाया।"

"होता ही है माँजी," अरविन्द फीकी हँसी हँसकर बोला, "एक जगह रहने पर कभी-कभार ऐसा हो जाना असम्भव नहीं। मैं तो अब भी यहाँ रह सकता था। किन्तु अभी की स्थिति में यहाँ रहकर मैं अपनी जिम्मेदारी शायद पूरी नहीं कर पाऊँ। डेरा बदलने के पीछे मुख्य बात यही है।"

पता नहीं कैसे, ठीक उसी समय अरविन्द के मन में किरण के सम्बन्ध में जिज्ञासा जग गयी। निर्मला देवी भीतर की सब खबर रखती थीं। यही सोचकर अरविन्द ने पूछ दिया, "भाभी को इधर कई दिनों से नहीं देख रहा हूँ। अच्छी तो हैं?"

अरविन्द का प्रश्न सुनकर निर्मला देवी का चेहरा अचानक उदास हो गया। अपना आँचल ठीक करती हुई बोलीं, "किसी के विषय में कुछ नहीं कहना ही बेहतर है बेटा! मेरा ख्याल है, तुम्हें भी अब उससे नहीं मिलना चाहिए। पता

निर्मला देवी का चेहरा अरविन्द की स्वीकृति जानकर एकाएक खिल उठा। बोली, "कौन सी शंका है बेटा ? मुझसे कुछ छिपाना मत। खुलासा कहो।"

"आप मुझे किसी तरह पसन्द करती है, इसका तो मुझे पता है," अरविंद इस बार सिर झुकाकर सलज्ज स्वर मे बोला, "किन्तु शोभाजी के पास तो रूप, धन और गुण तीनों का खजाना है। उनकी तुलना में तो मैं कहीं नहीं ठहरता। बिना उनकी इच्छा जाने मैं अपनी स्वीकृति कैसे दे दूँ !"

अरविन्द की बाते सुनकर निर्मला देवी मुस्काती रही। खुश होकर बोली "बस, कुल यही शंका है न तुम्हारी ? तो सुनो, शोभा तुमसे मुझसे भी अधिक प्रभावित है। मैं उससे कई बार खोद-खोद कर पूछ चुकी हूँ। उसकी इच्छा मालूम होने पर ही मैंने बात आगे बढायी थी।"

"अब एक दूसरी बात भी है," अरविंद इस बार अत्यन्त संकोच के साथ बोला, "मैं तिलक-दहेज का घोर विरोधी हूँ। ईश्वर ने यदि मुझे रूप, गुण और धन तीनों दिए होते तो भी मैं कन्या-पक्ष से एक पैसा भी नहीं लेता। आज की अवस्था में तो मैं उसका स्वप्न भी नही देख सकता। किन्तु !"

अरविन्द का स्वर बीच में ही टूट गया। निर्मला देवी उसका आशय समझ कर तुरन्त बोलीं, "तुमसे अपने मन की बात किन शब्दों में प्रकट करूँ अरविन्द ? तुम इतना समझ लो कि मेरे लिए तुममें और शोभा मे कोई फर्क नही रहेगा। दूसरा मेरा है भी कौन ? जहाँ तक रुपये-पैसे का सम्बन्ध है, शोभा के पिताजी हमारे लिए काफी कुछ छोड़ गये है। घर की स्थायी सम्पत्ति भी कम नहीं है। यह सब तुम्हारा ही तो होगा।"

"किन्तु मुझे तो एक मुश्त पैंतालीस हजार की जरूरत है मां ! अपने लिए नहीं, जिन लोगों में मेरे प्राण बसते है, उनके लिए। सम्भव है, पैसे की जरूरत न भी पड़े। किन्तु पड़ भी सकती है।"

अरविन्द बड़ी कठिनाई से अपनी बात कह सका। कह लेने के बाद अपने अन्तर्मन में स्वयं अपराधी-सा महसूस करने लगा। उधर निर्मला देवी बिना किसी हिचक के बोलीं, "तुम तो ऐसे बोल रहे हो जैसे कोई गैर बोल रहा हो। शादी के बाद शोभा की जिम्मेदारी तुम पर आ जायेगी। उसकी चिन्ता तुम्हें करनी होगी। रुपये तो तुम्हारे ही रहेंगे। जैसे चाहोगे, खर्च कर सकते हो। तुम्हारे चरित्र पर मुझे काफी भरोसा है। इससे ज्यादा क्या कहूँ।"

"मैं आपका आभारी हूँ मां," अरविन्द मन ही मन प्रसन्न होकर संकोच के साथ बोला, "प्रस्ताव मुझे स्वीकार है।"

"जीते रहो बेटा," निर्मला देवी गद्-गद् कण्ठ से बोली, "तुमने मुझ बुढ़िया को कृतार्थ कर दिया। मैं तो कल ही पटना जा रही हूँ। सुबह छह बजे की गाड़ी से। यदि तुम्हें समय मिल सके तो... ."

"हाँ माँजी, मैं आपको स्टेशन छोड़ने जरूर चलूंगा," अरविन्द बीच में ही बोला और फिर कुछ याद करके अपनी बात जारी रखी, "आप तो शायद जानती हैं, मैं इस वर्ष एम० ए० की परीक्षा में बैठने जा रहा हूँ। परीक्षा की तैयारी किसी तरह पूरी कर ली है। इम्तहान होने में लगभग दो महीने की देर है। मेरा ख्याल है, शादी की तिथि मेरी परीक्षा के बाद ही निश्चित की जाये। इसमें मुझे सुविधा होगी। दूसरी बात, कई व्यक्तिगत कारणों से मैं अपने विषय में कोई भी सूचना अपने घर वालों को नहीं देना चाहता। विवाह के समय किसी प्रकार का तड़क-भड़क न हो तो अच्छा। मैं बनारस से अकेले ही आऊँगा और सीधे आपके बंगले पर ही पहुँच जाऊँगा। आशा है, इससे आपको कोई असुविधा नहीं होगी।"

"नहीं तो," निर्मला देवी झट से बोली, "तुम्हारी हर सुविधा का ख्याल करूँगी। पटना जाने पर शादी की तारीख निश्चित करके तुम्हें सूचित कर दूँगी। शादी में बेमतलब का तड़क-भड़क खुद मुझे भी पसन्द नहीं।"

दोनों अपने-अपने विचारों में खोये कुछ देर तक चुप हो गये। निर्मला देवी ने ही मौन भंग किया, "तुम तो शायद कहीं दूसरी जगह डेरा ठीक कर रहे हो। मेरे ख्याल से भी यह अच्छा रहेगा। इधर कुछ दिनों से कान्ति बाबू का रवैया मुझे ठीक नहीं लग रहा है। उस दिन वे तुम पर अकारण उबल पड़े थे। मुझे तनिक नहीं सुहाया।"

"होता ही है माँजी," अरविन्द फीकी हँसी हँसकर बोला, "एक जगह रहने पर कभी-कभार ऐसा हो जाना असम्भव नहीं। मैं तो अब भी यहाँ रह सकता था। किन्तु अभी की स्थिति में यहाँ रहकर मैं अपनी जिम्मेदारी शायद पूरी नहीं कर पाऊँ। डेरा बदलने के पीछे मुख्य बात यही है।"

पता नहीं कैसे, ठीक उसी समय अरविन्द के मन में किरण के सम्बन्ध में जिज्ञासा जग गयी। निर्मला देवी भीतर की सब खबर रखती थीं। यही सोचकर अरविन्द ने पूछ दिया, "भाभी को इधर कई दिनों से नहीं देख रहा हूँ। अच्छी तो है?"

अरविन्द का प्रश्न सुनकर निर्मला देवी का चेहरा अचानक उदास हो गया। अपना आँचल ठीक करती हुई बोलीं, "किसी के विषय में कुछ नहीं कहना ही बेहतर है बेटा! मेरा ख्याल है, तुम्हें भी अब उससे नहीं मिलना चाहिए। पता

नहीं, गुरुजी के रुख में एकाएक यह कैसा परिवर्तन आ गया है। किरण पर पाबन्दी लगा दी गई है। वह तुमसे या तुम्हारे किसी दोस्त से नहीं मिल सकती। इसमें अन्दरूनी बात क्या है, मैं नहीं जानती। इतना होने पर भी किरण को मैंने उदास होते नहीं देखा है। न जाने किस धातु की बनी है। पटना भी नहीं जाना चाहती।"

अरविन्द चुपचाप सुनता रहा। उसकी नजरों में विचित्र सा खोयापन तिरने लगा था। सुख या दुख का कोई भी भाव उसके चेहरे से प्रकट नहीं हो रहा था। कुछ क्षणों में विषय बदलकर बोला, "आप तो इधर मन्दिर नहीं गई होंगी ?"

"कल ही तो गई थी, गुरुजी के साथ," निर्मला देवी इस नये विषय पर आकर कुछ हल्कापन महसूस करती हुई बोलीं। "किन्तु कल मैंने वहाँ एक विचित्र-सी बात देखी थी।"

"कौन-सी बात ?" अरविन्द ने अचरज से पूछा।

"जिस समय हम दोनों वहाँ पहुँचे, गुरुजी आफिस के काम में उलझ गये। मैं खुद घूमती-घामती लड़कियों के आवास की ओर बढ़ गयी। वहाँ देखा कि मन्दिर में अभी कुछ दिन पहले ही आयी हुई एक लड़की को घेरकर दूसरी कई लड़कियाँ खड़ी थीं। वह लड़की रो रही थी। दूसरी लड़कियाँ उसे धीरज बँधा रही थीं। जब मैंने उसके रोने का कारण पूछा तो पता लगा कि वह अभी नई-नई ही आयी है। अतः यहाँ मन नहीं लग रहा है। किन्तु वह जिस प्रकार रोती जा रही थी, उसका समाधान लड़कियों के इस उत्तर से मैं नहीं कर पायी। लगा जैसे उस पर कोई भारी विपत्ति आई हो।"

"लड़कियों का कहना ही ठीक था," अरविन्द अपने मन के किसी कोने में अंकुराते सन्देह को जबरन दबाता हुआ बोला, "अपने घर-द्वार छोड़कर जो लड़कियाँ यहाँ आती हैं, उन्हें कुछ दिनों तक मन्दिर का परिवेश अच्छा नहीं लगता।"

कल अरविन्द निर्मला देवी को छोड़ने स्टेशन गया। एक ही कार में सभी लोग बैठ गये। कान्ति बाबू स्वयं निर्मला देवी के साथ ड्राइवर की बगल में अगली सीट पर बैठे। पीछे शोभा बैठी थी। अरविन्द को झिझकते देखकर निर्मला देवी ने कहा, "तुम पीछे ही बैठ जाओ बेटा।"

पीछे बैठने के सिवा अरविन्द के लिए कोई दूसरा उपाय रह नहीं गया था। गाड़ी आगे बढ़ चली। अरविन्द की बगल में शोभा लजाई-लजाई-सी बैठी थी। दोनों के मन में कहने-सुनने को बहुत-सी बातें थीं। किन्तु रास्ते भर संकोच के

कारण दोनों की जबान खुल नहीं पायी। धीरे-धीरे स्टेशन नजदीक आता गया। अरविन्द का दाहिना हाथ शोभा की ओर सीट के गद्दे पर टिका था। अपनी उँगलियों में किसी हल्के स्पर्श से अरविन्द की तन्द्रा जैसे भंग हो गयी। उसने मुड़कर देखा, शोभा उसके हाथ में एक तह किया हुआ कागज दे रही है। स्वयं शोभा सलज्ज मुद्रा में मन्द-मन्द मुस्काती हुई अपने सामने देख रही है। जैसे अपने हाथ की करामात से वह स्वयं भी अनभिज्ञ हो। अरविन्द ने झट से कागज अपने हाथ में ले लिया था। शोभा के उस हल्के कर-स्पर्श ने ही उसकी नसों में झिनझिनी पैदा कर दी थी। जब तक अरविन्द मुड़े हुए कागज को अपने कुर्ते की जेब में रखता, गाड़ी स्टेशन पर आकर खड़ी हो गयी। जीतन सामान उतारने लगा।

'पटना जाने वाली गाड़ी लगी हुई है,'' कान्ति बाबू अरविन्द की ओर देख कर सहज स्वर में ही बोले थे, "हम लोग ठीक समय पर आ गये।"

सबके उतर जाने पर कुलियों के सिर पर सामान चढ़ा दिये गये और उन्हीं के साथ सभी लोग प्लेटफार्म की ओर बढ़ चले। कांति बाबू और जीतन कुलियों का पीछा करते कुछ आगे बढ़ गये। निर्मला देवी अरविंद और शोभा के साथ जान-बूझ कर कुछ धीमी गति से चल रही थीं। मौका पाकर अरविंद से बोलीं, "मैं तो अब जा रही हूँ बेटा, किंतु कोई भी जरूरत पड़े, मुझे जरूर याद करना। तुम्हें अब से कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।"

अरविंद के किसी उत्तर का इन्तजार किए बिना वे अब शोभा की ओर देख कर बोलीं, "शोभा को तो मैंने तुम्हें सौंप ही दिया है। केवल शादी की रस्म-अदायगी भर बाकी रह गयी है।"

प्लेटफार्म पर लोगों की भीड़ इधर से उधर दौड़ती धक्कम-धुक्की कर रही थी। चारों ओर मक्खियों की भनभनाहट की तरह आवाज गूँज रही थी। निर्मला देवी प्रथम श्रेणी के डब्बे के सामने आकर खड़ी हो गयी। सामान चढ़ाये जा चुके थे। कांति बाबू जीतन के साथ नीचे खड़े थे। निर्मला देवी ने पहले शोभा को डब्बे में चढ़ा दिया और खुद कांति बाबू के सामने जाकर बोलीं, "आपकी कृपा और उदारता को कभी नहीं भूलूँगी। आपकी मदद न होती तो इतनी आसानी से मेरी समस्या हल नहीं हो पाती। शादी में आपको तथा किरण को आना है, इसे याद रखेंगे। मैं निमन्त्रण तो भेजूँगी ही।"

"यह भी कहने की बात है?" कांति बाबू की शुभ्र दाढ़ी और मूँछ के बीच उजले दाँत चमक गये। मुस्काते-मुस्काते ही बोले, "जिसे अब तक अपने बेटे की तरह मानता आया हूँ, उसी की शादी में भला मैं कैसे नहीं आऊँगा?"

कांति बाबू ने अपना कहना समाप्त कर उसी तरह मुस्काते हुए एक बार अरविंद की ओर देखा। अरविंद को उनकी मुस्कान न जाने क्यों भद्दी-सी लगी। उसने अपना सिर झुका लिया। गाडी ने सीटी दी। निर्मला देवी भीतर दरवाजे के सामने खडी हो गयी थीं। नीचे खडे अरविंद ने उनका चरण-स्पर्श किया। गाडी खुलते ही अरविंद ने खिड़की के सामने शोभा को अपनी ओर सलज्ज भाव से हाथ जोडे हुए देखा। शोभा की तरल आँखों में विदाई का करुण भाव चुमचुमाता हुआ जान पड़ा। अरविंद ने भी उसकी ओर अपने हाथ जोड लिए।

गाडी सिगनल पार कर गयी। अरविंद ने उधर से दृष्टि मोडकर प्लेट-फार्म के दूसरी ओर देखा। उसमे कुछ ही दूरी पर खडे कांति बाबू शायद उसी की इन्तजारी कर रहे थे। उसके साथ दृष्टि मिलते ही पूछा, "घर चलोगे अरविंद ?"

"जी हाँ, चलना तो उधर ही है," अरविंद एकाएक समझ नहीं पाया कि क्या जवाब दें, "किन्तु घर नहीं जाऊँगा।"

"तो ठीक है। कुछ दूर साथ चलो। रास्ते में छोड दूँगा।"

अरविंद ने समझ लिया कि कांति बाबू उसके साथ चलना चाहते थे। अपनी इच्छा न रहने पर भी वह उनके पीछे हो लिया। बाहर आने पर दोनों फिर उसी कार में बैठ गये। कांति बाबू ने ड्राइवर से गाडी स्टार्ट करने के लिए कहा। जब गाडी रास्ते में कुछ दूर आगे बढी, कांति बाबू ने अरविंद की ओर देखकर अपना मौन भंग किया, "तुमने मेरी बात मान ली बेटा, इससे मुझे बडी खुशी हुई है। शोभा के साथ तुम्हारा रिश्ता बड़ा अच्छा रहेगा। यही बात यदि तुमने उस दिन मान ली होती तो मेरे मन को कोई तकलीफ नहीं हुई होती। तुमने तो एक ऐसी लड़की से रिश्ता करने को ठान लिया था जिसके कारण मन्दिर की इज्जत पर बड़ी आँच आयी है।"

अरविंद ने इस बार कुछ अचरजभरी निगाह से कांति बाबू को देखा। पूछा, "जब आपको उस लड़की के सम्बन्ध में ऐसी जानकारी थी, तो उसे मन्दिर में रखा ही क्यों ?

कांति बाबू ने इतना कहकर एक बार फिर अरविन्द की आँखों में देखा। मानो वहाँ अपने कथन की कोई प्रतिक्रिया खोज रहे हों। अरविन्द के चेहरे पर अब तक आश्चर्य के रंग में डूबा हुआ व्यंग्य खेल रहा था। कुछ बोलने को सोच ही रहा था कि कांति बाबू की आवाज फिर सुनाई पड़ी, "मैंने तुम्हें अपने लड़के की तरह पाला-पोसा। तुम पर इतना विश्वास किया। मुझे क्या पता था कि मेरे स्नेह का तुम ऐसा बदला दोगे।"

"बदला ? कैसा बदला ?" अरविन्द के स्वर में आक्रोश उभर आया।

"मैं तुम्हारी चालाकी समझता हूँ अरविन्द," कान्ति बाबू के होठों से घिनौनी मुस्कान फूट पड़ी, "पहले नहीं समझता था, किंतु अब तो समझना ही पड़ा है। ...फिर भी अब तक तुम मेरी ही वजह से बचे हुए हो।"

"क्या मतलब है आपका ?"

"मतलब साफ है," कान्ति बाबू अरविन्द के विस्मय का आनन्द लेते हुए बोले, "शान्ति तुम्हारे दोस्त की बहन थी। उसके साथ तुम्हारा अनैतिक सम्बन्ध हो गया था। जब उस सम्बन्ध का पाप खुलने पर आया तो दूसरा कोई रास्ता न देख तुम उसके साथ शादी करने के लिए तैयार हो गये। किन्तु वह बेचारी असहाय विधवा फिर तुम्हारे धोखे में नहीं पड़ना चाहती थी। उसे विवश होकर आत्महत्या करनी पड़ी।"

"गुरु जी ?" अरविन्द के मन में छिपी घृणा मानो विस्फोट बनकर केवल एक ही शब्द में बाहर आ गई।

"घबड़ाओ मत," कान्ति बाबू अरविन्द की उत्तेजना को और भी भड़काते हुए पैंतराबाजी के साथ बोले, "पुलिस अभी भी शान्ति की आत्महत्या की छानबीन कर रही है। तुम मेरे परिवार के हो, यही सोच कर अभी तक उसका ध्यान तुम्हारी तरफ नहीं गया है। निर्मला देवी को भी अभी इसकी कोई भनक नहीं मिली है। यदि मिलती तो उनकी जैसी प्रतिष्ठित महिला अपनी इकलौती पुत्री को तुम्हें सौंपने के लिए सोच भी नहीं सकती थी।..... सुना है, तुम डेरा बदलने जा रहे हो। बदलो, यदि तुम्हारी यही इच्छा है। किंतु तुम्हारा श्यामाकान्त के घर रहना मैं कतई बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि इज्जत-पानी के साथ काशी में रहना चाहते हो तो दूसरी किसी भी जगह रहो। मुझे एतराज नहीं होगा। किन्तु श्यामाकान्त मेरा और मन्दिर का दुश्मन है। यह याद रखना।"

अब तक घृणा और क्रोध के अदम्य आवेश में अरविन्द का चेहरा विकृत हो चुका था। कान्ति बाबू की बातें सुनकर उत्तेजना से उसके हाथ-पैर काँपने लगे

थे। मुट्ठियाँ कस गयी थीं। अपने को किसी तरह नियंत्रण में रखकर काँपते स्वर में बोला, "क्या यही सब सुनाने के लिए आप मुझे अपने साथ बुला लाये हैं? पाप मैंने किया है या किसी दूसरे ने, यह तो समय बता देगा। किन्तु तब तक के लिए इनसानियत के नाम पर कम से कम चुप तो रहिए।"

अरविन्द ने कान्ति बाबू के किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उबलते भावावेश में ड्राइवर को गाड़ी रोक देने के लिए कहा। गाड़ी सड़क के किनारे रोक दी गयी। अरविन्द कान्ति बाबू की ओर बिना देखे फाटक खोलकर बाहर निकल आया और फिर फाटक को बन्द कर दिया। गाड़ी कान्ति बाबू को लिये आगे बढ़ गयी। इधर अरविन्द के पाँव मानो धरती पर थे ही नहीं। वह कहाँ खड़ा था, उसके आस पास कौन लोग आ-जा रहे थे, कुछ क्षणों तक इसका कोई बोध उसे नहीं हुआ। कान्ति बाबू की बातें किसी अभिशप्त आकाशवाणी की तरह उसके मन के गलियारों में गूँजती जा रही थीं।

और आज सन्ध्या समय अरविन्द इस घर से अन्तिम विदाई लेने आ पहुँचा है। कान्ति बाबू का कोई अता-पता नहीं। अब तक लगभग दो घण्टों से अपने कमरे में अकेला बैठा वह उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा है। सन्ध्या ढलने से पहले ही वह यहाँ से अपने सामान के साथ निकल जाना चाहता है। किन्तु जाने से पहले कमरे का हिसाब-किताब कान्ति बाबू को समझा देना चाहता है। उसकी चाबी उन्हीं को सौंप देना चाहता है। वह जब से यहाँ आया है, घर के भीतर और बाहर एक अजीब-सी मुर्दनी चुप्पी छायी हुई है। भीतर से घर का दरवाजा बन्द है। कोई आवाज कहीं से नहीं आती। न तो कमला दिखाई दे रही है, न नलिन, न किरण। अरविन्द के सिर में आज दोपहर से ही हल्का-हल्का दर्द शुरू हुआ था। दर्द लगातार बढ़ता जा रहा है। अबतक उसने अपनी पुस्तकों का एक बड़ा-सा गट्ठर बाँध कर तैयार कर लिया है। बिस्तर आदि दूसरे सामान वह यहाँ से नहीं ले जाना चाहता। ये सभी यहीं के हैं। पता नहीं कैसे अपने कुर्ते की जेब में उसका हाथ अचानक पहुँच गया। वहाँ से उसने एक मुड़ा हुआ कागज बाहर निकाला। उलट-पुलट कर देखा, कहीं कुछ लिखा नहीं था। तभी उसे याद आया कि कल गाड़ी में साथ चलते समय शोभा ने उसके हाथ में यही कागज थमा दिया था। मन अशान्त रहने के कारण उसे अब तक उसे देखने की याद नहीं रही थी। जब कागज को उसने फड़काकर सीधा किया तो उसमें उसे एक छोटा-सा पत्र पड़ा मिला। पत्र बेडौल अक्षरों में पेंसिल से लिखा था। बड़ी मुश्किल से पढ़ा जा सका—

"..... .. ..,

आप तो ऐसे बैठे हैं जैसे मैं खुद पुरुष और आप मेरी नवोढ़ा पत्नी हों। बुरा न मानेंगे। आपकी तकलीफ मैं जानती हूँ। धीरज से काम लेंगे। दुखिया किरण दी पर ख्याल रखेंगे।

...शोभा"

अरविन्द को सब कुछ स्पष्ट हो गया। शोभा ने जरूर ही यह चिट्ठी चलती गाडी में ही लिखी होगी। उस समय अरविन्द लज्जावश उसकी ओर ताक भी तो नहीं रहा था। पत्र में व्यक्त शोभा के सौमनस्य ने अभी की उद्विग्नता में अरविन्द को बड़ा सहारा दिया। तभी उसे कान्ति बाबू की धमकी की स्मृति हो आयी। अब तो कुछ दिनों में निर्मला देवी को पता हो ही जायेगा कि खुद अरविन्द शान्ति का हत्यारा है। फिर कहाँ की शादी, कहाँ का सम्बन्ध! एक तरह से यह अच्छा ही हुआ। अब वह बडी आसानी से विवाह के झमेले से बच जायेगा।

एकाएक सिर का दर्द काफी तेज हो गया। अरविन्द ने दोनों हाथों से अपना सिर थाम लिया। अब साँझ होने ही वाली थी। यहाँ अधिक देर बैठे रहना फिजूल समझ कर वह उसी हालत में किसी तरह उठ खड़ा हुआ। पुस्तकों का बण्डल हाथ में टाँगे कमरे से बाहर आया। कमरे में ताला बन्द किया। इसके बाद गट्ठर लिए बँगले के दरवाजे पर खडा हो गया और दस्तक देने लगा। देर तक कुण्डी खटखटाने पर भी भीतर से कोई आवाज नहीं आयी। तब उसने बड़ी मुश्किल से पुकारा, "कमला! कमला!!"

आवाज करने से सिर-दर्द और भी बढ गया। कुछ देर में अन्दर से सिट-किनी खुली और एक अपरिचित नेपाली लड़का सामने खड़ा दिखाई दिया। अरविन्द ने उसे देखकर कहा, "कमला को जरा बुला दो।"

"कमला यहाँ नहीं रहता बाबूजी," लड़का टूटी-फूटी हिन्दी में बोला, "वो चला गया। अब हम है और एक दूसरा दाई है। वो इस समय भीतर नहीं है।"

"मालकिन जी भीतर है?"

"हाँ जी, वो तो है। घर में सोया है।"

"तो ले जाओ यह चाबी, उन्हें दे देना।"

अरविन्द ने एक हाथ से अपना सिर पकड़ा और दूसरे हाथ से उस लड़के के हाथ में चाबी थमा दी। लड़का चाबी लिए भीतर चला गया। इधर अरविन्द को लगा जैसे उसका सिर दूसरे ही क्षण फट जायेगा। वह अपने को सँभाल नहीं

सका। दोनो हाथों से सिर दबाये फर्श पर ही धसक कर बैठ गया। थोड़ी देर में दर्द का दौडा कुछ मन्द पड़ा। गट्ठर हाथ में लिए वह आगे बढ़ा। फाटक तक पहुँचने के पहले उसने पीछे मुड़कर एक बार बँगले की ओर देखा। एकाएक उसकी नजर सामने दरवाजे के पर्दे के बाहर खड़ी किरण पर अटक गयी। उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह किरण को ही देख रहा है। उसका ऐसा करुण और भयानक रूप इसके पहले उसने कभी नहीं देखा था। हाँ, वह किरण ही थी। हवा में बेतरतीब उड़ते लम्बे बाल। शरीर पर बिल्कुल सफेद मोटी धोती। सूजी हुई निस्तेज आँखें। चेहरे पर खुशी या गम का कोई चिह्न नहीं। मानो संगमर्मर की कोई विपन्न मूर्ति दरवाजे से टेक कर खड़ी कर दी गई हो। अरविन्द ने गट्ठर नीचे रखकर अनायास अपने दोनों हाथ उस मूर्ति की ओर जोड़ लिए। उधर वह मूर्ति इसके जवाब में न हिली-डुली, न हंसी-रोयी। एकटक अरविन्द को निहारती रही। अरविन्द अधिक देर तक उस नजर को सह नहीं सका। उसकी पलकें झुक गयीं। एक क्षण के लिए सिर-दर्द भी हवा हो गया। दूसरे ही क्षण गट्ठर हाथ में उठाकर वह आँधी की तरह फाटक के बाहर आया। बिना पीछे मुड़कर देखे बड़ी तेजी से आगे बढ चला। लगा, जैसे किरण की नजरें उसका पीछा कर रही हैं और वह उनसे अपने को मुक्त करने के लिए छटपट करता किसी तरह किसी अनजान लोक में भागा जा रहा है।

बाइस

अरविन्द को अपने नये डेरे पर आये लगभग दो महीने पूरे होने को हैं। वह जब से यहाँ आया है, उसका जीवन अन्तर्मुखी होता गया है। बाहर के सामाजिक कामो से उसने अपना हाथ खीच लिया है। रात-दिन पढ़ने और लिखने में ही जुटा रहता है। इस बीच उसकी एम० ए० परीक्षा भी समाप्त हो चुकी है। अपना खर्च चलाने के लिए उसने साठ-साठ रुपयों के दो ट्यूशन ठीक कर लिए हैं। इससे अधिक पैसे की उसे अभी जरूरत भी नहीं। श्यामाकान्त की एक पुरानी सायकिल उसके वाहन के काम आती है। खाने-पीने का सारा प्रबन्ध श्यामाकान्त के घर ही होता है। वह खुद अपने कमाये पैसे से इस परिवार के

लिए जरूरत की चीजें ला देता है। प्रीति उसकी सेवा-टहल से अघाती नहीं। विद्या देवी को अब जैसे किसी से कुछ मतलब नहीं। जब से शान्ति ने आत्महत्या की, वे जरूरत से अधिक गम्भीर हो गयी हैं। हर समय पूजा-पाठ या माला जपने में लगी रहती हैं।

अरविंद को मन्दिर गये भी अब दो महीने से अधिक हो रहे हैं। इस शांति-पूर्ण असहयोग का प्रभाव धीरे-धीरे अपना रंग दिखाने लगा है। मन्दिर की कार्यकारिणी ने अरविंद को मंत्री-पद से हटा दिया है। कार्यकारिणी में श्यामाकांत के सिवा दूसरे सदस्य कांति बाबू के ही गुट के हैं। अतः मन्त्री-पद से हटाये जाने पर अरविंद को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। इस बीच उसके सभी युवक मित्र मंदिर के कार्यों से अलग होते गये हैं। सबसे अचरज की बात तो यह है कि खुद नलिन भी अपने पिता का विरोधी हो गया है। वह अक्सर अरविंद से मिलने श्यामाकांत के घर आ जाता है। अरविंद के प्रति शुरू से ही उसकी अगाध श्रद्धा रही है। उसी से अरविंद को खबर मिली थी कि किरण को जौंडिस हो गया था। करीब एक महीने तक वह बिस्तर पकड़े रही। किरण के पिताजी को खबर मिली तो वे घबड़ाये हुए काशी आये। यहाँ कुछ दिन उसके साथ रहकर उसकी स्वयं चिकित्सा की। जब किरण का स्वास्थ्य कुछ सुधरता नजर आया तो वे उसे अपने साथ ही पटना लेते चले गये। नलिन के कहने के अनुसार किरण कुछ ही दिन पहले पटने से भी दार्जिलिंग ले जाई गई है। वहाँ वह अपने एक निकट सम्बन्धी के घर रखी गयी है। साथ में उसकी माँ भी है। अब शायद स्वास्थ्य-लाभ करने के बाद भी किरण की पढ़ाई बन्द कर दी जायेगी।

मन्दिर के विरोध में असहयोग फैलाने में श्यामाकांत का जबरदस्त हाथ रहा है। वह दिन-रात इसी के पीछे पागल रहता आया है। स्वयं अरविंद को इन बातों से कोई मतलब नहीं। कभी-कभी श्यामाकांत के कहने से ही उसे आये दिन मंदिर के विषय में होनेवाली घटनाओं की सूचना मिलती रही है। वह प्रायः ऐसे समय श्यामू को सावधान भी करता आया है कि किसी भी स्थिति में शांति भंग नहीं होनी चाहिए। श्यामू के उग्र स्वभाव से अरविंद को सदा डर बना रहता है। इधर कुछ दिनों से काशी का जागरूक जनमत कांति बाबू का विरोधी होता गया है। कांति बाबू भी चुप नहीं बैठे हैं। अरविंद तथा श्यामाकांत के विरुद्ध हवा में अनेक मनगढ़न्त बातें उन्होंने फैला रखी हैं। किंतु इसका परिणाम उनके पक्ष में नहीं जा रहा है। स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में भी कांति बाबू के विरुद्ध आलोचनायें प्रायः निकलती रहती हैं। इधर उनके विरोधी लोग मौके बेमौके अरविंद से मिलने

आते रहते हैं। जिन लोगों पर कांति बाबू बहुत विश्वास करते थे, उनमें से भी अधिकांश लोग अब तक उनका साथ छोड़ चुके हैं। असल में काशी में अरविंद के आने के पहले बहुत कम लोग कांति बाबू को जानते थे। अरविंद के कारण ही कांति बाबू का नाम स्थानीय अखबारों की सुर्खियों में आने लगा था। अब नयी स्थिति में अरविंद के दर-किनार हो जाने से कांति बाबू की स्वाभाविक कमजोरियाँ जनता की निगाह में धीरे-धीरे प्रकट होने लगी हैं।

आज शुक्रवार है। श्यामाकांत की जाज टाइमपीस में सुबह के दस बजने जा रहे हैं। परीक्षा खत्म हो जाने के बाद अरविंद को जैसे कोई काम ही नहीं रह गया है। अभी कल ही उसे निर्मलादेवी का लिखा एक पत्र मिला था। पत्र में उन्होंने अरविंद से जल्दी से जल्दी पटना आ जाने के लिए आग्रह किया है। शादी की तारीख भी उन्होंने निश्चित कर रखी है। आज से ठीक सोलहवें दिन अरविंद एक नयी जिन्दगी शुरू करेगा। कभी-कभी जैसे उसे खुद अपने पर अविश्वास होने लगता है। नयी जिन्दगी के सपने एक नई बला की तरह अभी से ही उसके मन में कड़वाहट भरने लगे हैं। बहुत चाहने पर भी वह अपने जीवन को नई परिस्थितियों के साथ अब तक समझौता नहीं कर पाया है। अपने लिए उसे जितनी चिंता नहीं, उतनी शोभा के लिए है। किंतु अब इतना आगे बढ़कर पीछे भी नहीं लौटा जा सकता। सबसे बड़ी अड़चन तो मन्दिर को लेकर है। मन्दिर की उलझनें अभी दूर नहीं हुई हैं। कोई ठीक नहीं, कब किस परिस्थिति से होड़ लेना पड़ जाये। कांति बाबू की धमकी अब भी कभी-कभार उसके कर्ण-पुटों में गूंजने लगती है। यों उसने आज तक उसका कोई जिक्र किसी से भी नहीं किया है। श्यामाकांत से भी नहीं। उसे सबसे बड़ा अचरज तो यह है कि कांतिबाबू अपने गन्दे प्रचारों में शान्ति की आत्महत्या से सम्बन्धित बातें सामने क्यों नहीं ला रहे हैं। अब तक तो उन्हें उस मामले में अरविंद को बुरी तरह उलझा देना चाहिए था। पुराने जमाने के नामी वकील हैं। झूठ को सच बना देने में उनसे अधिक माहिर और कौन होगा! किंतु अबतक उन्होंने न तो अरविंद को पुलिस के हाथों सौंपा है, न निर्मला देवी को ही इसके दुराचार के सम्बन्ध में कोई सूचना दी है। सम्भव है, वे किसी ऐसे मौके की तलाश मे हों, जब अरविंद को अचानक ही किसी गर्त में गिराया जा सके। अरविंद खुद भी ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में मानो अब तक दम साधे पड़ा है।

आज सुबह से ही अरविंद ने मॉनियर [illegible] शकुन्तला अंग्रेजी अनुवाद पढ़ना आरम्भ किया है। च[illegible]

प्रसंग उसके मन पर गहराई तक असर डाल रहे हैं। कण्व के आश्रम की प्रकृति भी शकुन्तला के वियोग की करुणा से आप्लावित हो गई है। शकुन्तला अपने पीछे तपोवन के रोते बन्धुओं को छोड़कर स्वयं हस्तिनापुर चल देती है। यहां तक आते-आते अरविंद की आँखें भी गीली हो जाती हैं। करुणा की इसी अनुभूति के क्षणों में न जाने कहाँ से किरण की करुण मूर्ति प्रकट हो जाती है। अरविंद जितना ही इस मूर्ति से अपने को बचाना चाहता है, वह उतनी ही ताकत के साथ उसके मन को झकझोरने लगती है। वह जब से श्यामाकांत के डेरे पर आया है, एक बार भी किरण को देखने नहीं जा सका। चाह कर भी वहाँ नहीं जा सकता था। वह खुद बीमार था तो किरण जी-जान लगाकर उसकी सेवा करती रही। इसके लिए न तो उसने रात को रात और न दिन को दिन समझा। किंतु यह अरविंद कितना कृतघ्न निकला! किरण इतने दिनों तक बीमार पड़ी रही; उसे देखने भी तो नहीं जा सका!

प्रीति अभी-अभी अरविंद को चाय पिला गई है। सामने टेबुल पर खाली कप पड़ा है। कमरा श्यामाकांत का ही है, किंतु अब जैसे इसका कायाकल्प हो गया है। अब न तो कहीं मकड़ों के जाले हैं और नहीं कोई बेतरतीबी। स्वयं अरविंद पहले सलीके से रहने-सहने का ढंग नहीं जानता था। किंतु अब वह मन ही मन स्वीकार करता है कि उसके जीवन की कर्मठता पर तो नहीं, किंतु व्यवस्था पर किरण के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप पड़ गयी है। चीजों को सलीके से रखने की सीख उसे किरण से ही मिली है। दोनों दोस्त एक ही कमरे में अलग-अलग बिस्तरों पर सोते और काम करते हैं।

किरण की करुण-कोमल स्मृतियों के तार बड़ी देर तक अरविंद के अन्तर्मन में बजते रहे। इसी बीच कमरे के बाहर कुछ आहट हुई। किसी के जूते की मच-मच आवाज अरविंद के कर्ण-कुहरों में धीरे-धीरे तेज होती गयी। कौन हो सकता है यह? सम्भव है, कोई पुलिस का सिपाही हो हो! अरविंद का शंकालु मन जैसे पहले से ही आने वाली विपत्ति के लिए अपने को तैयार करने लगा। ऐसे समय अक्सर अरविंद को अपने ऊपर बड़ी झुंझलाहट होती है। हर नयी आवाज पर चौंक जाने की उसकी आदत-सी बनती जा रही है। वह अपने हाथों में बेड़ियाँ पड़ने की बात सोच ही रहा था कि दरवाजे पर पोस्टमैन ने आवाज दी, "आपकी एक एक्सप्रेस चिट्ठी और एक रजिस्ट्री है हुजूर।"

"भीतर ही आ जाइये," अरविंद डाकिये की ओर देखकर बोला।

पोस्टमैन से दो लिफाफे लेकर अरविंद ने उनके नाम-पते की ओर नजर

दौड़ायी। पहले लिफाफे पर भेजने वाले का नाम पढ़कर चकित रह गया। पत्र कांति बाबू का था। अब उसने एक्सप्रेस पत्र के पते पर ध्यान दिया। यह चिट्ठी निर्मला देवी के यहाँ से आयी थी। पोस्टमैन के चले जाने पर अरविंद ने पहले अपने कमरे के दरवाजे को भीतर से बन्द कर लिया। अब इतमीनान से बिस्तर पर उठंग कर पहले उसने निर्मला देवी के पत्र को खोला। पत्र में लिखा था—

"बेटा अरविंद,

शुभ आशीर्वाद।

"पत्र बड़ी जल्दबाजी में छोड़ रही हूँ। इसके पहले की चिट्ठी तुम्हें अब तक मिल ही चुकी होगी। शादी के अब बहुत कम दिन रह गये हैं। मैंने यहाँ संक्षेप में बराती और सराती दोनों का इन्तजाम कर लिया है। निमन्त्रण भी भेजे जा चुके हैं। किंतु तुम्हारी यहाँ बड़ी जरूरत है। तुम पत्र पाते ही पटने के लिए रवाना हो जाओ। जब तक तुम आ नहीं जाते, मेरी चिन्ता बनी रहेगी।

"गुरुजी के पास भी मैंने डाक से निमन्त्रण भेज दिया है। परसों के काशी के समाचार-पत्र में कांति बाबू की कड़ी आलोचना निकली है। मैं तो उसे पढ़कर घबड़ा गई हूँ। कहीं ऐसी खबरों या आलोचनाओं के प्रकाशन के पीछे तुम्हारा हाथ तो नहीं है? गुरुजी जैसे भी हों, उनके विरोध में जाना तुम्हारे लिए ठीक नहीं होगा। किरण के श्वसुर होने के नाते वे हम सबों के निकट सम्बन्धी हैं। यह बात तुम्हें याद रखनी होगी।

"काशी से आने के बाद किरण जब तक पटने में रही तब तक उसकी सेहत में कोई न कोई गड़बड़ी होती ही रही। कुछ अच्छी हो जाने पर वह अपनी माँ के साथ दार्जिलिंग चली गयी है। मुझे अफसोस है कि शादी के समय वह उपस्थित नहीं रह सकेगी। शोभा सकुशल है। तुम्हें प्रणाम भेज रही है।

"विनोद को तो तुम जानते ही हो। काशी में तुमसे मैंने उसकी चर्चा की थी। अभी हाल में ही उसकी भी शादी हो गयी। उसने लॉ की परीक्षा पास करके पटने में ही वकालत करने का निश्चय किया है। अपनी नवोढा पत्नी को वह पटने के अपने नये डेरे में ले आया है। एक दिन पत्नी के साथ मेरे घर विजिट देने आया भी था। मेरी शोभा के साथ उसकी किसी भी तरह तुलना नहीं की जा सकती। विनोद की शादी में तो मैं स्वयं किसनपुर जा नहीं पायी। जिस समय हमलोग काशी में थे, उसी समय विवाह हो गया। विनोद का निमंत्रण मेरे बँगले पर पड़ा रह गया।

"तुम्हें इस पत्र का जवाब नहीं देना है। स्वयं जल्दी आकर मेरी चिन्ता दूर करोगे। इसी आशा के साथ,

तुम्हारी,
निर्मला।"

अरविंद ने पत्र पढ़कर एक तरफ रख दिया। अब उसने दूसरे लिफाफ को एक अजीब-सी बेचैनी और कौतूहल के साथ खोलना आरम्भ किया। पत्र खोलते समय उसकी उँगलियाँ काँपने लगीं। मन में अनेक परस्पर-विरोधी विचार आने लगे। सबसे पहले उसकी नजर पत्र के सम्बोधन पर गयी और वहीं कुछ क्षणों तक निश्चल-सी हो गयी। सम्बोधन था—'प्रिय बेटा!' अब अरविंद ने पत्र के एक-एक शब्द पर गौर करते हुए पढ़ना शुरू किया—

"मैं जानता हूँ मेरा पत्र पाकर तुम्हें अचरज होगा। अभी की स्थिति में तुम्हें पत्र लिखना अकल्पित है भी। वस्तुतः तुम जब से मेरा घर छोड़कर दूसरी जगह चले गये तभी से मैंने अपने में बड़ा परिवर्तन पाया है। लगता है, तुम्हारे साथ विरोध करके मैं धीरे-धीरे अपने भीतर निजत्व की तलाश में सक्रिय होता गया हूँ। मैंने न केवल तुम्हारे साथ अन्याय किया है, बल्कि इससे भी अधिक अपने साथ बेइन्साफी की है। तुम मुझसे छोटे हो। अतः स्वाभाविक है कि मेरी उम्र तथा अनुभव का आदमी तुम्हारे पास ऐसा कुछ लिखने में संकोच अनुभव करे। किंतु मेरे लिए अब कोई दूसरा चारा भी तो नहीं है। मैं कब तक लड़ता रहूँ खुद अपने से ही? इन दो महीनों के भीतर ही इस अन्तःसंघर्ष ने मुझे पूरी तरह तोड़ कर रख दिया है। ऐसा विपन्न तो मैं कभी नहीं था। सचमुच तुम मेरे अधूरेपन में एक सार्थक पूर्णता बनकर आये थे। अब तुम्हारे नहीं रहने पर वही अधूरापन उभर-उभर कर मेरे पूरे अस्तित्व में अपना जहरीला दंश भरता रहा है।

"किसी बात से, किसी परिस्थिति से मैंने पराजित होना नहीं सीखा है। अब तक गलत या सही जो कुछ भी रहा हूँ, वही मेरी अस्मिता रही है। यही वजह है कि इस अचानक बदलाव से एक बड़ा हादसा पहुँचा है। सही मानों में वैरागी हो जाने की भावना अब जगी है। अब तक तो मेरा वैरागीपन मुखौटा मात्र था। पारिवारिक आघातों को नहीं सह पाने के कारण मैं चला था वैरागी होने ही। किंतु दुर्भाग्यवश हो नहीं पाया।

"अब समझता हूँ, यदि तुम मेरे जीवन की सबसे बड़ी ताकत हो तो यह किरण मेरी सबसे बड़ी कमजोरी। तुम दोनों का परस्पर लगाव मुझे अच्छी तरह

दौड़ायी। पहले लिफाफे पर भेजने वाले का नाम पढ़कर चकित रह गया। पत्र कांति बाबू का था। अब उसने एक्सप्रेस पत्र के पते पर ध्यान दिया। यह चिट्ठी निर्मला देवी के यहाँ से आयी थी। पोस्टमैन के चले जाने पर अरविंद ने पहले अपने कमरे के दरवाजे को भीतर से बन्द कर लिया। अब इतमीनान से बिस्तर पर उठंग कर पहले उसने निर्मला देवी के पत्र को खोला। पत्र में लिखा था—

"बेटा अरविंद,

शुभ आशीर्वाद।

"पत्र बड़ी जल्दबाजी में छोड़ रही हूँ। इसके पहले की चिट्ठी तुम्हें अब तक मिल ही चुकी होगी। शादी के अब बहुत कम दिन रह गये हैं। मैंने यहाँ संक्षेप में बराती और सराती दोनों का इन्तजाम कर लिया है। निमन्त्रण भी भेजे जा चुके हैं। किंतु तुम्हारी यहाँ बड़ी जरूरत है। तुम पत्र पाते ही पटने के लिए रवाना हो जाओ। जब तक तुम आ नहीं जाते, मेरी चिन्ता बनी रहेगी।

"गुरुजी के पास भी मैंने डाक से निमन्त्रण भेज दिया है। परसों के काशी के समाचार-पत्र में कांति बाबू की कड़ी आलोचना निकली है। मैं तो उसे पढ़कर घबड़ा गई हूँ। कहीं ऐसी खबरों या आलोचनाओं के प्रकाशन के पीछे तुम्हारा हाथ तो नहीं है? गुरुजी जैसे भी हों, उनके विरोध में जाना तुम्हारे लिए ठीक नहीं होगा। किरण के श्वसुर होने के नाते वे हम सबों के निकट सम्बन्धी हैं। यह बात तुम्हें याद रखनी होगी।

"काशी से आने के बाद किरण जब तक पटने में रही तब तक उसकी सेहत में कोई न कोई गड़बड़ी होती ही रही। कुछ अच्छी हो जाने पर वह अपनी माँ के साथ दार्जिलिंग चली गयी है। मुझे अफसोस है कि शादी के समय वह उपस्थित नहीं रह सकेगी। शोभा सकुशल है। तुम्हें प्रणाम भेज रही है।

"विनोद को तो तुम जानते ही हो। काशी में तुमसे मैंने उसकी चर्चा की थी। अभी हाल में ही उसकी भी शादी हो गयी। उसने लॉ की परीक्षा पास करके पटने में ही वकालत करने का निश्चय किया है। अपनी नवोढ़ा पत्नी को वह पटने के अपने नये डेरे में ले आया है। एक दिन पत्नी के साथ मेरे घर विजिट देने आया भी था। मेरी शोभा के साथ उसको किसी भी तरह तुलना नहीं की जा सकती। विनोद की शादी में तो मैं स्वयं किसनपुर जा नहीं पायी। जिस समय हमलोग काशी में थे, उसी समय विवाह हो गया। विनोद का निमंत्रण मेरे बँगले पर पड़ा रह गया।

"तुम्हें इस पत्र का जवाब नहीं देना है। स्वयं जल्दी आकर मेरी चिन्ता दूर करोगे। इसी आशा के साथ,

तुम्हारी,
निर्मला।"

अरविंद ने पत्र पढ़कर एक तरफ रख दिया। अब उसने दूसरे लिफाफ को एक अजीब-सी बेचैनी और कौतूहल के साथ खोलना आरम्भ किया। पत्र खोलते समय उसकी उँगलियाँ काँपने लगी। मन में अनेक परस्पर-विरोधी विचार आने लगे। सबसे पहले उसकी नजर पत्र के सम्बोधन पर गयी और वहीं कुछ क्षणों तक गिरफ्त-सी हो गयी। सम्बोधन था—'प्रिय बेटा!' अब अरविंद ने पत्र के एक-एक शब्द पर गौर करते हुए पढना शुरू किया—

"मैं जानता हूँ मेरा पत्र पाकर तुम्हें अचरज होगा। अभी की स्थिति में तुम्हें पत्र लिखना अकल्पित है भी। वस्तुतः तुम जब से मेरा घर छोड़कर दूसरी जगह चले गये तभी से मैंने अपने में बड़ा परिवर्तन पाया है। लगता है, तुम्हारे साथ विरोध करके मैं धीरे-धीरे अपने भीतर निजत्व की तलाश में सक्रिय होता गया हूँ। मैंने न केवल तुम्हारे साथ अन्याय किया है, बल्कि इससे भी अधिक अपने साथ बेइन्साफी की है। तुम मुझसे छोटे हो। अतः स्वाभाविक है कि मेरी उम्र तथा अनुभव का आदमी तुम्हारे पास ऐसा कुछ लिखने में संकोच अनुभव करे। किंतु मेरे लिए अब कोई दूसरा चारा भी तो नहीं है। मैं कब तक लड़ता रहूँ खुद अपने से ही? इन दो महीनों के भीतर ही इस अन्तःसंघर्ष ने मुझे पूरी तरह तोड़ कर रख दिया है। ऐसा विपन्न तो मैं कभी नहीं था। सचमुच तुम मेरे अधूरेपन में एक सार्थक पूर्णता बनकर आये थे। अब तुम्हारे नहीं रहने पर वही अधूरापन उभर-उभर कर मेरे पूरे अस्तित्व में अपना जहरीला दंश भरता रहा है।

"किसी बात से, किसी परिस्थिति से मैंने पराजित होना नहीं सीखा है। अब तक गलत या सही जो कुछ भी रहा हूँ, वही मेरी अस्मिता रही है। यही वजह है कि इस अचानक बदलाव से एक बड़ा हादसा पहुँचा है। सही मानो में वैरागी हो जाने की भावना अब जगी है। अब तक तो मेरा वैरागीपन मुखौटा मात्र था। पारिवारिक आघातों को नहीं सह पाने के कारण मैं चला था वैरागी होने ही। किंतु दुर्भाग्यवश हो नहीं पाया।

"अब समझता हूँ, यदि तुम मेरे जीवन की सबसे बड़ी ताकत हो तो यह किरण मेरी सबसे बड़ी कमजोरी। तुम दोनों का परस्पर लगाव मुझे अच्छी तरह

मालूम था। मैं चाहता तो किरण की मुर्दा पड़ी जिन्दगी में नयी ताजगी और रौनक भर सकता था। किंतु उस समय मेरे अभिमान ने वैसा कुछ नहीं करने दिया। मैं बीच रास्ते में चट्टान बनकर खड़ा हो गया। अब अपनी इस कमजोरी का अहसास मेरे मन को सालने लगा है। किंतु मेरे पास ताकत ही नहीं है। काश, मैं अब भी तुम्हारी शक्ति का उपयोग अपनी इस कमजोरी की खाइयों को पाटने में कर पाता!

"किरण को सचमुच मेरे कारण कष्ट ही कष्ट हुआ। क्या सोचकर उसे पटने से काशी बुलाया था और अब यह सब क्या हो गया! वह पहले से भी अधिक टूट गयी। सो भी मेरी वजह से। अब तो वह यहाँ है भी नहीं। फिर भी यदि उस दुखिया के प्रति अभी भी तुम उदारता बरत सको तो शायद बहुत कुछ संभल जाये। शोभा तो हर तरह से समर्थ है। तुम उसे छोड़ भी दोगे तो वह कहीं न कहीं किनारा पा जायेगी। किंतु यह किरण!......

"लिखने को तो इतनी बातें मन में इकट्ठी हो गई हैं कि मेरे लिए इस छोटे से पत्र में उनमें चुनाव कर पाना मुश्किल जान पड़ता है। इसीलिये यहीं समाप्त कर रहा हूँ।

"पुनश्चः निर्मला बहन का निमन्त्रण मिल चुका है। अपना यह पत्र कई दिनों से लिखकर रखे हुए था। इसे छोड़ने का जैसे साहस ही नहीं जुट पाता था। निमन्त्रण मिल जाने पर चिट्ठी छोडना जरूरी हो गया है। अच्छा तो नहीं लगता कि अब यहाँ तक पहुँच कर तुम्हें शोभा से बिलगा दिया जाये। फिर भी मन का मोह नहीं जाता। तुम खुद सोच लो। यदि यह शादी हुई तो कई कारणों से मैं खुद उत्सव में शामिल नहीं हो पाऊँगा। कृपया मेरी ओर से निर्मला बहन से क्षमा माँग लेना। मैं तो जैसा हूँ, हूँ ही। किंतु किरण और नलिन दोनों तुम्हारे हैं। इन पर ख्याल रखना।

शुभेच्छु,
पिताजी।"

पत्र को अरविंद ने दुबारे और तिबारे पढ़ा। वह समझ नहीं पाया कि इस पत्र की उसके मन पर कैसी प्रतिक्रिया हुई। हाँ, उसे इतना अहसास हुआ कि उसके मन का तनाव टूटने लगा है और अपने भीतर वह कहीं किसी गहरी करुणा और सहानुभूति के भाव से भीगने भी लगा है। कांति बाबू अब अपनी कमजोरियों के बावजूद बड़े भले लग रहे थे। यह उनका एक सर्वथा नया रूप था जो एक ही साथ करुणा और सुख के धागों में लिपटा हुआ जान पड़ा।...... किंतु

कांति बाबू की यह कोई दूसरी रणनीति तो नहीं ? कोई जालसाजी तो नहीं ? नहीं, यह किसी कपट की भाषा नही हो सकती। कांति बाबू सचमुच वैसी नफरत के पात्र नहीं जैसा आये दिन वह उन्हें समझता रहा है। अरविंद ने पत्र को उसके लिफाफ में बन्द कर अपने तकिये के नीचे रख दिया। फिर बिस्तर पर पसरकर आँखें मूंद लीं। किरण की बात फिर उसके दिमाग में चक्कर काटने लगी। तो किरण अभी भी उसे मिल सकती है। कांतिबाबू के पक्ष में आ जाने से रास्ते की सबसे बड़ी बाधा टल गयी। किंतु बदली हुई परिस्थितियों में अरविंद के वचन का क्या मोल रहा ? क्या निर्मला देवी को कहा गया 'हाँ' पुनः 'ना' में बदल दिया जाये ? और यह भी तब जबकि शादी की सारी तैयारी हो चुकी है। निमंत्रण बाँटे जा चुके हैं। नही-नही, अरविंद इतना नीचे नही गिर सकता। अब तो जो सामने है उसे ही झेलना है। बीते को तो पकडा नही जा सकता।

अरविंद ने बड़ी देर के बाद अपनी करवट बदली। वह कांति बाबू के संबंध में नये सिरे से विचार करने लगा। उनके प्रति अपने कर्तव्य का निश्चय कर ही रहा था कि उसे कमरे के बाहर श्यामाकात के बोलने की आवाज सुनाई पड़ी। फिर एक ही साथ तीन-चार आदमियों का उल्लसित स्वर उसके कानों में पड़ा। वे सभी शायद भीतर अरविंद के कमरे की तरफ ही बढे आ रहे थे। अरविंद ने झटपट उठकर दरवाजा खोल दिया और तकिये के नीचे से कांति बाबू का पत्र लेकर छिपा दिया। इसी बीच श्यामाकांत अपने तीन-चार मित्रों के साथ हँसता हुआ सामने आया। उसने लपक कर अरविंद का हाथ अपने हाथ में ले लिया। प्रसन्न स्वर में बोला, "आखिर हम विजयी हुए दोस्त !"

"बात क्या है, जरा सुनूं भी !" अरविंद की आवाज में उत्सुकता जग गई।

"पाप का भण्डा फूट गया," वहाँ खड़े एक दूसरे युवक ने कहना शुरू किया, "मन्दिर से निशा नाम की एक लड़की निकल भागी और थाने में पहुँचकर अपने ऊपर किये गये अत्याचारों की कहानी पुलिस को कह सुनायी।"

"फिर ?" अरविंद का मुँह खुला का खुला रह गया।

"फिर वही हुआ जो होना चाहिए," इस बार श्यामाकात गम्भीर होकर बोला, "पुलिस ने मन्दिर पर छापा मारा। वहाँ कार्यालय इत्यादि की तलाशी ली गई। लड़कियों की गवाही दर्ज की गयी और महात्मा कान्तिचरण गिरफ्तार कर लिये गये।"

"यह तुम क्या कहते हो ?" अरविंद ने अपने मर्मस्थान पर बड़ी चोट का अनुभव करते हुए पूछा, "यह कब की बात है ?"

"आज आठ बजे सुबह को," श्यामाकांत अरविंद के अचानक उतरे हुए चेहरे को देखकर कुछ आश्चर्य से बोला।

"यह तो ठीक नहीं हुआ श्याम!"

अरविंद ने मानो यह सवाल स्वयं अपने से ही किया था। वह श्यामाकात या किसी दूसरे की किसी बात की प्रतीक्षा किए बिना धसक कर कुर्सी पर बैठ गया। लगा जैसे चारों तरफ अचानक अन्धकार घिर आया हो। आशा और खुशी के नाम पर कुछ भी दिखाई नहीं देता हो और अरविंद एक चौराहे पर आकर बुरी तरह भटक गया हो।

□

तृतीय खण्ड

लक्ष्य और सन्धान

एक

विनोद जब सुधा को ब्याह कर पटना लाया तो कुछ दिनों के लिए उसकी माँ सुशीला भी अपनी बहू के साथ पटने में ही रह गयी। राय साहब अपनी आँखों विनोद की शादी नहीं देख पाये। इस सम्बन्ध में उनकी इच्छा भी पूरी नहीं हुई। उनके दिवंगत हो जाने के बाद उनकी बहन इन्दुमती घर की स्वामिनी हो गयी। वे तो शुरू से ही शोभा और उसकी माँ निर्मला से जली-भुनी रहती आयी थीं। भाई के जीवन-काल में यह विरोध उनके भीतर ही भीतर सुलगता रहा था। किन्तु अब उनके नहीं रहने पर विरोध प्रत्यक्ष हो गया और शोभा के साथ रिश्ते के विरुद्ध उन्होंने अपनी कमर कस ली। उनका रोबदाब तो भाई के जीवन-काल में भी था। किन्तु अब कोई भी उनकी बात काटने का साहस नहीं कर सकता था। विनोद की माँ सुशीला अपने पति के जीवन-काल से ही ननद का शासन मानती आयी थी। राय साहब का ऐसा आदेश भी था।

सुधा की माँ शैलबाला इन्दुमती के पीहर की ननद लगती थी। पिछले कुम्भ मेले में त्रिवेणी के संगम पर दोनों की अचानक भेंट हो गयी थी। इन्दुमती के साथ स्वयं विनोद तथा उसकी माँ भी थी। उधर शैलबाला अपनी पुत्री सुधा और पति जीवन बाबू के साथ पधारी हुई थी। त्रिवेणी स्नान का यह सयोग दोनों परिवारों के रिश्ते में बदल जायेगा, यह पहले किसी ने सोचा तक नहीं था। इन्दुमती अपनी ननद के पति की प्रतिष्ठा और धन-सम्पत्ति से अच्छी तरह परिचित थी। प्रयाग में दो-चार दिन साथ रहकर सुधा ने इन्दुमती के दिल को जैसे जीत लिया। वे उसकी सरल और शालीन प्रकृति से बेहद प्रभावित हो गयी। सुशीला की भी यही हालत थी। जहाँ तक विनोद का सम्बन्ध है, उसने तो सुधा के रूप में जैसे शोभा का तगड़ा प्रतियोगी खोज निकाला। गुण और रूप किसी भी दृष्टि से सुधा शोभा से हीन नहीं थी। सबसे बड़ी बात जो विनोद के मन को भायी वह थी उसकी निरभिमान प्रकृति। शोभा ने कई अवसरों पर विनोद का

अपमान किया था, जैसे वह उसका पिछलग्गू नौकर हो। कई बार अपने प्रति शोभा की उदासीनता देखकर उसका मन आहत हुआ था। लगता था, जैसे इस पूरे विश्व में न तो कोई दूसरी उसकी तरह रूपवती है, न गुणवती और न ऐश्वर्य-शाली। आभिजात्य संस्कारों में पला विनोद अपने स्वाभिमान पर पड़ने वाली लगातार चोटों को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। इसीलिए जब इन्दुमती ने सुधा के साथ उसकी शादी की चर्चा चलायी तो उसने झट से अपनी स्वीकृति दे दी। जाहिर तौर पर यह स्वीकृति उसके आवेगों का परिणाम थी।

उधर जीवन बाबू अपनी कन्या के लिए विनोद से अधिक अच्छे वर की कल्पना नहीं कर सकते थे। स्वयं वे भी तो कभी राय साहब की जमीन्दारी में ही पड़ते थे। बाधा केवल एक ही थी। जीवन बाबू स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रसिद्ध सेनानी रह चुके थे। उनके परिवार के प्रत्येक सदस्य के खून में अपने देश और उसकी संस्कृति के प्रति श्रद्धा थी, उसकी हवा और मिट्टी की गन्ध समायी हुई थी। अपनी पुत्री सुधा के चरित्र-निर्माण में उन्होंने इन गुणों को पिरो दिया था। इधर राय साहब का परिवार सामन्ती व्यवस्था का पोषक था। जीवन बाबू राय साहब की विलासप्रियता तथा अंग्रेजों के पिट्ठूपना से अच्छी तरह परिचित थे। ऐसे परिवार के साथ रिश्ता जोड़ने में कुछ समय तक उनके अन्तर्मन ने विद्रोह कर दिया। किन्तु पत्नी शैलबाला के समझाने-बुझाने पर वे पीछे तैयार हो गये। सोचा, अब नये जमाने में राय साहब का परिवार तथा उसके सोचने-समझने का ढंग जरूर बदल चुका होगा। पुरानी बातें तो जैसे राय साहब के साथ ही चली गयी थीं। विनोद नये युग का सुशिक्षित होनहार युवक है। धन-धान्य की कोई कमी है नहीं। बात पक्की होने में फिर कोई अड़चन सामने नहीं आयी।

सुधा के साथ शादी करके विनोद ने जो पहला कदम उठाया वह था अपनी पत्नी का नाम-परिवर्तन। सुधा नाम न जाने क्यों उसे नहीं सुहाया। उसने अपनी पसन्द से पत्नी का नाम नीलम रख दिया। अभी टटके ही शादी हुई थी। सुधा जब बहू बनकर किसनपुर की हवेली में आयी तो कुछ दिनों तक हवेली नई रौनक से भर उठी। बहू के रूप में उसने अपनी सास तथा बुआ इन्दुमती के मन प्राणों को छू लिया। वे दोनों उस पर बलिहारी हो गयीं। नागरिक संस्कृति की कोई *हवा सुधा को नहीं लगी थी। भारतीय पत्नी के लिए जिन गुणों की अपेक्षा की* जाती है, वे सब उसमें कूट-कूट कर भरे थे। पति के घर आते ही उसने अपने गुरुजनों की सेवा को प्राथमिकता दी। सुबह में सबसे पहले जगना, प्रतिदिन नियम-पूर्वक बड़ों के चरण-स्पर्श करना, गृहस्थी के कामों में सक्रिय सहयोग देना, नौकरों

हुआ कि वह अपने पति के लिए पत्नी से अधिक गृहिणी होती चली गयी। विनोद का वश चलता तो वह उसे चौबीसो घण्टे अपने ही पास रखता। उसे किसी काम में न लगाता। किन्तु सुधा इस सम्बन्ध में पति के आदेशों को भी एक कान से सुनती और दूसरे से निकाल देती थी। उसके पति की दृष्टि में प्रेम कितनी शारीरिक चीज है, भोली सुधा का इसपर ध्यान ही नही जा पाया। वह पति को परमेश्वर मानती थी। उसे यही सिखाया भी गया था। अतः पति के आदेश न मानने के पीछे उसका कोई उपेक्षा-भाव नही था। वह तो अन्ततः यही समझती थी कि उसका पति भी उससे सन्तुष्ट है। उसी के परिवार के लिए तो वह सब कुछ कर रही है।

धीरे-धीरे स्थिति ऐसी आती गयी कि खिलाने-पिलाने में व्यस्त रहने के कारण सुधा रात में भी बड़ी देर से अपने शयन-कक्ष में पहुँचती। पढ़ी-लिखी होने पर भी रात में सोने से पहले वह अपने दोनों बूढ़ी सासों के पाँव दबाना नहीं भूलती थी। इधर विनोद की आदत रात में सबेरे ही सो जाने की थी। रात को नौ नही बजे कि वह नींद में डूब जाता था। नींद भी साधारण नही। कुम्भकर्णी निद्रा को मात करने वाली। फलतः सुधा जब तक सोने आती, विनोद अक्सर खर्राटे भरता होता। दिन भर की थकी-माँदी सुधा भी सोये पति के पाँव दबाते-दबाते खुद भी नींद में डूब जाती और पलंग के एक किनारे पड़ जाती। सुबह में भी प्रायः पति के जगने के पहले ही उसके चरणों का स्पर्श करके अपने कामों में जुट जाती। रोज-रोज का यही सिलसिला था।

किन्तु यह स्थिति ज्यादा दिन तक चल नही सकी। भीतर ही भीतर सुलगता विनोद का विद्रोह आखिर फूट ही पड़ा। घर पर अपनी बुआ इन्दुमती के कारण वह अपने को किसी तरह संयत रखता आया था। बचपन से ही वह उनकी कद्र करता था और डर भी मानता था। इसीलिए सुधा को वह जल्दी से जल्दी अपने गाँव किसनपुर से पटने के नये आवास पर ले जाना चाहता था। अब सुधा को अपने अनुकूल बनाने के लिए उसके लिये यही रास्ता भी था। घर पर रहने से सुधा की गँवारू प्रकृति में सुधार की उम्मीद नही की जा सकती थी। किन्तु यदि विनोद सुधा की प्रकृति में वांछित सुधार नही कर पाए तो? विनोद ऐसी स्थिति की कल्पना से ही घबड़ा जाता था। ऐसे ही समय उसके मन में सुधा की तुलना में शोभा की अप-टू-डेट छवि कौंधने लगती थी। कभी-कभी यह भी अहसास होता कि उसने जान-बूझकर अपने जीवन में एक भद्दी-सी भूल कर दी है। उसे शायद शोभा के विरुद्ध इस सीमा तक नही जाना चाहिए था। इससे तो उसी का अहित हुआ। शोभा का तो कुछ बिगड़ा नहीं।

बुआ इन्दुमती से कह-सुनकर विनोद सुधा को अपनी माँ के साथ पटना लाने में सफल हो गया। यहाँ आकर सास और बहू ने मिल-जुलकर विनोद की नयी गृहस्थी बसायी। पटने में सुधा के लिए किसनपुर की तरह गृहस्थी का जंजाल नहीं था। यहाँ उसे फुर्सत की अधिक घड़ियाँ मिलने लगीं। खाली समय वह प्रायः पठन-पाठन में बिताने लगी। विनोद के साथ कई बार पिक्चर देखने भी गई। यह सब कुछ विनोद के अनुकूल होने पर भी न जाने क्यों उसका असंतोष मिटा नहीं। अब वह सुधा की हर अदा में शोभा की झलक खोजने लगा। जितने क्षणों तक वह सुधा को शोभा के रूप में ग्रहण करता, उतनी देर तक उसका मन तृप्ति का बोध जरूर करता था। किन्तु यह तो उसके लिए एक मृग-मरीचिका ही सिद्ध हो रही थी। सुधा शोभा की हकीकत बनकर तो आयी नहीं थी। जैसे-जैसे अपनी पत्नी से उसका मानसिक बिलगाव होता गया, विनोद अधिकाधिक बेचैन होता गया। वह अपने मन की बात कहे भी तो किससे। अब तो शोभा के घर जाने में भी संकोच हो रहा था। यदि शोभा और उसकी माँ अपनी शादी के सम्बन्ध में उसके असन्तोष को ताड़ लेंगी तो वे विनोद का मजाक ही तो उड़ायेंगी! इससे अच्छा था कि वह अपनी पीड़ा को स्वयं पीता रहे। कम से कम शोभा और उसकी माँ से तो व्यक्त नहीं ही करे। मन की यह घुटन विनोद को भीतर से तोड़ती चली गयी। इसका फल यह होने लगा कि विनोद का व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति रुखड़ा होता चला गया। सुधा पति को खुश करने की हजार कोशिश करती, किन्तु बदले में उसे झिड़कियाँ ही सुननी पड़ती। अपने दाम्पत्य-जीवन के शुरू में ही पति के कठोर व्यवहारों से उसका मन छोटा होता गया। किन्तु दुखी होने पर भी उसने आशा का त्याग नहीं किया था। सोचती थी, पति को खुश रख पाने में जरूर सफल होगी। उसे अभी तक इसी का पता नहीं चल रहा था कि पति के रूखे व्यवहार के पीछे सचाई क्या है। कई बार उसने घुमा-फिरा कर पति के मन की थाह लेनी चाही थी। किन्तु सफल नहीं हो पायी।

आज विनोद रात में कुछ देर से घर वापस आया। उस समय तक उसकी माँ और पत्नी दोनों ही उसके इन्तजार में चिंतित बैठी थी। विनोद ने घर आते ही खबर दी कि वह अपने एक दोस्त के घर से खा-पीकर आया है। दुबारे खा नहीं सकेगा। इतना कहकर वह लड़खड़ाते कदमों से किसी तरह अपने बिस्तर पर पहुँचा और लम्बा हो गया। शौक से ही सही, उसने पहले भी कई बार पीया था। पटने में निर्मला देवी के साथ रहने से उसकी यह आदत अधिक

पनप नहीं पायी। किंतु अब तो वह इस तरह के किसी भी बन्धन से मुक्त था। वकालत शुरू करके एक तरह से अपने पैरों पर खड़ा भी हो गया था। पैसों को कमी थी नहीं। विरासत से ही उसे खाने-पीने वाले समाज में रहने की प्रतिभा मिली हुई थी। एक बिगड़े हुए रईस की तरह उसने अपने को धीरे-धीरे बिगड़ी हुई जमात के साथ जोड़ना शुरू कर दिया। अपनी आँखों के सामने कई बार वह अपने पिता, चाचा आदि को वेश्याओं के साथ रमते और पीते देख चुका था। ऐसे हर पाप को पुण्य में बदलने वाली पहले की स्थिति अब रह नहीं गई थी। फिर भी विनोद के खून में अभी वही उफान था। इधर अपने दाम्पत्य से मिलने वाले असन्तोषों ने उसे गम को भुला देने के लिए पीने की ओर भी प्रेरणा दी। आज वह अपने एक वकील मित्र से मिलने गया और वहीं हँसी-खेल में ही जरूरत से अधिक पी लिया। ज्यादा मात्रा में ली गई रम धीरे-धीरे अपना असर जमाने लगी। किसी तरह वह अपने घर पहुँच पाया।

सुधा ने पति का चेहरा देख कर ही समझ लिया था कि आज कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ी है। पियक्कड़ों के सम्बन्ध में उसने अब तक कहानियों के माध्यम से ही कुछ ज्ञान प्राप्त किया था। आज तक इसका कोई व्यावहारिक पक्ष उसकी नजरों के सामने आया ही नहीं था। सास को खिला-पिला कर उसने जैसे-तैसे दो-चार कौर मुँह में डाले और एक अजीब-सी आशंका लिए पति के पास सोने आयी। आते ही उसकी नजर बेहोश-से पड़े हुए विनोद पर गयी। विनोद ने इधर उसे मना कर दिया था कि नींद में न तो उसके पैर दबाये जायें और नही उसे किसी दूसरी तरह डिस्टर्ब किया जाये। इसीलिए सुधा ने बिजली की स्विच दबा दी और पति की बगल में धीरे से लेट गयी। कुछ ही क्षणों में विनोद की सांसों से निकलने वाली शराब की दुर्गन्ध से उसे उबकाई-सी आने लगी। उसे अब अच्छी तरह विश्वास हो गया कि विनोद कहीं से पीकर आया है। अपने घर के सात्त्विक वातावरण में पहले से ही तामसी चीजों के विरुद्ध उसके मन में गहरी अरुचि और वितृष्णा थी। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि उसकी तरह लड़की का पति शराबी मिलेगा। वह कुछ ऐसी ही बातें सोच रही थी कि बगल में सोये पति के नशे में मानो कोई ज्वार आ गया। दूसरे ही क्षण वह एकाएक विनोद की लौह-भुजाओं में जकड़ ली गई। उस समय सुधा को लगा जैसे उसपर किसी हिंस्र पशु ने अचानक आक्रमण कर दिया हो। उसने आजाद होने के लिए कोशिश भी की। किन्तु कामयाब नहीं हुई। उसकी हड्डियाँ जैसे चरमरा उठीं। अपने होठों के निकट पति के मुँह से निकलने वाली तेज बदबू से जब उसका जी

मिचलने लगा, तो पता नहीं, अपनी मुक्ति के लिए उसकी देह में अचानक कौन-सी ताकत आ गयी। उसने एक तेज झटके में पति के होठों से अपने चेहरे को मुक्त करके उसके बाहु-बन्धन को तोड़ डाला। बिस्तर पर एक किनारे बैठती हुई नफरत-भरी आवाज में बोल पड़ी, 'आप शराबी भी हो सकते हैं, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।''

अब तक विनोद का शरीर शिथिल पड़ चुका था। नशे का झीना आवरण हटते ही उसके कर्ण-पुटों में सुधा की आवाज गूंज गयी। कुछ क्षणों के लिए उसे अपने अस्तित्व का बोध हो आया। फिर उसने अँधेरे में ही जैसे तैसे उठकर सुधा को खोज लिया और दूनी घृणा और क्रोध के साथ उसे झिटक कर पलंग के नीचे गिरा दिया। लडखड़ाती हुई आवाज मे बोला, "मुझे शराबी कहती है? गला टीपकर मार डालूंगा! एक मजदूर को बेटी की ऐसी हिम्मत! मेरे घर मजदूरी करना मंजूर नही तो अभी निकल जा मेरे घर से!''

विनोद की तेज आवाज से रात के सन्नाटे में कमरे को पक्की दीवारें भी गूंज पड़ी। उसके हाथ के निर्मम झटके खाकर पलंग से नीचे गिरते समय सुधा की कुहनियो में बड़ी चोट लगी थी। नीचे नंगी फर्श पर पेट के बल गिरी सुधा जैसे कुछ समय तक अपनी स्थिति को समझ नहीं पायी। स्वप्न और सचाई के बीच उसका आहत तन और मन झूल ही रहा था कि पलंग के ऊपर से विनोद की कर्कश वाणी उसके कानों को दुबारा बेधने लगी, "मैं यदि जानता कि तू इतनी गँवार है तो तुझसे कभी शादी नहीं करता। तुझ डायन के चलते मैंने अपनी शोभा तक को छोड़ दिया!''

सांसारिक अनुभवों से शून्य सुधा के कोमल मन के लिए ये सारी बातें अकल्पित थी। अभी विवाह के हुए ही कितने दिन थे! किन्तु उस रात सुधा ने समझ लिया कि उसके सारे सपने चूर-चूर हो गये हैं। जिन रंगीन कुँआरी इच्छाओं को वह अब तक अपने अन्तर्मन मे सहेजती-सँवारती आई थी वे सब की सब जैसे धूल में मिल गईं। पिता के घर इतने वर्षो तक रहकर भी उसने कभी किसी की डाँट तक नहीं सुनी। प्यार के सिवा कुछ दूसरा जाना नहीं था। प्रयाग में जब उसने अपनी माँ के मुख से सुना कि वहाँ तीन-चार दिनों तक साथ रहने वाले युवक के साथ ही उसकी शादी की चर्चा चल रही है तो मन ही मन वह खुशी से झूम उठी थी। राय साहब को वह खुद भी अच्छी तरह जानती थी। उनके प्रियदर्शन इकलौते बेटे के साथ उसका रिश्ता पक्का होने जा रहा है, यह सोच-सोच कर उसने अपने भाग्य को सराहा था। भूरी आँखों तथा भरे-पुरे

चेहरे वाला वह हँसमुख युवक कितना अच्छा लगा था उस दिन ! लाज के मारे फिर वह उसे देख भी नही पायी। बात खुलने से पहले सुधा ने उसे दो-तीन बार अपने हाथों खिलाया भी था। उसके साथ इसकी कुछ गोल-मटोल बातें भी हुई थी। शादी के बाद प्रथम मिलन में अपने पति के प्यार और स्नेह से वह गद-गद हो उठी थी। उसके मीठे रस भरे व्यवहार से सुधा के मन-प्राण जुड़ा गये थे। आज वैसी ही एक रात यह भी है। किन्तु स्वप्नों का वह स्वर्ण महल कितनी जल्दी धराशायी हो गया ! सुधा जिस तरह फर्श पर गिरी थी, उसी तरह पड़ी रह गई। अब तक कमरे में उसके सुबकने की आवाज गूंजने लगी थी। देह के कपड़े अस्त-व्यस्त हो चले थे। किन्तु अपने को सम्भालने की उसने कोई चेष्टा नहीं की। इस बीच विनोद की फिर कोई दूसरी आवाज उसे सुनाई नहीं पड़ी। सुधा न जाने कितनी देर अपनी उमड़ती आँखों से नीचे फर्श को गीली करती हुई मन का भार हल्का करती रही। इसी क्रम में, पता नही कब, उसकी पलकें झंप गयीं।

जब सुधा की आँखें खुली तो कुछ देर तक वह कुछ ठीक से समझ नही पायी। अभी वह पति की गोद मे लेटी हुई थी। विनोद उसके बिखरे केशों को अपनी उँगलियों से सँवार रहा था। उसकी प्यार-भरी दृष्टि सुधा के चेहरे पर झुकी हुई मूक भाषा में न जाने कौन-सा निवेदन कर रही थी। कमरे में ट्यूब-लाइट का दुधिया प्रकाश बिछा हुआ था। सुधा हड़बड़ा कर उठ बैठी। नीचे गिरे आँचल को सम्भाल कर अपने सिर पर खींच लिया।

"शायद मैंने तुम्हारे साथ कुछ बुरा सलूक कर दिया," विनोद के स्वर में प्यार और पश्चात्ताप की मिठास थी, "तुम पर रंज मैं जरूर था, किंतु...... खैर पिछली बातें भूल जाओ। मुझसे सचमुच गलती हो गई।"

विनोद समझ नही पाया कि इसके बाद वह और क्या बोले। अभी कुछ देर पहले न जाने कैसे उसकी नींद एकाएक टूट गयी। सामने पलंग के नीचे सुधा को औंधे मुँह पड़े देखकर पहले उसे कुछ आश्चर्य हुआ। फिर धीरे-धीरे रात के पिछले पहर की घटनायें एक दुःस्वप्न की तरह उसके मन में उमड़ने लगी। उसे तुरत ही असलियत का बोध हो गया। नीचे सुधा का चेहरा तिरछा होकर उसके दाहिने हाथ की कलाई पर टिका था। पलकें झंपी थी। मासूम गालो पर सूखे आँसुओं के चिह्न झलक रहे थे। काली नागिन से लम्बे केश उसके चेहरे के आगे-पीछे बेतरतीबी से बिखरे पड़े थे। उजली माँग में सिन्दूर की आभा दीप्त हो रही थी। पूरे चेहरे पर दीनता छायी हुई थी। कामदार हल्के नीले रंग की साड़ी का आँचल सरक कर कमर के नीचे-चला गया था। बायी काख के नीचे मखमली ब्रा

में उरोज की सुपुष्ट गोलाई मोहक लग रही थी। उस हालत में भी विनोद मंत्र-मुग्ध-सा कुछ क्षणों तक इस मुक्त सौन्दर्य का आस्वादन करता रहा। लगा जैसे वह सुधा की मादक तरुणाई और अतुलनीय सौन्दर्य को पहली बार देख रहा हो। त्रिवेणी की लहरों में अपनी गीली साड़ी में चिपकते अंगों को बचाती हुई जिस सुन्दरता के आकर्षण में वह एकाएक बँध गया था, उससे कहीं अधिक जादू था आज की उस सम्मोहक छवि में। आये दिन सुधा के विरुद्ध उसके मन में जो नफरत जमती जा रही थी, उसकी परतें जैसे एकाएक खरक कर बिखर गयीं। उसे अफसोस हुआ, ऐसी सुन्दरी पत्नी को वह नाहक ही तकलीफ दे रहा है। वासना की उद्दाम लहर उसकी धमनियों में दौड़ गई। वह आहिस्ते पलंग से उठा। नीचे गया और सुधा के सूखे लाल होठों को हौले ही चूम लिया। वासना ही करुणा बन गयी। बेंत की छड़ी-सी तन्वी सुधा को उसने अपनी मजबूत हथेलियों पर उठा लिया। धीरे से उसे पलंग पर लिटा कर उसके बिखरे केशों के साथ खेलने लगा। सुधा ऐसी बेहोश पड़ी थी मानो वह भी किसी नशे में हो। उधर विनोद का नशा तो टूट गया था, किन्तु उसकी खुमारी बाकी थी। अपनी नींद टूटने पर सुधा की आँखों के सामने रात के पिछले पहर का सारा दृश्य नाच गया। उसे एक क्षण को विनोद से घृणा हुई। किंतु दूसरे ही क्षण घृणा शोक में बदल गयी। पति के सहृदय व्यवहार से उसका नारी-मन पसीज गया। कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठी वह भीतर से फूटती हुई रुलाई को रोकने की कोशिश करने लगी।

सुधा को निर्वाक बैठे देखकर विनोद ने अपने स्वर को और भी सहृदय बनाया। उसकी ठुड्डी ऊपर करते हुए तथा उसकी गीली आँखों में झाँकते हुए प्यार से बोला, "क्षमा कर दो डार्लिंग, अब ऐसी गलती फिर नहीं होगी !"

सुधा ने पति के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया और फफक कर रो पड़ी। वह कुछ बोल तो नहीं पायी, किन्तु उसका आर्त अन्तःकरण विनोद की धड़कती छाती से मानो यही निवेदन करता रहा—'तुम तो मेरे देवता हो, मेरे सर्वस्व हो ! मुझसे क्षमा माँगकर मुझे पाप का भागी मत बनाओ।'

दो

जब सुशीला भी किसनपुर चली गईं तो सुधा पटने में एक तरह से अकेली हो गई। घर में नौकर तथा दाई के सिवा दूसरा कोई नहीं था। दाई का नाम धनिया था। यह अभी बिलकुल नई थी और विनोद के गाँव से ही लाई गई थी। कई पुश्तों से उसका परिवार राय साहब के परिवार की सेवा-टहल करके अपनी रोजी-रोटी चलाता आ रहा था। बदले में राय साहब की ओर से धनिया के माता-पिता को कुछ जागीर दे दी गई थी। धनिया बचपन से ही अपनी माँ के साथ अपने स्वामी के घरेलू कार्यों में हाथ बटाती आ रही थी। जब वह लगभग दस साल की हुई तो उसके माता-पिता हैजे के शिकार हो गये। तब से राय साहब ने धनिया को अपनी हवेली में ही रख लिया था। बदलते हुए समय के साथ धनिया बुद्धिमान नौकरानी हो गई थी। अपनी उम्र की दूसरी लड़कियों से वह रूप और गुण में भी आगे थी। ससुराल आने पर सुधा को धनिया के रूप में सबसे प्रिय और विश्वासपात्र नौकरानी मिल गई थी। पटने की नई गृहस्थी के लिए उसने धनिया को ही चुना। उसे अपने ही साथ पटना लेती आई।

सुशीला ने पटने में रहकर अपने बेटे की गृहस्थी का पूरा इन्तजाम कर दिया था। पाँच सौ रुपये प्रतिमाह किराये पर एक आलीशान मकान विनोद ने ले लिया था। इसमें भीतर और बाहर कई हवादार कोठरियाँ थीं। ऊपरी मंजिल पर भी दो बड़े-बड़े बेडरूम थे। विनोद ने काफी पैसे खर्च करके अपनी पसन्द से ड्राइंग-रूम का अलंकरण कराया। इस सजावट के लिए उसने कई विदेशी कलाकृतियाँ खरीदकर मँगाई थीं। उसके मन में कहीं न कहीं निर्मला देवी के मकान की रूप-सज्जा से होड़ लेने की भावना थी। अपनी इस भावना को उसने मकान पर किए गए तड़क-भड़क में चरितार्थ किया।

सास के घर चले जाने पर सुधा कुछ दिनों तक उदास-उदास-सी रही। धनिया अपनी मेम साहब को खुश रखने के प्रयास करती। किन्तु सुधा केवल ऊपर से ही हँस-बोल पाती थी। विनोद दस बजे दिन में कोर्ट चला जाता था। वहाँ से शाम को पाँच बजे के पहले शायद ही वापस आता। अपना लंच वह साथ ही लिए जाता। किसी-किसी दिन तो काफी रात गये घर लौटता था। इस बीच सुधा का मन कभी-कभी अकेलेपन से घबड़ा जाता। मन बहलाने के लिए कभी तो

वह कथा-कहानियाँ पढती और कभी सिलाई मशीन पर पति के लिए कुछ कपड़े सीती। घर में सुख-सुविधा की कोई कमी नही थी। फिर भी सुधा का मन घटने में रम नही पा रहा था। सास के रहते तो जैसे वह एक छाया के नीचे अपने आपको भूली रह गई। किन्तु उनके हटते ही नई जिम्मेदारियाँ और पति के रूखे व्यवहार उसके मन को चिन्ताग्रस्त बनाते चले गये। सुधा को विश्वास था कि विनोद एक बार अपनी गलती कबूल करके फिर वैसे रास्ते पर नही जायेगा। किन्तु धीरे-धीरे इस विश्वास की दीवारों में दरारें पड़ने लगी। सुधा पर अब नई-नई ज्यादतियाँ शुरू हो गई थी। वह बचपन से ही शाकाहारी थी। मांस-मछली की गन्ध तक उसे बर्दाश्त नही होती थी। पहले तो विनोद ने इसके लिए कुछ बुरा नही माना था। अपने आमिष भोजन की व्यवस्था वह अलग करवा लिया करता था। इधर एक दिन विनोद ने अपने लिए चिकन बनवाया तो सुधा को भी खाने के लिए आमंत्रित किया। सुधा ने वही बात फिर दुहरायी कि उसने आज तक कभी आमिष भोजन किया ही नहीं है। पता नही उस दिन विनोद के मन में क्या था कि उसने सुधा के ना-ना करते रहने पर भी उसके मुँह में मास का एक टुकड़ा जबरन ठूँस दिया। टुकड़ा मुँह में जाते ही सुधा को कै हो गई। उसे कै करते देख विनोद जल-भुन गया। आवेश में इसे उसने सुधा की जंगली आदत बतायी। यह भी कहा कि मांस-मछली से परहेज करके सुधा ज्यादा दिनों तक विनोद के साथ रह नही सकती है। ठीक इसी तरह की दूसरी घटना इसके दो-तीन दिनो बाद घटी। सुधा अपनी माँ की देखा-देखी बचपन से ही पूजा-पाठ करती आयी थी। वह अपने साथ शालिग्राम पत्थर लेती आयी थी जिसकी वह प्रतिदिन नियमित रूप से पूजा करती थी। पहले तो विनोद यह सब देखकर भी अनदेखा करता रहा। किन्तु एक दिन अचानक पूजा के समय ही सुधा को उसकी झिड़कियाँ सुनाई पड़ी। उसने इस प्रकार के अनुष्ठान को धार्मिक ढकोसला बताया। अबसे पूजा न करने के लिए सुधा को चेतावनी-सी दे दी। पति का मन रखने के लिए सुधा को अपनी वर्षों से चली आती साधना को बन्द कर देना पड़ा। भीतर से उसका मन छटपटाता रहा। आक्रोश उबलते रहे। किन्तु ऐसी सारी कड़वाहट को भीतर ही भीतर पीती हुई सुधा अपने पति को खुश करने के प्रयत्न में लगी रही। फिर भी उसे लग रहा था जैसे वह धीरे-धीरे विवशता की जंजीरों में जकड़ती चली जा रही है। उसकी अपनी इच्छा का कोई मोल नही है। अपने मन की पीड़ा को वह किसी से प्रकट भी नही कर सकती थी। पटना उसके लिए बिल्कुल अजनबी जगह थी। पास-पड़ोस में अभी किसी से वैसी दोस्ती भी नहीं हो पाई थी जिससे

बोल-बतिया कर अपने मन को हल्का कर पाती। अभी तक यहाँ केवल एक ही ऐसा परिवार था जहाँ वह पति के साथ एक-दो बार आयी-गयी थी। यह परिवार निर्मला देवी का था। वहाँ दोनों माँ-बेटी का स्वभाव सुधा को बहुत पसन्द आया था। दोनो अपने जनो की तरह उससे स्नेहपूर्वक मिली थी। दो दिनो की संक्षिप्त मुलाकात में ही शोभा ने सुधा के साथ बड़ी दोस्ती कायम कर ली थी। अपनी शादी में आने के लिए उसे पहले ही आमंत्रित भी कर लिया था। इधर पता नही क्यों, विनोद की इच्छा नहीं थी कि सुधा शोभा की शादी देखने जाये। किन्तु बाद में उसका मन न जाने कैसे बदल गया।

शादी के दिन विनोद अपनी पत्नी के साथ बहुत सज-धज कर शोभा के घर पहुँचा। उस दिन निर्मला देवी के घर की सादगी देखकर सुधा दंग रह गई। इतना सम्पन्न होने पर भी अपनी इकलौती बेटी की शादी में वे इतनी सादगी क्यों बरत रही हैं, यह सुधा समझ नही पाई। विवाह के नाम पर कहीं भी कोई तड़क-भड़क नही दिखाई पड़ा। हाँ, शहनाई की सुरीली ध्वनि गूंज रही थी और घर के सामने फूल-पत्तियों से साधारण बन्दनवार बना दिया गया था। भीतर आँगन में भी मण्डप की सजावट में वैसी ही सादगी थी। सुधा को अपनी शादी की याद आयी जिसमें व्यर्थ ही हजारों रुपये पानी की तरह बहा दिये गये थे। उसके पिताजी को भी तड़क-भड़क पसन्द नही था। किन्तु राय साहब के परिवार वालों को कुछ बुरा न लगे, इसलिए उन्हें बाध्य होकर वरपक्ष के स्वागत में हजारों रुपये खर्च करने पड़ गये थे। बारात भी सज-धज कर लाई गई थी। हाथियों, घोड़ों और ऊँटों की कतारों से गाँव की मिट्टी आसमान तक उड चली थी। यहाँ तो सुधा को वैसा कुछ नहीं दिखाई दिया। लोग भी बहुत कम आमंत्रित हुए थे। पीछे सुधा को मालूम हुआ कि यह सब दूल्हे की इच्छा का खयाल करके ही करना पड़ा है। दूल्हा सजावट और तड़क-भड़क के नाम पर पैसे खर्च करना पसन्द नही करता।

शोभा ने सुधा के साथ अपनी मुलाकात के पहले दिन से ही उसे भाभी कहना शुरू कर दिया था। सुधा को स्वयं भी यह रिश्ता बहुत पसन्द आया था। ससुराल में आने के कुछ दिन बाद ही वह शोभा नाम से परिचित हो गई थी। शोभा तथा उसके परिवार के साथ राय साहब के पारिवारिक सम्बन्ध को लेकर सुधा ने अब तक तरह-तरह की बातें सुनी थी। किन्तु सबसे आश्चर्यजनक तो वह रात लगी जिसमें विनोद ने नशे की झोंक में सुधा की तुलना में शोभा का बखान किया था।

उसके साथ [illegible] के कारण [illegible] को जाहिर किया था। अब यह स्वाभाविक था कि [illegible] के विषय में कुछ अधिक जानने के लिए सुधा के मन में कौतूहल [illegible]। [illegible] के कठोर स्वभाव के कारण कौतूहल होते हुए भी सुधा ने [illegible] के सम्बन्ध में कुछ विशेष पूछने की हिम्मत नहीं की थी। उसे डर होता था कि ऐसा कुछ पूछने से विनोद बुरा न मान जाये। किन्तु पटना आने के बाद सुधा को यह समझते देर नहीं लगी कि शोभा ही विनोद की चहेती थी। दोनों का बचपन से ही एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। पता नहीं किस कारण विवाह नहीं हो पाया। सुधा की जागरूक स्त्री-बुद्धि ने अब यह भी भाँप लिया था कि शादी न होने पर भी विनोद एवं शोभा का एक दूसरे के प्रति अभी भी हार्दिक लगाव था। विनोद इसीलिए तो सुधा को शोभा [illegible] ही देखता है। उसे बात-बात में शोभा से हीन सिद्ध [illegible]। सुधा ऐसी सारी बातों का मर्म अब तक समझ गई थी। किन्तु [illegible] भोली भाली सुधा के निर्मल मन में शोभा के विरुद्ध [illegible] पनपने नहीं पाई थी। हाँ, कभी-कभी अपनी हीनता के [illegible] निराशा उसके मन को अवश्य कष्ट देती थी। [illegible] आशंका और भय भी उसके मन में व्यापता [illegible]। [illegible] उसका भोला मन अभी तक विनोद को समझ नहीं [illegible] कभी तो हठी और कठोर और कभी [illegible] दिखाई दिया था।

भीतर आँगन की तरफ विनोद को ढूंढने चल दी। वहाँ भी विनोद नही दिखा। अब वह जीने चढकर बंगले की ऊपरी मंजिल पर चली गई। ऊपर आँगन में सन्नाटा था। सभी लोग आगन्तुकों के स्वागत में नीचे ही व्यस्त थे। सुधा के पाँव शोभा के सजे-सजाये कमरे की ओर स्वतः बढ़ चले। कमरे का दरवाजा बन्द-सा लगा। किन्तु नजदीक जाने पर दरवाजे के पल्ले भीतर से उढ़काये हुए जान पड़े। शोभा ने दरवाजे को आहिस्ता खोल दिया। सामने नीले रंग के झीने पर्दे दिखाई पड़े। एकाएक सुधा को भीतर जाने में न जाने क्यों हिचक महसूस हुई। उसने वही खड़ी होकर पर्दे की ओट से भीतर देखने की कोशिश की। अन्दर बेंत की कुर्सियों पर आमने-सामने बैठे विनोद और शोभा बड़े गम्भीर लग रहे थे। शोभा की अँजुरी मे गुलाब के कुछ ताजे फूल पड़े थे। उन्हें वह अपने चेहरे के सामने लाकर विचित्र दृष्टि से देख रही थी। कभी-कभार उन्हें सूंघ भी लेती थी। उधर विनोद भी शोभा को घूर रहा था। सुधा को अचरज हुआ कि नीचे बारात की व्यस्तता से अलग-थलग विनोद यहाँ अकेले मे शोभा के साथ आखिर कर क्या रहा है। जो भी हो, सुधा को फिर हिम्मत नही हुई कि वह पर्दा हटा कर दोनो के पास पहुँचे। वह उलटे पाँव भारी मन लिए लौट आई। अपने ऊपर झुझलाती भी रही कि वह बेमतलब ऊपर गई ही क्यो? एक क्षण को उसके मन में सन्देह का बीज अंकुरित होने लगा। किन्तु दूसरे ही क्षण सुधा की दृढ आस्था के सामने वह विलीन हो गया। विनोद चाहे उसके प्रति कितना भी निर्दय हो जाये, वह इतना नीचे नहीं गिर सकता। शोभा फिर नीचे मण्डप में आई। वहाँ औरतों की भीड़ मे अपने मन को बहलाने की कोशिश करने लगी। उसने अभी तक कुछ खाया-पीया नही था। उस व्यस्तता में किसी की नजर भी उसकी ओर नही गई। बाहर आगंतुक खा-पी चुके थे। द्वारपूजा की विधि भी सम्पन्न हो चुकी थी। थोड़ी देर बाद ही लड़के को मण्डप मे लाया गया। विवाह की वेदी पर बैठने के पहले उसे परीछने की लौकिक विधि शुरू हुई। जब पास-पड़ोस की कई सधवाएँ उसे परीछ चुकी तो निर्मला देवी ने सुधा को भी इस विधि के लिए आमंत्रित किया। सुधा ने अपने गाँव तथा सम्बन्ध में इस साधारण-सी लौकिक विधि को करते-कराते हुए कई बार देखा था। किंतु आज ही वह समझ पाई कि यह काम कम से कम उसकी जैसी शर्मीली औरत के लिए कितना मुश्किल है। वह ना भी नही कर सकती थी। एक विचित्र-सी घबड़ाहट और संकोच से उसके चेहरे का रंग उड़ गया। ललाट पसीने की बूंदों से चुभ-चुभा गया। जिस हाथ से परीछना था, वह ऐन मौके पर कांपने लगा। फिर भी अपनी सारी ताकत हाथ में केन्द्रित करके वह दूल्हे को परीछने लगी। उस समय दूल्हे के होठो पर मोहक मुस्कान देख कर उसकी छाती की

धड़कन और भी तेज हो गई। उसे किसी तरह सुधा ने एक नजर देखा और जल्दी-जल्दी गीत-मंगल के बीच अपना काम खत्म करके पुनः भीड़ के पीछे छिप गई। अब जैसे सुधा को अपनी स्थिति का बोध हुआ। दूल्हे ने निश्चय ही उसकी घबड़ाहट को भांप लिया था। इसीलिए तो वह उस तरह मुस्का रहा था। भीड़ के पीछे से अब वह दूल्हे के चेहरे को नजदीक से देखने लगी। सरलता और सादगी से भरा एक मोहक व्यक्तित्व। जैसे क्षमा और विनय को साक्षात मूर्ति हो। लड़के के सम्बन्ध में न तो वह पहले से ही कुछ जानती थी और न बाद में ही किसी ने उसे कुछ बताया था। फिर भी लड़के को पहली बार देख कर ही सुधा के मन में उसके प्रति एक अव्यक्त श्रद्धा का भाव छलक उठा। उसने मन ही मन शोभा के भाग्य की सराहना की। कई बार लड़के के चेहरे को देखने के बाद उसके मन में एक दूसरी विचित्र अनुभूति हुई। लगा जैसे यह चेहरा उसने कहीं देखा हो। किन्तु इसे अपने मन का भ्रम समझ कर उसने स्वयं को समझा लिया।

तीन

चाह कर भी अरविंद काशी से पटना जल्दी नहीं आ सका था। मन्दिर में पुलिस का छापा पड़ने के बाद बड़ी तेजी से घटनायें आगे बढ़ीं। प्रान्तीय सरकार ने मन्दिर के सामाजिक महत्व को मद्दे नजर रखते हुए उसे अपने नियंत्रण में एक ट्रस्ट का रूप दे दिया। इस ट्रस्ट के लिये नया बोर्ड गठित हुआ। श्यामाकांत भी इस बोर्ड का एक सदस्य बना। कांति बाबू को जमानत पर रिहा किया जा चुका था। सरकार ने मन्दिर से उनका सारा सम्बन्ध तोड़ दिया। मुआवजे के रूप में उन्हें कुछेक हजार रुपये सरकार की ओर से मिल गये। अरविन्द को खुशी हुई थी कि सरकारी नियंत्रण में आ जाने से मन्दिर का भविष्य सुनिश्चित हो गया। उसे भी मन्दिर के उत्तरदायित्व से मुक्ति मिल गई। सरकार की ओर से दबाव पड़ने पर भी उसने अपना नाम बोर्ड की सदस्य-सूची में नहीं रहने दिया था।

यहाँ पटने में शादी हो जाने के बाद लगातार कई महीनों तक अरविंद एक दूसरी ही दुनिया में उलझा रह गया। उसके लिए यह शादी एक ऐसी खुमारी

रही जिसने उसे आकण्ठ रंगीनो में डुबो दिया। अब तक की जिन्दगी में उसे जितनी थकान और चुभन मिली थी, वह सब मानो सदा के लिए बुझ गई। उसने जो कुछ पाया था वह नीचे से ऊपर तक रसपूर्ण था। उसके प्राणों का सर्वस्व था। शोभा यदि कुछ देर के लिए भी उसके पास नही रहती तो वह बेचैन हो जाता। इस नई जिन्दगी के लिए शोभा एक ऐसी धुरी बनकर प्रकट हुई थी जो अरविंद की गति-विधि का एक मात्र सहारा थी। अब तक अरविंद ने अपनी कल्पनाओं में जिस सम्मोहन की छवि आंकी थी वह सब की सब शोभा के रूप में प्रत्यक्ष हो उठी। कवि को उसकी कविता मिल गई थी। उसके शोक-गीतों की नायिका अब मानो पुनरुज्जीवित होकर चौबीसो घण्टे उसके मन में संगीत की तरह लहरा रही थी। अब तक अरविंद ने पढ़ने को तो बहुत कुछ पढ़ डाला था। किंतु लिखने के नाम पर उसने कुछ शोक-गीतों तथा फुटकर निबन्धो के अतिरिक्त कुछ विशेष लिखा नही था। नई परिस्थितियों में उसके लिए दूसरा कोई काम रह नही गया था। शोभा के सान्निध्य में उसकी कल्पना-शक्ति और सिसृक्षा बलवती हो गई। थोड़े ही दिनों में उसकी लेखनी से आत्मानन्द में पगे प्रेम-गीत और रोमाण्टिक कहानियाँ निस्सृत होने लगी। कहानी के क्षेत्र में उसका आगमन बिल्कुल ही नया था। किन्तु यह क्षेत्र उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा के लिए बड़ा अनुकूल पड़ा। देखते ही देखते उसने ढेर-सी कहानियाँ और कविताएँ लिख डाली। किंतु अब तक यह सब कुछ स्वान्तःसुखाय होता रहा। हाँ, कोई भी कहानी या कविता ऐसी नही थी जिसे शोभा ने अरविंद के मुँह से सुना नहीं हो। अपने पति की रचनाओं की पूरी फाइल शोभा अपने पास ही रखती थी। अरविंद को तो मात्र इतने से सन्तोष हो जाता कि उसकी रचना शोभा को सुना दी गई और बदले में शोभा की आनन्द भरी टिप्पणियाँ भी उसे मिल गईं। किंतु स्वयं शोभा के लिए पति के साहित्य का मूल्य निरन्तर बढ़ता जा रहा था। अरविंद के ना-ना कहते रहने पर भी उसने कुछ समय बाद रचनाओ की प्रतिलिपियाँ खुद तैयार करना शुरू कर दिया। उन्हें वह हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए भेजने लगी। सम्पादकों ने रचनाओ का स्वागत किया। कुछ ही दिनो में अरविंद की लिखी कविताएँ और कहानियाँ धड़ल्ले के साथ पाठकों के बीच आने लगी। धीरे-धीरे हिन्दी के साहित्य-संसार के लिए अरविंद एक नया हस्ताक्षर बनकर उदित हो गया।

अरविंद के प्रच्छन्न कवित्व तथा साहित्यकार को जगाने में शोभा के साथ उसकी शादी का बड़ा योगदान रहा। किन्तु इधर की रचनाओं में कठोर जीवन की ऊष्मा नही थी। अभी अरविंद जिस परिवेश में काम कर रहा था, उसके

लिए यही स्वाभाविक भी था। उसके लोक-गीतों से शोभा को कोई परिचय नहीं था, क्योंकि उसकी फाइल किरण लेती चली गई थी। शादी होने के बाद अरविंद केवल एक बार हनीमून मनाने काश्मीर गया था। किन्तु वहाँ से लौटने के बाद वह अब तक फिर कभी पटने से बाहर कहीं नहीं जा सका था। निर्मला देवी के बंगले में गिरफ्त हुआ-सा वह उसके परिसर से भी बाहर शायद ही कभी आता-जाता था। हाँ, कुछ दिनों तक शोभा के साथ पिक्चर देखने वह अक्सर चला जाता था।

अरविंद की इस गुमारी का अन्त भी नजदीक आ गया। बहुत दिनों के बाद एक दिन उसके मन पर अचानक एक ऐसा झटका लगा जिसने उसे कुछ दूसरा सोचने को मजबूर कर दिया। आज ही सन्ध्या समय विनोद अपनी पत्नी के साथ शोभा के घर आया था। अब तक वह विनोद से कई बार पहले भी मिल चुका था। उसके स्वभाव की तल्खी और अहंकार से भी परिचित हो चुका था। कई बार उसने लक्ष्य किया था कि बातचीत के क्रम में विनोद उसे नीचा दिखाने में गर्व महसूस करता था। खासकर अरविंद के अज्ञात वंश और खानदान पर विनोद की कड़ी चोट रहा करती थी। अरविंद ऐसे मौके पर कुछ बोलना व्यर्थ समझ कर चुप हो जाता था। विनोद उसकी चुप्पी को उसकी बेवकूफी तथा ओछे खान-दान के साथ जोड़ने की कोशिश करता। निर्मला देवी विनोद की ऐसी बातें सुनकर भीतर से तिलमिला जाती थी। शोभा की भी यही हालत थी। किन्तु दोनों में से कोई अरविंद की इच्छा का ख्याल करके विनोद की बातों का प्रतिवाद नहीं कर पाती थी। विनोद के सम्मान में भी कोई कमी नहीं होती थी। अरविंद अब तक अपने बचपन के खलनायक को अच्छी तरह पहचान चुका था। किन्तु उसकी शालीनता और सांस्कृतिक बुद्धि विनोद के विरुद्ध कुछ भी बोलने में रुकावट बन जाती थी।

जब से अरविन्द ने विनोद को सही रूप में पहचान लिया था तभी से एक सहज संस्कारवश वह उसकी तरफ से सतर्क रहने लगा। कभी-कभी उसे विनोद के प्रति सहानुभूति भी होती। ऐसे क्षणों में वह अक्सर सोचता कि शोभा उसी को मिलनी चाहिए थी। उसके साथ सचमुच अन्याय हुआ है। कभी-कभी वह शोभा से भी ऐसी चर्चा कर बैठता। किन्तु शोभा अपने पति का मुँह बन्द करती हुई कह देती कि अरविन्द के साथ उसका सम्बन्ध उसके पूर्वजन्म की तपस्या का ही फल है।

आज कॉफी की चुस्की लेते हुए विनोद ने सबके सामने प्रस्ताव रखा कि स्थानीय सिनेमा भवन में पिक्चर देखने सभी साथ चलें। पिक्चर देखने के बाद

डीनर आज विनोद के घर ही होगा। इसने यह भी बता दिया कि सबके लिए वह पहले से ही 'एडवान्स बुकिंग' करा चुका है। अरविन्द को यह प्रस्ताव अच्छा नही लगा। बिना दूसरे की सहमति के पहले ही टिकट कटा लेना उसे आश्चर्यजनक भी लगा। शादी के बाद वह शोभा के अतिरिक्त किसी दूसरे के साथ पिक्चर गया भी नहीं था। हाँ, शोभा के साथ वह विनोद से मिलने उसके बंगले पर दो-चार बार अवश्य जा चुका था। विनोद का प्रस्ताव सुनकर सामने बैठी शोभा का मुख खिल उठा। उसने आग्रहभरी दृष्टि से पति की आँखों में देखा। पास ही बैठी सुधा ने भी कनखियों से अरविन्द की ओर देखकर उसकी स्वीकृति जाननी चाही। प्रस्ताव रख चुकने के बाद विनोद चुप बैठे अरविन्द की ओर कुछ अजीब नजरों से निहार रहा था। अरविन्द एक साथ इतनी नजरों का बोझ सम्भाल नही पाया। आखिर उसे बोलना ही पड़ा, "ठीक तो है। सबकी इच्छा मेरी भी इच्छा है।"

अरविन्द को सहमति जानकर विनोद ने एक अर्थ भरी मुस्कान के साथ शोभा की ओर देखा। जवाब में शोभा ने भी उसकी ओर देख कर मुस्का दिया। मुस्कानों का यह आदान-प्रदान अरविन्द को न जाने क्यों खटक गया। विनोद और सुधा दोनों को तैयार रहने के लिए कहकर खुद तैयार होकर आने के लिए अपने घर चले गये। इसके बाद अकेले में शोभा ने प्यार भरी नजरों से अरविन्द के उदास चेहरे को देखते हुए कहा, "क्यों जी, साथ चलने से घबड़ा गये!"

"इसमें घबड़ाने की कौन सी बात?"

"तो जल्दी कपड़े बदल कर तैयार हो जाओ। वे लोग तुरत आने को कह गये हैं।"

"मैं तो तैयार ही बैठा हूँ। पायजामा और कुर्ता में हूँ ही। केवल मेरी शाल दे देना।"

"नहीं, आज तुम्हारा यह ड्रेस ठीक नहीं रहेगा," शोभा का स्वर कुछ बदल गया, "आज दूसरों के साथ जो चलना है। वे लोग तुम्हें ऐसे लिबास में देखकर न जाने क्या सोचने लगें। विनोद भैया कितनी भड़कीली पोशाक में रहते हैं, तुम तो देख ही चुके हो।"

अरविंद को पत्नी की यह बात बड़ी अकल्पित लगी। उसके सादे लिबास को लेकर शोभा की पहली आलोचना थी यह। जी में तो आया कि कह दे, तुम चली जाओ, मैं नही जाता। किन्तु अपनी इच्छा-अनिच्छा को पीकर दूसरे को खुश रखने में वह माहिर था। कुछ हँसकर बोला, "पहनावा बदल जाने से आदमी

चार

सिनेमा भवन के केबिन में बैठे अरविंद और विनोद अपनी-अपनी पत्नी के साथ कॉफी की चुस्की ले रहे थे। अभी चित्र शुरू नही हुआ था। सिनेमा भवन की खचाखच भीड में गरम चा, पान-बीड़ी-सिगरेट, टनटन भाजा आदि की ऊँच-नीच आवाजें मुखरित हो रही थीं। आज शुक्रवार होने से चित्र के प्रथम प्रदर्शन में काफी भीड़ थी। तृतीय श्रेणी से लेकर उच्च श्रेणियो की कोई भी सीट खाली नही थी। लोगों की भनभनाहट के समुद्र में फेरीवालों की आवाजें ज्वार-भाटे की तरह चढ-उतर रही थी। अरविंद के दाहिनी ओर शोभा और उसके बाद क्रमश: विनोद और सुधा बैठे थे। अरविंद शरीर और मन दोनों से ही सबसे कतराया हुआ बैठा था। इतनी बार वह सिनेमा आया-गया था। किंतु ऐसी मनहूसी उसे कभी नहीं हुई थी। वह कॉफी की चुस्की लेता अपने मन को सामने बैठे एक अधेड़ उम्र के सज्जन के फुटबालनुमा सिर में उलझाये हुए था। उनके गंजे सिर में एक भी बाल दिखाई नही दे रहा था। कभी-कभी वे जब सिर मोड़कर अपने पीछे देखने लगते तो उनकी बिल्ली की तरह छोटी-छोटी गोल भूरी आँखें झलक जाती थी। सामने के रजत पट से अब एक सस्ता फिल्मी गीत हाल में गूँजने लगा था। जब सब कॉफी पी चुके तो विनोद ने अरविंद की ओर झुक कर अपना चाँदी का सिगरेट केस बढा दिया। जवाब में अरविंद ने दोनों हाथ जोड़कर एक अस्वीकृति-सूचक मुस्कान ली। विनोद पहले से ही जानता था कि अरविंद सिगरेट नही पीता। किंतु अरविन्द की ओर झुककर सिगरेट-केस बढाने में उसका एक विशेष मकसद था। इस प्रकार झुकने से उसका बायाँ कन्धा शोभा के मखमली ब्लाउज में कसे दाहिने कन्धे और उसके कुछ निचले हिस्से से टकरा गया। शोभा ने कुछ पीछे झुक कर अपने को बचाने की कोशिश की। किन्तु बचा नही पाई। शोभा का मात्र इतना स्पर्श पाकर ही विनोद को रोमाञ्च हो आया। उसने खुद सिगरेट सुलगायी और इतमीनान के साथ धुआँ के बादल उडाने लगा। शोभा के नासारन्ध्रों में सिगरेट का सुगन्धित धुआँ बड़ा प्रीतिकर लगा। किन्तु वही बैठे अरविंद और सुधा इस धुएँ से कुछ घबराहट महसूस करने लगे।

"शो में देर हो रही है," विनोद जवान का धुआँ निकालता अपनी सुनहली चेन वाली घड़ी की ओर देखकर बोला, "तीन मिनट ज्यादा हो चले।"

विनोद की बात पर किसी ने कोई टिप्पणी नही की। मानो सभी अपने-अपने मौन में ही रमे हुए थे। कुछ देर बाद हाल की बत्तियाँ एक-एक करके बुझने लगीं। पिक्चर शुरू होते ही हल्ला शान्त हुआ। बीच-बीच में देर से पहुँचने वाले लोग टार्च की धीमी रोशनी के संकेत पर अपनी-अपनी सीट की ओर बढ रहे थे। मानो अँधेरे में अपनी खोई हुई मंजिल टटोल रहे हों। चित्र कई अश्लील दृश्यों से भरा हुआ था। जब भी कोई ऐसा दृश्य सामने आता, दर्शकों की अगली कतारों से सिटकारी की आवाज हाल में गूँजने लगती। ऐसा नहीं कि अरविंद ऐसी आवाजों से अपरिचित रहा हो। किंतु आज न जाने क्यों वह इससे बेचैनी महसूस कर रहा था। पिक्चर में कौन-सा दृश्य आया और कौन चला गया, इस पर उसका तनिक भी ध्यान नही था। शोभा की बात जब-तब उसके मन में चक्कर काटने लगती। नीलम नाम की कोई सम्भ्रान्त कुल की लड़की उसके गाँव की रहनेवाली हो, इस पर उसका विश्वास ठहर नही पाता था। सम्भव है, नये पर उस गाँव में काफी परिवर्तन हुआ हो। बाहर से कुछ नये परिवार वहाँ आ बसे हों, अथवा पुराने परिवारों के आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर में ही बदलाव आ गया हो। उसके समय तो सिर्फ जीवन बाबू का ही ऐसा परिवार था जो उस गाँव के दूसरे छोटे लोगों के बीच एक अलग-थलग टापू की तरह अपनी उच्चता और प्रतिष्ठा सुरक्षित रखे हुए था। विनोद जैसे सम्पन्न युवक की शादी की कल्पना उसके गाँव के किसी दूसरे परिवार के साथ ठीक नहीं बैठती थी।

अचानक सामने पर्दे पर बीहड जंगल में शेर-भालुओं की दहाड़ गूँज गई। जंगल के एक कोने में अपने प्रेमी नायक की प्रतीक्षा में अकेली खड़ी नायिका डर के मारे चीख पड़ी। दूसरे ही क्षण वह अपने सुदर्शन नायक की सुपुष्ट भुजाओं में कस ली गई थी। उसके उन्नत उरोज नायक के रोयेंदार चौड़े वक्ष से घर्षित होने लगे। विनोद अपने कामुक मन का आवेग एवं उद्दीपन सह नहीं सका। उसने शोभा के दाहिने हाथ को उँगलियों को अन्धकार में टटोल कर खोज निकाला और उन्हें अपनी उँगलियों में गिरफ्त करके दबा दिया। उसकी इस हरकत से स्वयं शोभा पर क्या प्रतिक्रिया हुई, इसे वह अँधेरे में देख नहीं सका। किंतु यदि देखता तो पाता कि शोभा के गौर कपोल आरक्त हो गये हैं। वह विनोद के इस व्यवहार से नाखुश होकर भी उसके संवेदनशील स्पर्श से अपने अन्तर्मन में भीग गयी है।........

क्या अरविंद किसी भी दृष्टि से शोभा के योग्य है? यह पुराना सवाल अरविंद के अशांत मन में एक बार फिर कौंध गया। अरविंद अच्छी तरह जानता है

कि शोभा उसके पहनावे के ढंग को, उसके खुरदुरे खादी वस्त्रों को, उसके सिर के खुले बालों को और उसकी अस्त-व्यस्त जीवन-प्रणाली को पसन्द नहीं करती। कई बार वह अपनी यह नापसन्दगी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अरविंद के सामने प्रकट कर चुकी है। हर बार अरविंद उसकी ऐसी भावनाओं को जान कर भी अनदेखा करता आया है। और यह विनोद ?.. आज मानो पहली बार अरविंद किसी दूसरे के सामने ऐसी हीन भावना का शिकार हुआ है। शोभा को खुश करने के ख्याल से उसने जैसे-तैसे अपने शरीर पर रेशमी कुर्ता और चादर जरूर डाल ली थी। किंतु जब विनोद अपनी पत्नी के साथ तैयार होकर आया तो उसके भड़कीले लिबास को देखकर वह दंग रह गया। विनोद नीचे से ऊपर तक क्रीम कलर सूट मे फब रहा था। गले के नीचे सफेद कालर में बँधी चाकलेट रंग की कीमती टाई उसके व्यक्तित्व को और भी दर्शनीय बना रही थी। भरे-पुरे चेहरे पर सिर के बालों की कृत्रिम भंगिमाएँ भी कम मोहक नही थी। उसकी पत्नी का प्रसाधन भी उतना ही आकर्षक था। जब भीतर से तैयार होकर शोभा भी कीमती सिल्क साड़ी के झलमल में अपनी मन्द मुस्कानों की किरणें बिखेरती उस समूह में शामिल हो गई तो रहा-सहा अभाव भी पूरा हो गया। अरविंद को लगा जैसे आज के पहले उसने कभी भी शोभा को इतने उद्दीपक हाव-भाव में नहीं देखा था। शोभा की कार मे बैठकर सभी सिनेमा भवन पहुँचे थे। पत्नी की बगल में बैठे अरविंद को आज पहली बार अहसास हुआ जैसे उसके खुरदुरे वस्त्रों के स्पर्श से शोभा के मक्खन की तरह मुलायम अंग और वस्त्र दोनों को कष्ट हो रहा हो।

"कहिए अरविंद बाबू," अचानक विनोद का स्वर सुनाई पड़ा, "पिक्चर का पहला भाग कैसा लगा ?"

अरविंद ने अकचका कर देखा कि बत्तियाँ जल गई है और मध्यान्तर का शोर-गुल शुरू हो गया है। कुछ झेंपता हुआ-सा बोला, "बड़ा अच्छा तो !"

"किंतु डाइरेक्शन ठीक नही लगता," विनोद सिगरेट सुलगाता हुआ बोला, "रोमांस के सीन ठीक से खुल नही पाये है। हीरोइन के योग्य हीरो नहीं है। हीरोइन जहाँ इतनी अप-टू-डेट और सुन्दर है, वहाँ हीरो गँवार और मनहूस जैसा लगता है। कि नही ?"

"सो तो ठीक है," अरविंद अब भी कोई दूसरी बात सोचता हुआ बिना किसी प्रतिवाद के बोल गया।

"किन्तु मुझे तो हीरो और उसका पार्ट दोनों ही अच्छे लगे," न जाने कैसे सुधा के मुँह से बात निकल गई।

"तुम्हारे अच्छा या बुरा लगने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं," विनोद चुभ कर कड़े लहजे में बोला, "जिस स्टैण्डर्ड का आदमी, उसी स्टैण्डर्ड की आलोचना!"

"भाई तो ठीक ही कहते हैं भैया," शोभा ने सुधा का पक्ष लेते हुए कहा, "मुझे खुद भी तो ऐसा ही लगा। इसमें बुरा मानने की कौन सी बात है?"

विनोद फिर कुछ नहीं बोला। भीतर ही भीतर कुछ बुदबुदा कर रह गया। भरे समाज में किये गये इस अपमान से सुधा को रुलाई-सी आने लगी। आत्मग्लानि को छिपाने के लिए वह चुपचाप सिकुड़ी बैठी रही। अरविंद को यह समझते देर नहीं लगी कि पति-पत्नी में ठीक से पटती नहीं है। उसे मन ही मन शोभा पर झल्लाहट भी हुई। उसी के चलते आज उसे सिनेमा आना पड़ा था। नहीं तो अपने या दूसरे के विषय में ऐसी भद्दी स्थिति का मुकाबला ही नहीं होता। अरविंद के ना कहने पर भी विनोद ने दुबारे कॉफी का आर्डर दे दिया था। कॉफी आ जाने पर शोभा ने ट्रे में से कप उठा-उठा कर सबके हाथों में थमा दिया। कॉफी पीने के ही क्रम में चित्र पुनः शुरू हो गया। सुधा ने अँधेरे में अपने कप को धीरे से एक तरफ रख दिया। वह एक बूंद भी कॉफी नहीं पी सकी।

जैसे तैसे चित्र का समापन हुआ। हाल से बाहर निकलने की रेल-पेल शुरू हो गई। भीड़ कुछ छँट जाने पर विनोद और अरविंद अपनी-अपनी पत्नियों के साथ बाहर आये। बाहर की ताजी हवा और खुली रोशनी अरविंद को ऐसी सुखकर प्रतीत हुई मानो उसने इन चन्द घड़ियों को किसी जेल की मनहूस दीवारों के भीतर काटा हो। अब यहाँ से सीधे विनोद के घर डीनर पर जाना था। अरविंद के लिए यह नई आफत थी। कार में बैठते समय अरविंद ने लक्ष्य किया कि विनोद की पत्नी का चेहरा उतरा हुआ है। वह दूसरों की दृष्टि से अपने को बचाना चाहती है। अरविंद अब विनोद की पत्नी को कुछ खोज-भरी दृष्टि से देखने लगा था। जितना वह देख सका था, उतने से उसके मन को कोई कुंजी मिल नहीं पाई थी।

विनोद के बँगले पर पहुँचते-पहुँचते रात के साढ़े नौ बज गये। गेट के भीतर अरविंद के नीचे उतरते ही विनोद लपक कर उसकी ओर बढ़ा। उसका हाथ पकड़ कर आदर के साथ बोला, "आइये अरविंद बाबू, तशरीफ ले चलिए। यहाँ सब कुछ आपका है। किसी बात से बुरा न मानेंगे।"

"यह क्या कहते हैं आप ?" अरविंद मुस्काता हुआ बोला, "आप तो मेरे बड़े भाई हैं। आपकी किसी बात से बुरा मानने का सवाल ही नहीं उठता।"

धीरे-धीरे विनोद के पीछे-पीछे सब लोग सजे-सजाए ड्राइंग रूम में आ गए। विनोद ने सबको गद्दीदार कुर्सियों पर बिठा दिया और खुद भीतर चला गया। कुछ देर में शोभा भी भीतर गुसलखाने की ओर बढ़ गई। इसके लगे बाद सुधा 'मैं तुरत आई' कहकर शायद खाने-पीने का प्रबन्ध करने अन्दर चली गई। अब अरविंद वहाँ अकेला रह गया। उसने अत्याधुनिक ढंग से सजे ड्राइंग-रूम में सरसरी निगाह दौड़ाई। एक तरफ गोदरेज की चार नई आलमारियों में सुनहली जिल्द से बँधी कानून की मोटी-मोटी पुस्तकें और पत्रिकाएँ शीशे से झाँक रही थी। कोने में एक छोटे टेबुल पर सुन्दर रेडियो सेट पड़ा था। सोफासेट के बीच में मनोरम शिल्प वाली मेज पर हाथ का बना कलात्मक मेजपोश बिछा था। बीच में सुन्दर अक्षरों में स्वागतम् लिखा हुआ था। स्वागतम् के पास ही पीतल के चमचमाते गुलदस्ते में करीने से कुछ ताजे फूल और क्लोरोटन की पत्तियाँ रखी थी! मेजपोश के एक कोने में अंग्रेजी के छोटे अक्षरों में शायद किसी का नाम कढ़ा हुआ था। अरविंद कौतूहलवश कुछ आगे की ओर झुककर नाम के अक्षरों को पढ़ने लगा—'सुधा!' उसकी आँखों को विश्वास नहीं हुआ। दुबारे-तिबारे और फिर कई बार उन पाँच अक्षरों को वह पढ़ता रह गया। सुधा ही तो लिखा था। एकाएक उसे लगा जैसे कमरे की दीवारें नाचने लगी हों और उसके शान्त मन में कहीं से आँधी का कोई प्रबल झोंका घुस आया हो। कुछ ही क्षणों के बाद उसने अपने को सँभाल लिया। सुधा नाम की कई लड़कियाँ हो सकती हैं। इसमें चौंकने की बात ही क्या है! फिर वह तन कर बैठ गया और सिर को कुर्सी पर टेक कर कमरे की छत की ओर खोई-खोई नजरों से देखने लगा। न जाने कब तक वह ऐसी स्थिति में रहा। अचानक सुधा की आवाज आई, "आप यहाँ अकेले बोर हो रहे हैं। क्षमा करें, हमें भीतर कुछ देर हो गई।"

"कोई बात नहीं भाभी," अरविंद सीधा होकर बोला, "शोभा को नहीं देख रहा हूँ?"

"जी, भीतर ही हैं," सुधा अरविंद के मुख से भाभी सम्बोधन सुनकर कुछ लजाई-लजाई-सी बोली, "अभी आती ही होगी। भोजन तैयार रखा है। उनके आने भर की देर है।"

अरविंद ने सामने बैठी सुधा पर पुनः एक खोज-भरी दृष्टि डाली। कुछ देर में उसकी नजरें झुक गयी। छाती जोरों से धड़कने लगी। अपने को काबू में रखते हुए बोला, "आपलोगों का बँगला सचमुच सुन्दर है।"

"जी, कोई खास बात तो नहीं," सुधा अपने आँचल को ठीक करती हुई बोली, "नया मकान है। कुछ साफ-सुथरा जरूर है।"

"और यह मेजपोश शायद आप ही के हाथ की कारीगरी है न ! बड़ा सुन्दर उतरा है।"

"जी, है तो मेरा ही बनाया हुआ", सुधा अरविंद के मुख से अपनी कला की तारीफ सुनकर प्रफुल्ल होती हुई बोली, "बचकाना प्रयास है। फूल साफ नही उतरे हैं।"

"किंतु इसमें तो सुधा नाम दिया हुआ है," अरविंद जिज्ञासा के स्वर में बोला, "आपका नाम तो शायद नीलम जी है न ?"

"मेरा घर का नाम सुधा ही है," सुधा लजाती-लजाती बोली, "नीलम तो—यह बनावटी नाम है मेरा।"

"अच्छा !" अरविंद के माथे पर जैसे किसी ने एकाएक हथौड़े की चोट कर दी हो। बोला, "सुना है, आप बिलासपुर की रहने वाली हैं। यह कौन बिलासपुर है ?"

"यह सारन जिले का एक गाव है," सुधा अपने सम्बन्ध में अरविंद की जिज्ञासा से कुछ चकित होकर बोली, "यह एन० ई० आर० के माँझी स्टेशन से करीब दो मील के फासले पर पड़ता है। आप कभी उधर गये हैं क्या ?"

"वही !" अरविंद के मुख से अनायास निकल गया। उसके कानों में सुधा के शेष शब्द गये भी नही। माथे पर पसीने की बूंदें उतर आयीं।

सुधा अरविंद की बेचैनी को नही भाँप सकी। किंतु अपनी बातों के जवाब में 'वही' शब्द की सार्थकता भी नही समझ पाई। उसने फिर कुछ पूछना चाहा, किंतु अरविंद की उखड़ी हुई सूरत देखकर उसे हिम्मत नही हुई। जाने-अनजाने उसके मन में अरविंद के प्रति अगाध श्रद्धा पनप गई थी। पत्र-पत्रिकाओं में जब तब उसे अरविंद की रचनाओ को पढने का कई बार मौका मिला था। उसके कथा-शिल्प से वह बहुत काफी प्रभावित होती आई थी। आज पिक्चर जाने से पहले और बाद में भी विनोद और अरविंद के बीच जो बातें हुई थी, उन्हें उसने ध्यान से सुना था। विनोद के लहजे से वह समझ गई थी कि विनोद अरविंद को अपमानित करना चाहता है। अरविंद जैसे सहृदय और सरल प्रकृति के व्यक्ति के प्रति अपने पति की व्यंग्य भरी बातों को वह सह नही पाती थी। उसका हृदय जल उठता था। किंतु यह जलन कोई नई चीज तो थी नही। अब तक वह इसकी अभ्यस्त हो चुकी थी। शोभा और अपने पति के परस्पर रिश्ते को लेकर उसका

सन्देह बना ही रहता। अरविंद की शादी के कुछ दिनों बाद से ही उन दोनों के सम्बन्ध में जैसे कोई सैलाब उमड़ने लगा था। सम्भव है, शोभा के चलते ही विनोद को अरविंद नही रुचता हो, सुधा ने इस ढंग से भी कई बार विचार किया था। यों पटने में अब तक शोभा ही एक ऐसी लड़की थी जो उसके घर अक्सर आती रहती थी। उससे सुधा की अच्छी दोस्ती भी हो गई थी। शायद इसीलिये वह किसी बात के लिए शोभा को दोषी ठहराना भी नही चाहती थी। विनोद पहले तो उसे शोभा के घर ले जाने में हिचकता था। किंतु इधर कुछ दिनों से बात बदल गई थी। सुधा को साथ लेकर एक-दो रोज पर वह शोभा के घर जाने लगा था। सुधा की नजरों में अरविंद देखने में जितना ही सौम्य था, बातचीत में उतना ही गम्भीर और गहरे अनुभवों का आदमी लगता था।

"माफ कीजिएगा अरविंद बाबू," विनोद ने अचानक कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "कपड़े बदलने में जरा देर हो गई। खाना तो तैयार ही है। किन्तु मेरा विचार है कि डीनर लेने के पहले शोभा से कोई गीत सुना जाए। आपकी क्या राय है?"

अरविंद की भावनाएँ अब तक जड़-सी हो गई थी। उसने जड़ दृष्टि से ही एक बार विनोद की ओर देखा और कह दिया, "जैसी आपकी इच्छा।"

विनोद ने तुरत ड्राइंग रूम से संलग्न दूसरे कमरे में संगीत की व्यवस्था करा दी। सब लोग वहीं जाकर बैठ गये। फर्श पर मखमली कालीन बिछा दिया गया। एक हिस्से में तीन बड़े मसनद लगे हुए थे। एक तरफ हारमोनियम, तबला और सितार लाल रंग के खोल में ढके रखे थे। विनोद स्वयं हथौड़ी से तबले का बोल ठीक करने लगा। सबके यथास्थान बैठ जाने पर भी अब तक शोभा भीतर से नही आई थी। विनोद का इशारा पाकर सुधा अन्दर गई और शोभा को खींच लाई। शोभा का चेहरा बेतरह उतरा हुआ था। यदि दिन का प्रकाश होता तो उसके मुखड़े का पीलापन आसानी से प्रकट हो जाता। वहाँ पहुँचते ही बिना किसी की ओर देखे वह बोल पड़ी, "आज यह सब कुछ नहीं चलेगा। मैं गीत नही गा सकूँगी।"

"आखिर क्यों? यह कैसा तमाशा है!" विनोद कुढ़ता हुआ बोला, "सबकी इच्छा है। एक छोटा-सा भी गीत सुना दो।"

"जी नही, माफ करें," शोभा के स्वर में दृढ़ता थी। वह खड़ी की खड़ी ही रही।

"पहले बैठिए तो सही," सुधा शोभा को जबरन नीचे बिठाती हुई बोली, "मान करने का यह समय नहीं है। कुछ गा दीजिए न !"

किन्तु शोभा सिर झुकाए अब भी खामोश बैठी रही। अब तक सामान्य दर्शक की तरह चुप बैठा अरविंद मानो सोते से जगकर बोला, "कुछ गा देने में क्या हर्ज है शोभा !"

सबकी नजरें अरविंद की ओर मुड़ गयी। उसका चेहरा एकाएक कठोर हो चला था। शोभा बिना कुछ बोले कुछ सोचती रही। फिर तुरत ही अपनी ओर हारमोनियम खींचकर अपनी आवाज ठीक करने लगी। विनोद तबले पर संगत करने लगा। कुछ ही देर में शोभा की करुणाभरी आवाज संगीत के सुरीले स्वर में कमरे में गूंजने लगी—

"पीर भी अपनी न अपनी हो सकी !
हास जिनके थे उन्होंने ले लिये
आँसुओं की भीख से झोली भरी
मूक अन्तर की व्यथा तो सह गई
पर, अचानक बह गई उनकी झड़ी
जिन घटाओं को दुलारा रात-दिन
मै न उनसे भी जलन यह धो सकी !"

हारमोनियम के स्वर पर नाचता-थिरकता शोभा का स्वर-माधुर्य अपना रंग जमा कर रहा। ऐसा लगा, मानो कोई नीरव वेदना स्वरों में मूर्त हो गई हो। गीत की कड़ियाँ अरविंद की ही थी जो कुछ दिन पहले एक प्रमुख हिन्दी मासिक के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुई थी। इस गीत को अरविंद ने अपनी शादी के पहले ही लिखा था। अपने ही गीत को शोभा के ललित कण्ठ से सुनकर अरविंद की आत्मा में एक अजीब बेचैनी छा गई। उसे आश्चर्य भी हुआ कि चहकने-फुदकने वाली शोभा के स्वर में आज अचानक वेदना की यह टीस, अनुभूति की यह तन्मयता कहाँ से उतर आई। श्रोताओं में केवल विनोद ही ऐसा था जो शोभा को खुलकर शाबाशी दे सका। शेष तीनों चुप रहे। शायद इनमें से प्रत्येक अपनी-अपनी पीड़ाओं में डूबा हुआ था।

गीत समाप्त होते ही सुधा वहाँ से उठकर भीतर चली गई। शोभा ने भी उसका अनुसरण किया। विनोद और अरविंद दोनों ड्राइंग रूम में आ विराजे। गीत सुनकर उठते समय अरविंद को लगा जैसे उसकी नसों में शक्ति की कोई बूंद शेष नहीं रह गई हो। उसका आर्त अन्तर चीत्कार कर उठा—प्रभो, यह कहाँ लाकर

रख छोड़ा है मुझे। इतना सोचते ही अरविंद की आँखें गीली हो गईं। वह तुरत उठकर बाथरूम गया और वाशबेसिन के सामने जल से अपने चेहरे को साफ किया। कुछ प्रकृतिस्थ होने पर बाहर आया और सजे हुए डाइनिंग टेबुल के सामने एक कुर्सी पर धसक कर बैठ गया।

पाँच

जब शोभा पति के साथ विनोद के घर से वापस आई तो रात के साढ़े दस बज रहे थे। रास्ते भर दोनों अपनी-अपनी उलझनों में डूबे हुए गुम-सुम अपने घर तक आए थे। घर पहुँचने पर शोभा के लिए सोने के सिवा कोई दूसरा काम नहीं था। अरविंद प्रायः रात के बारह बजे तक कुछ लिखता-पढ़ता था। किंतु आज वह भी इस मूड में नहीं था। पति-पत्नी दोनों अपनी पोशाक बदल कर सोने आ गये। एक सजे-सजाये कमरे में पास-पास लगे दो पलंगों पर दोनों के गुलगुले बिस्तर बिछे थे। अरविंद से पूछकर शोभा ने कमरे की बत्ती गुल कर दी। फिर वह अपने बिस्तर पर एक अपार थकान से चूर होकर पसर गई। जब से उसकी शादी हुई थी, उसकी गति-मति में ऐसी जड़ता कभी नहीं उतरी थी। शुरू से ही लाड़-प्यार पाते रहने के कारण जीवन की विषम परिस्थितियों से होड़ लेने का कोई अनुभव उसे अब तक नहीं हुआ था। सुख के पलने पर ही झूलती आई थी वह। शायद इसीलिए उसका हृदय आवेशों, आवेगों तथा कुछ मीठे स्वप्नों के ताने-बाने से तैयार हुआ था। जमकर कोई विचार कर लेना अथवा उचित-अनुचित का सही निष्कर्ष निकाल लेना उसने सीखा ही नहीं था। विनोद से भीतर ही भीतर वह कितनी गहराई से जुड़ी हुई थी, इसका अहसास तो उसे अब, अपनी शादी के बाद होने लगा है। विनोद नास्तिक भले हो, किंतु प्रेम के महत्व को समझता है। उसे यह कला भी मालूम है कि अपने प्रिय पात्र को कैसे खुश रखा जा सकता है और यह अरविंद? निश्चय ही इसके उच्च आदर्शों तथा पवित्र विचारों के आकर्षण ने शोभा की विचार-धारा ही बदल दी थी। इसी के चलते कुछ समय के लिए जैसे वह अपना होश-हवाश गवाँकर अरविंद के प्रति समर्पित हो गई। बाद में उसे पति भी बना लिया। उस समय वह समझ नहीं पाई कि

केवल ऊँचे खयालों के चलते कोई व्यक्ति शोभा जैसी लडकी का पति नहीं हो सकता। अरविंद अपने विचारों की दुनिया मे ही खोया रहता है। प्रेम को परम पवित्र चीज मानता है। किंतु इससे तो प्रेम की मासल अनुभूति हो नही सकती। शोभा जहाँ प्रेम की असलियत से चिपकी रहना चाहती है वहाँ अरविंद उसके आदर्श के आकाश में उड़ा करता है। शायद इसीलिए परम मिलन के क्षणों में भी वह शोभा को पूरा-पूरा दे नही पाता है। न शोभा ही उसे सर्वांशतः स्वीकार कर पाती है। समय बीतने के साथ वह अरविंद से कटती चली जा रही थी। इसे वह मन ही मन समझती है। किन्तु अन्तरतम मे बढ़ता हुआ यह दुराव अभी तक उसके शब्दों अथवा पति के प्रति उसके व्यवहारों में प्रकट नही हुआ है। पति के प्रति अपने कर्तव्यों में उसने कोई ढील नही होने दी है।

किंतु आज अचानक जैसी बाते हो गईं, शोभा इसके लिए कभी तैयार नही थी। अपनी शादी के बाद वह विनोद को कभी-कभार अकेले में मिल जाती थी। ऐसे समय विनोद उसे अपना आकर्षण देने से बाज नही आता था। किंतु शोभा ने अपने दाम्पत्य की मर्यादा भंग होने नही दी थी। लेकिन आज यह सब क्या हो गया ? ..... शोभा को बहुत चाहने पर भी नीद नही आ रही थी। न चाहते हुए भी अभी कुछ घंटे पहले की बातें उसके मन में घुमड़ रही थी। विनोद के बंगले पर जब वह बाथरूम में चली गयी थी तो स्वयं विनोद वहीं बाहर खड़ा-खड़ा उसकी बाट जोह रहा था। उस समय सुधा अरविंद के नजदीक ड्राइंग रूम में बैठी थी। विनोद की दाई और नौकर भीतर रसोई घर में थे। बाथ-रूम से बाहर आने पर सामने खड़ा विनोद उससे बोला था, "मेरे कमरे में थोड़ी देर के लिए चलो शोभा। तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी है।"

इसके बाद शोभा जिज्ञासावश विनोद के पीछे-पीछे उसके निजी कमरे में पहुँची। पिक्चर जाने की तैयारी मे शोभा ने, न जाने क्यो, अपनी सजावट में कोई कोर-कसर नही रहने दी थी। उसे खुद भी अचरज हुआ था अपने अपूर्व प्रसाधन पर। पति के साथ पिक्चर जाते समय उसने शायद ही कभी रूज या लिपस्टिक का प्रयोग किया हो। किंतु आज तो नीचे से ऊपर तक उसने अपने को अप्सरा ही बना लिया था। शायद वह सुधा के सौन्दर्य से होड़ लेना चाहती थी। उसे नीचा दिखाना चाहती थी। चलते समय जब उसने अपने वस्त्रों पर एक कीमती विदेशी सेन्ट लगाया तो उसकी भीनी महक से स्वयं उसकी घ्राणेन्द्रिय उद्दीपित होने लगी थी। पता नही, आज दूसरों पर उसके रूप का जादू कितना असरदार रहा होगा। किंतु कम से कम एक तो उसके असर में आ ही गया था। जब वह विनोद के कमरे में पहुँची तो विनोद उसके सामने खड़ा होकर भावाविष्ट-सा उसे

एकटक निहारने लगा। शोभा जब तक कुछ पूछे, उसने झट से उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। एक लुभावनी मुस्कान के साथ बोला, "आज मुझे अपनी डार्लिंग उर्वशी मिल गई है। इसे पाने के लिए मैं कब तक तड़पता रहूँगा ?"

शोभा एकाएक कुछ ठीक से समझ नहीं पाई। जब तक वह अपनी स्थिति को समझ पाती, विनोद ने उसे हठात अपनी बाहों में भर लिया। यह स्थिति ज्यादा देर तक नहीं रही। किंतु उतनी देर के लिए शोभा जैसे संज्ञाहीन-सी हो गई। शायद वह खुद भी अपने अन्तरतम में कुछ ऐसा ही चाहती थी। इसीलिए तो उन क्षणों में वह भूल गई कि वह किसी दूसरे की पत्नी है। अपनी स्थिति का बोध होते ही वह विनोद को झिटक कर उससे अलग हो गई। हाँफती हुई बोली, "यह तुम क्या कर रहे हो ? मेरी कमजोरियों को उभारने से तुम्हें कौन-सा सुख मिल रहा है ? दया करके मुझे कलंकित होने से बचाओ !"

"डरो मत शोभा," विनोद भी हाँफता हुआ बोला, "कलंकित तो तुम कब की न हो चुकी हो। अपने को मुझसे छिपाकर और दूर रखकर अपने को और अधिक कलंकित मत करो। तुम अब भी मेरी हो। इसे भूलो मत।"

इतना कहकर विनोद शोभा या अपनी स्थिति से लापरवाह-सा कमरे से बाहर हो गया। शोभा कुछ देर वहीं खड़ी-खड़ी हाँफती रही। अपने आवेशों पर काबू करने की चेष्टा करती रही। लगा जैसे न तो वह अब एक कदम चल सकेगी और न किसी को अपना मुँह ही दिखा सकेगी। सब ओर से थकी-हारी-सी वह जैसे अपनी समझ-शक्ति भी गँवा बैठी। एकाएक उसकी आँखें वेग से भर आईं। यदि कुछ देर बाद उसे लेने के लिये वहाँ सुधा नहीं आ जाती तो पता नहीं, वह और कितना रोती। सुधा पर नजर पड़ते ही उसका हृदय आत्मकुत्सा की भावना से भर उठा। लगा जैसे सुधा ने उन दोनों का प्रेमव्यापार अपनी आखों से देख लिया हो। उधर भोली सुधा ने कमरे में जाते ही शोभा के उतरे हुए चेहरे तथा उसकी आँसू-भरी आँखों को देख लिया। किन्तु वह यही समझी कि दोनों भाई-बहन में किसी बात को लेकर झड़प हो गई होगी। अक्सर वह दोनों को खास-खास मुद्दे पर लड़ते-झगड़ते देख चुकी थी। प्यार से मुस्काती हुई शोभा के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर बोली वह, "इतनी ही देर में इतना सारा झगडा! खैर, अब तो मान जाइये। वहाँ आपका गीत सुनने के लिए मजलिस जमी हुई है। चलिए, अधिक मान मत कीजिए !"

"नहीं भाभी," शोभा कुछ आश्वस्त-सी होकर बोली, "आज मैं गीत गाने से रही। मुझे छोड़ दीजिए।"

लेकिन सुधा हार मानने वाली नहीं थी। वह उसे घसीटती हुई-सी उस कमरे

में ले गई जहाँ विनोद और अरविंद कालीन पर आमने-सामने बैठे थे। अरविंद पर नजर पड़ते ही शोभा का जी कांप गया। मन बेतरह घबड़ा गया।

तब से लेकर इस समय सोने तक वह अरविंद से दबी जबान में एक-दो जरूरत की बात ही कर सकी थी। पिक्चर जाने के समय से लेकर वहाँ से घर लौटते समय तक अरविंद की गम्भीरता तथा अन्यमनस्कता को वह अपने ही अपराधों के अर्थ मे ग्रहण कर रही थी। बिस्तर पर पड़ी-पड़ी वह करवट पर करवट बदलती रही। आँखों की नींद न जाने कहाँ उड़ गई थी।

पास ही सोया अरविंद एक दूसरी ही चिंता में डूब-उतरा रहा था। नीद उसे भी नही आ रही थी। पिक्चर जाने से लेकर विनोद के घर जाने तक शोभा से जो छोटी-बडी गलतियाँ हुई थी, अरविंद का अभी उन पर ध्यान ही नही था। उसे तो अभी यही अच्छा लग रहा था कि शोभा उसका मौन तोड़ नहीं रही है। उसे अपने मन की कड़ियो को सहेजने के लिए मुक्त छोड़ दिया है। अरविंद अब एक ऐसे चौराहे पर अनायास आ पहुँचा है जिसके विषय में उसने कल्पना तक नही की थी। विनोद की पत्नी सुधा ही है। अब इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नही थी। उसकी दाहिनी आँख के ऊपर जो छोटा-सा काला दाग है, वस्तुतः आज ही अरविंद उसे ठीक से देख पाया। यह तो वही निशान है जिसे बचपन में उसने अपनी ईख की पतली छड़ी से सुधा के उज्ज्वल ललाट पर बना दिया था। हाँ, ठीक वैसी ही मुस्कान, वही आँखें और वही सौम्य मुखडा। केवल सुधा का सुविकसित शारीरिक गठन ही जैसे पहले और अब में कुछ भेद उपस्थित कर रहा है। किन्तु यदि वह सुधा ही है तो इससे अब क्या होने-जाने को है ? दोनों दो पथ के राही, दो भिन्न परिस्थितियों की उपज। बचपन में दोनों एक दूसरे के लिए चाहे जैसे भी चहेते रहे हों, अब उससे क्या लेना-देना ! अरविंद के गाँव के लोग तो उसे मरा हुआ समझते ही हैं। सुधा ही उसे क्यों जिन्दा समझती होगी ? यदि उसकी नजर में अरविंद जिन्दा भी रहता तो बचपन और जवानी की अलग-अलग परिस्थितियों में सुधा निश्चित रूप से उसे भूल जाती। अब दोनों में परस्पर मिलन की न तो कोई सम्भावना बची हुई है और न ऐसा सोचना ही उचित है। सुधा विनोद की है और उसी की होकर रहेगी। शोभा को भाग्य के खेल से अरविंद मिल गया। यह ठीक नहीं कहा जा सकता। किन्तु सुधा विनोद जैसे लड़के से ब्याही गई है। यह उसके सुख के लिए सर्वथा उचित है।

और यह शोभा ?..... अरविंद का ध्यान जैसे ही शोभा की ओर मुड़ा, उसके कर्ण-कुहरों में मन्द-मन्द सुबकने की आवाज तिरती चली गई। उसने कुछ

और ध्यान देकर सुना। शायद शोभा रो रही थी। तब उसे लगा जैसे शोभा की उस अज्ञात पीड़ा का कारण खुद वही है। उसी के चलते तो शोभा का हरा-भरा जीवन वीरान होता जा रहा है। आज तक वह शोभा को कौन-सा सुख दे पाया है ? आखिर वह ससुराल के अन्न-पानी पर कब तक पोषित होता रहेगा ? विनोद की तरह इसका कोई अपना घर भी तो नहीं जहाँ वह अपनी प्यारी पत्नी को रख सके। उसकी तरह इसकी कोई जीविका भी तो नहीं जो इसे शोभा का 'भर्ता' बना सके। कब तक चलती रहेगी उसकी यह गुलामी ?.... नहीं-नहीं, कुछ तो करना ही है। खुद के लिये न भी किया जाये। किन्तु शोभा के लिए कोई उपाय करना ही होगा।

अरविंद अपनी जगह से खिसक कर शोभा के नजदीक आ गया। अन्धकार में उसके सिर को टटोल कर उसे अपनी छाती से चिपकाता हुआ करुणा-विगलित स्वर में बोला, "आखिर हुआ क्या शोभा ! इतनी रात को यह सिसकी कैसी ?"

शोभा कुछ नहीं बोली। हाँ, पति के स्निग्ध वक्ष का सहारा पाकर उसके धीरज का बाँध एकाएक टूट गया। वह बिना कुछ बोले वहीं सिर टेके रही और आँसुओं की वर्षा करती रही। जैसे वह आँसू बहा-बहा कर ही अपने मन की सारी कालिमा धो डालेगी और पति के हृदय से सदा-सदा के लिए चिपकी रह जाएगी। अरविंद भी चुपचाप उसकी करुण सिसकियों को सुनता रह गया। केवल उसकी प्यार-भरी उँगलियाँ शो.ा के सिर के बालों मे थिरकती रही। उन्हें अपनी संवेदना देती रहीं। जब शोभा कुछ आश्वस्त हुई तो अरविंद ने एक लंबी साँस लेकर अपना मौन भंग किया, "जानता हूँ शोभा, तुम्हें मेरे चलते बड़ी तकलीफ है।"

"ऐसा मत कहो," शोभा पति की देह से और भी चिपकती हुई बोली, "तुम तो देवता हो। तुम्हारे देवत्व से हा घबड़ा जाती हूँ। अपने को वहाँ तक उठा नहीं पाती।"

"किंतु यदि मैं सचमुच देवता हूँ तो मुझे खुद से नफरत है," अरविंद गंभीर पड़कर बोला, "यह देवता तुम्हारी स्वाभाविक इच्छाओं का दमन कर रहा है। यदि मैं तुम्हारे लिए साधारण-सा आदमी बन जाता तो यही मेरी सिद्धि होती।"

"आज यह सब कुछ मत कहो," शोभा अपने गीले स्वरों को सँभालती हुई बोली, "आज तो तुम यही कहो कि तुम मुझे छोड़ोगे नहीं। मुझे ऐसा कोई मौका नहीं दोगे कि मैं एक क्षण को भी तुम्हें भूल जाऊँ, अपनी कमजोरियों की शिकार हो जाऊँ। मैं तो बहुत ही कमजोर हूँ अरु, बहुत ही दुर्बल !"

पत्नी की सहृदय बातों को सुनकर अरविंद का दिल मोम की तरह पिघल गया। शोभा को उसने अपनी भुजाओं में बाँध लिया। उसके अधर पर लगातार प्रेमोच्छ्वसित चुम्बन जड़ते हुए भावविह्वल स्वर में बोला, "मैं सदा का तुम्हारा हूँ प्रिये! हमेशा तुम्हारा ही रहूँगा। कमजोर तो प्रत्येक इनसान होता है। तुम कमजोर हो तो मैं कहाँ का बलवान हूँ ?"

"ठीक है," शोभा अपने मुँह के पास पति की गर्म-गर्म साँसों का सुखद स्पर्श अनुभव करती हुई बोली, "किन्तु कमजोरी-कमजोरी मे अन्तर तो होता ही है। एक कमजोरी वैसी होती है जिससे आदमी कुछ सीखता है और नई ताकत हासिल करता है। एक कमजोरी होती है जो हमें अविवेक की गहरी खाई में गिरा देती है।"

"हर कमजोरी की अपनी कुछ अच्छाइयाँ और बुराइयाँ होती हैं," अरविंद बात को स्पष्ट करता हुआ बोला, "कमजोरी तो कमजोरी ही होती है। हर कमजोरी हमारे लिए कोई न कोई सबक छोड़ जाती है।"

"अच्छा, यह तो बताओ अरू," शोभा अब कुछ शान्ति का अनुभव करती हुई बोली, "शरीर बलवान है या मन ? मन कोई पाप कर बैठे तो उसकी ओर ध्यान भी नहीं जाता। किंतु यदि शरीर से कोई गलती हो जाये तो वह खुद अपनी अथवा पूरे समाज की नजर में खटकने लगता है। ऐसा क्यों ?"

"शरीर मन की अपेक्षा निश्चित रूप से छोटा और कम महत्व का है। एक स्थूल है तो दूसरा सूक्ष्म। एक गोचर है तो दूसरा अगोचर। अगोचर सूक्ष्म गोचर स्थूल की अपेक्षा सर्वदा और सर्वत्र बलवान रहा है और रहेगा। मन चूँकि अत्यंत सूक्ष्म है, अतः उस पर समाज की पहुँच नहीं हो पाती है। यही वजह है कि उसका कोई भी पाप आसानी से पचा लिया जाता है। किंतु स्थूल शरीर के अच्छे या बुरे व्यापार तो प्रायः समाज की नजरों से बच नहीं पाते। इसीलिए शरीर में पनपे विकारों को समाज आसानी से पकड़ लेता है।"

"एक बात और बताओ अरू," शोभा अपने मन की गुत्थी का समाधान ढूँढ़ती हुई बोली, "मान लो, मैं शरीर से तुम्हारी हूँ और मन से किसी दूसरे की। तो क्या मैं तुम्हें छोड़कर उसी के पास चली जाऊँ ? तुम तो शरीर से मन को महत्व दे रहे हो न ?"

"प्रश्न बड़ा टेढ़ा है तुम्हारा," अरविंद कुछ मुस्काकर बोला, "किंतु इसे इस तरह समझो। मन न केवल शरीर से बल्कि पूरे समाज से ही आगे-आगे चलता है। शरीर और समाज दोनों एक बन्धन हैं, एक नियम हैं। मन की प्रकृति किसी

और दूसरे मित्र उसे जरूर जानते-मानते थे। कुछ स्थानीय साहित्यकारों से भी उसका परिचय हो गया था। ऐसे ही साहित्यकारों में एक थे पण्डित शोभाकांत जी। जाति के कुलीन ब्राह्मण होते हुए भी कट्टर समाजवादी और प्रगतिशील विचारों के थे। प्रान्तीय आर्यसमाज के अध्यक्ष भी थे। अपने आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने एक ऐसी विजातीय विधवा से शादी की थी जिसके पहली शादी से एक बच्ची थी। ये कहीं दूर देहात के रहने वाले थे। किंतु इनके जाति-विरुद्ध आचरण से गाँववालों ने इन्हें जाति से छाँट दिया था। तभी से अपने परिवार के साथ बराबर के लिए पटने में ही बस गये थे। पटने में पुरखों से प्राप्त एक आलीशान मकान था जो इन्हीं के हिस्से में पड़ा। शुरू से ही बड़े उद्यमी, मिलनसार और कुशाग्रबुद्धि के थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण इनका सम्पर्क हर तबके के बड़े लोगों के साथ था, चाहे वे मंत्री हों, विद्वान हों या दूसरे हों। इनकी लिखी आठ-दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। ये पुस्तकें या तो सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित थीं या आर्य-समाज के उद्देश्यों को स्पष्ट करने वाली थीं। इधर कुछ दिनों से पण्डितजी स्वयं प्रकाशक भी हो गए थे। हाल में ही एक अच्छा-सा मुद्रण-यन्त्र मँगाकर स्वतन्त्र प्रेस भी चालू कर दिया था। निर्मला देवी के माध्यम से ही पण्डितजी के साथ अरविंद का परिचय हुआ था। पण्डितजी निर्मला के स्वर्गीय पति कुमार साहब के अन्तरंग मित्रों में थे। जब पहले-पहल अरविंद का उनसे परिचय हुआ तो उन्होंने अपने व्यक्तित्व की छाप अरविंद के मन पर छोड़ दी। सिर के पीछे कन्धे तक लटकने वाले बड़े-बड़े बगुला-पंखी बाल, घनी बरौनियों के ऊपर दोनों ओर कोणात्मक रूप में फैला हुआ चौड़ा ललाट, नुकीली नाक और निरन्तर पान खाते रहने के कारण काले पड़े दाँत। मझोला कद, गोरे रंग पर फबती खादी की धोती और कुर्ता, कन्धे पर रेशमी चादर, आँखों पर काला चश्मा और हाथ में बेंत की छड़ी। थोड़े में यही थी पण्डित जी की शख्सीयत। किसी से बातें करते तो लगता कि बराबर मुस्का रहे हों। बातचीत के दौर में अक्सर जम्हाई लेते रहते। हर जम्हाई के समय दाहिने हाथ की उँगलियों को चुट-चुट बजाते। महर्षि नारद की तरह उनका अधिकांश समय इधर-उधर घूमने-घामने या सैर-सपाटे में बीतता। इसलिए दुनिया के हर क्षेत्र की खबर रखते थे। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि किसी भी विषय पर वे साधिकार बोल सकते थे। उनकी बैठक में हर तबके के लोग शामिल होते। हर तरह की चर्चा चलती।

अब तक पण्डितजी से अरविंद की मुलाकात तीन-चार बार हो चुकी थी। इस बीच वे अरविंद की साहित्यिक प्रतिभा के बड़े प्रशंसक हो गये थे। नई पीढ़ी

के साहित्यकारों पर उनका अपार स्नेह रहता आया था। एक बार अरविंद ने उनसे अपनी जीविका का प्रश्न उठा दिया। पण्डितजी कुछ देर मौन पड़े कुछ सोचते रहे। फिर बोले, "हम 'संस्कृति' नाम से एक साहित्यिक-सामाजिक मासिक निकालने जा रहे हैं। प्रधान सम्पादक तो हम खुद रहेंगे, किंतु जरूरत है एक सहायक सम्पादक की। तुम अगर तैयार हो जाओ तो हाथ बँटा सकते हो। तुम्हारे 'समाज सेवा मन्दिर' इत्यादि को लेकर जो व्यक्तिगत अनुभव है, वे इसके सम्पादन में बड़े मूल्यवान सिद्ध होंगे। शुरु-शुरु में मैं तुम्हें ढाई सौ रुपये मासिक दे सकूँगा। विचार कर देख लो।"

अरविंद दो-तीन दिनों तक इस मुद्दे पर सोचता रहा। विचार कर देख लिया कि इस सम्बन्ध में शोभा या निर्मला देवी को अन्त में बताना ही ठीक रहेगा। उसने सम्पादन-कार्य के लिए अपनी स्वीकृति देने का निश्चय कर लिया। पण्डित जी जैसे समाज-सेवी विद्वान तथा सहृदय व्यक्ति के साथ काम करना है। अरविंद के लिए अपने वेतन से अधिक इसी का आकर्षण था।

आज सन्ध्या समय अपनी स्वीकृति देने के लिए अरविंद पण्डितजी के घर पैदल ही चल पड़ा। निर्मला देवी के बँगले से पण्डितजी का घर करीब दो मील के फासले पर था। यदि शोभा उसे इतनी दूर पैदल चलते देख लेती तो नाराज हो जाती। कई बार पति-पत्नी में इसी विषय को लेकर बहस हो चुकी थी। अरविंद को सीधे पश्चिम दिशा में जाना था। ढलते सूरज की तीखी किरणें उसके मुँह पर पड़ रही थी। पण्डितजी के घर पहुँचते-पहुँचते उसकी देह पसीने से लथपथ हो गई। उनके मकान के सामने ही सड़क के किनारे एक विशाल पीपल का पेड़ था। अरविंद ने कुछ देर वहीं खड़े होकर अपनी थकान मिटाई। पसीना सुखाया। फिर आगे बढ़ा। सामने खड़े दुमंजिले मकान पर एक बड़े-से रंगीन बोर्ड पर अंग्रेजी और हिंदी के बड़े-बड़े कलात्मक अक्षरों में लिखा था—'अलका प्रकाशन, संस्कृति-कार्यालय, पटना।' मकान के निचले हिस्से में प्रेस, प्रकाशन विभाग तथा संस्कृति-कार्यालय थे। ऊपरी तल्ले में पण्डितजी का निजी आवास था जहाँ वे अपने परिवार के साथ रहते थे। नीचे संस्कृति-कार्यालय की बगल से ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ थीं। अरविंद बेधड़क ऊपर चढ़ आया और सामने दरवाजे के बाहर लगे कॉल-बेल के स्विच को दबा दिया। [illegible] टुनटुनाई। तुरत ही अन्दर से दो-तीन स्त्री-कण्ठों की मिलीजुली आवाज सुनाई पड़ी। फिर दरवाजा खुला तो पर्दे की ओट से एक स्त्री-कण्ठ ने पूछा, "किनको चाहते हैं?"

"मैं पण्डितजी से मिलना चाहता हूँ। कुछ जरूरी काम से उन्होंने मुझे बुलाया था।"

"वे तो अभी बाहर गए हुए हैं। आध-पौन घण्टे में लौटेंगे। आपका शुभ-नाम ?"

"अरविंद कुमार ?"

नाम सुनकर भीतर कुछ फुसफुसाहट हुई। इसके लगे बाद एक लड़की ने बाहर झांक कर अरविंद को देखा। बाहर उसे खड़े देख कर लड़की ने झट से पर्दा हटा दिया। हाथ जोडकर मुस्काती हुई बोली, "नमस्ते जीजाजी ! भीतर चलिए। कैसे-कैसे दर्शन दिए ?"

"अलकाजी, आप ?" अरविंद ने चौंक कर पूछा, "आप यहाँ कैसे ?"

"यह मेरा ही तो मकान है," अलका उसी तरह मुस्काती हुई बोली, "पंडित जी मेरे पिताजी है।"

"अच्छा !" अरविंद भीतर सोफे के गद्दे पर बैठता हुआ आश्चर्य की मुद्रा में ही बोला, "यह तो खूब रहा ! किन्तु पहले मैंने आपको यहाँ नही देखा था !"

"मैं माँ के साथ दार्जिलिंग चली गई थी। कल ही तो वहाँ से लौटी हूँ।"

दार्जिलिंग ! एक क्षण के लिए अरविंद के मन मे किरण की स्मृति कौंध गई। पता नही, किरण वहीं है या कही दूसरी जगह। वह कुछ सोच ही रहा था कि अलका ने पूछ दिया, "शोभा दी को भी साथ क्यों नही लाए ?"

"यदि मैं जान पाता कि मैं पण्डित जी के बहाने आपके ही घर पहुँच रहा हूँ तो उसे जरूर लाता।"

ठीक इसी समय ड्राइंग रूम से संलग्न दूसरे कमरे का पर्दा हटाकर एक वयस्क महिला अरविंद के सामने आ गई। अलका ने दोनों का परिचय कराया, "आप हैं मेरी माँ मनोरमा देवी और आप शोभा दी के पति श्री अरविन्द कुमार जी।"

अरविंद ने उठकर देवीजी को प्रणाम किया। देवीजी आशीर्वाद देकर बैठती हुई बोली, "आपकी शादी में मैं नही जा सकी थी। अलका के मुँह से अक्सर आपकी प्रशंसा सुनती रहती हूँ।"

"धन्यवाद," अरविंद अदब के स्वर में बोला, "मुझे खुशी है कि इस मकान में मेरे लिए पहले से ही इतनी आत्मीयता है।"

"बेटी, इन्हें कुछ चाय-पानी तो कराओ," देवीजी ने अलका की ओर देख कर कहा।

अलका के भीतर चले जाने पर देवीजी ने पूछा, "निर्मला बहन तो अच्छी हैं न ?"

"जी हाँ, बिल्कुल ठीक हैं।"

"उनका तो भार हल्का हुआ," देवीजी कुछ थके-हारे स्वर में बोलीं, "शोभा को आप मिल गए। देखें, हमारा भार कब उतरता है। अलका के लिए अभी तक कहीं कुछ ठीक नहीं हुआ।"

अरविंद सिर झुकाए चुपचाप बैठा रहा। इसी समय भीतर से अलका की आवाज आई, "माँ, जरा सुनना तो।"

"आई," कहती हुई देवीजी उठ खड़ी हुईं और अरविंद की ओर ताककर बोलीं, "क्षमा करेंगे, मैं अभी आई।"

देवीजी के चले जाने के बाद अरविंद ने ड्राइंग रूम में अपनी सरसरी नजर दौड़ाई। कमरे की चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे। एक दरवाजा कमरे के बाहर खुलता था। शेष तीन भीतर की तीन कोठरियों में खुलते थे। सब पर खादी के बादामी रंग के पर्दे झूल रहे थे। सोफासेट के गद्दे पर भी उसी रंग का कपड़ा था। दीवारों पर दयानन्द सरस्वती, मदनमोहन मालवीय और सरदार पटेल के चित्र टँगे थे। बीच-बीच में शीशे में मढी खादी वस्त्रों पर हाथ-कढी बत्तख, हिरण और सिंह की कलात्मक तस्वीरें थीं। पण्डितजी के घर खादी का ही प्रचलन था। अलका पण्डितजी की अपनी पुत्री नहीं थी। वह देवीजी के पहले पति की बेटी थी। शोभा की सहेलियों में अलका अन्यतम थी और पटने में वायलिन की प्रसिद्ध वादिका थी। अरविंद ने खुद भी कई बार उसका वायलिन-वादन सुना था और उसकी कला से मुग्ध रह गया था। शोभा के घर वह जब-तब जाती रहती। स्वभाव से बड़ी शोख, ढीठ और चञ्चल थी। अरविंद से मजाक करने में दूसरी सभी लड़कियों से आगे रहती। रंग साँवला होने पर भी वह तीखे नाक-नक्श की लडकी थी। भरे हुए गाल, पतले ओठ, कजरारी आँखों पर धनुपाकार भौंहें। चेहरा भरपूर आकर्षण लिये हुए था। अरविंद ने अब तक उसे प्रायः नीले पार की सफेद खादी साडी में ही देखा था। आज भी वह वैसी ही साड़ी पहने थी। केश खुले थे। गले के नीचे कत्थई रंग के ब्लाउज में कढी काली बूटियाँ बड़ी अच्छी लग रही थी। अलका की माँ गेहुएँ रंग की स्थूलकाय महिला थीं। पण्डितजी से दूने वजन की जरूर होगी। आवाज भी मर्दानी और वजनदार थी। अपनी नाक में एक बडा-सा मोती और कानों में सोने के झुमके पहने हुई थीं। खिचडी बाल बेतरतीब ढंग से गर्दन के पीछे जूडे में बँधे थे। चौड़ी माँग के अनुरूप ही टहकार सिन्दूर की मोटी रेखा विद्यमान थी।

अरविंद ने यह तनिक भी नहीं सोचा था कि पण्डितजी ही अलका के पिता हैं। वह सामने दयानन्द सरस्वती की मन्द मुस्कान पर दृष्टि टिकाए कुछ सोच ही रहा था कि अलका तश्तरी में कुछ नमकीन, पेड़े और मनेरी लड्डू लिए उपस्थित हो गई। तश्तरी को अरविंद के सामने रख दिया। मीठी मुस्कान लेकर बोली, "जीमिए। बड़ी मुश्किल से पकड़ में आये हैं। शोभा दी से फुरसत मिले तब न!"

अरविंद खड़ा होकर हँसता हुआ बोला, "पहले मेरा हाथ तो धुलाइये। आपकी बातों का जवाब बाद में दूंगा।"

"चलिए मेरे साथ," अलका अरविंद को आगे बढ़ने का इशारा करती हुई बोली, "सामने ही बाथ-रूम है।"

ड्राइंग रूम का एक दरवाजा बाथरूम में खुलता था। उसके भीतर एक बड़ा-सा संगमर्मरी टब पानी से भरा था। टब के दूसरी ओर दीवार से वाश-बेसिन फिट था। उसके ऊपर एक गोलाकार शीशा चमक रहा था। अलका ने खुद भीतर प्रवेश करके अरविंद को वाश-बेसिन के पास पहुँचा दिया। फिर वह बाहर हो गई। बाहर निकलते समय सामने खड़े अरविंद की देह से उसने जानबूझ कर एक हल्का-सा धक्का लगा दिया। फिर मीठी मुस्कान लेती हुई ड्राइंग रूम में चली गई। अरविंद के लिए उसकी ऐसी हरकतें अजानी नहीं थीं। हाथ-मुँह धोकर वह बाहर आया। खाने के लिए हाथ बढ़ाता बोला, "आइए, आप भी साथ दीजिए।"

"जी अभी नहीं। मैं नाश्ता कर चुकी हूँ। साथ देने के दूसरे मौके भी तो होते हैं। वहाँ याद रखें तब न!"

"आपको बराबर याद रखता हूँ," अरविंद अपने मुँह में नमकीन रखता हुआ बोला, "आपके वायलिन-वादन ने तो मेरे मन को मोह लिया है।"

"आप तो ऐसा ही बोलते हैं," अलका मन ही मन खुश होकर बोली, "पिता जी से कुछ खास काम है क्या?"

"हाँ, कुछ है। पीछे बताऊँगा। वे कहीं दूर निकल गए हैं क्या?"

"जी नहीं। बगल में एक प्रोफेसर साहब के घर गए हैं। तुरत ही आने को बोल गये हैं। अच्छा, आपके लिए चाय लाती हूँ।"

अलका फिर भीतर चली गई। कुछ देर में छोटे-से ट्रे में दो कप चाय बना-कर लेती आई। एक कप अरविंद को थमा दिया। दूसरे को स्वयं लेकर बोली, "लीजिए। यहाँ बिना आपके कुछ कहे ही साथ दे रही हूँ।"

"धन्यवाद," अरविंद कप हाथ में थामता हुआ बोला, "मुझे चाय पीने की आदत नहीं थी। किन्तु पटना आने पर इसके बिना अब मन ही नहीं मानता।"

"क्या पटने ने आपको केवल चाय पीना ही सिखाया ?" अलका वक्र मुस्कान लेती हुई बोली, "उसने तो आपको कई नई शिक्षाएँ दी हैं।"

"कौन-सी, जरा सुनूँ तो ?"

"समय आने पर," अलका आँखों को नचाकर बोली, "समय पाइ तरुवर फर रे कतबो सिचु नीर !"

"आप तो सांकेतिक भाषा ही बोलती हैं। मेरी पहुँच वहाँ तक हो नहीं पाती।"

"यों कहिए, पहुँच तो हो जाती है, ज्ञान नहीं होता !"

इतना कहकर अलका खिलखिला कर हँस पड़ी। उसकी हँसी से हाथ की चाय छलकने-छलकने को हो आई। अरविंद इतनी हँसी का अर्थ नहीं समझ पाया। केवल साथ देने के लिए उसने भी मुस्का दिया। जब कप खाली हो चुके तो अलका उन्हें रखने भीतर चली गई। उसके कहने से मालूम हुआ कि पण्डित जी घरेलू काम-काज के लिए कोई नौकर नहीं रखते। गृहस्थी का सारा काम घर के सदस्य मिल-जुलकर कर लेते हैं। अरविंद ने मन ही मन पण्डितजी की व्यावहारिक बुद्धि की प्रशंसा की। अलका अभी भीतर ही थी कि पण्डित जी एक दूसरे सज्जन को साथ लेकर एकाएक कमरे में आ गए। साथ वाले सज्जन उजले रंग का पलाइंग शर्ट और फुलपैन्ट पहने हुए थे। साँवले रंग का दोहरा शरीर था। फ्रेंच कट मूँछ के ऊपर बड़ी-सी गोल नाक थी। सिर का अगला हिस्सा गंजा हो चुका था। भूरे रंग की आँखों के ऊपर लम्बी-लम्बी बरौनियाँ थी। अरविंद ने झट से उठकर पण्डित जी का अभिवादन किया। पण्डितजी उसे देखते ही बोले, "वाह भाई, बड़े अच्छे मुहूर्त में आये हो। कोई कठिनाई तो नहीं हुई ?"

"जी नहीं तो। मैं तो यहाँ चाय-नाश्ता करके आराम से बैठा हूँ।"

"वाह, तब तो ठीक हैं," पण्डितजी अब साथवाले सज्जन की ओर संकेत करते हुए बोले, "इनसे मिलो अरविंद। आप हैं पटना कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर श्री निर्मलकुमार भादुड़ी। बंगलाभाषी होकर भी हिन्दी भाषा में अच्छी गति रखते हैं। साहित्य के सिद्धान्तों के भी मर्मज्ञ हैं और आप हैं हमारे मित्र स्वर्गीय एडवोकेट कुमार के जामाता नवोदित साहित्यकार श्री अरविंद कुमार जी।"

अरविंद ने आदरपूर्वक भादुड़ी साहब को प्रणाम किया। भादुड़ी साहब प्रणाम का जवाब देते हुए मीठे स्वर में बोले, "आपका परिचय पण्डितजी के मुख से पहले ही सुन चुका हूँ। आपकी रचनाएँ भी पत्र-पत्रिकाओं में देखी हैं। बड़ी अच्छी लगी मुझे।"

अरविंद ने पुनः उनकी ओर हाथ जोड़ लिए। बोला, "टूटी-फूटी भाषा में कुछ लिख लेता हूँ।"

इस बीच पण्डितजी ने अपने कुर्ते की जेब से चाँदी का चमचमाता पान-दान निकाला। उसे खोलकर पहले भादुड़ी साहब और तब अरविंद की ओर बढ़ा दिया। भादुड़ी साहब ने तो उसमें से पान निकाल कर मुँह में दबा लिया, किन्तु अरविंद ने हाथ जोड़कर कहा, "जी मैं पान नहीं खाता।"

"धत्तेरी के!" पण्डितजी स्वयं मगही पान का एक बीड़ा मुँह में डालते हुए बोले, "यह कैसी मनहूसी है! अरे भाई, पान जीवट देता है, जीवट! केवल मुँह को ही नहीं रंगता, दिमाग को भी रंग कर निखार देता है।"

इसके बाद पण्डितजी ने लखनवी जर्दे की छोटी काली शीशी निकाली और उसमें से एक चिटुकी मुँह में फाँकते हुए बोले, "हाँ प्रोफेसर भादुड़ी, आप कहते थे कि विवाह के लिए प्रेम जरूरी है।" इसके बाद पिकदानी में पिक फेंकते हुए फिर बोले, "मेरी बात से आप सहमत नहीं। तुम्हारा क्या विचार है अरविंद ?"

प्रश्न सुनकर एकाएक अरविंद घबड़ा गया। लगा जैसे पण्डित जी बड़ी चतुराई से उसका इन्टरव्यू ले रहे हों। कुछ खाँसकर बोला, "मेरी समझ में प्रेम और विवाह दोनों दो चीजें हैं। प्रेम को सामाजिक रूप देने के लिए विवाह की जरूरत पड़ी होगी। इस दृष्टि से प्रेम विवाह की अपेक्षा अधिक सनातन है, अधिक जरूरी है।"

"यह तो मेरी ही बात हुई," प्रोफेसर भादुड़ी अपनी दाहिने हाथ की तर्जनी को हवा में फेंकते हुए बोले, "यदि आप विवाह को प्रेम के सामाजिक रूप में भी लेते हैं तो इसका अर्थ यह है कि प्रेम से अलग विवाह की कल्पना नहीं की जा सकती।"

"यहाँ एक बात ध्यान में रखनी होगी," अरविंद अपने को और स्पष्ट करता हुआ बोला, "प्रेम को मानव-प्रकृति से अलग नहीं किया जा सकता। वह ईश्वर की दी हुई चीज है। विवाह के बिना मनुष्य रह सकता है। प्रेम के बिना उसका रहना असम्भव है। विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है, अतः बन्धन है। वह एक ऐसे प्रवाह की तरह है जिसके बहने के लिए पहले ही रास्ता तैयार कर दिया गया है। किन्तु प्रेम ईश्वरीय वरदान होने के कारण बिल्कुल मुक्त होता है। वह एक ऐसे प्रवाह की तरह है जो कहीं भी, किसी भी रास्ते से फूट सकता है। उसकी गति निर्बन्ध होती है।"

"शायद आप यह कहना चाहते हैं कि प्रेम का विवाह के साथ कोई सम्बन्ध

नहीं। तो आप एक ऐसे विवाह की कल्पना कीजिए जिसमें प्रेम हो ही नहीं और ऐसे प्रेम की कल्पना कीजिए जिसमें विवाह भी नहीं हो। मैं समझता हूँ, ये दोनों स्थितियाँ ठीक नहीं मानी जा सकतीं। यद्यपि विवाह मानव कृति है फिर भी वह प्रेम का ही तो सामाजिक परिणाम है। इसे नहीं भूला जा सकता।"

पण्डितजी दोनों की बातें सुनते हुए मन्द-मन्द मुस्काए जा रहे थे। अभी तक वे तटस्थ भाव से दोनों की बहस का मजा ले रहे थे। अरविंद ने प्रोफेसर भादुड़ी की ओर देखकर पुनः कहना शुरू किया, "प्रेम-रहित विवाह चाहे विवाह-रहित प्रेम ठीक नहीं भी हो सकते। किन्तु यह तो दूसरी ही बात हुई। प्रेम के मूल में जीवन की वासना है। उसमें एक दूसरे के साथ मिल जाने की जो उद्दाम लहर होती है, उसका अर्थ यही नहीं कि दो मिलकर एक हो जाएँ, बल्कि यह भी है कि दो से फिर तीसरे की सृष्टि हो। जीवन जीवन्त बना रहे, मृत्यु से टूटने न पाये। इस अर्थ में प्रेम केवल मानसिक क्रिया ही नहीं, शारीरिक व्यापार भी है। यों कहा जा सकता है कि प्रेम जहाँ मन का धर्म है वहाँ वासना शरीर का धर्म होती है। किन्तु प्रेम और वासना एक ही लता के दो फूल हैं। एक में दूसरे की सत्ता अन्तर्भूत है। विवाह की आवश्यकता प्रेम के शारीरिक पक्ष की दृष्टि से अधिक होती है। उसका शारीरिक पक्ष ही जीवन-सन्तति की वासना का उत्स है। मुख्य रूप से इसी को नियन्त्रित करने के लिए विवाह की जरूरत पड़ी होगी। किन्तु प्रेम का विशुद्ध मानसिक पक्ष विवाह के बिना भी अपना आदर्श निभा सकता है। थोड़े में, आदर्श प्रेम के लिए विवाह जरूरी नहीं, किन्तु आदर्श विवाह के लिए प्रेम जरूरी है।"

"हीयर! हीयर!" पण्डितजी अपनी सीट से उछलते हुए अपना दाहिना हाथ टेबुल पर पटक कर बोले, "बात पते की कही अरविंद ने! प्रोफेसर भादुड़ी, मैं समझता हूँ, अब यह चर्चा यहीं समाप्त की जाये।"

ठीक इसी वक्त अलका ट्रे में चाय लेकर उपस्थित हो गई। वह पर्दे की ओट में खड़ी-खड़ी अब तक बहस सुन रही थी। प्रवेश करते ही ट्रे टेबुल पर रखकर उसने प्रो० भादुड़ी को प्रणाम किया। पण्डितजी ने अलका की ओर देखकर कहा, अरविंद से तुम्हारा परिचय कराऊँ बेटी!"

"हमारा परिचय पहले से ही है," अरविंद ने बीच में ही टोक दिया।

"वाह, यह तो और अच्छी बात रही," पण्डितजी जैसे कुछ याद करके बोले, "क्यों नहीं, "तुम तो उसकी सहेली शोभा के पति जो हो!"

अलका चाय बनाने लगी। पण्डित जी ने अब अरविंद की ओर देखकर पूछा, "कहो भाई, तुम्हारा आना कैसे हुआ? मेरे काम के विषय में तुमने क्या निश्चय किया?"

"उसी की स्वीकृति देने तो आया हूँ," अरविंद बोला।

"धन्यवाद!" पण्डितजी अरविंद की पीठ थपथपाते हुए खुश होकर बोले, "मेरे लिए यह बड़ी खुशी की बात है। सुना प्रोफेसर भादुड़ी? 'संस्कृति' का सम्पादन-भार अरविंद ले रहा है।"

"गुड न्यूज!" प्रोफेसर भादुड़ी ने झट से अपना हाथ अरविंद के हाथ से मिलाते हुए कहा, "मेरी बधाई स्वीकार करें।"

पास ही खड़ी अलका इस सूचना से सबसे अधिक खुश हुई। उसने हँसती हुई आँखों से अरविंद को देखा। अरविंद की नजरें भी एक बार उसकी आँखों से टकराई और फिर झुक गई। पण्डितजी फिर बोले, "मेरी बहुत बड़ी चिन्ता तुमने दूर कर दी। संस्कृति के प्रकाशन की पूरी व्यवस्था मैंने कर ली है। शुभस्य शीघ्रम्। तुम कल से ही काम पर आ जाओ। मैं तो केवल तुम्हारा निर्देशन करूँगा। प्राप्त निबन्धों की स्वीकृति, अस्वीकृति या संशोधन का पूरा अधिकार तुम्हें रहेगा। कल से ही विद्वानों के पास पत्र भेजना आरम्भ कर दो। मेरे यहाँ तुम घर के निजी सदस्य की तरह रहोगे। अपने काम का दायित्व तो तुम खुद समझ लोगे।"

अरविंद सिर झुकाए पण्डितजी की बातें सुनता रहा। कुछ देर बाद बोला, "मैं तो कुछ नहीं जानता पण्डितजी! सम्पादन का क-ख-ग भी मुझे मालूम नहीं। आपके निर्देशन के बिना कुछ कर नहीं सकूँगा। मुझे असल खुशी तो इस बात की है कि आपके निर्देशन में काम करने का अवसर मिल रहा है।"

"मैं जानता हूँ अरविंद," पण्डितजी गद्‌गद् स्वर से बोले, "तुम्हारे श्रम की सचाई से परिचित हूँ। सचाई ही असल चीज है। गलतियों से क्या डरना? खुद मेरा ही जीवन कई गलत-सही मार्गों का संयोग है। एक हिम्मत है, लगन है, जो मुझसे कोई काम करा लेती है।"

इसके बाद पण्डितजी प्रोफेसर भादुड़ी के साथ अरविंद को लेकर जीने से नीचे आये। अपने कार्यालय के कर्मचारियों से अरविंद का परिचय कराया और अरविंद को संस्कृति के सम्पादक का सजा-सजाया आफिस दिखाया। यह आफिस ऊपरी मंजिल पर ही था। उसका पिछला दरवाजा पण्डितजी के ड्राइंग रूम में खुलता था। तीनों घूमते-घामते फिर ड्राइंग रूम से आ गये।

सात

कल शाम से ही सुधा और उसके पति में बोलचाल बन्द है। ऐसे तो शादी के बाद अपने दाम्पत्य जीवन में सुधा को बहुत सारे कड़वे अनुभव हुए थे, किंतु अब तक वह सारा का सारा विष खुद पीती आई थी। उसके मन पर चाहे जो भी बीता हो, किन्तु पति के साथ बातचीत बन्द होने की नौबत अब तक नहीं आई थी। कल शाम को एक विचित्र-सी बात हो गई। सुधा ऊपर छत पर अकेली बैठी शरच्चन्द्र का शेषप्रश्न पढ़ रही थी। अकेले बैठे-बैठे जब उसका मन ऊबने लगता तो वह अक्सर कोई उपन्यास या कहानी लेकर पढ़ने बैठ जाती। कभी-कभी नीचे जाकर रेडियो पर हल्के संगीत सुनती। किन्तु किसी-किसी दिन मन का अकेलापन इतना बोझिल हो जाता कि वह उसे किसी भी उपाय से दूर नहीं कर पाती। ऐसे समय वह प्रायः बिस्तर पर पड़ी-पड़ी करवट बदलती, अथवा अपनी छत से सुदूर वृक्षों की कतार पर उतरती हुई साँझ की बुझी-बुझी किरणों को निहारती। जैसे उनमें उसका कुछ खो गया हो।

शेषप्रश्न का पढ़ना समाप्त करके सुधा उपन्यास के मूड में ही उठ खड़ी हुई। जीने से नीचे उतर कर ड्राइंग रूम में जाने के पहले बाथरूम में चली गई। नीचे आँगन में सन्नाटा था। दाई या नौकर दोनों में से कोई दिखाई नहीं पड़ा। विनोद के आने का समय हो गया था। नाश्ता-पानी का प्रबन्ध करना बाकी था। सुधा को मन ही मन खीझ हुई कि ऐसे समय दोनों के दोनों कहाँ डूब गये। बाथ-रूम से निकल कर बाहर आई। ड्राइंग रूम में जाकर देखा कि बँगले का दरवाजा भीतर से बन्द है। उसे और भी अचरज हुआ। बाहर के दरवाजे की सिटकिनी जब भीतर से बन्द है तो आखिर वे दोनों हैं कहाँ! वह फिर आँगन में आई। इधर-उधर झाँक कर देखा। किचन में सब्जियाँ काटकर रखी हुई थीं। मसाला भी तैयार रखा था। एक तरफ कोयले का चूल्हा सुलग रहा था। गूँधा हुआ आटा कठौती में पड़ा था। सारा सामान तैयार रखा था, किन्तु रसोई पकानेवाले का कोई अता-पता नहीं था। सुधा दुबारे आँगन में आई। उसे इस बार सामने गेस्ट रूम के भीतर से खट-खट की आवाज सुनाई पड़ी। फिर किसी के चलने-फिरने और आहिस्ते बोलने की आवाज हुई। सुधा हल्के पाँव दरवाजे के सामने पहुँची। देखा कि बाहर की सिटकिनी तो खुली है, किन्तु भीतर से दरवाजा बन्द

है। उसे यह सोचकर हैरानी हुई कि आखिर भीतर कमरे में घुसा कौन है। फिर उसने कौतूहलवश दरवाजे में कान सटाकर अन्दर से आती आवाज को सुनना चाहा। भीतर कुछ मचमचाने जैसी ध्वनि हुई। फिर कुछ देर सन्नाटा रहा। तब एक स्त्री-कण्ठ की फुसफुसाहट हुई, "साहब, छोड़ दीजिए अब। कही मेम साहब ऊपर से आ जायेंगी।"

सुधा समझ गई कि भीतर कुछ गोलमाल हो रहा है। कोई गुण्डा सम्भवतः उसकी दाई के साथ कोई व्यभिचार कर रहा है। इस निष्कर्ष पर आते ही उसका शरीर काँपने लगा। मन में क्रोध और घृणा की लहर-सी दौड़ गई। हल्ला मचाने से उसके परिवार की प्रतिष्ठा पर आँच आ सकती थी। अतः वह कोई दूसरा उपाय सोचने लगी। दूसरे ही क्षण दौड़ती हुई-सी किचन के सामने आई। सब्जी काटनेवाला चाकू सामने दिखाई पड़ा। उसने झट से चाकू उठा लिया और हाँफती हुई-सी दो-तीन छलांग में ही बन्द दरवाजे के सामने पहुँच गई। बाहर से जोर के धक्के लगाती हुई गरज पड़ी, "भीतर कौन बदमाश घुसा है? आदमी की तरह जल्दी दरवाजा खोल दे। नहीं तो अभी पुलिस को खबर करती हूँ!"

जब उसके डराने-धमकाने का भीतर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और दरवाजा बन्द का बन्द पड़ा रहा तो सुधा को एक नया उपाय सूझा। बाहर से कमरे में ताला भर देना ही अभी की स्थिति में उसे सबसे निरापद लगा। किन्तु चाबियों का गुच्छा तो ऊपर उसके शयनकक्ष में है। वह दूसरे ही क्षण बिजली की फुर्ती से जीने चढ़कर ऊपर पहुँची। हड़बड़ी में अपने कमरे में आकर चाबी खोजना शुरू किया। चाबी मिलने में कुछ देर हो ही गई। फिर वह उल्टे पाँव नीचे भागी। आँगन में आते ही उसने धनिया को अस्त-व्यस्त साड़ी में रसोई घर की ओर भागते देखा। सुधा ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। क्रोध से काँपते स्वर में बोली, "क्या बात है धनिया? जल्दी बता कि वह कौन था और कहाँ चला गया?"

"मेरा कोई कसूर नही मेम साहब," धनिया सुधा के पैरों से लिपटकर थर-थर काँपती तथा रोती हुई बोली, "साहब नहीं माने!"

"साहब? कौन साहब?"

धनिया भय से इसके आगे कुछ नही बोल पाई। वह पसीने से तरतरव हो रही थी। सुधा ने उसकी बाँह नहीं छोड़ी। दुबारे झिड़ककर उससे खुलासा बोलने को कहा। ठीक इसी समय गेस्ट रूम से विनोद कुछ झेंपता हुआ-सा निकला। सुधा के नजदीक आकर कड़ककर बोला, "क्या बात है? इसने कौन सी ऐसी

गलती कर दी कि तुम इसे इस तरह परेशान कर रही हो ? यह तो भीतर कमरा साफ कर रही थी। दरवाजे की सिटकिनी ढीली है। आप से आप लग गई।... और तू क्या कह रही थी रे ? साहब नहीं माने ? जबान उखाड़ लूंगा यदि फिर से ऐसी बेतुकी बात मुँह निकाली !!"

"ओ, तो आप ही थे !" सुधा के हाथ आप से आप ढीले पड़ गये, घनिया की बाँह छूट गई।

"जी हाँ, मैं ही तो था," विनोद गरजा, "कुछ कहना चाहती हैं आप ?"

"आप इस हद तक नीचे गिर सकते हैं, मैं नहीं समझी थी," सुधा की क्रोध-मिश्रित घृणा फूट पड़ी।

"खबरदार जो मेरे विषय में ऐसी-वैसी बात मुँह से निकाली !" विनोद तैश में आकर ऐसे बोला मानो सुधा पर झपटना चाहता हो, "सत्तर चूहे खा के बिल्ली चली हज को ! अपना कुछ ठीक है ? मैं सब जानता हूँ !"

"क्या जानते हैं आप ?" सुधा आवेश भरे स्वर में रोती हुई पूछ पड़ी, "जरा सुनूँ तो ?"

"तो सुनो। अरविन्द से तुम्हारा अनैतिक सम्बन्ध रहा है। वह तुम्हारा प्रेमी है। तुम्हारे ही गाँव का रहनेवाला है। तुम्हारे साथ सब कुछ कर चुका है। इसीलिए तो तुम उसके गीत गाती रहती हो। जैसे मैं कुछ जानता ही नहीं !"

"चुप रहिए ! ईश्वर के नाम पर इतना झूठ मत बोलिए !"

सुधा की नफरत एकाएक असह्य पीड़ा में बदल गई। वह अपनी उमड़ती आँखों को हथेलियों से ढँके सिसकती हुई बोली, "सताने की भी एक सीमा होती है !"

इसके बाद विनोद क्या बोला-बका, सुधा कुछ भी सुनने को वहाँ नहीं रुकी। उसी तरह आँखें ढके गिरती-पड़ती भागती हुई-सी ऊपर अपने कमरे में आई। भीतर से सिटकिनी बन्द करके पलंग पर कटे पेड़ की तरह औंधे मुँह गिर पड़ी। न जाने कितनी देर तक रोती-सुबकती रही। आज की निर्लज्जता, बेहयाई और झूठे आरोपों की चोट से उसका पूरा अस्तित्व उखड़ गया था। पूर्व जन्म में कौन-सा पाप किया था उसने, जिसका फल उसे इस तरह भोगना पड़ रहा है ? उसका जीवन तो अब तक कई प्रकार के व्रतों, उपवासों और प्रार्थनाओं में बीतता आया है। अपने जानते उसने आज तक किसी का अमंगल नहीं किया। जान-बूझ कर अपने मन में कोई विकार नहीं लाई। फिर दुष्ट नियति उसके जीवन के साथ कैसा निर्दय खेल खेल रही है ! उसके निष्कलंक जीवन पर कलंक का कैसा धब्बा लगाया जा रहा है ! अपने दोषों और अपराधों को कैसी नीचता के साथ उलटे

उसी के सिर मढ़ा जा रहा है ! यदि वे सच ही बोल देते, अपनी कमजोरियों को शुद्ध हृदय से उसके सामने रख देते तो क्या वह उन्हें क्षमा नहीं कर देती ? एक घर की नौकरानी के सामने उसका ऐसा अपमान ! उसके साथ ऐसा पाशविक बर्ताव !......

रोते-रोते सुधा को न जाने कब नींद आ गई। यह नींद भी कुम्भकर्णी थी। जब आँखें खुली तो रात के डेढ़ बज रहे थे। उसने बत्ती जलाकर शरीर के कपड़ों को ठीक किया। उसे अब याद आया कि वह लगभग छः बजे शाम से ही कमरे में बन्द पड़ी रह गई थी। बाहर क्या हुआ, इसका उसे कोई पता नहीं। धड़कते दिल से वह खुली छत पर आई। रेलिंग के सहारे खड़ी विचारों में डूबी रही। नीरव अँधेरी रात थी। स्वच्छ आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। आकाश गंगा उत्तर से दक्खिन दूर तक फैलती चली गई थी। कभी-कभी सुदूर बाँकीपुर स्टेशन से किसी ट्रेन की सीटी आकाश को चीरती हुई-सी यहाँ तक पहुँच जाती थी। सुधा को लगा जैसे इस निर्जन अँधेरी रात में उसे अकेले असहाय छोड़ दिया गया है ! उसके आस-पास नीचे-ऊपर कोई नहीं। वह भय से काँप उठी। कुछ सोचकर सीढ़ी की बत्ती जलाई और नीचे की टोह लेने आँगन में आई। यहाँ का घनीभूत अँधेरा और भी भयावना लग रहा था। उसने हाथ से टटोलकर बिजली का बटन दबाया। आगन प्रकाश से भर उठा। गेस्ट रूम भीतर से बन्द था। दिन में प्रायः दोनों पति-पत्नी उसी कमरे में रहते थे। रात में सोने के समय ऊपर अपने बेड-रूम में चले जाते थे। आज पहले पहल ऐसा बिलगाव हुआ था।

सुधा ने आशंकित होकर गेस्ट-रूम में खुली खिड़की से झाँक कर देखा। भीतर कमरे में घुप्प अँधेरा था। केवल पंखे के चलने की हल्की आवाज आ रही थी। थोड़ी देर बाद सुधा पुन. आँगन में लौट आई। अपने नौकर तथा नौकरानी को खोजने का प्रयास किया। उसका नौकर प्रायः बाहर बरामदे में ही सोया करता। नौकरानी भीतर भण्डार घर के सामने चटाई डाल कर सो जाती। विनोद ने हाल में ही एक छोटा अलसेसियन कुत्ता खरीद मँगाया था। दिन में वह बाहर बरामदे में बँधा रहता। केवल रात में उसे बाहर गेट के भीतर मुक्त छोड़ दिया जाता था। रात में अन्दर या बाहर की किसी हल्की आवाज पर भी वह भौंकना शुरू कर देता था। सुधा बचपन से ही कुत्तों से डरती थी। खासकर अभी इस अँधेरी रात में यदि वह भौंकना शुरू कर देता तो उसके प्राण सूख जाते। यही सोचकर वह चाहकर भी बाहर नहीं निकली। दबे पाँव रसोई घर में आकर बत्ती जलाई। वहाँ सभी चीजें बेतरतीब बिखरी पड़ी थीं। चूल्हा

ठण्डा हो चुका था। गूँथा आटा, छोली तथा कटी सब्जी, मसाले इत्यादि वैसे ही रखे पड़े थे। रसोई की यह हालत देख सुधा का मन रो पड़ा। शायद सभी भूखे ही सो गए थे। सुधा सब के कष्ट का कारण बन गई थी।

सुधा को अचानक धनिया याद आ गई। वह वहाँ कहीं नहीं दिखी। एक क्षण के लिए सुधा के मन में फिर सन्देह हुआ। कहीं वह गेस्ट रूम में विनोद के साथ ही तो नहीं सो रही है ? किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी नजर सीढ़ी के नीचे खाली जगह में पड़ी। वहाँ धनिया बिना किसी बिस्तर के नंगी फर्श पर औंधे मुँह सोई हुई थी। सुधा चुपचाप वहाँ पहुँच गई। उसे नजदीक से देखा। धनिया के केश बिखरे हुए थे। सोयी रहने पर भी चेहरे पर मुर्दनी उदासी छाई थी। आँखों के नीचे सूखे आँसुओं का तार लक्षित हो रहा था। देह पर एक पुरानी साड़ी थी जिसका आँचल उसकी कमर के नीचे अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ था। धनिया वास्तव में सुन्दरी थी। मिहनत की गठी हुई देह। तरुणाई अंग-अंग से फूट रही थी। उसे देखकर सुधा के मन में जो पहली भावना जगी वह ईर्ष्या की थी। किन्तु उस दीन-हीन असहाय नौकरानी के मुखड़े से फूटनेवाली करुणा ने तुरत ही सुधा के दिल को पिघला दिया। आज यदि धनिया सुधा की तरह हो धनी-मानी होती, उसके माता-पिता जीवित होते तो क्या वह सुधा की ही तरह कहीं व्याही नहीं जाती ? क्या उसका सतीत्व इस तरह कौड़ी के मोल बिकता ? वैसी स्थिति में तो समाज में धनिया को भी इज्जत होती। वह किसी भले युवक की पत्नी बनकर शायद सुधा के बराबर ही बैठती। आज विनोद ने धनिया के साथ जैसा भी व्यवहार किया था, उसके मूल में धनिया की गरीबी और उसकी असहाय अवस्था ही तो है। वह सचमुच बेगुनाह है। उसका चरित्र ऊपर से मलिन होकर भी भीतर से स्वच्छ और पवित्र है।

सुधा न जाने कब तक खड़ी-खड़ी धनिया को निहारती रह गई। एक बार जी में आया कि वह उसे जगाकर ऊपर अपने कमरे में ही लेती जाये। उसके मुँह से कल की सारी बातों को सुने-समझे। अपनी ओर से उसे प्यार दे, सहानुभूति दे। किन्तु धनिया को जगाने से विनोद की नींद टूट सकती थी। बात और अधिक बिगड़ सकती थी। इसी बीच हवा का एक झोंका आया और धनिया के बिखरे केशों को लहरा कर निकल गया। बाहर कुछ खट-सी आवाज हुई। इसके लगे बाद कुत्ता जोर-जोर से भौंकने लगा। सुधा डर के मारे काँप गई। दूसरे ही क्षण धनिया को वहीं छोड़कर ऊपर अपने कमरे में चली गई। कमरे की सिटकिनी और खिड़की के खुले पल्लों को ठीक से बन्द कर लिया। इसके बाद

पंखा खोलकर बत्ती की रोशनी में ही बिस्तर पर जा लेटी। कुत्ते के भौंकने की धीमी आवाज अब भी आ रही थी।

सुबह के पाँच बजे तक सुधा जैसे-तैसे करवट बदलती रह गई। आँखें कुछ देर के लिए भी नही लगीं। मन में कई बातों की रेखाएँ बनती-मिटती रही। कई बार अरविन्द को याद आई। उसके निश्छल हृदय और उच्च विचारों से आये दिन सुधा प्रभावित होती आई है। किन्तु केवल इसीलिए सुधा के साथ उस साधु पुरुष को भी बदनाम किया जा रहा है। कैसी-कैसी मनगढन्त और घृणित बातें विनोद ने कह डालीं। अरविन्द को यदि इसकी थोड़ी भी भनक मिल जाए तो वह यहाँ आना-जाना ही छोड़ देगा। विचारों के ऐसे ही ताने-बाने में उलझते सुबह हो गई। पाँच बजने के कुछ देर बाद किसी ने दरवाजे की कुण्डी खट-खटाई। सुधा का हृदय धड़क उठा— कही विनोद तो नही! पति से इतनी भयभीत वह पहले कभी नही हुई थी। उसने धीरे से उठकर धडकते दिल से दरवाजा खोल दिया। हवा के वेग की तरह धनिया भीतर आ गई और धड़ाम से सुधा के पैरों पर गिर पड़ी। उसके केश उसी तरह बिखरे हुए थे, शरीर की वही हालत थी जिसे सुधा ने रात को देखा था। पैरों पर गिरते ही धनिया सिसक पडी। रुद्ध कण्ठ से किसी तरह बोल पाई, "मैं सच कहती हूँ मेम साहब, मेरा कोई कसूर नही। साहब ने मुझे पहले बहुत लालच दिया। फिर मुझे डरा-धमका कर ले गए। मैं तो बचपन से ही आपके परिवार में रह गई हूँ। वही हँसना सीखा, वही रोना। किन्तु अब तो यह आधार भी टूट गया। मैं अशरण हूँ। साहब ने रात मुझे मारा-पीटा और घर से निकल जाने को कहा। रात में भला मैं कहाँ जाती! आप के पास भी आने की हिम्मत नहीं हुई। मुझ अभागन को माफ कर दीजिए मेम साहब! इसके बाद ही मैं घर छोड़कर कही चली जाऊँगी!"

धनिया के आँसुओ से सुधा के पैर तर हो गए। उसके पैरो पर पडी धनिया यह नही देख सकी कि उसकी मेम साहब भी खडी-खडी सुबक रही है, अपने आँचल से आँखें पोंछती जा रही है। कुछ देर बाद अपने को सम्भाल कर सुधा ने धनिया को अपने दोनों हाथों से उठा लिया। उसके केशों को सहलाती हुई गीली आवाज में बोली, "मैं जानती हूँ धनिया, तुम्हारा कोई कसूर नही। दुख पडने पर हम दोनों की अब एक ही जाति है बहन! जब तक तुम और मैं सुखी थी, मैं मेम साहब थी और तुम थी मेरी नौकरानी। दुख की इस घड़ी में हम दोनों सगी बहने है। दोनों बराबर है। कोई बड़ी या छोटी नही।"

अपनी स्वामिनी की इस सहृदयता से घनिया और भी पसीज गई। दोनों हाथों से अपनी आँखें ढाँपे हिचकी और आँसू के मिश्रित स्वर में बोली, "मैं आपकी इस दया के योग्य नहीं हूँ मेम साहब ! मैं बड़ी नीच हूँ !"

"ऐसा नहीं कहते बहन," सुधा ने घनिया की बाँह पकड़कर उसे जबरन अपने साथ बिठाते हुए कहा, "सबसे पहले अपना रोना बन्द करो। इसके बाद ही बातें कर सकेंगे।"

घनिया के मन में मालकिन के पास आते समय जो भय उत्पन्न हुआ था, वह धीरे-धीरे जाता रहा। कुछ देर तक वह सिसकती रही। जब आँसुओं का वेग कम पड़ा, सुधा ने कमरे की सिटकिनी बन्द कर ली। फिर बैठते हुए पूछा, "साहब ने मेरे यहाँ से चले आने के बाद मुझे या तुम्हें लेकर कुछ कहा भी ?"

घनिया कुछ देर और चुप्पी साधे रही। फिर अपने स्वर को संयत करती हुई बोली, "मैंने आपको सच्ची बात बता दी थी। इसका उन्हें बड़ा रंज था। आपके चले जाने के बाद उन्होंने मेरी पिटाई की। इसके बाद वे मुझे गालियाँ देते हुए कमरे में चले गए। तब से मैंने उन्हें नहीं देखा।"

यह सब सुनकर सुधा के मन पर बड़ी चोट पहुँची। किसी औरत पर हाथ छोड़ना उसकी नजर में निन्दनीय कर्म था। कौन ठीक है, एक दिन विनोद उस पर भी हाथ चलाने लगे! ..क्या विनोद को नीचे गिरने से रोका नहीं जा सकता ? सम्भव है, सुधा की ही किन्हीं खामियों या कमजोरियों का यह सब परिणाम है। पति के अच्छे-बुरे कामों पर सुधा अक्सर मौन रहती आई है। कभी खुलकर उसकी बुराइयों का विरोध नहीं किया। शायद इसीलिए वह इतना ढीठ होता जा रहा है। सुधा को मानो वह कोई गुड़िया समझता आया है जिसके न कोई दिल है, न प्राण।

आज पहली बार सुधा के मन में अपने संस्कारों के विरुद्ध आवाज उठी थी। उसका चेहरा देखते ही देखते कठोर होता गया। पास बैठी घनिया को उसी उग्र दृष्टि से देखती हुई बोली, "देखो घनिया, उन्होंने बेशक बड़ी गलती की है। किन्तु इसमें तुम्हारा भी कुछ न कुछ हाथ जरूर है। उनकी ओर से मैं तुमसे माफी माँगती हूँ। किन्तु तुम खुद अपनी गलतियों के लिए आगे से होशियार हो जाओ। यह घर केवल उन्हीं का नहीं। मेरा भी है। तुम्हारा भी है। उनके निकाल देने से तुम घर छोड़कर नहीं जा सकती। मैं तुम्हारे और उनके बारे में और अधिक पूछ कर सिर दर्द मोल लेना नहीं चाहती। केवल इतना जानती हूँ कि जो हुआ, अच्छा नहीं हुआ। आगे से ऐसा नहीं होना चाहिए।"

घनिया को लगा जैसे वह किसी क्षमा-मूर्ति देवी के पास बैठी है। भावावेश में वह उठकर खड़ी हो गई और स्वामिनी का चरण-स्पर्श करती हुई बाप्परुद्ध कण्ठ से बोली, "मैं तो आपके चरणों की दासी हूँ मेम साहब! मुझे इन चरणों की सौगन्ध है कि मैं दुबारे ऐसी गलती करूँ। किन्तु मैं यह भी नहीं चाहती कि मुझ नीच के कारण आप दोनों में कोई झगड़ा-फसाद हो।"

"इसकी परवा तुम मत करो," सुधा एकाएक अपनी जगह से उठती हुई बोली, "चलो, उनके नाश्ता-पानी का इन्तजाम करना है। रसोई ठीक करनी है।"

घनिया चुपचाप मालकिन के पीछे-पीछे चल दी। कमरे से बाहर निकलने पर सुबह की ठण्डी हवा जिद्दी बच्चे की तरह दोनों की देह से लिपट गई। कहीं दूर मस्जिद से अजान की पुकार सुनाई पड़ी। नीचे आकर सुधा ने देखा कि रोज की तरह दिनेश आंगन और कमरों को झाड़-बुहार कर रहा है।

× × ×

विनोद ने खाने-पीने में कोई आनाकानी नहीं की। घनिया या किसी दूसरे के सम्बन्ध में कुछ पूछा तक नहीं। सुधा ने चुपचाप उसके सामने खाना लगा दिया था। वह बिना कुछ बोले खा-पी कर कोर्ट चला गया। इस समय दिन के बारह बज रहे थे। चढते आषाढ की गर्मी थी। आज सुबह से ही आसमान में काले बादलों के झुण्ड उड़ रहे थे। ठण्डी हवा चलने से ऊँमस नहीं थी। सुधा भी खा-पीकर अपने कमरे में घनिया को महाभारत की कहानियाँ सुना रही थी। बचपन से ही रायसाहब के घर रह जाने से घनिया को कुछ पढने-लिखने का अभ्यास हो गया था। प्रेमसागर वह कई बार बाँच चुकी थी। पटने आने पर जब भी फुर्सत मिलती, वह मालकिन से अक्सर महाभारत की कहानियाँ सुनती। आज सुधा घनिया को अभिमन्यु-वध की कथा सुना रही थी। कथा के बीच में ही नीचे से किसी स्त्री-कण्ठ की आवाज आई, "भाभी कहाँ हैं दिनेश?"

"ऊपर अपने कमरे में है। वहीं चले जाइए न," दिनेश की आवाज थी।

आवाज सुन कर सुधा पहचान गई कि शोभा आ रही है। उसने घनिया को छुट्टी दे दी। शोभा ने किलकते हुए कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में 'संस्कृति' के प्रथम अंक की दो नयनाभिराम प्रतियाँ थीं। उनमें से एक को सुधा के हाथ में देती हुई वह मुस्काकर बोली, "आपको डिस्टर्ब किया भाभी, क्षमा करेंगी। कल शाम को ही 'संस्कृति' छप कर तैयार हो गई। उन्होंने कहा कि जाकर अपने हाथ से ही भैया और भाभी को 'संस्कृति' दे आना। सुबह दस ग्यारह बजे तक तो

कई कामों में उलझी रही। अभी छुट्टी मिली तो आ गई हूँ। भैया तो नहीं हो होंगे ?"

"वे तो कोर्ट चले गए," सुधा 'संस्कृति' के आवरण पृष्ठ को देखती हुई बोली, "प्रवेशाक तो सचमुच बड़ा सुन्दर निकला है।"

पत्रिका के एक हाशिये में अरविंद ने अपनी सुन्दर लिखावट में लिखा था, "पूज्या भाभी को सादर—अरविंद कुमार।" सुधा लिखावट के इन शब्दों को कई बार पढ़ गई। 'पूज्या' और 'भाभी' दोनों शब्द न जाने उसके मन को कैसे लगे। इसी बीच शोभा ने टोका, "यहाँ क्या देख रही है ? अन्तिम पृष्ठ पर उनकी रचना छपी है। उसे पढिए। न कोई छंद है, न तुक। फिर भी कहते हैं कि कविता है। मुझे तो तनिक भी पसन्द नही आई।"

सुधा ने अरविंद की लिखावट के शब्दों की ओर इशारा करते हुए मुस्काकर कहा, "यह भी तो उनकी कविता ही है शोभा जी!"

सुधा अब पत्रिका का अन्तिम पन्ना खोलकर अरविंद की 'वर्षा' शीर्षक कविता पढ़ने लगी—

"मेरे मन की सूनी गलियो में
अभी-अभी
कौन बंशी बजा गया ?
बोलो मूक दिशाओ, मौन पर्वतो, नीरव कुञ्जो,
बोलो कदम्ब की सूनी डालियो, यमुना के सूने तीर-कछारो,
कौन मुझे खोजता आया था, खोजता चला गया ?
उसकी अजान पुकारों ने मुझे जगा दिया
उसके इशारों ने मुझे पगला दिया
वह कहाँ है, कहाँ चला गया ?
दे दो राहो, उसके चरण-चिह्न दे दो
वह नही आये, नही मिले
मेरे प्राणो की गीली पगडंडियों पर
उसके चरण-चिह्न तो बिछ जायें
लौटा दो मेरा वह आकाश
जिसमें उसकी स्मृतियों की विहगियाँ
लगातार
उड़ती रहती हैं

लौटा दो उसको सिहरन
जिसमें मेरा-रोम रोम कांप जाये
मेरा स्थूल वाष्प बनकर
उसी के आंगन में
निःशब्द बरस जाये।"

"कवि जी तो पूरे रहस्यवाद पर उतर आये हैं," सुधा कविता के भाव-प्रवाह में लीन होती हुई बोली, "सचमुच बड़ी सुन्दर रचना है। बड़ा ही मार्मिक समर्पण है!"

"क्या आपको यह रचना पसन्द है भाभी?" शोभा कुछ आश्चर्य के साथ बोली, 'बिना छन्द और तुक के कोई कविता भी होती है?"

'यह सवाल आपने उनसे कभी किया?"

"जी हाँ, किया तो था।"

"क्या उत्तर दिया उन्होंने?"

"यही कि रुखड़े जीवन के गीत रुखड़े ही होते हैं। इसे वे रहस्यवादी रचना भी नहीं मानते। कहते हैं, इसमें मिट्टी को मिट्टी का सहज समर्पण है।"

"ठीक तो है," सुधा मुस्काती हुई बोली, "मैं तो आप लोगों की तरह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं। हाँ, इतना जानती हूँ कि छन्द और तुक ऊपरी चीजें हैं। वे कविता के अनिवार्य तत्त्व नहीं। किंतु यदि यह सचमुच मिट्टी का मिट्टी को समर्पण है तो कवि जी की मिट्टी धन्य है।"

"आपका मतलब?"

"मतलब कि आप धन्य हैं जिसकी वंशी की धुन के लिए कवि जी उतावले हो रहे हैं!" कहकर सुधा हँस पड़ी।

"यह तो खूब कहा आपने," शोभा कुछ कटकर बोली, "अर्थ का अनर्थ है यह।"

"नहीं शोभा जी, मैं मजाक नहीं करती," सुधा कुछ गम्भीर पड़कर बोली, "सम्भव है, यह कवि का अपनी प्रिया के प्रति ही प्रगाढ़ आत्म-निवेदन हो। और वह प्रिया आपके सिवा दूसरी हो कौन सकती है?"

"कवि की प्रियायें एक-दो तो होती नहीं भाभी," शोभा मजाक के स्वर में बोली, "वे तो अनगिनत होती हैं। हाँ, उनमें से एक को तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ। वह है उनकी कोई बचपन की दोस्त। उसकी याद में उन्होंने बहुत सारे गीत लिखे हैं। यदि वह मिल जाये तो फिर मुझे क्यों पूछें।"

"समय की धार में बहुत कुछ बह जाता है। कुछ नया भी मिल जाता है। जो बह जाता है उसकी याद भी न रहे तो आदमी कृतघ्न कहा जाए। किन्तु इससे नई लहरों को कोई खतरा नहीं होना चाहिए। उनकी बचपन की जो भी प्रिया रही हो, अब तक वह उनके लिए बीत चुकी होगी। निश्चित रूप से वह आपकी सौत नहीं होने जा रही है।"

इतना कहकर सुधा फिर मुस्काई और शोभा पर एक मीठा कटाक्षपात किया। शोभा ने भी लगे हाथों मुस्काकर कहा, "वह प्रिया आप भी तो हो सकती हैं।"

"मैं ?" सुधा इसे मजाक समझ कर बोली, "तब तो निश्चित रूप से मैं आपकी सौत हूँ ! किन्तु मेरा इतना सौभाग्य कहाँ ? कवि की प्रिया तो आपकी ही तरह कोई सुन्दरी कलावती नारी हो सकती है !"

शोभा ने चाहा कि बहुत दिनों की घुटन का आज सुधा के सामने खोल दे। अपने पति के मुख से अब तक उसने उनके बचपन के बहुत से संस्मरण सुने थे। अरविन्द ने उस लड़की के रूप-गुण के विषय में भी उसे बहुत कुछ बताया था जिसके साथ बचपन में उसकी दोस्ती हो गई थी। लड़की का नाम शोभा नहीं जानती थी। इसकी कोई जिज्ञासा भी उसने अरविन्द से नहीं की थी। शोभा पति की आत्मकथा के मार्मिक अंशों को सुनकर करुणा-विह्वल भी हो गई थी। किन्तु उसके मन के किसी कोने में उस लड़की के प्रति ईर्ष्या का भाव भी पनप गया था। सब कुछ सुनाकर अरविन्द ने उससे वचन लिया था कि वह इन बातों को किसी दूसरे से नहीं खोलेगी। किन्तु जिस दिन शोभा को मालूम हुआ कि विनोद की ससुराल अरविन्द के गाँव में ही है, उस दिन से उसका कौतूहल बढ़ता गया था। विनोद खुद उससे बार-बार अरविन्द का ठौर-ठिकाना पूछा करता। किन्तु शोभा पति को दिये गए वचन की याद करके टालती जाती। फिर भी विनोद से बात को अधिक दिनों तक छिपाए रखना उसके लिए सम्भव नहीं हो सका। इसीलिए कल विनोद के बहकावे में पड़कर उसने अरविन्द का जन्मस्थान और उसके पिता का नाम, केवल इतना बता दिया था। कल विनोद ने सुधा को नीचा दिखाते समय उसके साथ अरविन्द का जो सम्बन्ध जोड़ा था, यह सब शोभा की कही हुई बात का ही परिणाम था। किन्तु यह सब उसकी कोरी कल्पना थी, मस्तिष्क की खुराफात थी। पहले उसने सोचा था कि घर जाकर अरविन्द के विषय में सुधा से पूछ-ताछ करेगा। किन्तु घर आते ही बात कुछ दूसरी हो गई। सुधा के सामने अपनी नीचता को छिपाने के लिए उसने एक ऐसे अस्त्र का प्रयोग कर दिया जो पहले उसी के लिए अकल्पित था।

शोभा ने भी अभी सुधा से जो कुछ कहा था, उसमें मजाक का ही पुट था। किन्तु इस सिलसिले में एक बार जब बात का रुख अरविन्द के बचपन की ओर चला गया तो शोभा का मन कुलबुलाने लगा। वह अरविन्द के सम्बन्ध में सुधा से कुछ पूछने को आतुर हो गई।

इधर सुधा का मन शोभा के साथ बातचीत करने से कुछ हल्का होता गया। पति का कठोर व्यवहार वह बहुत कुछ भूल गई। उसने घनिया को बुलाकर आदेश दिया कि वह स्टोव जलाकर जल्दी दो कप चाय तैयार करे।

"सुनती हूँ, आपका गाँव बड़ा सुन्दर है भाभी," अचानक शोभा बातचीत का रुख मोड़ती हुई बोली, "कभी मुझे भी वहाँ बुला ले चलिए न।"

"जरूर," सुधा सिर उठा कर बोली, "भला इसमें भी कुछ पूछना है। आप तो किसनपुर गई ही हैं। वहाँ से छह-सात मील का ही तो फासला है। यों है तो वह एक गाँव-गँवई, सुन्दर उसे आप नहीं कह सकती।"

"आपका गाँव और सुन्दर न हो?" शोभा बोली, "गाँव में कोई हाई स्कूल भी है न?"

"जी हाँ, लेकिन अब तो वह कालेज हो गया है," सुधा सहज स्वर में बोल गई। सोचा, विनोद ने कभी शोभा से उस स्कूल की चर्चा की होगी।

सुधा ने सामने खुली खिडकी से बादल के एक बड़े टुकडे को नीचे लटकते हुए देखा, मानो वह धरती पर अब गिरा, तब गिरा। हवा का वेग कुछ बढ़ गया था। सुधा का आँचल सरक कर नीचे चला गया। उसे सँभालती हुई वह शोभा को कुछ चिन्तित देख कर बोली, "क्या सोच रही हैं आप?"

"कुछ नहीं, कुछ यों ही," शोभा फीकी मुस्कान लेकर बोली, "सोच रही हूँ कि आपकी तरह मेरी कोई ससुराल नहीं जहाँ जाकर कुछ दिन रह सकूँ।"

"सबको सब नहीं मिलता शोभा जी," सुधा ने सांत्वना के स्वर में कहा, "आपको तो ऐसे पति मिले हैं जिन्हें पाकर कोई अभाव नहीं खलता होगा।"

शोभा को सुधा की यह बात न जाने क्यों अच्छी नहीं लगी। जैसे उसे चिढाने के लिए ही बात कही गई हो। चिढ़ कर बोली, "अपना-अपना भाग्य होता है भाभी। किन्तु मुझे खुद ऐसा महसूस नहीं होता। मुझे तो अभाव ही अभाव दिखता है।"

सुधा ने अचरज की निगाह से शोभा को देखा। अब तक शोभा के चेहरे पर कुछ रुक्षता उतर आई थी। उसने फिर कुछ कहना चाहा। किन्तु न जाने क्या सोच कर चुप लगा गई। कुछ क्षणों तक दोनों अपने-अपने विचारों में खोई

रही। बाहर वर्षा की टिप-टिप शुरू हो गई थी। एकाएक शोभा ने मौन भंग किया, "आपके गाँव में कमल नाम का कोई लड़का रहता था भाभी ?"

सुधा के मन पर मानो अचानक बिजली कड़क गई हो। उसने 'संस्कृति' के खुले पन्ने को बन्द कर दिया। आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से शोभा को देखती हुई बोली, "था तो, किन्तु बात क्या है ?"

"वह क्या अभी भी जीवित है ?"

"उसके मरे तो कई साल गुजर गये। कहीं ट्रेन से भागा जा रहा था। न जाने कैसे गिर गया और कट मरा। पर आप उसे कैसे जानती हैं ?"

"मैं किसनपुर गई थी तो वहीं उसकी चर्चा सुनी थी। शायद आप जानती होंगी, कमल का ननिहाल वही पड़ता है। बचपन में एक बार कमल से मेरी भेंट भी हुई थी।……उसका घर तो अब तक उजड़ चुका होगा।"

"नहीं तो," सुधा बेखटके बोली, "उसके परिवार के कई लोग अभी भी हैं।"

"क्या आपका पढ़ना-लिखना कमल के साथ ही हुआ था ?" शोभा ने कुछ और टोह लेना चाहा, "आप दोनों बचपन के साथी रहे होंगे ?"

"कुछ दिन साथ पढ़ा था जरूर," अचानक सुधा के मन पर कुछ खटका हुआ। पति का कल वाला दोषारोपण याद आ गया। कुछ छिपाकर बोली, "किन्तु साथी नहीं बने। वह मेरे क्लास में कुछ दिनों तक पढ़ता रहा। बस यही उसके और मेरे बीच का रिश्ता था।"

शोभा अब चुप हो गयी। आज तक जो सन्देह उसके मन में कभी नहीं फूटा था, वह आज इस समय न जाने कैसे अंकुरित हो गया। कहीं यह नीलम ही तो कमल के बचपन की प्रिय सहचरी नहीं ? जिसकी याद अरविन्द इतनी आत्मीयता के साथ करता है, जिसकी स्मृति में कविताएँ लिखता आया है, कहीं वही कवि-प्रिया तो नहीं यह ? अचानक शोभा के मन में ईर्ष्याग्नि जल उठी। चेहरे की शिराओं में बल पड़ गये। इसी बीच धनिया चाय बना कर लाई। एक-एक कप दोनों के हाथों में थमा दिया। दोनों अपने-अपने विचारों में डूबी हुई चाय के गरम-गरम घूँट गले के नीचे उतारने लगी। सुधा सोच रही थी कि विनोद की कही हुई बात का कहीं सचमुच कोई आधार तो नहीं ? कल उसी ने कहा था कि अरविन्द सुधा के गाँव का ही रहने वाला है। उसके साथ सुधा का अनैतिक सम्बन्ध रहा है। आज यह शोभा भी बिना किसी प्रत्यक्ष प्रयोजन के कमल के विषय में खोद-खोद कर पूछ रही है। इन सबका मतलब क्या है ?……

"कमल तो नहीं भाभी, किंतु कमल का भूत अभी भी जीवित है," शोभा चाय की चुस्की लेती हुई कुछ अस्वाभाविक लहजे में बोली, "यदि आपका उससे थोड़ा भी सम्बन्ध रहा होगा तो यह आपको कभी न कभी दर्शन देगा ही।"

सुधा का अंग-प्रत्यंग न जाने क्यों कांप गया। उसने जल्दी से चाय खतम करके कप एक तरफ रख दिया और शोभा पर एक भेद भरी दृष्टि डाल कर बोली, "आप तो जैसे पहेली बुझा रही हैं। साफ-साफ कहिए न कि बात क्या है?"

"आप भूत से डर गईं न?" शोभा एक अर्थ भरी मुस्कान लेकर बोली, "सचमुच भूत डरने की चीज होता है। रहस्य तुरत खुल जाये तो रहस्य ही क्या! उसके खुलने के लिए कुछ समय तो चाहिए ही।"

सुधा को शोभा की यह बात खटक गई। मन कुछ गरम हो गया। किंतु उसने अपने पर काबू करते हुए कहा, "डरने या न डरने की कोई बात भी तो हो! आप तो अभी भी छायावाद में बोल रही हैं। कवि-पत्नी होने का असर है शायद।"

शोभा यहाँ चुप लगा गई। उसने सोचा कि वह शायद कुछ ज्यादा बोल गई। नाहक ही वह सुधा के मन में सन्देह के बीज बो रही है। यह सब अरविंद को मालूम हो जाये तो वह बहुत बुरा मानेगा। तुरत पैंतरा बदल कर मुस्काती हुई बोली, "कोई बात नहीं है भाभी! मैं तो पगली ठहरी। बकती रहती हूँ। कमल की याद आ जाने से मजाक में यह सब कह दिया। बुरा नहीं मानेंगी।"

सुधा को मन ही मन सुख मिला कि शोभा कोई और अप्रिय बात नहीं बोली। 'संस्कृति' के पन्नों को उँगली से फड़फड़ाते हुए उसने कहा, "आपकी बात से बुरा क्यों मानूँगी? यदि सचमुच ये बातें हँसी में ही कही गई हैं तो ऐसी हँसी भी सब कहाँ कर पाते हैं!"

"अच्छा भाभी, मुझे तो बड़ी देर हो गई", शोभा बोली, "अब विदा दें। और हाँ, यह भैया की 'संस्कृति' आप ही उन्हें दे देंगी।"

"अच्छा हो कि आप ही के हाथ से यह उन्हें मिले," सुधा ने कहा, "आज शाम को आ जाइए न। आपसे फिर भेंट भी हो जायेगी।"

"जैसी इच्छा," शोभा कुछ सोचती हुई बोली, "तो मैं चली। अभी एक जगह और जाना है।"

इतना कहकर शोभा उठ खड़ी हुई। सुधा उसे छोड़ने के लिए नीचे गेट तक गई। बाहर कैलाश कार लिए शोभा का प्रतीक्षा कर रहा था। सुधा को नमस्ते करके शोभा कार में बैठ गयी। अब तक बारिश थम गई थी। किन्तु आकाश में

ढेर के ढेर बादलों का आना-जाना बन्द नहीं हुआ था। जब सुधा शोभा को छोड़ कर अन्दर आने लगी तो लगा जैसे उसके पैर जकड़ गये हों। मन का बोझ भी कई गुना बढ़ गया था। शोभा की कही हुई बातों में उलझी हुई वह अपने कमरे में आई। हाँफ कर अपने पलंग पर जा लेटी। क्या यह सही है कि शोभा केवल मजाक में इतनी बातें बल गई? कमल के भूत से शोभा का क्या आशय था? क्या अरविन्द या उसके गाँव से सचमुच का कोई सम्बन्ध है? जो कमल कई वर्ष पहले मर चुका है, जिसकी याद भी इतनी पुरानी पड़ गयी है, उसके विषय में गाँव से इतनी दूर शहर के रईस लोगों के मुख से कैसी-कैसी विचित्र बातें सुनने को मिल रही हैं! सुधा का मस्तिष्क झन्ना गया। कल से ही उसके जीवन के क्षितिज पर नये-नये तूफान मडराने लगे थे।

आठ

पण्डितजी घर से कहीं बाहर चले गये थे। कह गये थे कि दो-तीन रोज पर लौटेंगे। प्रेस और 'संस्कृति' के दूसरे अंक की जिम्मेदारी वे अरविन्द पर छोड़ते गये थे। अरविन्द अपने आॅफिस में बैठा कुछ विद्वानों के पास पत्र लिख रहा था। 'संस्कृति' के प्रथम अंक की बड़ी सराहना हुई थी। अंक की सफलता का वास्तविक श्रेय अरविन्द को ही था। पण्डित जी के अल्प निर्देशन में ही उसने जीतोड़ परिश्रम करके अंक को स्तरीय बना दिया था। उसकी कार्यदक्षता देख कर पण्डित जो बहुत प्रभावित थे। उनके परिवार के सदस्यों के साथ भी अरविन्द का अनौपचारिक सम्बन्ध बढ़ता जा रहा था।

सामने दीवार घड़ी ने टन-टन-टन करके दिन के तीन बजाये। अलका थोड़ी देर पहले अरविन्द को काॅफी पिला गई थी। अभी कुछ देर पहले से उसके कमरे से वायलिन की समधुर ध्वनि अरविन्द के आफिस में सीधे पहुँचकर कानों में अमृत का संचार कर रही थी। अलका घर में जब भी अकेली होती, अपने मन के तारों को वायलिन के माध्यम से मुखरित करने लगती। उसकी वायलिन में वेदना की एक अजानी टीस भरी होती। स्वर के उतार-चढ़ाव में आतुर अन्तर की मार्मिक पुकार उठने लगती थी। उसे सुनकर सहृदय श्रोता अपना

भौतिक अस्तित्व भूल जाते। अलका अपनी बातचीत या व्यवहार में जितनी ही उन्मुक्त थी, वायलिन-वादन में उतनी ही गम्भीर। आये दिन अरविन्द से वह अक्सर विचित्र प्रकार के व्यवहार करती रही है। कभी ढीठ, कभी शरमीली और कभी अश्लील-सी बातें करती हुई दिखाई देती है। अरविन्द उसकी बातों से कभी-कभी तो ऊब जाता है। किन्तु कभी-कभी, खासकर वायलिन-वादन के समय, उसमें बड़ी आत्मीयता और सुख का बोध करता है। अभी-अभी वायलिन की जादूभरी आवाज से उसका मन विचलित हो गया है। वह पत्र लिखने में मन को एकाग्र करना चाहता है। किन्तु कर नहीं पाता। वायलिन के काँपते-थिरकते स्वर उसके भावुक हृदय के रेशे-रेशे को कँपाते जा रहे हैं। लगता है जैसे वह पत्र नहीं लिख पायेगा। कभी इच्छा होती है कि भीतर जाकर अलका से बोल दे कि *वह अभी वायलिन न बजाये। किन्तु वायलिन बन्द होना भी वह* नहीं चाहता। कुछ क्षणों में उसे लगा जैसे संगीत का जादू उसे अपनी ओर खींचता जा रहा है। पता नहीं किस भावावेश में वह उठ खड़ा हुआ। पहले से ही खुले दरवाजे से वह ड्राइंग रूम में आ गया। ड्राइंग रूम का बाहरी दरवाजा बन्द था। सामने अलका के कमरे का दरवाजा खुला था। उसी के भीतर वायलिन का मन्द स्वर गूँज रहा था। अरविन्द ने धीरे से कमरे के पर्दे को हटाकर भीतर देखा। अलका अपने आसन पर बैठी पूरब में मुँह किए नाद-ब्रह्म में लीन दिखाई पड़ी। जिस ओर उसका मुंह था उस ओर एक छोटे टेबुल पर ताण्डव की मुद्रा में भगवान शंकर की एक छोटी हाथी-दाँत की प्रतिमा रखी हुई थी। अलका उसी में ध्यान लगाये अपना वाद्य बजा रही थी। शरीर निष्कम्प था। किन्तु वायलिन के तारों पर दौड़ती हुई उँगलियों में प्राणों की सूक्ष्म आतुरी भरी हुई थी। यदि वह अपनी नजर थोड़ा भी घुमा देती तो अरविन्द उसे आसानी से दिख जाता। किन्तु अरविन्द के वहाँ कई मिनट खडे रहने पर भी अलका का ध्यान तनिक भी विचलित नहीं हुआ। कुछ देर में अरविन्द को ऐसा लगा जैसे वायलिन उसे निकट से निकटतर खींचता जा रहा है। मानो अलका कोई स्वर्गीय देवी है जो अपने किसी भक्त की पुकार पर दिव्य स्वरों के आरोह-अवरोह में पृथ्वी पर प्रकट हुई है। अरविन्द सचमुच ही अलका के बिल्कुल करीब जाकर उसके पीछे चुपचाप खडा हो गया। स्वर-समाधि में डूबी हुई अलका को अपलक निहारता रहा। एकाएक अलका की उँगलियाँ तीव्र से तीव्रतर होकर तारों पर नाचने लगी! स्वर साधना का यह क्लाइमेक्स था। कमरे का पूरा अस्तित्व उससे नाच उठा। जब वायलिन एकाएक बन्द हो गया तो अरविन्द को अचानक अपने अस्तित्व का चेत हुआ। उसने चाहा कि चुपचाप कमरे से खिसक जाये। किन्तु

इसी बीच अलका की नजर उस पर पड़ गयी। अलका ने उसे झाँकते हुए देखा। बिना कोई आश्चर्य या प्रसन्नता का भाव दिखाये वह शान्त स्वर में बोली, "आइये, विराजिये। मैं जानती थी कि आप आयेंगे।"

"आप जानती थी? सो कैसे?" अरविन्द खड़ा-खड़ा ही बोला।

"पहले बैठिए तो सही, आज पहली दफा मेरे कमरे में आये हैं—स्वागतम्। डरने की कोई बात नहीं! अभी मैं घर में बिल्कुल अकेली हूँ। अगर कोई होता तो भी भय की कोई बात नहीं थी।"

अरविन्द पास रखी कुर्सी पर बैठ गया। झेंप के साथ बोला, "मुझे तो अभी कई पत्र लिखने हैं। पीछे जम के बातें करेंगे। आपकी स्वर-माधुरी मुझे यहाँ तक खींच लाई।"

"अच्छा, जरा रुकिये," अलका इतना कहकर उठ खड़ी हुई और बाहर जाकर अरविन्द के ऑफिस के दरवाजे को भी भीतर से बन्द कर आई। फिर वहाँ पहुँच कर बोली, "अब निश्चिन्त होकर बैठिये। आज सचमुच मेरी कला सफल हो गई। जिसे पुकार रही थी वह आ गया।"

अरविन्द यह नहीं जान सका कि अलका कमरे से बाहर क्या करने गई थी। कुछ चकित स्वर में बोला, "आप क्या यह कहना चाहती हैं कि वायलिन के द्वारा आप मुझे पुकार रही थी?"

"जी हाँ, इसमें अचरज की क्या बात?"

"किन्तु मैं तो कमरे में था ही। आप जब चाहतीं, मुझे बुला लेती या खुद मेरे पास चली आती।"

"मैं तो अपनी कला से एक कलाकार को बुला रही थी। उसकी सहृदयता की परीक्षा लेना चाहती थी।"

"तब तो लगता है, मैं अपनी परीक्षा में पास हो गया।"

"अभी केवल एक पेपर में ही पास हुए हैं।," अलका अपनी काली भौंहों को नचाती हुई आँखों में शरारत भर कर बोली, "अभी कई परचों में पास करना है।"

"अच्छा, तो उनमें भी बैठ लूंगा। पास या फेल होना तो भगवान के हाथ में है। किन्तु एक बात बताइये। आपमें और आपकी कला में इतना अन्तर क्यों है? आप खुद तो फुदकती तितली हैं। चेहरे पर कोई शिकन नहीं, निश्चिन्तता और मस्ती, होठों और आँखों में मुस्कान ही मुस्कान। किन्तु आपकी वायलिन से रुदन, हाहाकार और करुणा के अजस्र नाद-स्रोत फूटने लगते हैं। एक ही व्यक्ति के इन दो रूपों का रहस्य क्या है?"

"कला तो हमारे अन्तर की ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति होती है," अलका एकाएक गम्भीर पड़कर बोली, "उसमें हमारे अन्तर का जो रूप खुलता है, वही हमारी असली सचाई है। हम दूसरों को भले छलते रहें, किन्तु अपनी कला को नहीं छल सकते। नदी के अन्तर में ही वास्तविक प्रवाह होता है। लहरों की उछल-कूद तो ऊपर-ऊपर की चीज है। लहरें बनती-मिटती रहती हैं। किन्तु भीतरी प्रवाह के रूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। आप जिन चंचल रेखाओं को मुझमें ऊपर-ऊपर देखते हैं, वे मेरी लहरें हैं। किन्तु मेरी कला में तो मेरे प्राणों का धीर-शांत प्रवाह होता है।"

अरविन्द ने अलका से इसके पहले कभी कोई गम्भीर बात नहीं सुनी थी। ऐसी गंभीरता की वह उससे उम्मीद भी नहीं करता था। अलका जैसी चंचल और शोख लड़की भी ऐसे उदात्त स्वर में बोल सकती है, उसे आज ही अनुभव हुआ। अलका को तो वह अब तक उच्छृंखल और शरारती लड़की ही समझता आया था। किन्तु आज पहली बार उसकी बातें सुनकर उसके प्रति अरविन्द की श्रद्धा छलक पड़ी। उसने अलका के शान्त चेहरे पर अपनी कोमल दृष्टि डालते हुए कहा, "अब मैं समझ गया अलका रानी! किन्तु आप के अन्तर की इस पीड़ा का अर्थ मैं अभी भी नहीं समझ पाया हूँ। यह सब पूछने का तो मैं अधिकारी नहीं। किन्तु जिज्ञासावश पूछ रहा हूँ। क्षमा करेंगी। जिसका परिवार इतना सुखी और सम्पन्न है, जिसके माता-पिता इतने शिक्षित और प्रतिष्ठित हैं, अपनी बेटी को इतना स्नेह देते हैं, वही अन्दर से इतनी दुखी रहे, इसका कारण?"

"आप मुझसे कुछ भी पूछ सकते हैं," अलका पंखे के रेगुलेटर को कुछ कम करती हुई बोली, "जो बात मैंने आज तक किसी से नहीं कही, उसे आज आपसे बेझिझक कहने जा रही हूँ! आप शोभा दी के पति हैं तो क्या, आप पर मैं भी अपना अधिकार समझती हूँ। उतना ही अधिकार जितना शोभा दी का है। जब आपकी शादी हुई और मैंने पहले पहल आपको दूल्हे के रूप में देखा तो सच कहती हूँ, बड़ी दया आई आप पर! मैं नहीं जानती थी कि मेरा यह दया-भाव एक दिन प्रेम-भाव में बदल जायेगा। खैर, अभी छोड़िए इन बातों को। मुझे ठीक से देखिए तो। क्या मैं सचमुच सुन्दर लगती हूँ अरविन्द बाबू? अच्छी लगती हूँ या बुरी? सच-सच बताइए।"

अचानक अरविन्द को जैसे किसी ने धक्का देकर जगा दिया हो। यह अलका अचानक ऐसी बेतुकी बातें क्यों कर रही है? उसने कुछ विस्मय की दृष्टि से अलका की आँखों में देखा। वहाँ आत्मीयता, स्नेह और आकर्षण का जैसे कोई

समुद्र लहरा रहा था। अरविन्द तुरत ही अभिभूत हो गया। संयत स्वर में बोला, "आप सुन्दर नहीं हैं, यह कौन कह सकता है अलका जी ?"

"मैं केवल यही सुनना चाहती थी," कहते-कहते अलका की भावमयी आँखें एकाएक छलक पड़ीं। भाव-विह्वल होकर बोली, "आज नारी जीवन में पहली बार पुरुष से अपनी सुन्दरता की बात सुन रही हूँ। आज से पहले न तो कभी नारी हुई थी मैं और न मुझे कोई पुरुष मिला था।......किन्तु अरविन्द बाबू, यदि मैं कहूँ कि आप एक माँ, एक शापिता कुन्ती के सामने बैठे हैं तो विश्वास करेंगे ?"

"माँ ?" अरविन्द और भी विस्मित होकर बोला, "आप का मतलब ? क्या आप किसी की माँ हैं ?"

"हाँ, मैं माँ हूँ," अलका अविचल स्वर में बोलती गई, "बच्चा नहीं है, गंगा में कहीं फेंक दिया गया। पण्डितजी मेरे पिता और पति दोनों हैं। उनकी पत्नी मेरी माँ और सौत दोनों !"

अरविन्द को लगा जैसे कमरे की एक-एक चीज काँप गई हो। टेबुल पर रखे छोटे नटवर अपनी ताण्डव मुद्रा में ही ठठाकर हँस पड़े हों। अलका पुनः अनुत्तेजित वाणी में बोलने लगी, "मैं जानती हूँ, तुम्हें अचरज हो रहा होगा। शायद तुम मुझसे या पण्डितजी से घृणा भी करने लगे होगे। किन्तु खुद मैं पण्डितजी से इसलिए नफरत नहीं करती कि वे मेरे साथ ऐसा अनैतिक सम्बन्ध रखते हैं। उनके प्रति मेरी नफरत इसलिए है कि वे मेरी और अपनी अवस्था नहीं देखते। ऊपर से पिता होने का मुखौटा लगाये रखते हैं, किन्तु इस मुखौटे के भीतर बन जाते हैं मेरे पति। प्रेम को केवल शरीर की चीज मानते हैं। उसी की आग उनमें बराबर जलती रहती है। मेरी आराम-सुविधा के लिए वे इसीलिए रात-दिन बेचैन रहते हैं। वे चाहते हैं कि मैं जीवन भर क्वारी रहकर उनके बूढ़े चाम में उत्तेजना भरती रहूँ। मेरी शादी की चर्चा वे चाहे माँ जो दूसरों से करते हैं, वह एक ढकोसला है, दिखावा है। अपनी माँ के प्रति मेरी नफरत इसलिए नहीं कि वे मेरी माँ हैं, बल्कि इसलिए है कि वे अपने अस्तित्व की रक्षा मेरे शरीर और आत्मा की कीमत पर करती हैं। अपने सुख के लिए मुझे निर्जीव इन्धन समझ कर पण्डितजी की आग को होम करती रहती हैं।"

शोख और चंचल अलका एकाएक अब बिल्कुल बदल गई थी। अरविन्द को लगा जैसे यह अलका नहीं बोल रही है। प्राणों की कोई टीस है जो उसकी जबान से स्वतः झर रही है। जिस मनोमय दीप्ति से प्रशान्त बनी वह थोड़ी देर पहले वायलिन बजाते समय दिखाई पड़ी थी, वही आभा एक बार फिर उसके

अंग-अंग से फूट रही थी। अरविन्द के मन में आश्चर्य का जो भाव कुछ देर पहले जगा था, धीरे-धीरे वह सहानुभूति और संवेदना का रूप लेने लगा। सोचा कि अलका उससे ऐसी बातें नहीं कहती तो अच्छा रहता। किन्तु तीर छूट चुका था। बातें एक अनचाहे मोड़ पर पहुँच चुकी थी। अरविन्द ने सहानुभूति के स्वर में पूछा, "यदि ऐसी बात है तो आप इसका विरोध क्यों नही करती? अपने जीवन के लिए कोई स्वतन्त्र रास्ता क्यों नही खोज लेती?"

"विरोध करने का जब समय था, तब तो लाज-शरम में लिपटी रह गई। उसको कोई चेतना ही नही जगी," अलका अपने मुर्दे होठो पर पीडा का मन्द दीप जला कर बोली, "अब विरोध करके ही क्या पा लूंगी? बहुत दूर वह आई हूँ। जब चार वर्ष की ही थी तो पण्डितजी नये पिता के रूप मे मिले। मेरी माँ को जीविका का कोई आधार नही था। मायके और ससुराल दोनो जगह केवल पति की ही छाया प्राप्त थी। अचानक पिताजी का स्वर्गवास हो गया और पण्डितजी ने माँ को मझधार में डूबने से बचा लिया। मैं इन्हीं के यहाँ पली, बड़ी हुई। माँ की इस शादी के दो वर्षों बाद ही मुझे एक भाई मिला। वह इस समय देहरादून मिलिटरी कालेज में पढता है। घर नही आता, क्योंकि उसे मेरा और पण्डितजी का सम्बन्ध मालूम है। इसी से वह हम दोनो से घृणा करता है।......जब मुझमें शरीर की कोई चेतना भी नही जगा थी, तभी से पण्डितजी कमोवेश मेरा उपभोग करने लगे। अब तो अभ्यस्त हो चुकी हूँ। यही जानती हूँ कि मैं आत्मा और हृदय नही, एक निर्जीव शरीर हूँ। यदि मैं पण्डितजी से बचना भी चाहूँ तो कैसे बच सकती हूँ? कौन लेगा अब इस मुर्दे शरीर को?"

अलका के चुप हो जाने के बाद एक गहरी विषण्णता कमरे में छा गई। पंखे से जो झिर-झिर हवा चल रही थी, मानो उसकी भी साँसें कुछ देर तक रुकी रह गई। अरविन्द को अब अलका की आँखों में देखने की जैसे हिम्मत ही नही रह गई। जीवन की कैसी-कैसी विडम्बनायें है ये? इन्हीं के चलते तो उसे अब तक कई राहें छोड़ देनी पड़ी हैं। कई नीड़ों को बसा कर पुनः त्याग देना पड़ा है। अब जिस नई डाल पर वह आ बैठा है, यहाँ भी दुर्भाग्य उसका पीछा कर रहा है। पण्डितजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसने उनका सहयोगी होना स्वीकार किया था। किन्तु अभी पैर पूरी तरह जम भी नही पाये कि यह अलका एक दर्दनाक गुत्थी बनकर न जाने कहाँ से टपककर सामने आ गई। तो क्या उसे यह डाल भी छोड़नी होगी?......अरविन्द कुछ विचार कर ही रहा था कि अलका की आवाज फिर सुनाई पड़ी, "किन्तु जबसे मैंने तुम्हें देखा अरविन्द, मैं जड़ से चेतन होने लगी। कुछ आशा और निराशा के द्वन्द्व मेरे मन

मे भी जगने लगे। यह इसलिए नहीं कि तुम बहुत सुन्दर हो, एक अच्छे साहित्यकार हो। बल्कि इसलिए कि तुममें कोई ऐसी मानवीय आभा है जिसने मेरे मन को एक बारगी खींच लिया है। मैं युगों से प्यासी हूँ अरविन्द! इस तीखी प्यास ने मुझे झुलसा कर रख दिया है। मैं तड़प रही हूँ, मुझे बचा लो। एक क्षण के लिए भी इस निर्जीव शरीर को प्राणमय कर दो!"

अलका किसी मन संवेग में एकाएक 'तुम' पर उतर आई थी। अरविन्द ने इस बार अकचका कर उसकी ओर देखा। अब तक अलका की आँखों से टप-टप मोती झरने लगे थे। किन्तु आँसुओं में सनी उसकी आँखों में उद्दाम वासना तरंगित हो रही थी। मुखड़े की कान्ति लाल हो गई थी। उसके हाथ अरविन्द को आलिंगन में भरने के लिए आमन्त्रण दे रहे थे। उस सजल एवं करुण रूप के जादू से वह सहज ही अभिभूत हो गया। किन्तु संभल कर बोला, "तुम तो जानती हो अलका, मैं विवाहित हूँ।"

"मैं तुमको तुमसे अधिक जानती हूँ," अलका बेधड़क अरविन्द के और भी नजदीक खिच आई। उसके गले मे अपनी प्रस्फुरित भुजाओं का बन्धन डालती हुई आँसुओं के स्वर मे बोली, "यह भी जानती हूँ कि तुम्हारा विवाह एक ढकोसला है। तुम्हारे सरल और स्वच्छन्द हृदय को ठगने का एक बहाना है। किन्तु तुम ऐसे ठगो से बाँधे नही जा सकते। तुम्हारी कला की प्रकृति तुम्हें ऐसे मुखौटो के साथ चिपके नहीं रहने देगी। इस भिखारिन को मत ठुकराओ। इसके हृदय की रिक्त झोली को अपने चुम्बनों से भर दो!"

अरविन्द को लगा जैसे अचानक उसका अंग-अंग किसी आग में जल उठा है। वह इस समर्पण के आवेगों को सह नहीं पाया। दूसरे ही क्षण उसने अलका को भुजाओं के कठोर पाश में बाँध लिया। उसके गीले होठों पर अपने जलते होंठ रख दिये। बेहोश-सा एक के बाद एक कई चुम्बन भरता रहा। अलका की सुरमई आँखें मुँद गयीं। अपनी तेज साँसो में लिपटी हुई वह एक संज्ञाहीन शरीर की तरह अरविन्द की चौड़ी छाती से चिपक गई। कुछ देर बाद अरविन्द मानों किसी गहरी नींद से एकाएक जग गया। एक ही झटके में अलका से अपने को मुक्त करता हुआ हाँफ कर बोला, "बहुत हुआ अलका, अब मुझे माफ कर दो। भगवान के नाम पर मुझे मुक्त दो।"

अरविन्द का आकस्मिक झटका खाकर अलका अपने पलंग पर गिर पड़ी। उसकी आँखें अब भी बन्द थीं। साँसों की रफ्तार पहले की तरह ही तेज थी। अपनी चरम प्यास की अतृप्ति से झुलसती हुई जब उसने अरविन्द को देखने के [illegible]

लिए अपनी क्रुद्ध दृष्टि खोली तो कमरे को सूना पाया। अरविन्द अब तक कमरे के बाहर जा चुका था। अलका के होठों पर एक व्यंग्य भरी मुस्कान कौंध गई। धौंकनी की तरह चलती हुई साँसों को बोली बाहर आ गई—'कायर!'

नौ

विनोद की नई इम्पाला कार खरीद कर आ गयी थी। कार के उपयुक्त एक अच्छे ड्राइवर को भी बहाली हो गई थी। गाड़ी आते ही विनोद के घर की रौनक तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हो गई। अक्सर कोई न कोई गाडी उसके दरवाजे पर लगी ही रहती। वकालत की आमदनी भी पहले से बढ़ गई थी। किन्तु खर्च के हिसाब से अभी भी वह नाकाफी थी। कार खरीदने के लिए इन्दुमती ने अपने निजी कोष से रुपये दे दिए थे। किन्तु इतने रुपयों से काम नहीं चल पाया। तब निर्मला देवी ने शेष रुपये उधार के रूप में देकर गाड़ी खरीदवा दी थी। इतनी भारी रकम देने का विचार निर्मला देवी का नही था। किन्तु शोभा के बार-बार आग्रह करने पर वह किसी तरह तैयार हो गयी। निर्मला देवी ने इस विषय में अरविन्द की भी राय जाननी चाही थी। किन्तु अरविन्द ने इस बात में कोई रुचि नहीं दिखाई। निर्णय लेने का पूरा अधिकार अपनी सास को ही दे दिया। शादी हो जाने के बाद उसे एक क्षण को भी ऐसा नहीं लगा कि अब वह एक बडी सम्पत्ति का स्वामी हो गया है। उसे तो अपनी पसीने की कमाई का भरोसा था। ससुराल की सम्पत्ति को वह ऐसा धन मानता रहा जिसमें उसके पसीने का कोई भी अंश शामिल नही था। इधर निर्मला देवी या शोभा उसे एक साधारण सम्पादक की हैसियत में देखना बिल्कुल पसन्द नही करती थी। वे चाहती थी कि वह किसी बड़े अफसर, एडवोकेट या प्रोफेसर के पद पर प्रतिष्ठित हो जाये। कुछ इन्हीं कारणों से उसने संस्कृति के सम्पादन के विषय में माँ-बेटी से राय तक नही ली थी। जिस दिन उसे काम पर जाना था, उसी दिन उन दोनों को उसकी सर्विस की बात मालूम हुई।

आज शाम को अरविन्द जब अपने काम पर से डेरे पर लौटा तो शोभा दिखाई नही पडी। निर्मला देवी से मालूम हुआ कि वह विनोद के घर गई है।

विनोद ने उसे बुला लाने के लिए अपनी गाड़ी भेजी थी। अरविन्द ने फिर कुछ नहीं पूछा। शोभा का विनोद के घर जाना या विनोद का शोभा के घर आना एक आम बात हो गई थी। अरविन्द अब इस पर ध्यान भी नहीं देता। जब से उसने नौकरी शुरू की थी, वह सुबह दस बजे ही घर से निकल जाता और अक्सर पाँच-छह बजे संध्या समय घर वापस आता। इस बीच शोभा की कोई दिनचर्या उसे मालूम नहीं थी। न उसे वह जानना ही चाहता था। पति-पत्नी में परस्पर विश्वास के सम्बन्ध को वह सबसे बड़ी चीज मानता था। वह प्रायः शोभा से कहा करता कि वह कहीं भी आने-जाने को स्वतन्त्र है। अविश्वासों से उसका कोई समझौता नहीं। विश्वासों के चलते यदि कोई धक्का भी लगे तो वह उतना कष्टदायी नहीं होता जितना अविश्वासों की गहरी चोटों से होता है।

अरविन्द अपने साथ कागज की जो पोटली लाया था, उसे छिपा कर एक कोने में रख दिया। आराम कुर्सी पर बैठकर यही सोचने लगा कि अब क्या किया जाए। आज उसे अपने काम से कुछ सबेरे ही फुर्सत मिल गई थी। महीने की दूसरी तारीख थी। चलते समय पण्डितजी ने उसके वेतन के ढाई सौ रुपए उसे थमा दिए थे। इसके पहले उसे दो महीनों के वेतन और मिले थे। उन पाँच सौ रुपयों में उसने दो सौ रुपये श्यामाकान्त के नाम मनीआर्डर से भेज दिये थे। लिख दिया था कि प्रीति की शादी के लिए वह अभी से ही इन रुपयों से किसी बैंक में अपना खाता खोल दे।

घर लौटते समय उसके मन में आज एक नई कल्पना जगी। सोचा कि दरमाहे के पैसे से वह शोभा के लिए एक अच्छी-सी साड़ी खरीदता चले। अपना रास्ता छोड़कर वह कपड़े की दुकान पर पहुँचा। एक जगह बहुत छान-बीन करके उसने अपनी पसन्द से तीस रुपये की एक कांजीभरम साड़ी खरीदी। अपनी समझ में साड़ी पर उसने बहुत ज्यादा खर्च कर दिया था। साड़ी लेकर जब वह घर की ओर चला तो मानो उसके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे। शादी के बाद आज पहली बार उसने अपनी कमाई के पैसे से शोभा के लिए मनपसन्द साड़ी खरीदी थी। आज इस उपहार को पाकर शोभा निश्चय ही बहुत खुश होगी।

अरविन्द ने कमरे की खिड़की खोल दी थी। आकाश में सावन की बदली उमड़-घुमड़ रही थी। हवा शान्त थी। साँझ का झुटपुटा हल्के अँधेरे में बदलने लगा था। अरविन्द ने अपना कुर्ता निकाल कर नागदन्त की खूँटी से लगा दिया। केवल बनियाइन पहने पंखे की ठंढी हवा से पैदल चलने की थकान मिटाने लगा।

अक्सर कैलाश उसे गाड़ी से प्रेस तक छोड़ आता था। किसी-किसी दिन उसे लेने के लिए भी वहाँ पहुँच जाता था। किन्तु ज्यादातर अरविन्द वहाँ पैदल ही आता-जाता था।

शोभा का ड्रेसिंग टेबुल अरविन्द के सामने ही पड़ा था। उसके आदमकद शीशे में उसने अपने मुर्झाये चेहरे पर गौर किया। इसी सिलसिले में उसकी नजर टेबुल के कोने में पड़े कागज के एक छोटे चिट पर चली गई। उसने झुककर चिट को उठा लिया। उस पर लिखा था, "प्रिय शोभा, गाड़ी भेज रहा हूँ। देर मत करना। तुरत आ जाना। यहीं चाय पीकर पिक्चर चलेंगे।—विनोद।"

अरविन्द ने चिट को उलट-पुलट कर देखा। उसमें आज की ही तारीख दी हुई थी। इसका मतलब कि शोभा विनोद के साथ पिक्चर देखने गई है। अरविन्द के मन में अचानक कड़वाहट उभर आई। यह तो ठीक नहीं है। पहले शोभा अरविन्द को छोड़कर कभी पिक्चर नहीं जाती थी। थोड़े ही दिनों के भीतर इतना परिवर्तन! .. किन्तु सिनेमा जाने में हर्ज ही क्या है! इधर जब से अरविन्द सर्विस करने लगा है, उसे खुद छुट्टी बहुत कम मिलती है। अतः वह चाह कर भी शोभा को लेकर कहीं मनबहलाव के लिए जा नहीं सका है। शोभा का मन घर बैठे-बैठे जरूर ऊब जाता होगा। मन को हल्का करने के लिए यदि वह विनोद के साथ पिक्चर ही गई हो तो इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं। विनोद ने अपनी घड़ी देखी। अभी शोभा के वापस आने में ढाई-तीन घंटे की देर हो सकती थी। नौ बजे से पहले उसके घर आने की कोई सम्भावना नहीं थी। अरविन्द अपनी कुर्सी पर आकर फिर बैठ गया। इसी बीच जीतन नीचे से नाश्ता लाया। नाश्ता टेबुल पर रखने ही जा रहा था कि अरविन्द बोला, "आज अभी भूख नहीं है। रात में एक ही बार भोजन करेंगे। नाश्ता लेते जाओ।"

"और चाय?"

"हाँ, चाय दे सकते हो," अरविन्द ने अन्यमनस्क होकर उत्तर दिया।

जीतन तुरत ही चाय बना कर दे गया। अरविन्द चाय पी ही रहा था कि जीतन फिर आकर बोला, "नीचे आपको माँ जी बुला रही हैं।"

'कह दो कि आ रहा हूँ।"

अरविन्द चाय पीना खत्म करके उठ खड़ा हुआ। बनियाइन पहने ही नीचे अपनी सास के कमरे में पहुँचा। निर्मला देवी पहले से ही उसके इन्तजार में बैठी थीं। अरविन्द के पहुँचते ही बोली, "आओ बेटा, बैठो।"

अरविन्द चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया। अपनी आँखों से चश्मा उतार कर निर्मला देवी ने अरविन्द से पूछा, "शोभा अभी नहीं आई?"

"जी नहीं, वह तो... ...." अरविन्द ने सिनेमावाली बात कह देनी चाही, लेकिन दूसरे ही क्षण कुछ सोच कर चुप हो गया।

इसके बाद निर्मला देवी कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही। मानो कोई गुत्थी सुलझा रही हो। फिर अपने आँचल को तर्जनी में लपेटती हुई अरविन्द की ओर बिना देखे बोली, "तुम और शोभा अब शादीशुदा हो बेटा! अपने हित की बात तुम दोनों को खुद सोचनी चाहिए। मैं रास्ता दिखाने के लिए कब तक जीती रहूँगी? तुम जानते ही हो, मैं माँ हूँ। पिता नहीं हूँ। एक माँ की छत्रछाया में उसकी इकलौती बेटी के व्यक्तित्व का जैसा विकास होना चाहिए, शोभा का विकास वैसा ही हुआ है। उसने अपने अब तक के जीवन में कोई डाँट नहीं सुनी। उसकी कोई इच्छा अधूरी नहीं रही। किसी बात के लिए उसे संघर्ष नहीं करना पड़ा। इसीलिए व्यावहारिक बुद्धि उसमें बहुत कम है। सोचा था, शादी हो जाने के बाद धीरे-धीरे सब समझने लगेगी। किंतु अब लगता है, तुम उसे ठीक से समझाते नहीं हो। तुम तो जानते ही हो, शादी के बाद लड़की की जिम्मेदारी उसके पति पर आ जाती है। मैं शोभा की माँ हूँ तो क्या, शोभा अब तुम्हारी है। तुम्हें ही उसकी देखभाल करनी है। इधर देख रही हूँ कि जब से तुम सर्विस करने लगे हो, शोभा तुम्हारे नजदीक कम रहती है। यह तो ठीक नहीं बेटा!"

"आपका कहना ठीक है माँ," अरविन्द सिर खुजलाता हुआ बोला, "किंतु किसी भी आदमी को नया रास्ता पकड़ते देर लगती है। जिस संस्कार में शोभा अब तक पली है, उसे एकाएक कैसे तोड़ा जा सकता है? जीवन के अनुभव उसे जैसे-जैसे होते जायेंगे, वह धीरे-धीरे अपने को जरूर बदलती जायेगी। मैं तो दिन भर घर से दूर ही रहता हूँ। वह भी कालेज चली जाती है। अतः दिन में हमारे साथ रहने का कोई सवाल ही नहीं उठता। रात में दोनों साथ रहते ही हैं। केवल शाम को कभी-कभार वह घूमने-टहलने निकल जाती है। इसमें बुराई ही कहाँ है?"

"ठीक है," इस बार निर्मला देवी न जाने क्यों कुछ मुस्का कर बोली, "यदि तुम खुद ऐसा सोचते हो तो मुझे खुशी ही है। किंतु कोई भी आदमी देवता नहीं होता। उसमें कमजोरियाँ भी होती हैं। मेरे कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि तुम उस पर अपनी निगरानी ढीला मत करना। वह दिल की

बड़ी अच्छी है। अतः तुम्हारे लिए कोई समस्या नहीं बनेगी। तुम्हें केवल पति होने का पार्ट अदा करना है।"

तब तक बाहर बारिश होने लगी थी। बन्द खिड़कियों के शीशों पर पानी की बूंदें लगातार टपकती जा रही थीं। भीतर ट्यूब-लाइट के प्रकाश में उनकी रेशेदार चमक बड़ी मोहक लग रही थी। बाहर अँधेरा गहरा गया था, यद्यपि अभी-अभी साँझ ढली थी। एक क्षण को अरविन्द का मन किसी आशंका से भर उठा। पता नहीं, इस बारिश में शोभा अकेली कहाँ होगी! उसने बिना पूछे बाहर निकलने के लिए शोभा को माफ जरूर कर दिया था। किन्तु एक रंज उसके मन में अभी भी रह गया। पिक्चर जाने की बात शोभा अपनी माँ से भी नहीं कह गई है।

"सुना है, तुम शायद कोई नया मकान लेने जा रहे हो," निर्मला देवी की आवाज ने अरविन्द का ध्यान भंग किया।

"जी, सोच तो रहा हूँ।"

"किन्तु इसे मैं ठीक नहीं मानती," निर्मला देवी प्रतिवाद के स्वर में बोली, "पटने में इससे अच्छा मकान तुमको कहाँ मिलेगा?"

"यह कोई मेरा निजी घर नहीं है माँ," अरविन्द ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "यह मेरी ससुराल है।"

"तुम्हारा ऐसा सोचना गलत है। मेरे लिए जैसे तुम, वैसी शोभा। तुम दोनों के सिवा इस मकान या इस सम्पत्ति को भोगने वाला दूसरा है कौन? तुम्हारा भी कोई दूसरा घर-बार है नहीं। इसीलिए मैंने शादी के पहले ही सोच लिया था कि तुमको अपने साथ ही रखूंगी। तुम्हीं सोचो, तुम दोनों के बिना मैं अकेली रह कैसे सकूंगी?"

अरविन्द ने अनुभव किया कि इतना कहते-कहते निर्मला देवी के गले में कुछ खसखसाहट-सी हुई है। इस पर उसका मन भी कुछ भीग गया। किंतु कर्तव्य की बात याद करके नम्र स्वर में बोला, "हम दोनों आपको छोड़ कहाँ रहे हैं माँ जी? पटने में मेरे कहीं अलग रहने का मतलब यह नहीं है। पास में रह कर भी कोई दूर रह सकता है और दूर रहकर भी नजदीक हो सकता है। शादी के बाद मैं इतने दिन ससुराल में रह गया, यह सचमुच मेरे लिए लज्जा की बात है। अब आशीर्वाद दीजिए। मुझे भी मौका दीजिए कि मैं अपने पैरों पर खड़ा होना सीख सकूं। यहाँ रहने से मेरी बुद्धि जड़ होती जा रही है।"

"तुम ससुराल में रहकर भी तो मनचाहे काम कर सकते हो," निर्मला देवी पुनः बोली, "तुम्हारी आजादी में यहाँ कौन दखल देने जा रहा है? इस

घर का दूसरा उपयोग ही क्या रह जायेगा ? अभी तुम ढाई सौ रुपये माहवारी वेतन पाते हो। इतने कम पैसे से तुम अपनी गृहस्थी कैसे जोड़ सकते हो ? जितना तुम कमाते हो, उससे अधिक प्रतिमाह शोभा के पाकेट-खर्च में ही चला जाता है। रुपये-पैसे की तो कोई कमी है नहीं। तुम्हें जितने पैसे की जरूरत पड़े, मुझसे बेझिझक माँग लिया करो। सर्विस ही करनी है तो कोई अच्छा-सा काम देख कर करो। ऐसा काम जिससे तुम्हारी, मेरी और शोभा की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आये। विनोद को तो देख ही रहे हो। लॉ पढ़कर सुख और सम्मान का जीवन बिता रहा है। तुम्हें लॉ पढ़ने की इच्छा न हो तो तुम आई० ए० एस०, आई० पी० एस० या इस तरह की दूसरी परीक्षाओं की तैयारी करो। तुम जरूर सफल होगे, मेरा विश्वास है।"

अरविन्द को अपनी सास की कई बातें नहीं रुची। इसके पहले भी उसने दोनों माँ-बेटी के मुख से कई बार ऐसी बातें सुनी थीं। उसे विश्वास हो गया था कि अभी भी इन लोगों का 'बाबुओं' वाला संस्कार बहुत बलवान है। इस संस्कार से अरविन्द को बड़ी चिढ़ है। संयत स्वर में ही बोला वह, "अपनी-अपनी रुचि और पसन्द की बात है। जो धन आपके पास है, उसे कमाने और संग्रह करने में बड़ी मिहनत करनी पड़ी होगी। समय भी लगा होगा। मेरा फर्ज यह नहीं है कि मैं हाथ पर हाथ धरे बैठा रहूँ और इस गाढ़े पसीने की कमाई को बेमतलब पानी की तरह बहाता रहूँ। हमारे देश में लाखों लोग रोज भूखे सो जाते हैं। कितनी माताओं, बहनों और भाइयों को लाज ढकने के लिए फटी गुदड़ी भी नसीब नहीं। हम इनसे मुँह मोड़े कब तक रह सकते हैं ? आप खुद जो सोचें, किन्तु मुझे यह कभी महसूस नहीं होता कि यह धन केवल आपका या मेरा है। इसका थोड़ा हिस्सा आपका हो सकता है। ज्यादा हिस्सा तो इस भूखे और नंगे देश का है। शोभा अपने जेब-खर्च में ही हर महीने ढाई सौ रुपये से अधिक खर्च करे, इसे कम से कम मेरे जैसा आदमी पसन्द नहीं कर सकता। मैं तो एक पूरी गृहस्थी ढाई सौ रुपयों में चलाने का दावा करता हूँ। किन्तु इसका मतलब यह भी नहीं कि मैं शोभा पर अपने विचारों को लादना चाहता हूँ। मैं केवल सुझाव दे सकता हूँ। जो मकान मैं लूंगा, उसमें शोभा भी मेरे साथ रहे, यह भी जरूरी नहीं। यदि वह आपके साथ ही रहना चाहे तो इससे मुझे अधिक प्रसन्नता होगी। मुझे तो बचपन से ही अकेले रहने की आदत है।"

बाहर बारिश कुछ थम गयी, किन्तु हवा की सनसनाहट पहले से भी अधिक बढ़ गयी थी। सामने दरवाजे के नीले पर्दे को झकझोरते हुए हवा के

टूटे झोंके भीतर प्रवेश कर रहे थे। अरविन्द की बातें सुनकर निर्मला देवी का सिर चकरा गया। लगा जैसे बाहर की आँधी उनके अन्तर्मन में भी समा गयी हो। जिसका डर उन्हें अब तक रहा है, शायद वही बात होकर रहेगी। शोभा का कहना ठीक ही है कि अरविन्द केवल आसमान की बातें करता है। धरती की खबर उसे नहीं रहती। ऐसे एकान्तिक पुरुष के साथ रहकर उनकी बेटी का जीवन सचमुच बर्बाद हो जायेगा। यह आदमी तो उसे निस्संग बना देगा। शोभा इसीलिए इससे कतराती रहती है। किन्तु अब यह सब सोचने से कोई लाभ नहीं। शोभा अरविन्द से अब विलगाई नहीं जा सकती। कान्ति बाबू के बहकावे में पड़कर तथा खुद अपने अनुभवों की कमी से उन्होंने इस युवक के साथ अपनी बेटी की शादी का निर्णय ले लिया था। आगे-पीछे कुछ नहीं सोचा। सब उनके कर्मों का भोग है। अभी आगे न जाने कैसे-कैसे दिन उन्हें देखने हैं।

निर्मला बड़ी देर तक सिर झुकाये अपने भाग्य को कोसती रहीं, अब अरविन्द से कुछ भी कहना फिजूल समझकर वे चुप हो गयी थीं। कुछ देर में कुछ सोचकर फिर बोलीं, "अच्छा बेटा, अब तुम जाओ। आराम करो। तुम्हारी बात का मैं क्या जवाब दूँ? अपना हित तुम्हें खुद सोचना है।"

अरविन्द अपने कमरे में आ चुका था। घड़ी में रात के दस बजने जा रहे थे। शोभा का अब भी कहीं अता-पता नहीं था। बाहर घनीभूत अंधकार फैला था। अरविन्द के सामने खुले वातायन से कभी-कभी बिजली की सर्पीली रेखायें आसमान को बेधती चली जाती थीं। बिस्तर पर अकेला पड़ा-पड़ा अरविन्द न जाने कैसी-कैसी बातें सोच रहा था। कभी उसे लगता जैसे वह बिलकुल गुमराह हो गया हो। अपना देश और धरती छोड़कर किसी अनजाने देश में आ पहुँचा हो। उसके सामने बादलों की केवल परतें ही परतें दिखाई दे रही हैं। उन परतों के धुएँ में वह कभी गीता देवी, कभी सुधा, कभी कान्ति बाबू, कभी किरण और कभी श्यामाकान्त के बनते-मिटते चेहरों को देख रहा था। यह शोभा भी तो जैसे एक नई परत बनकर सामने खड़ी हो गयी है। किन्तु यह परत बादलों की नहीं, बिजली की है। देखने में जितनी ही सुन्दर, छूने में उतनी ही दाहक।

अरविन्द ने अब तक खाना नहीं खाया था। बोल दिया था कि मन ठीक नहीं रहने से आज रात का खाना नहीं ले सकेगा। जब घड़ी की सुई साढ़े दस पार करने लगी तो उसकी चिन्ता द्विगुणित हो उठी। इस घर के लो

दस बजते-बजते खा-पी कर सो जाते थे। आज शोभा के इतनी देर रात तक बाहर रह जाने का क्या कारण हो सकता है ? विनोद की प्रकृति अरविन्द को अच्छी तरह मालूम है। शोभा को इतनी देर तक उसके साथ अकेले नहीं रहना चाहिए। अरविन्द कमरे के खुले दरवाजे की ओर जब तब निहार लेता था। बाहर से कोई भी आहट होती तो उसे लगता, शोभा ही आ रही है। इन्तजारी के क्रम में जब घड़ी की सुई बारह पार करने लगी तो सचमुच शोभा आ गई। कमरे में शून्य शक्ति का मद्धिम नीला बल्ब जल रहा था। शोभा चोर की तरह दबे पाँव कुछ देर दरवाजे के पास खड़ी भीतर की आहट लेती रही। अरविन्द को बिस्तर पर पड़े देखकर उसका हृदय जोरों से धड़क उठा। वह पेशोपेश में पड़ गयी। भीतर जाये तो कैसे ! किन्तु बिस्तर पर अरविन्द को निश्चेष्ट पड़े देख कर उसे लगा जैसे वह गहरी नींद में सो गया हो। अब वह धीरे-धीरे कदम रोपती हुई किसी तरह अपने पलंग के नजदीक आई। फिर जल्दी ही बिस्तर पर लम्बी हो गई। चादर से अपना पूरा मुँह ढक लिया। जैसे बाहर की हवा और रोशनी से भी वह बचना चाहती हो।

इधर अरविंद ने शोभा को दरवाजे पर खड़े होते देख लिया था। उसके रंग-ढंग से उसका अपराधी मन अरविंद को प्रत्यक्ष हो गया। तब उसने जान-बूझ कर नींद में सोने का बहाना कर लिया जिससे शोभा बेखटके भीतर आ सके। जब शोभा चादर तानकर सो गई तो अरविंद के होठों पर न जाने कैसी मुस्कान खिल गई। शायद शोभा देर करके लौटी है, इसीलिए अपनी लाज छिपाना चाहती है। किंतु दूसरी बातें भी तो हो सकती हैं ! अचानक अरविंद को कुछ दिन पहले शोभा द्वारा पूछे गये प्रश्न याद आ गये। शरीर और मन संबंधी प्रश्न। तो क्या उन प्रश्नों के पीछे कोई रहस्य की बात थी ?

उस ठंढी रात में भी अरविंद को पसीना आने लगा। शोभा के विषय में वह जितना ही सोचता गया, उसके मन का बोझ उतना ही बढ़ता जा रहा था। उसने अपने को कोसा। अकारण ही वह शोभा पर सन्देह कर रहा है। शोभा देर करके इतनी रात में अपने घर आई है। यही क्या उसकी जैसी पत्नी के भय या लज्जा के लिए कम है ? नहीं-नहीं, शोभा जैसी भी हो, वह इतना नीचे नहीं गिर सकती। उसे खुद शोभा के पास जाना चाहिए। उसे आश्वस्त कर देना चाहिए कि उसने कोई बड़ी गलती नहीं की है। वह नाहक ही घबड़ाई हुई है।

इसी समय अरविंद का ध्यान कमरे के खुले दरवाजे की ओर गया। घबड़ाहट में शोभा दरवाजा बन्द करना भी भूल गई थी। अरविंद मन ही मन हँसा

और धीरे से उठकर दरवाजा बन्द कर दिया। लौटकर वह शोभा के पलंग पर खिसक गया। शोभा निश्चेष्ट-सी पडी थी, मानो गहरी नीद मे हो। अरविंद ने अपने स्वर को कोमल बनाते हुए धीरे से पुकारा, "शोभा !"

किन्तु शोभा न तो बोली, न हिली-डुली। अरविंद ने उसके शरीर पर अपना हाथ फेरते हुए उसके कान के पास मुँह ले जाकर फिर से पुकारा। तब एक अजीब आलसपना तथा खुमारी का नाट्य करती हुई शोभा अपने सिर से चादर हटाकर आँखें मींचती बोली, "ऊं .... क्या .. ....ओ तुम ?" और अब जैसे ठीक से जग कर अरविंद का हाथ अपने ठंढे हाथ में लेती हुई अलसायी आवाज में बोली, "मैं आई तब तक तुम सो गए थे। मैंने तुम्हें जगाना ठीक नही समझा। शाम को अपनी एक फ्रेण्ड के घर चली गई थी। वही देर हो गई। लाख कहा, किंतु वह नहीं मानी। डीनर लेने के बाद ही मुझे विदा किया।"

"ठीक तो है," अरविंद खिन्न स्वर में बोला, "मैं तुमसे कोई सफाई तो माँग नहीं रहा हूँ। बाहर जाने पर कभी-कमार देर हो ही जाती है। इसमें घवड़ाने की क्या बात है ?"

शोभा का झूठ-झूठ का बहाना तथा उसकी मनगढन्त बातें सुनकर अरविंद के मन को गहरी ठेस लगी। किन्तु अपने कष्टों को पीते हुए उसने इतना और कहा, "मेरी कोई बात नही शोभा ! किंतु माँ जी को तुम्हारा इतनी रात तक अकेले बाहर रहना अच्छा नहीं लगता। जो भी हो, अब तुम सो जाओ। रात अधिक हो गई है।"

"माँ को बुरा क्यों लगेगा ?" अचानक शोभा आवेश में अपने बिस्तर पर उठ बैठी और अरविंद की ओर देखकर क्रुद्ध स्वर में बोली, "सीधे यह क्यो नही कहते कि तुम्हें बुरा लगता है ? मैं जरा अपने फ्रेण्ड्स के घर चली जाती हूँ तो तुम बुरा मान जाते हो और खुद तुम ..... ?"

"हाँ-हाँ, कह डालो," अरविंद बिस्तर पर लेटता हुआ कुछ हँसकर बोला, "चुप क्यो हो गई ?"

अरविंद का हँसना सुनकर शोभा और भी जल-भुन गई। कडी आवाज में बोली, "तुम बाहर जाकर किसके साथ क्या करते हो, यह कभी पूछा भी है मैंने ?"

"भई, तुम तो उल्टे मुझपर बरसने लगी," अरविंद बोला, "अभी चुपचाप सो जाओ। तुम्हारा मन अस्वस्थ है। कल सवेरे मुझे जितनी बातें कहनी हों, कह लेना। मैं नही रोकूँगा।"

शोभा फिर कुछ बड़बड़ाई। उसकी कोई प्रतिक्रिया होते नहीं देखकर वह मन ही मन अपनी झल्लाहट पर लज्जित हो गई। फिर चादर तानकर सो गई। इसके बाद दोनों में फिर कोई बात नहीं हुई। पति को नींद आई या नहीं, इसे शोभा नहीं जान सकी। किंतु उसकी अपनी आँखों से आज नींद जैसे उड़ गई थी। न चाहने पर भी कुछ देर पहले हुई बातों की कड़ियाँ उसके मन के पर्दे पर उगती चली जा रही थीं। उनके अहसास से उसकी छाती अब भी जोर-जोर से धड़क रही थी। एक अज्ञात भय और आत्मकुत्सा से उसका बुरा हाल हो रहा था। पता नहीं, वह किस अजानी दिशा में बहती चली जा रही है। आज जो कुछ भी हुआ, उसकी जिम्मेदारी से शोभा अपने को बचा नहीं सकती। उसकी इच्छा के विरुद्ध तो कुछ हुआ नहीं था। सब कुछ प्रत्याशित था, प्रतीक्षित था।

न जाने किस कारण शोभा के लाख कहने पर भी सुधा पिक्चर देखने नहीं गई। जब सुधा किसी भी तरह तैयार नहीं हुई तो शोभा पेशोपेश में पड़ गई। किन्तु उसकी झिझक तो ऊपर की चीज थी। अन्दर से तो उसे खुशी ही हुई कि आज विनोद के साथ उसे अकेले में पिक्चर देखने का मौका मिल रहा है। सिनेमा जाने के पहले सुधा के सामने ही विनोद से बोली वह, "तब मैं पिक्चर कैसे जा सकती हूँ भैया? भाभी तो जा नहीं रही हैं!"

"भला एक मेरे चलते आप क्यों नहीं जाएँगी?" सुधा बोली थी, "मैं तो अस्वस्थ होने के कारण नहीं जा रही हूँ।"

विनोद इस बीच अपनी गाड़ी के निकट खड़ा शोभा की प्रतीक्षा करने लगा था। उसने खुद अपनी पत्नी से एक बार भी पिक्चर चलने का आग्रह नहीं किया। जब शोभा अकेली ही गाड़ी के नजदीक लजाती-लजाती पहुँची तो विनोद अपनी गाड़ी की ओर देखता हुआ बोला, "समय बहुत कम बचा है शोभा, जल्दी करो।"

"किंतु भाभी तो आईं नहीं?"

"तो इससे क्या हुआ?"

विनोद को जैसे पहले से ही यह बात मालूम हो। उसने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। कार का पिछला फाटक खोलकर पहले उसने शोभा को बैठ जाने दिया। फिर खुद उसकी बगल में बैठता हुआ फाटक बन्द करके ड्राइवर से बोला, "गाड़ी बढ़ाओ।"

गाड़ी मीठी रफ्तार से आगे सरकने लगी। भीतर से उसकी बनावट और भी सुन्दर थी। वर्ष के गुल-गुले गद्दे अपेक्षाकृत चौड़े और लम्बे थे जिस पर

आसानी से सोया जा सकता था। कार में लगे शीशे को ढकने के लिए भीतर नीले रंग के रेशमी पर्दे लगे थे। उन्हें सरका कर बाहर के दृश्यों का आनन्द लिया जा सकता था। जरूरत पड़ने पर उन्हें बन्द करके बाहर वालों की नजर से बचा भी जा सकता था। जिस समय शोभा गाड़ी में सवार हुई, उसे शीशे पहले से ही ढके दिखाई पड़े। जिस ओर से वह चढ़ी थी, उसी ओर का पर्दा कुछ हटा हुआ था। उस छोटे से खुले भाग से ही आसमान में उमड़ती-घुमड़ती घटाएँ दिखाई पड़ रही थीं। सड़क पर अगल-बगल आते-जाते लोग भी कभी-कभी नजर आ जाते थे। खिड़कियाँ बन्द रहने पर भी मीठी ठण्डी हवा झिर-झिर करती हुई अंग-प्रत्यंग को सहला रही थी। शोभा ने कीमती जार्जेट की गहरी नीली साड़ी पहनी थी। स्लीवलेस चोली, हाथ में नीली कामदार चूड़ियाँ और उसी रंग का वैनिटी बैग। ऊँची एड़ी की जूती और ललाट पर गोल बिन्दी। सब साड़ी से मैच करने वाले थे। उँगली में थी मुक्ता नीलम की अँगूठी। कानों में मद्रासी हीरों के झक-झक करते कर्णफूल। फ्रेन्च क्रीम और पावडर के हल्के लेप पर पिंक रूज से समलंकृत मांसल कपोलों की संवेदनीयता निखर गई थी। उसके पूरे शरीर से इवनिंग-इन-पेरिस की भीनी महक गाड़ी के भीतर एक रसमय उद्दीपन का संचार करने लगी। वह बैठने को तो बैठ गई, किन्तु विनोद की ओर देखने का साहस नहीं जुटा पायी। विनोद से लगभग एक फीट के फासले पर बैठी वह कार से बाहर भागते दृश्यों में अपने दिल की धड़कनों को भुला देना चाहती थी। हवा से जब तब उसकी साड़ी का पल्ला उड़-उड़ कर विनोद के शरीर से टकराता जा रहा था। अब तक कार एक ऐसी सड़क पर आ गई थी जहाँ जन-संचार अत्यल्प था। बाहर का अँधेरा और भी गहरा चुका था। विनोद ने झुक कर खिड़की के खुले हिस्से पर परदा सरका दिया। फिर शोभा के कान के पास मुँह ले जाकर फुसफुसाया, "डार्लिंग !"

विनोद की गर्म-गर्म सांसों की मादकता शोभा के कर्णपुटों में फैलती हुई उसके हृदय के कोरों तक भीन गई। उसके कपोल आरक्त हो गये। जब उसने कनखियों से विनोद की ओर देखा तो विनोद ने झट से झुककर उसके तरल होठों को चूम लिया।.......

शोभा ने करवट बदल कर एक लम्बी-सी गहरी सांस ली। रात की नीरवता में केवल हवा की सनसनाहट तथा दीवार घड़ी की टिक-टिक बाधा उपस्थित कर रही थी। बाहर बारिश शायद फिर होने लगी थी।

शोभा कई बार पिक्चर गई है। किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि वह किसी

चित्र को सामने देख कर भी नहीं देख पायी हो। कोई गीत सुनकर भी नहीं सुन पायी हो। सिनेमा हॉल के जिस बॉक्स में वे दोनों बैठे थे उसे विनोद ने पहले ही अपने लिए रिजर्व करा लिया था। हॉल में कोई खास भीड़ नहीं थी। आगे बैठे लोग सिनेमा देखने में लगे थे। इधर अँधेरे में विनोद के काँपते हाथ, उसकी चञ्चल उँगलियाँ........!

शोभा जितनी देर विनोद के साथ बैठी रही, मानो किसी भारी नशे में डूबी रही। उसे अपने शरीर या मन की कोई सुध-बुध रह नहीं गई थी। अपनी नस-नस में खौलते हुए रक्त का ऐसा अनुभव उसने आज तक नहीं किया था। बॉक्स में इतनी देर तक वह विनोद की गोद में बैठी रही। उसकी सारी हरकतों को प्रीति पूर्वक झेलती रही। हाँ-ना कुछ नहीं बोल पायी। किन्तु इन सबकी परिणति हुई पिक्चर देखकर घर लौटते समय।........

सावनी रात! टिप-टिप करती वर्षा की बूँदें। बौराई हुई हवा की सन-सनाहट। बेली रोड पर छप-छप करती सरपट भागी जा रही विनोद की गाड़ी। गाड़ी के तेज हेडलाइट में सामने सड़क पर चाँदी की तरह ढलती, चमकती वर्षा की बूँदें। शोभा यह नहीं जान पायी कि वह कहाँ, किस रोड से ले जाई जा रही है।

"हम दोनों जनम-जनम के साथी हैं डार्लिंग!" विनोद की चौड़ी मांसल छाती पर निश्चिन्त पड़ी हुई शोभा के कानों में उस समय विनोद की आवाज ऐसी लगी मानो किसी नदी के दूर पार से सुनाई दे रही हो, "तुमने मुझे ठुकरा दिया, यह ठीक नहीं किया।"

"कहाँ ठुकरा पाई हूँ तुम्हें", शोभा फुसफुसाई, "अभी भी तो तुम्हारी ही हूँ डीयर! समाज ने दूसरे का बना दिया तो क्या, मैं तो अब भी तुम्हारी ही दीवानी मीरा हूँ प्रिय!"

"मीरा! मेरी डार्लिंग!!" विनोद ने आत्मविस्मृत शोभा को अपनी उन्मत्त भुजाओं में बाँधते हुए कहा।

अब तक शोभा की आँखें मुंद गई थी। उसके काँपते हुए नरम ओठों की आग किसी दूसरी तरल आग में डूब गई थी और.......

इस ठंढी रात में भी शोभा की देह पसीने से लथपथ हो गई। उसने [illegible] से चादर हटा ली। मुँह को गुलगुले त[illegible] लिया। अब की साँसें कुछ-कुछ मुखर होने लगी थीं [illegible] हो गहरी नींद में डूब चुका है। फिर वह

बल्ब को भी बुझा दिया। अब कमरे के भीतर भी बाहर का घुप्प अँधेरा समा गया। शोभा मानो इस अँधेरे में अपने को चारों ओर से छिपा लेना चाहती थी। वह फिर बिस्तर पर आकर गिर पड़ी। लगा जैसे शरीर में कोई शक्ति बच नहीं गई हो।......

जब गाड़ी विनोद के बँगले के नजदीक आ गई तो शोभा को जैसे चेत हो गया। हड़बड़ा कर पूछा, "घड़ी में क्या समय हुआ भैया ?" भैया ! उस समय इस शब्द का व्यंग्य खुद उसे ही चुभ गया। किन्तु विनोद के लिए अभी दूसरा सम्बोधन हो भी क्या सकता था ! विनोद ने घड़ी देखकर बताया, "ग्यारह।" शोभा के होश उड़ गये। इतनी रात हो गई। वह माँ से भी कह कर नहीं आई है। अरविन्द साथ में रहता तो बात दूसरी थी। अरविन्द भी इस अँधेरी रात में उसे घर से गायब पाकर क्या सोच रहा होगा ? वह काँपती हुई आवाज में बोली, "प्लीज भैया, गाड़ी अपने बंगले में मत ले चलो। मुझे जल्दी से जल्दी घर पहुँचा दो।"

"इतनी जल्दबाजी क्यों ?" विनोद कुछ अकचका कर बोला, "तुमने तो अभी खाना भी नहीं खाया है। खा-पीकर इतमीनान से जाना।"

"नहीं-नहीं," शोभा का स्वर फिर काँप गया, "अभी मुझ पर दया करो। मेरी बात मानो। मुझे भूख तनिक भी नहीं है। मुझे जल्द से जल्द घर पहुँचाओ।"

इसके बाद विनोद फिर कुछ नहीं बोला। ड्राइवर से सीधे शोभा के बँगले तक चलने के लिए कह दिया। इसी समय जोर की बिजली चमकी। आकाश के फटने जैसी आवाज हुई। शोभा का दिल धड़क उठा। शरीर की तरह भावनायें भी बर्फ की तरह ठंढी पड़ गईं। जब गाड़ी उसके घर के फाटक के सामने रुकी तो विनोद ने एक बार फिर उसके मुखड़े को चूम लेना चाहा। शोभा ने विनोद के हाथों को अपने चेहरे से झिटकते हुए कहा, "ह्वाट नानसेन्स ! अब यह कुछ नहीं, प्लीज !"

विनोद ने फिर कोई हरकत नहीं की। उसने गेट खोलकर शोभा को गाड़ी से निकल जाने दिया। यदि प्रकाश होता तो शोभा देखती कि विनोद के अधर पर कैसी कुटिल मुस्कान खेल रही है। गाड़ी से बाहर आते ही लगा जैसे शोभा आसमान से जमीन पर अचानक गिरा दी गई हो। उसका अंग-अंग थक कर चूर हो रहा था। देह थरथराने लगी। बाहर में पड़ती हुई झीसी और पछेया हवा के ठंढे झकोरे भी उसकी देह के पसीने को नहीं पोंछ सके। थोड़ी दूर पैदल

चलकर वह अपने बरामदे में पहुँची। इतना चलने से ही वह हाँफने लगी थी। उसकी साड़ी भी कुछ-कुछ भीग गई। निर्मला देवी बाहर के कमरे में ही बैठी उसका इन्तजार कर रही थी। कार की घर्राहट सुनकर वे बाहर बरामदे में खड़ी हो गई थी। शोभा को सामने देखकर कुछ डाँट के-से स्वर में बोली, "अकेले इतनी रात को बाहर नहीं जाते बेटा !"

"तो मैं क्या करूँ ?" शोभा अपनी माँ की नजरों से अपनी आँखें नहीं मिला सकी; बहाना के स्वर में बोली, "भाभी ने जबरन रोक रखा था। खाते-पीते देर हो गई।"

अपनी माँ के किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना शोभा झटकती हुई भीतर चली गई। नीचे एक कमरे में आकर उसने बत्ती जलाई। वहीं जल्दी से अपने कपड़े बदले। जब वह जीने चढ़कर ऊपर जाने लगी तो उसके पैर थर-थर काँपने लगे। माँ से तो वह किसी तरह पिण्ड छुड़ा पाई, अब अरविन्द को क्या कह कर समझायेगी ? आसमान में अभी भी बिजली का कड़कना जारी था। हवा के झोंके से उसका हाउसकोट उड़-उड़ जाता था।.......विश्वासघात ! एक देवता के साथ विश्वासघात !! उसका मन जैसे चीखने लगा। वह किसी तरह अपने खुले दरवाजे के सामने आई। कुछ देर चौखट पर खड़ी-खड़ी अपने को नियंन्त्रित करने की कोशिश करती रही। भीतर पति को सोये देखकर उसका धीरज कुछ बँधा। दूसरे ही क्षण वह कमरे में प्रवेश कर गई।

सामने दीवार-घड़ी ने दो बार टन-टन बोल कर कमरे के अँधेरे को कंपित कर दिया। अभी तक शोभा की आँखों में नींद नहीं उतर पाई थी। बगल में सोये अरविंद की साँसों की आवाज लगातार सुनाई दे रही थी। कितनी शान्ति, विश्वास और तन्मयता के साथ सो रहा है वह। सहज विश्वासी की अमूल्य पूँजी प्राप्त है उसे। शोभा को कितना निश्छल भाव से चाहता है वह !.......किन्तु स्वयं शोभा को अब यह विश्वास नहीं चाहिए। ऐसे विश्वास की आग में झुलस कर वह मर जायेगी। उसका कलंकित मन और शरीर अपने पति के पवित्र प्रेम की आँच को अब कैसे सह पायेगा ? वह तो डरती आई थी कि अरविंद न जाने उसे देखकर कितनी कड़वी बातें बोलेगा। किन्तु यहाँ तो जैसे कोई विरोध है ही नहीं। मन में कोई मैल या खटका ही नहीं। शोभा के मन में उठता हुआ यह तूफान शायद कम गया होता यदि अरविन्द ने उसे डाँटा-फटकारा होता। उसकी निन्दा की होती। किन्तु उसका यह देवता ही उसके राक्षस बनने का निमित्त होता जा रहा है।.......

दस

अरविन्द अपने नये डेरे पर आ गया है। सुलतानगंज के चौधरी टोले में एक पुराने जमींदार की अश्वशाला में प्रतिमाह तीस रुपये किराये पर उसे जगह मिल गयी है। घोड़े तो अब हैं नहीं, किन्तु उनकी जगह अभी भी कायम है। घोड़ों को आराम-सुविधा के खयाल से ही यहाँ के कमरे, आंगन इत्यादि बने थे। किन्तु अब मनुष्यों की सुविधा ध्यान में रखकर इस मकान में इधर-उधर कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। बिजली भी लगा दी गयी है। किन्तु भीतर पेय जल का कोई प्रबन्ध नहीं। आंगन में एक पुराना कुआँ जरूर है। किन्तु उसका पानी समुद्र जैसा खारा है। उससे अधिक से अधिक नहाया जा सकता है, या घर के बरतन साफ किये जा सकते हैं। मकान से लगे पश्चिम तरफ एक पतली सड़क चली गई है। इसी सड़क के एक किनारे आम जनता के लिए पानी का नल लगा हुआ है। अरविंद ने सोच लिया था कि पेय जल की व्यवस्था इस बाहरी नल से आसानी से हो सकती है। अब तक मकान खोजने में उसे काफी समय देना पड़ा था। कम पैसे में इससे अच्छा कोई दूसरा मकान उसे नहीं मिला। मकान काफी हवादार था। सोने के लिए दो खपड़पोस कोठरियाँ थीं। उनसे संलग्न छोटे से बरामदे के कोने में किचन बना दिया गया था। आंगन काफी बड़ा था। चारों तरफ पुरानी ईंटों की बनी चारदीवारी थी। हाल में ही मकान की मरम्मत और सफेदी हुई थी। अरविंद की पसन्द का सबसे बड़ा कारण मकान का स्वच्छ और शान्त होना था। धूप और हवा की कोई कमी नहीं थी। आस-पास पुराने जमींदारों के ढहते-गिरते मकानों के सिलसिले थे। गंगा नदी भी नजदीक में ही थी।

नये डेरे में आने से पहले अरविंद ने अपनी गृहस्थी के लिए कुछ जरूरी सामान जुटा लिये। दो चौकियाँ, एक टेबुल, दो काठ की कुर्सियाँ, घड़ा, ग्लास, थाली, पतीली, बाल्टी इत्यादि। सबके अन्त में एक स्टोव भी ले आया था। उसके लिए स्वावलंबन की जिन्दगी कोई नई बात नहीं थी। जब सारी चीजें डेरे में व्यवस्थित हो गईं तो एक दिन संध्या समय प्रेस से लौटने पर उसने शोभा से कहा, "कल से मैं एक दूसरे डेरे पर जाने की सोच रहा हूँ।"

"दूसरा डेरा?" शोभा चौंक कर बोली, "आखिर कहाँ?"

अरविंद ने संक्षेप में उसे डेरे का हुलिया बता दिया। शोभा से उसने पहले भी कई बार किसी दूसरे डेरे पर जाने की चर्चा की थी। किन्तु शोभा ने इसे मजाक समझ कर उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया था। नये मकान का हुलिया सुनकर जब वह अरविंद को अपनी चकित दृष्टि से निहारती रह गई तो अरविंद पुनः सहज स्वर में बोला, "तुम अपने लिये कोई चिन्ता मत करो। तुम्हें तो यही रहना है। माँ जी की देखभाल के लिए तुम्हारा यहाँ रहना जरूरी भी है। यहाँ हर तरह की आराम-सुविधा है। वहाँ तकलीफ ही तकलीफ होगी।"

"किन्तु यह कैसे हो सकता है?" शोभा गम्भीर पड़कर बोली, "तुम दूसरी जगह रहोगे तो मैं अकेले यहाँ कैसे रह पाऊँगी?"

इस पर अरविन्द ने उसे बहुत समझाया-बुझाया। किन्तु शोभा पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। लगा जैसे अरविंद के साथ दूसरे मकान में रहने के लिए उसने मन ही मन कोई समझौता कर लिया हो। जैसे अपने इस बंगले से उसका भी मन उचट गया हो। कहीं खुलेपन में साँस लेकर वह यहाँ की घुटन से बचना चाहती हो।

डेरा बदलने की बात निर्मला देवी तक भी पहुँची। वे एकाएक बहुत चिंतित हो उठीं। उन्होंने कई तरह से अरविंद को समझाया और उसे रोकना चाहा किन्तु सफल नहीं हो पाईं। तब उन्होंने शोभा को ही अरविंद की पत्नी की हैसियत से समझा देने की बात कही। किन्तु शोभा ने भी अपनी असमर्थता जतायी। निर्मला ने इसे अपने जीवन का दुर्भाग्य माना। हार मानकर दूसरे दिन सुबह शोभा और अरविंद को साथ लेकर अपनी कार से नये मकान को देखने गयीं। मकान देखते ही उनकी घृणा, निराशा और क्रोध उबल पड़े। बोलीं, "यह क्या तमाशा कर रहे हो अरविन्द? तुम हम माँ-बेटी को अब समाज में इज्जत के साथ नहीं रहने देना चाहते हो। यदि कहीं दूसरी ही जगह रहना है तो कोई अच्छा-सा मकान लो जिसमें कोई भला आदमी रह सके। किराये की चिन्ता तुम मत करो। मैं दे दूँगी। किन्तु इस घोड़साल में तुम मेरी बेटी को रख कर मेरी तौहीनी मत कराओ। इससे अच्छा तो मेरा सर्वेन्ट्स क्वार्टर है। नहीं, यदि ऐसी ही जिन्दगी तुम्हें पसन्द है तो पटने के बाहर किसी दूसरी जगह सर्विस करो। वहाँ जैसे भी रहोगे, मैं देखने नहीं जाऊँगी। ऊँचे घर में सम्बन्ध किया है तो ऊँचा बनकर जीना सीखो। तुमसे मेरी बेटी कभी धन नहीं खोजेगी। धन तो भगवान ने उसे बहुत दिया है। तुम्हारे सौम्य व्यक्तित्व ने ही मुझे या मेरी बेटी को तुम्हारी ओर आकर्षित किया था। सोचा था कि

जिस तरह तुम अकेले हो, उसी तरह मैं भी तो अकेली हूँ। अतः अपनी बेटी के माध्यम से तुम्हें पाकर मेरी नैया भी पार लग जायेगी। किन्तु यदि यही सच है तो मुझे बहुत बड़ा धोखा हुआ।"

निर्मला देवी का गला एकाएक रुँध गया। वे चुप हो गयीं और आँचल से बार-बार अपनी आँखें पोंछने लगीं। शोभा अपनी माँ के साथ ही बरामदे में रखी नंगी चौकी पर बैठी थी। अरविंद दोनों के सामने फर्श पर बैठा था। भावावेश में अपनी माँ को रोते देखकर शोभा की आँखें भी छलछला गईं। दोनों का यह हाल देखकर अरविंद सकते में आ गया। सोच नहीं पाया कि अभी उसे क्या बोलना चाहिए। अपनी सास की कई बातें उसके मर्म को बेध गई थीं। किन्तु अपने को चट्टान की तरह दृढ़ बनाकर वह आद्यन्त उनकी बातें सुनता रहा। कुछ देर तक खामोशी छायी रही। निर्मला देवी के कुछ आश्वस्त होने पर अरविंद विनीत स्वर में बोला, "मुझे खेद है माँ जी, कि इस डेरे को देखकर आपको इतनी तकलीफ हुई। जो आदमी महलों के संस्कार का है उसे जाने-अनजाने किसी कुटिये से सम्बन्ध हो जाने पर घबड़ाहट होना स्वाभाविक है। मैं आपसे पूरी हमदर्दी रखता हूँ। किंतु सच पूछिये तो मैं भी कुटिया पसन्द नहीं करता। कौन नहीं चाहेगा कि उसकी कुटिया महल हो जाये? किन्तु केवल चाहने से कुछ होने जाने को नहीं है। मैं चाहता तो हूँ कि एक अच्छा-सा मकान लेकर रहूँ। मकान के इर्द गिर्द सुन्दर उद्यान हो। मुझे भी एक अच्छी कार हो। सेवा करने वाले दाई-नौकर हों। किंतु यह सब अभी ही कैसे हो सकता है? हमें तो सबके साथ आगे बढ़ना है। किसी की छाती कुचल कर आगे नहीं जाना है। मैं जानता हूँ, यह छह महीने की राह नहीं, वर्षों की राह है। किंतु है यही सर्वोत्तम रास्ता। कुटिया महल से नफरत करे और महल कुटिया से, ये दोनों ही बातें गलत हैं। यहाँ रहने से मेरी या आपकी प्रतिष्ठा की हानि होगी, ऐसा सोचना दम्भ मात्र है। मैं झूठी प्रतिष्ठा के नाम पर अभी डेढ़-दो सौ रुपये माहवारी किराये पर मकान नहीं ले सकता। मैं महीने भर में सिर्फ ढाई सौ रुपये पाता हूँ। और भगवान ने जब मुझे हाथ-पैर दिये हैं तो मैं आपसे या किसी भी दूसरे आदमी से पैसे नहीं ले सकता। मैं तो अपना कोई भी विचार आप पर या शोभा पर थोपना भी नहीं चाहता। शुरू से ही कहता आया हूँ कि शोभा को आपके ही साथ रहना चाहिए। पटना से बाहर रहकर जीविका के प्रबन्ध करने की बात मेरे मन में भी है। मैं खुद चाहता हूँ कि यहाँ रहकर आप लोगों के किसी कष्ट का कारण नहीं बनूँ।"

अरविंद ने संक्षेप में उसे डेरे का हुलिया बता दिया। शोभा से उसने पहले भी कई बार किसी दूसरे डेरे पर जाने की चर्चा की थी। किन्तु शोभा ने इसे मजाक समझ कर उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया था। नये मकान का हुलिया सुनकर जब वह अरविंद को अपनी चकित दृष्टि से निहारती रह गई तो अरविंद पुनः सहज स्वर में बोला, "तुम अपने लिये कोई चिन्ता मत करो। तुम्हें तो यहीं रहना है। माँ जी की देखभाल के लिए तुम्हारा यहाँ रहना जरूरी भी है। यहाँ हर तरह की आराम-सुविधा है। वहाँ तकलीफ ही तकलीफ होगी।"

"किन्तु यह कैसे हो सकता है?" शोभा गम्भीर पड़कर बोली, "तुम दूसरी जगह रहोगे तो मैं अकेले यहाँ कैसे रह पाऊँगी?"

इस पर अरविन्द ने उसे बहुत समझाया-बुझाया। किन्तु शोभा पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। लगा जैसे अरविंद के साथ दूसरे मकान में रहने के लिए उसने मन ही मन कोई समझौता कर लिया हो। जैसे अपने इस बंगले से उसका भी मन उचट गया हो। कहीं खुलेपन में साँस लेकर वह यहाँ की घुटन से बचना चाहती हो।

डेरा बदलने की बात निर्मला देवी तक भी पहुँची। वे एकाएक बहुत चिंतित हो उठीं। उन्होंने कई तरह से अरविंद को समझाया और उसे रोकना चाहा किन्तु सफल नहीं हो पाईं। तब उन्होंने शोभा को ही अरविंद की पत्नी की हैसियत से समझा देने की बात कही। किन्तु शोभा ने भी अपनी असमर्थता जतायी। निर्मला ने इसे अपने जीवन का दुर्भाग्य माना। हार मानकर दूसरे दिन सुबह शोभा और अरविंद को साथ लेकर अपनी कार से नये मकान को देखने गयीं। मकान देखते ही उनकी घृणा, निराशा और क्रोध उबल पड़े। बोलीं, "यह क्या तमाशा कर रहे हो अरविन्द? तुम हम माँ-बेटी को अब समाज में इज्जत के साथ नहीं रहने देना चाहते हो। यदि कहीं दूसरी ही जगह रहना है तो कोई अच्छा-सा मकान लो जिसमें कोई भला आदमी रह सके। किराये की चिन्ता तुम मत करो। मैं दे दूँगी। किन्तु इस घोड़साल में तुम मेरी बेटी को रख कर मेरी तौहीनी मत कराओ। इससे अच्छा तो मेरा सर्वेन्ट्स क्वार्टर है। नहीं, यदि ऐसी ही जिन्दगी तुम्हें पसन्द है तो पटने के बाहर किसी दूसरी जगह सर्विस करो। वहाँ जैसे भी रहोगे, मैं देखने नहीं जाऊँगी। ऊँचे घर में सम्बन्ध किया है तो ऊँचा बनकर जीना सीखो। तुमसे मेरी बेटी कभी धन नहीं खोजेगी। धन तो भगवान ने उसे बहुत दिया है। तुम्हारे सौम्य व्यक्तित्व ने ही मुझे या मेरी बेटी को तुम्हारी ओर आकर्षित किया था। सोचा था कि

जिस तरह तुम अकेले हो, उसी तरह मैं भी तो अकेली हूँ। अतः अपनी सेवा का साधन के तुम्हें पाकर मेरी नैया भी पार लग जायेगी। किन्तु यदि यही मन है तो मुझे बहुत बड़ा धोखा हुआ।"

अरविंद के चुप हो जाने पर कुछ देर तक फिर खामोशी छायी रही। इस बीच निर्मला देवी का चेहरा तमतमा गया था। लगा जैसे वे अपने उमड़ते क्रोध को पी जाना चाहती हों। आखिर वे तमक कर बोल ही पड़ीं, "मैं यहाँ तुम्हारा लेक्चर सुनने नहीं आई हूँ अरविन्द! लेक्चर मैं तुमसे अधिक दे सकती हूँ। तुम्हारी बातें मान लूँ तो मैं आज ही अपना सारा धन लुटा कर खुद भिखारिन बन जाऊँ। दर-दर की ठोकरें खाती चलूँ। किन्तु मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ। मुझे अपनी चिन्ता नहीं है। चिन्ता है अपनी बेटी की। तुम इसके जीवन के साथ खिलवाड़ करना चाहते हो। किन्तु मेरे जीते यह हो नहीं सकता। मेरे मर जाने पर जो जी में आये, करना। खैर, मैं अब चली। शोभा मेरे साथ ही रहेगी। तुम खुशी से घुड़साल में घोड़ों की जिन्दगी बसर करो।"

निर्मला देवी ने एक बार शोभा की ओर कड़ी नजरों से देखा। दूसरे ही क्षण बाहर निकलने के लिए उठ खड़ी हुईं। शोभा अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर पाई। जब उसकी माँ बाहर निकलने लगीं तो उसने आतुर होकर कहा, "मुझे किस आफत में डाले जा रही हो माँ?"

"तो तुम भी यहीं रहो," निर्मला देवी आगे बढ़ती हुई तुनक कर बोलीं, "इसमें आफत की कौन-सी बात है?"

"जाओ शोभा, अपनी माँ के साथ चली जाओ," पीछे से अरविंद की टूटी आवाज आई, "मैं बिल्कुल रंज नहीं मानूँगा। यह मकान सचमुच मेरे जैसे घोड़े के लिए ही है।"

° ° ° °

साँझ होने पर अरविंद जब प्रेस से लौट कर अपने नये डेरे पर आया तो देखा कि शोभा उसके मकान के सामने खड़ी-खड़ी न जाने कब से उसका इन्तजार कर रही है। उसके पास उसका भारी होल्डाल और एक सूटकेस नीचे पड़े हैं। आज सुबह वह अपनी माँ के साथ हो चली गई थी। अरविंद अकेला रह गया था। शोभा को देखकर उसने आश्चर्य से पूछा, "तुम यहाँ कब से खड़ी हो शोभा? यहाँ तुम आईं ही क्यों?"

"अभी-अभी कुछ देर पहले रिक्शे से आई हूँ," शोभा खिन्न स्वर में बोली, "तुम मुझे छोड सकते हो। मैं तुम्हें कैसे छोड़ दूँ?"

इतना कहते-कहते शोभा का गला भर आया। वह अपनी गीली आँखों को छिपाने के लिए दूसरी ओर ताकने लगी। अरविंद ने सोचा कि इस समय उससे कुछ भी कहना ठीक नहीं। अपने शब्दों को अधिक से अधिक मीठा बनाता हुआ बोला, "कोई बात नहीं। यहाँ आकर तुमने अच्छा ही किया। किन्तु आना ही

या तो पहले ही मुझसे मकान की चाबी ले लेतीं। इतनी देर मेरी इन्तजारी तो नहीं करनी पड़ती!"

अरविंद दरवाजे का ताला खोलने लगा। इसी समय पीछे से शोभा की अस्फुट आवाज सुनाई पड़ी, "इन्तजारी तो मुझे जिन्दगी भर करनी है!"

अरविंद ने इसे सुनकर भी अनसुना कर दिया। शोभा के मानसिक कष्टों का ख्याल करके बड़ी दया आई उसे। लगा जैसे वह सचमुच का कोई बड़ा पाप कर रहा है। दरवाजा खुल जाने पर शोभा भीतर चली गई। अरविंद पीछे से उसके भारी होल्डाल को किसी तरह कन्धे पर चढ़ाकर तथा हाथ में सूटकेस लेकर अन्दर गया। भीतर पहुँच कर शोभा सुराही में रखे जल से अपनी आँखें साफ करने लगी। अरविंद को कन्धे पर गट्ठर लादे देखकर उसका हृदय रो पड़ा। वह निःशब्द मान करके बरामदे की नंगी चौकी पर बैठ गई। अरविंद ने चुपचाप होल्डाल भीतर कमरे में ले जाकर चौकी पर रख दिया। उसे खोलकर बिस्तर के जो भी सामान थे, उसे ठीक से बिछा दिया। शेष चीजों को उसी में बन्द करके एक तरफ रख दिया। शोभा का सूटकेस भी एक तरफ रख दिया। इतना काम कर चुकने के बाद वह मानिनी शोभा के नजदीक जाकर उसके पीछे खड़ा हो गया। उसके जूड़े को प्यार से सहलाता हुआ बोला, "यह मान करने का समय नहीं शोभा! हमारे इम्तहान का समय है। यहाँ से उठो, भीतर कमरे में चल कर बातें करें।"

जब अरविंद ने शोभा का हाथ पकड़ कर उसे उठाया तो वह यन्त्रवत उठ खड़ी हुई। पति ने जहाँ बिठाया वहाँ चुपचाप बैठ गई। जैसे वह कोई गुड़िया हो जिसे जब चाहा, कहीं उठाकर रख दिया। अरविंद उसे देखकर सहानुभूति के स्वर में बोला, "तुम मुझसे रंज हो गई हो न? मैं जानता हूँ, मुझसे तुम्हें सुख नहीं लिखा है। विधि का विधान ही कुछ ऐसा दिखता है।"

अरविंद फिर शोभा के केशों को दुलारने-सँवारने लगा। शोभा अब भी कुछ नहीं बोली। किन्तु उसके पीछे बैठे अरविंद को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे शोभा की साँसें घुलने लगी हों। वह एकाएक उठकर अपनी रूमाल से शोभा की आँखों को पोंछता हुआ स्नेह-गद्गद् कण्ठ से बोला, "रोते नहीं शोभा! तुम्हें ऐसी हालत में देखकर मैं कैसे धीरज बाँधे रह सकता हूँ? मैं फिर कहता हूँ कि यह हम दोनों की परीक्षा का समय है।"

शोभा के आँसुओं का वेग एकाएक उफन पड़ा। पति की छाती में मुँह छिपा कर फफक पड़ी। अरविंद निःशब्द उसके रेशमी बालों में उँगलियाँ फेरता रहा।

जब मन का आवेग कुछ कम गया, शोभा पति की छाती से धीरे से अलग हो गई। बाहर पानी से चेहरा धोने चली गई। अरविंद वहीं गुमसुम बैठा रह गया। शोभा के लौट आने पर विषय बदलता हुआ बोला, "साँझ हो गई। अभी खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं हुई है। आज पहले ही दिन फाकाकशी करने का विचार है क्या ?"

"बोलिए, मैं क्या करूँ ?" शोभा ने बड़ी देर के बाद अपना मौन तोड़ा, "कौन-सा हुक्म बजाऊँ ?"

शोभा के मुख से 'बोलिए' और 'हुक्म' सुनकर अरविन्द ने भाँप लिया कि अभी उसके मन का रंज-भाव गया नहीं है। कुछ मुस्काता हुआ बोला, "मेरा हुक्म यही है कि श्रीमती जी बिस्तर पर आराम फरमायें। तब तक मैं चूल्हा-चक्की ठीक करता हूँ।"

"वाह, यह कैसे सम्भव है ?" शोभा इस बार फीकी हँसी हँसकर बोली, "मुझे इतना पंगु क्यों समझते हो ?"

"पंगु मैं आपको क्यों समझूँगा", अरविन्द ने मीठी चुटकी ली, "आपकी हवाई गति तो ऐसी है जनाब, कि कृष्ण की पुकार पर अपना सारा कामकाज छोड़कर, लाज-शरम को तिलांजलि देकर, झट से कदमकुआँ से चौधरी टोले आ गईं !"

"बिल्कुल झूठ !" शोभा रूठी आवाज में बोली, "कृष्ण पुकारेगा कहाँ तक, वह तो अपनी राधा की याद तक नहीं करता। मैं तो अपने मन से यहाँ आई हूँ।"

"कृष्ण मुँह से नहीं पुकारता। लोक और समाज का ख्याल करके वह अपनी कला की बंसी बजाकर या मन में ही सुमिरन करके अपनी राधा को बुलाता है। वह जानता है कि राधा के अभिभावक हैं, उसका पति भी है। इसीलिए खुलकर नहीं पुकारता।"

शोभा ने इस बार अकचकाकर कुछ शंकित दृष्टि से पति की ओर देखा। 'पति' शब्द से इनका मतलब कहीं विनोद से तो नहीं ! किन्तु अरविन्द के मुखड़े की निश्छल आभा और उसके अधर पर प्यारभरी मुस्कान देखकर उसे कुछ ढाढ़स हुआ। राधा वाला प्रसंग और आगे बढ़ाने से उसे डर मालूम हुआ। उसने बात वहीं खत्म कर दी और बोली, "जाओ, तुम तो कैसा-कैसा मजाक करते रहते हो ! अब कुछ काम भी तो होना चाहिए !"

"तो चलो, तुम्हीं का चूल्हा तैयार करो," अरविन्द खड़ा होता हुआ बोला, "मैं तब तक सब्जियाँ काट कर चावल धो लेता हूँ।"

"यह काम मैं करूँगी," शोभा बोली, "तुम्हीं चूल्हा ठीक करो। मुझे यह नहीं आता।"

"तुम तो सब्जियाँ छील भी नही सकतीं," अरविंद मुस्काकर बोला, "इसीलिए तो कहा था कि तुम चुपचाप आराम करो। देखो कि मैं कैसे आधे घंटे के भीतर सब काम कर लेता हूँ।"

"मुझे इतना गँवार और अपाहिज मत समझो," शोभा तुनुक कर सब्जियों को चाकू से काटती हुई बोली, "सब्जो मैं तुमसे अच्छी बना सकती हूँ। चूल्हा सुलगाना मोटा काम है। वह तुम जानो।"

"अच्छा भई, यही सही," अरविंद बोरे में रखी कुन्नो को लोहे के नये चूल्हे में भरता हुआ बोला, "किन्तु जरा सावधानी से, कहीं हाथ मत काट लेना।"

दोनों अपने-अपने काम में लग गये। जब मन में तल्लीनता की-सी स्थिति आने लगी तो अरविंद धीरे से बोला, "एक बात पूछूं शोभा ?"

शोभा ने उत्सुकतावश सिर उठाकर पति की ओर देखा। प्यार से बोली, "एक क्या, हजार बात पूछो!"

"बुरा तो नही मानोगी ?"

"नही।"

"माँ का आदेश लेकर यहाँ आई हो ?"

"नही।"

"क्यो ? यह तो तुमने ठीक नहीं किया।"

"इस क्यों का जवाब खुद अपने से पूछ लो।"

शोभा अभी तक एक ही आलू छीलने में बेतरह उलझी हुई थी। अपना ध्यान आलू पर ही केन्द्रित करती हुई बोली, "तुम्हारा यहाँ अकेले रहना ठीक नही। न मेरा वहाँ अकेले रहना ठीक है। इसीलिए बिना किसी की परवा किये आ गई हूँ।"

"भावावेश में किया गया कोई काम ठीक नही होता," अरविन्द कुन्नो को चूल्हे मे कूटता हुआ गम्भीर, किन्तु स्निग्ध स्वर में बोला, "मैं तो ऐसी जिन्दगी का अभ्यस्त हूँ। तुम कहाँ-कहाँ मुझे अकेलेपन से बचाती चलोगी ? मैं सच कहता हूँ। तुम्हें अपनी माँ के साथ ही रहना चाहिये। तुम्हीं सोचो न, मेरा वहाँ बराबर का रहना क्या उचित है ? ससुराल का अन्न खाते रहना क्या सही है ? इसीलिए मैं यहाँ कुछ सोचकर ही आया हूँ। तुम तो अपने घर रहकर भी यहाँ बराबर आ-जा सकती हो। मैं खुद भी जब-तब तुमसे मिलने वहाँ आ सकता हूँ। किन्तु

जब मन का आवेग कुछ कम गया, शोभा पति की छाती से धीरे से अलग हो गई। बाहर पानी से चेहरा धोने चली गई। अरविंद वहीं गुमसुम बैठा रह गया। शोभा के लौट आने पर विषय बदलता हुआ बोला, "सांझ हो गई। अभी खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं हुई है। आज पहले ही दिन फाकाकशी करने का विचार है क्या ?"

"बोलिए, मैं क्या करूँ ?" शोभा ने बड़ी देर के बाद अपना मौन तोड़ा, "कौन-सा हुक्म बजाऊँ ?"

शोभा के मुख से 'बोलिए' और 'हुक्म' सुनकर अरविन्द ने भाँप लिया कि अभी उसके मन का रंज-भाव गया नहीं है। कुछ मुस्काता हुआ बोला, "मेरा हुक्म यही है कि श्रीमती जी बिस्तर पर आराम फरमायें। तब तक मैं चूल्हा-चक्की ठीक करता हूँ।"

"वाह, यह कैसे सम्भव है ?" शोभा इस बार फीकी हँसी हँसकर बोली, "मुझे इतना पंगु क्यों समझते हो ?"

"पंगु मैं आपको क्यों समझूँगा", अरविन्द ने मीठी चुटकी ली, "आपकी हवाई गति तो ऐसी है जनाब, कि कृष्ण की पुकार पर अपना सारा कामकाज छोड़कर, लाज-शरम को तिलांजलि देकर, झट से कदमकुआँ से चौधरी टोले आ गईं !"

"बिल्कुल झूठ !" शोभा रूठी आवाज में बोली, "कृष्ण पुकारेगा कहाँ तक, वह तो अपनी राधा की याद तक नहीं करता। मैं तो अपने मन से यहाँ आई हूँ।"

"कृष्ण मुँह से नहीं पुकारता। लोक और समाज का ख्याल करके वह अपनी कला की बंशी बजाकर या मन में ही सुमिरन करके अपनी राधा को बुलाता है। वह जानता है कि राधा के अभिभावक हैं, उसका पति भी है। इसीलिए खुलकर नहीं पुकारता।"

शोभा ने इस बार अकचकाकर कुछ शंकित दृष्टि से पति की ओर देखा। 'पति' शब्द से इनका मतलब कहीं विनोद से तो नहीं ! किन्तु अरविन्द के मुखड़े की निश्छल आभा और उसके अधर पर प्यारभरी मुस्कान देखकर उसे कुछ ढाढ़स हुआ। राधा वाला प्रसंग और आगे बढाने से उसे डर मालूम हुआ। उसने बात वहीं खत्म कर दी और बोली, "जाओ, तुम तो कैसा-कैसा मजाक करते रहते हो ! अब कुछ काम भी तो होना चाहिए !"

"तो चलो, कुन्नी का चूल्हा तैयार करो," अरविन्द खड़ा होता हुआ बोला, "मैं तब तक सब्जियाँ काट कर चावल धो लेता हूँ।"

"यह काम मैं करूँगी," शोभा बोली, "तुम्हीं चूल्हा ठीक करो। मुझे यह नहीं आता।"

"तुम तो सब्जियाँ छील भी नही सकतीं," अरविंद मुस्काकर बोला, "इसीलिए तो कहा था कि तुम चुपचाप आराम करो। देखो कि मैं कैसे आधे घंटे के भीतर सब काम कर लेता हूँ।"

"मुझे इतना गँवार और अपाहिज मत समझो," शोभा तुनुक कर सब्जियों को चाकू से काटती हुई बोली, "सब्जी मैं तुमसे अच्छी बना सकती हूँ। चूल्हा सुलगाना मोटा काम है। वह तुम जानो।"

"अच्छा भई, यही सही," अरविंद बोरे में रखी कुन्नी को लोहे के नये चूल्हे में भरता हुआ बोला, "किन्तु जरा सावधानी से, कहीं हाथ मत काट लेना।"

दोनों अपने-अपने काम में लग गये। जब मन में तल्लीनता की-सी स्थिति आने लगी तो अरविंद धीरे से बोला, "एक बात पूछूं शोभा ?"

शोभा ने उत्सुकतावश सिर उठाकर पति की ओर देखा। प्यार से बोली, "एक क्या, हजार बात पूछो!"

"बुरा तो नही मानोगी ?"

"नहीं।"

"माँ का आदेश लेकर यहाँ आई हो ?"

"नहीं।"

"क्यों ? यह तो तुमने ठीक नहीं किया।"

"इस क्यों का जवाब खुद अपने से पूछ लो।"

शोभा अभी तक एक ही आलू छीलने में बेतरह उलझी हुई थी। अपना ध्यान आलू पर ही केन्द्रित करती हुई बोली, "तुम्हारा यहाँ अकेले रहना ठीक नही। न मेरा वहाँ अकेले रहना ठीक है। इसीलिए बिना किसी की परवा किये आ गई हूँ।"

"भावावेश में किया गया कोई काम ठीक नहीं होता," अरविन्द कुन्नी को चूल्हे में कूटता हुआ गम्भीर, किन्तु स्निग्ध स्वर में बोला, "मैं तो ऐसी जिन्दगी का अभ्यस्त हूँ। तुम कहाँ-कहाँ मुझे अकेलेपन से बचाती चलोगी ? मैं सच कहता हूँ। तुम्हें अपनी माँ के साथ ही रहना चाहिये। तुम्हीं सोचो न, मेरा वहाँ बराबर का रहना क्या उचित है ? ससुराल का अन्न खाते रहना क्या सही है ? इसीलिए मैं यहाँ कुछ सोचकर ही आया हूँ। तुम तो अपने घर रहकर भी यहाँ बराबर आ-जा सकती हो। मैं खुद भी जब-तब तुमसे मिलने वहाँ आ सकता हूँ। किन्तु

तुम्हारा यहाँ रहना.........नहीं-नहीं, तुम यहाँ नहीं रह सकतीं। माँ जी तो पहले से ही मुझ पर नाराज हैं। तुम्हारे यहाँ रहने से और भी रंज मानेंगी। तुम आ गई हो तो दो-तीन घंटे और यहाँ रह लो। आज ही रात में मैं तुम्हें छोड़ आऊँगा। तुम.........."

अपनी बातों में डूबे रहने के कारण अरविन्द ने अब तक शोभा की ओर ध्यान नहीं दिया था। जब उसकी नजर अनायास शोभा की ओर मुड़ी तो वह सन्न रह गया। शोभा ने चाकू से अपनी उँगली काट ली थी। घाव शायद गहरा था। ताजे लाल खून से उसके दोनों हाथों की उँगलियाँ तर हो रही थीं। शोभा अपने दूसरे हाथ से घाव को दबाये चुपचाप बैठी थी। अरविन्द चूल्हा छोड़कर दौड़ा-दौड़ा उसके नजदीक पहुँचा। घबड़ा कर बोला, "यह तुमने क्या कर दिया शोभा!"

वह शोभा को खींचता हुआ-सा भीतर कमरे में ले गया। वहाँ उसका घाव साफ करके उसपर अपनी रूमाल की पट्टी बाँधता हुआ दुखी स्वर में बोला, "आज पहले ही दिन मेरे चलते तुम्हारी यह हालत हुई! माँ जी क्या कहेंगी मुझे?"

"कुछ भी तो नहीं हुआ," शोभा शान्त स्वर में कुछ मुस्काती-सी बोली, "तुम बेकार घबड़ा रहे हो। इन सबकी ट्रेनिंग तो मुझे लेनी ही है। अब मैं पटने के नामी एडवोकेट कुमार बाबू की पुत्री नहीं हूँ। निर्मला देवी भी पहले की तरह अब मेरी माँ नहीं हैं। उनका घर भी मेरा घर नहीं है। मैं तुम्हारी हूँ। तुम्हारी ही अर्धांगिनी हूँ। चाहे जितनी भी कलंकी होऊँ।"

इतना कहते-कहते शोभा की आँखें फिर छलक गईं।

ग्यारह

अरविन्द का अनुमान ठीक ही था कि शोभा भावावेश में पति के साथ रहने आई थी। इस नये मकान में आये शोभा का आज तीसरा दिन है। इन तीन दिनों में उसने अपने घर आदि को बिसरा देने की भरपूर कोशिश की थी। शायद इसी उद्देश्य से वह यहाँ आयी भी थी। किन्तु लगता है जैसे इन तीन

दिनों में हो माँ, विनोद आदि को याद तिगुनी बढ़ गई हो। जैसे उसका आकुल मन तीन वर्ष पीछे छूटे पड़े अपने प्रियजनों की ओर सरपट दौड़ा जा रहा हो। पहले दिन पत्नी के आदर्शों से भरे हुए शोभा के मन में अपनी उँगली कट जाने का कोई दुख नहीं हुआ था। पति के साथ उसके हाथ का बना रूखा सूखा भोजन करके तथा रात में एक साधारण-सी चौकी पर लेट कर वह अपने को सीता-सावित्री की तरह सती-साध्वी सिद्ध करने में लगी रही। दूसरे दिन सवेरे अरविन्द के काम पर चले जाने के बाद शोभा के लिए वहाँ की हर चीज चुभन-भरी नजर आने लगी। मकान के पीछे खड़ा पुराना पीपल का पेड़ अपनी पत्तियों को कँपा-कँपा कर उसके निकट या दूर अतीत की कोई न कोई बात दुहराने लगा। अरविन्द ने बड़ी आरजू-मिन्नत की थी कि शोभा अपने घर लौट जाये। किन्तु स्वयं शोभा मानो भीष्म-प्रतिज्ञा करके पति के साथ रहने आयी थी। अरविन्द ने उससे यह भी कहा था कि यदि वह घर नहीं जाना चाहती तो उसी के साथ पण्डितजी के घर चले। यहाँ अकेले उसका मन जरूर ऊब जायेगा। किन्तु शोभा इस पर भी तैयार नहीं हुई। ऐसे अरविन्द ने पत्नी की सुख-सुविधा का ख्याल करके एक दाई को ठीक कर दिया था। दाई सुबह-शाम झाड़ू लगा जाती, जूठे बरतन साफ कर देती, मसाला पीस देती और पीने का पानी बाहर से लाकर रख देती।

जिस दिन शोभा यहाँ आई, घर से चलते समय अपनी माँ से मिली तक नहीं। वह जानती थी कि माँ उसे चौधरी टोले कभी नहीं जाने देगी। वे अरविन्द से बहुत-बहुत खफा थीं। स्वयं शोभा अपनी माँ के सामने अपनी कोई कमजोरी प्रकट होने देना नहीं चाहती थी। उस दिन चौधरी टोले में जाकर अरविन्द के साथ रहने का जो उसने निर्णय लिया, इसके पीछे बात कुछ दूसरी थी। वह आये दिन विनोद की तरफ लगातार झुकती चली जा रही थी। इस झुकाव के चलते उसके शरीर एवं मन के बीच विकट संघर्ष छिड़ गया था। इस संघर्ष से न तो वह चैन से सो पाती थी, न कोई काम कर पाती थी। चौधरी टोले के एकान्त परिवेश में रहकर शायद वह विनोद से अपने को मुक्त कर पायेगी, उसके मन में वही यह विश्वास पैदा हो गया। कदाचित् इससे वह अपनी मानसिक शान्ति फिर से पा लेगी। यही सोचकर उस दिन अपनी माँ से चुपके ही वह यहाँ भाग आई थी। चलते समय उसने माँ के नाम एक छोटा-सा पत्र लिख कर वहीं उनके बिस्तर पर छोड़ दिया था। पत्र में इतना ही लिखा था, 'मैं चौधरी टोले जा रही हूँ। आप बुरा नहीं मानेंगी। फिर जल्दी ही यहाँ आ जाऊँगी।'

आज शनिवार है। दिन के बारह बजे हैं। आकाश में रुई के फाहे की तरह छितराये बादलों के पर्दे चीर कर कभी-कभी धूप नीचे झांक लेती है। छाया में बैठे रहने पर भी देह पसीने से भीग रही है। अकेली शोभा ताड़ के पंखे से हवा करती हुई बाहर बरामदे में कुर्सी पर बैठी है। अरविंद खा-पीकर सुबह दस बजे ही प्रेस चला गया है। तब से शोभा का एकाकीपन और भी गहराता जा रहा है। वह कई बार उठकर भीतर अपने बिस्तर पर गई। कई बार बाहर आई, खड़ी हुई और बैठी। किसी उपाय से वह मन की बेचैनी शान्त नहीं कर पा रही है। अरविंद के आने में अभी कम से कम पाँच घंटे और लगेंगे। तब तक के लिये शोभा का समय पहाड़ जैसा भारी और बोझिल होता जा रहा है। अब उसे अपनी मां पर भी झल्लाहट होने लगी है। मन के किसी कोने में विनोद पर भी आक्रोश फूटने लगा है। पिछले तीन दिनों में इन लोगों ने उसकी कोई खबर तक नहीं ली। वह मरती है या जिन्दा है, जैसे उन्हें इससे कोई मतलब नहीं। सबने उसे ठुकरा दिया है। शोभा की आखें जब-तब भर आती हैं। यदि अरविंद की बात मानकर वह आज अलका के घर ही चली गई होती तो ऐसी मनहूसी उसके गले नही पड़ती। इधर कालेज भी बन्द है। किंतु अलका के घर अभी की स्थिति में वह नही जा सकती। अलका की याद आते ही उसके मन में जैसे कँप-कँपी समा गई। उस दिन अकेले विनोद के साथ जब वह पिक्चर देखकर हॉल के बाहर आई तो बरामदे में ही उसकी नजर अलका की नजरों से टकराई। अलका किसी के साथ शायद नाइट शो देखने आई थी। शोभा को विनोद के साथ देख कर एक दुष्ट मुस्कान के साथ बोली थी वह, "नमस्ते शोभा दी! आज तो बड़ी बनी-ठनी हैं! आखिर बात क्या है?"

विनोद कुछ दूर आगे बढ़ चुका था। शोभा अलका की बात का कोई उत्तर न देकर भीड़ में विनोद के पीछे चली गई थी। सम्भव है, अलका ने अरविंद से उसको विनोद के साथ पिक्चर देखने की बात खोल दी हो। यों अरविंद ने उस विषय में शोभा से फिर कोई दूसरी बात आज तक नही पूछी थी। किंतु अब अलका से मिलकर शोभा अपने लिये कोई नई मुसीबत पैदा करना नहीं चाहती।

अरविंद के डेरे के बाहर की पतली सड़क नगर की दूसरी सड़कों की तुलना में बडी ही शांत है। लोग तो कम आते जाते ही हैं, सवारियाँ भी इधर बहुत कम आती हैं। रिक्शे की घंटी तक शायद ही कभी सुनाई देती है। इधर किसी कार का गुजरना तो और भी दुर्लभ है। आज इस दोपहर के समय इस सड़क

पर जन-संचार नहीं के बराबर मालूम देता है। मन की उकताहट में शोभा किसी तरह अपनी घड़ियाँ गिन रही है। इसी बीच बाहर सड़क पर किसी कार की घर्राहट उसका ध्यान अचानक खींच लेती है। कार शायद शोभा के मकान के इर्द-गिर्द ही खड़ी हो गई है। उसकी आवाज सुनकर शोभा यही अनुमान कर पाई। उसका मन न जाने किस आशा से खिल उठा। कुछ देर तक अपनी साँसें रोक कर बाहर की आहट लेती रही। किन्तु फिर कुछ नहीं सुनाई पड़ा। इसी बीच बाहर दरवाजे की कुण्डी बजने लगी। शोभा खड़ा होकर आवाज को भाँपने की कोशिश करती रही। बाहर से किसी के बोलने या पुकारने की कोई आवाज नहीं आई। कुण्डी लगातार बजती जा रही थी। शोभा ने धड़कते दिल से अन्दर से पूछा, "कौन है ?"

"मैं हूँ। खोलो", विनोद की आवाज थी।

शोभा की धड़कन और भी तेज हो गई। उसने धीरे से सिटकिनी खोल दी और एक तरफ खड़ी हो गई। शोभा को चुपचाप खड़े देखकर विनोद लापरवाही के-से स्वर में बोला, "हेलो शोभा, आज तुम्हारा डेरा खोज निकालने में सचमुच बड़ी मुसीबत हुई। खैर, भीतर चलकर कम से कम अपना मकान तो दिखाओ।"

विनोद को आकस्मिक रूप से आया देखकर शोभा खुश हुई या नाखुश, कहना कठिन है। हाँ, एक विचित्र-सी लज्जा, भय और आत्महीनता की भावना उसके मन पर घिर आयी। विनोद को लेकर भीतर जाने में उसके कदम बढ़ नहीं पा रहे थे। उधर विनोद बेधड़क अन्दर घुसा जा रहा था। जैसे यह मकान उसका पहले से ही देखा-सुना हो। अन्दर पहुँच कर एक बार उसने मकान की कोठरियों तथा दूसरी चीजों पर सरसरी नजर दौड़ाई। फिर सामने खड़ी शोभा के उतरे चेहरे की ओर देखकर व्यंग्य के साथ बोला, "कितना प्यारा मकान है! किंतु घोड़ा तो कहीं नहीं दिखाई देता!"

शोभा ने विनोद के व्यंग्य पर गौर नहीं किया। वह अभी तक अपनी हीन भावना से उबर कर कुछ सोचने-समझने की शक्ति नहीं जुटा पाई थी। इसी हालत में उसने किसी तरह विनोद के सामने कुर्सी लाकर रख दी। विनोद फिर बिना कुछ बोले बैठ गया। उसके सामने खड़ी शोभा किसी निर्जीव मूर्ति की तरह लग रही थी। विनोद ने उसका हाथ पकड़ कर उसे दूसरी कुर्सी पर बिठा दिया। व्यंग्य के लहजे में ही बोला, "तो यह है तुम्हारा मकान! इसी सड़े मकान के लिए तुम अपने इतने सुन्दर बंगले को छोड़कर यहाँ चुपके भाग आई हो। है न ?"

शोभा ने इसका भी कोई जवाब नहीं दिया। केवल सिर लटकाये बैठी रही। विनोद अब अपने हाथ से उसकी ठुड्डी ऊपर करते हुए सान्त्वना के स्वर में बोला, "कोई बात नहीं। आदमी ठोकर खाकर ही तो सीखता है। तुम अब तक बहुत कुछ सीख चुकी होगी।"

"तुमने यह कैसे मान लिया कि मैं यहाँ आकर दुखी हूँ?" बड़ी देर के बाद शोभा का तलखी-भरा स्वर सुनाई पड़ा।

"तुम सुखी हो सकती हो। किंतु तुम्हारा यह मुर्झाया चेहरा, ये सूजी हुई लाल आँखें और उखड़ी हुई सूरत तुम्हारे सुखी होने का बहाना नहीं कर सकते।"

"मुझे तुम्हारी सहानुभूति नहीं चाहिये," शोभा उस समय जैसे अपना सारा क्लेश भूलकर कुछ गर्वीली आवाज में बोली, "मैं अपने दुखों में ही सुखी हूँ।"

विनोद अब पैंतरा बदल कर बोला, "अच्छा भई, तुम सुखी हो। इसे मैं भी मान लेता हूँ। किंतु आज पहली बार तुम्हारे घर आया हूँ। चाय न सही, एक ग्लास ठण्डा पानी भी तो पिलाओ।"

शोभा जैसे अचके में जाग गई हो। विनोद की खातिरदारी तो करनी ही है। किंतु स्टोव के रहते हुए भी चाय नहीं बनाई जा सकती थी। अभी घर में न दूध था, न चीनी और न चाय की पत्ती ही। यदि कोई होता तो बाहर से ही बनी-बनाई चाय खरीद कर मंगाई जा सकती थी। किंतु अभी तो दाई के आने का भी समय नहीं हुआ था। शोभा को मन ही मन अपनी असमर्थता पर बड़ी ग्लानि का बोध हुआ। कुछ देर खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रही, फिर कमरे के भीतर से शीशे का ग्लास उठा लाई और बरामदे के एक कोने में रखी नई सुराही से पानी ढालने चली। किंतु दुर्भाग्य से सुराही में एक बूंद भी पानी नहीं था। दोनों के खा-पी लेने के बाद जो थोड़ा पानी सुराही में बचा रह गया था वह उसकी पेंदी से धीरे-धीरे रिसकर नीचे पड़े बालू में घुल-मिल गया था। शोभा झेंप कर लाज के मारे वहीं बैठी की बैठी रह गई। विनोद चुपचाप बैठा शोभा की परेशानियों का मजा ले रहा था। उसे स्थिति समझते देर नहीं लगी। स्थिति को अपने अनुकूल बनाने के लिए उसने एक नया तीर छोड़ा, "बीच आगन में कुआं है। परेशानी किस बात की? एक बाल्टी भर लेने में लगता ही क्या है?"

शोभा अभी तक बैठी-बैठी बाहर नल से पानी भरकर लाने की बात सोच रही थी। किंतु बाहर नल पर इसे देखकर कोई क्या कहेगा? मन में आया कि

शोभा को उस समय लगा जैसे मझधार में तिनके का सहारा मिला हो। विनोद के शब्द कहाँ तक उसके कानों में पहुँच पाये, इसका उसे कोई अहसास नहीं हुआ। अपनी अस्त-व्यस्त साड़ी में भागती हुई-सी वह अपने कमरे के भीतर चली गई। ग्लानि, संकोच और आत्मकुत्सा के बोझ से दबी हुई वह कच्ची फर्श पर ही धसक कर बैठ गई। पास रखी चौकी के सिरे पर सिर टेक कर सुबकने लगी।

उधर विनोद ने बाल्टी खींचकर उसे एक तरफ रख दिया। अपने रेशमी पतलून से पानी की छलकती बूँदों को झाड़ता हुआ बरामदे में आया। वहीं से भीतर झाँक कर शोभा को देखा। उसे सिसकते देख उसके मन में दया उमड़ आयी। उसके मूर्ख पति पर क्रोध भी हुआ जिसने ऐसी उच्च कुलीन और सुन्दरी औरत को इतनी तकलीफ में डाल दिया था। बेझिझक अन्दर प्रवेश करके वह शोभा के बिखरे बालों में अपनी उँगलियाँ डालता हुआ प्यार से बोला, "इस तरह नहीं रोते डार्लिंग! तुम्हें किस बात की कमी है जो अनाथ की तरह रो रही हो? जब तक मैं जिन्दा हूँ, तुम्हें ऐसी तकलीफ फिर नहीं होगी। पहले चुप तो हो जाओ!"

विनोद ने सुबकती हुई शोभा को उठा कर सामने बिस्तर पर बिठा दिया। शोभा ने कोई विरोध प्रकट नहीं किया। अपने पास बैठे विनोद की छाती में सिर टेक कर वह पहले की तरह ही रोती रही। कुछ घड़ियाँ ऐसे ही बीत गयीं। अचानक शोभा के कर्णपुटों में विनोद की प्यार-भरी आवाज थिरक उठी, "तुम तो मुझे छोड़कर यहाँ आ गईं शोभा! किन्तु मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ?"

शोभा ने अपने बालों में विनोद की काँपती उँगलियों का बड़ा ही सुखद अनुभव किया। उसकी छाती में अपने मुखड़े को और भी गडा कर आँसू और साँस के मिले-जुले स्वर में बोली, "मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकती। इस जीवन में कभी नहीं भुला सकती। .... किन्तु क्या करूँ मैं? तुम्हें फिर कैसे पा लूँ?"

"मुझे तो कब का पा चुकी हो;" विनोद झुककर शोभा के आँसुओं से गीले पड़े कपोलों को चूमता हुआ बोला, "रहा समाज। उसे हम देख लेंगे। हिम्मत-पस्त होने की जरूरत नहीं। किन्तु तुम्हें अभी ही मेरे साथ चलना है।"

"चलना है? कहाँ?" शोभा अब अपना रोना भूलकर आश्चर्य से बोली।

"तुम्हें अपने घर चलना है। तुम्हारी माँ की तबीयत कल से ही खराब है।"

"क्या कहा ? माँ अस्वस्थ हैं ?" शोभा घबड़ाकर बोली, "यह तुम्हें कैसे मालूम ?"

"मैं तो रोज उनसे मिलने जाता हूँ। तुमने जैसी निर्दयता उनके साथ बरती है वैसा तो कोई गैर भी नहीं कर सकता। अपनी असहाय बूढ़ी माँ को छोड़कर उनसे बिना पूछे तुम यहाँ भाग आई हो। किन्तु वे अपने बुढ़ापे की लकड़ी को कैसे भूल सकती हैं ? उन्होंने तुम्हारे यहाँ आने के दिन से ही खाना-पीना तक छोड़ दिया है। कल से ही बुखार में डूबी हैं। आँखों से आँसू झड़ते रहते हैं।"

"मैं अभी चलूँगी, तुम्हारे ही साथ," इतना कह कर शोभा एक निश्चय की मुद्रा में झट से खड़ी हो गयी।

शोभा के सामने उसकी माँ का कातर आँसू-भरा चेहरा प्रकट हो गया। उनकी सारी पीड़ाओं की जिम्मेदारी खुद उसी पर है। उसे अविलम्ब माँ के पास पहुँचना है। वह जाने की तैयारी करने लगी। इसी बीच कुछ याद करके घबड़ाकर विनोद से बोली, "किन्तु मैं चाह कर भी अभी कैसे जा सकती हूँ ?"

"क्यों ?"

"मकान की चाबी मेरे पास है। वे शाम तक अपने काम से वापस आते हैं। बिना उनसे पूछे वहाँ जाना क्या उचित होगा ?"

"तुम एक अदनी-सी बात के लिये घबड़ा जाती हो," विनोद खड़ा होता हुआ झल्लाहट के स्वर में बोला, "इमरजेन्सी में ऐसी बातें नहीं सोची जातीं। तुम अरविन्द के नाम एक लेटर लिख दो। उसमें अपने चले जाने के कारणों का उल्लेख कर दो। मैं तुम्हारा पत्र तथा मकान की चाबी दोनों को अपने आदमी से उसके पास भेज देता हूँ।"

शोभा खड़ी-खड़ी कुछ दुविधा में पड़ी रही। फिर तुरत ही अपने विचारों को झटका देती हुई बोली, "ठीक है, तो यही सही। मैं अभी पत्र लिख देती हूँ।"

उसने अपने सूटकेस में से नीला लेटर-पैड निकाला। बिस्तर पर बैठकर अरविन्द के नाम छोटा-सा पत्र लिख दिया। उसे एक लिफाफा में बन्द करके अपनी जरूरत की चीजों को सूटकेस में समेटने लगी।

बारह

जिस दिन घनिया वाली घटना घटी, उस दिन से सुधा का मन अपने पति की ओर से कभी भी साफ नहीं हुआ। चाहने पर भी मन का विरोध मिट नहीं पाता था। यों ऊपर-ऊपर दोनों में बातचीत होने लगी थी। दोनों के व्यवहारों में एक दूसरे के प्रति कोई भेद-भाव भी दिखाई नहीं पड़ता था। किंतु विनोद मन ही मन अपनी पत्नी से खिचा-खिचा रहने लगा था। शायद उसके अन्तर्मन में खुद अपना अपराध-भाव सुधा के साथ फिर कुछ ज्यादती करने से उसे रोक रहा था। पत्नी के विद्रोहात्मक रुख से वह कुछ डरा-डरा-सा भी रहने लगा था। इसी कारण वह घनिया को भी अपने घर से नहीं निकाल पाया था, क्योंकि सुधा उसे छोड़ना नहीं चाहती थी।

कुछ समय पहले विनोद और शोभा दोनों ने कमल और अरविंद के विषय में सुधा से जैसी बातें कही थीं, उनसे सुधा का मन आज तक शंकालु बना हुआ है। वह जितना ही इस विषय में सचाई तक पहुँचने की कोशिश करती, उसका मन उतना ही उलझता जाता। विनोद ने बताया था कि अरविंद उसी के गाँव का रहने वाला है। शोभा ने प्रकारान्तर से कहा था कि कमल तो नहीं, किंतु उसका भूत अभी भी बचा हुआ है। इसका मतलब कि शायद अरविंद और कमल में वे दोनों कोई न कोई सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। किंतु यह सम्भव कैसे है! यदि कमल जिन्दा रह भी गया हो तो वह अरविंद के रूप में बदल जायेगा, इस कल्पना में कोई संगति नहीं दिखाई देती। उस बातचीत के बाद सुधा को फिर हिम्मत नहीं हुई कि वह विनोद या शोभा से अरविंद या कमल के विषय में अपने मन में उठने वाली शंकाओं का निवारण करा ले। ये दोनों के दोनों अब सुधा के लिए भय और आशंका की वस्तु बनते जा रहे थे। शोभा इधर विनोद के साथ पहले से भी ज्यादा मिलने-जुलने लगी थी। दोनों का अकेले पिक्चर जाना या एकान्त में बैठकर गप्पें लड़ाना आम बात होती जा रही थी। सुधा समझ गयी थी कि शोभा ऊपरी मन से ही उसे पिक्चर ले जाना चाहती है। विनोद ने तो कभी दिखावे के लिए भी इधर उसे पिक्चर चलने के लिए नहीं कहा है। ऐसा नहीं कि विनोद और शोभा को इतना मिलते-जुलते देखकर उसके मन में जलन नहीं होती हो। किंतु यह जलन ऐसी थी जो किसी विस्फोट के लिए

अभी तैयार नहीं हो सकी थी। सुधा आशा-आकांक्षाओं को अपने अन्तस्तल में तरल अंगारों की तरह छिपाये बैठी थी। उसे कभी-कभी अरविन्द पर भी अचरज होता। वह अपनी पत्नी को इतनी छूट कैसे दे रहा है? उस पर नियंत्रण क्यों नहीं रखता? यों सुधा ने कब तक यह देखा था कि शोभा को अपने पति से किसी कारण पटती नहीं है। सुधा के मन में यह एक दूसरा आश्चर्य का विषय था। अरविन्द जैसे सरल हृदय और स्वच्छ प्रकृति के पति को पाकर भी शोभा असन्तुष्ट क्यों रहती है? वह तो हीरे को छोड़ कर जैसे लोहे पर लट्टू होती जा रही है।

इधर कुछ दिनों से सुधा जाने-अनजाने चिन्ता की एक नई दिशा में भटकती जा रही है। वह तो कमल को एक तरह से भूल ही चुकी थी। पुराने दिनों के लगाव का लुभावना चित्र समय बीतने के साथ धुंधला पड़ता गया था। सुधा के सामने अब अपनी नई जिन्दगी के आशा-निराशा के रंग थे। कभी-कभी ही जवानी के गवाक्ष से सुदूर पार फैले बचपन के कुहासे की ओर निहारने का अवसर मिल पाता था। ऐसे समय शैशव की उन पुराी-भरी गलियों में एक समवयस्क और तेजस्वी किशोर की पदचापें जरूर सुनाई देने लगतीं। वहीं से उस दीन-हीन किशोर की सरल और स्वच्छ हँसी, उसकी करुण गाथा तेल की बूंदों की तरह सुधा वेदना की तरल परतों में फैलने लग जाती। कभी वह सुधा के साथ हाथ में हाथ मिलाए देहात की एकान्त पग-डंडियों पर घूमता-टहलता, कभी उसके कान में अपना मुँह सटाकर फुस-फुसाहट में कोई अबूझ बात बोल देता। उसकी गर्म-गर्म साँसों के काल्पनिक स्पर्श से सुधा को अब भी रोमाञ्च हो आता। इसी तरह वह कभी खेत-खलिहानों में, कभी स्कूल से आते-जाते वक्त, कभी अपनी बकरियों के साथ और कभी ईख के खेत के एकान्त मेड़ पर बैठा मिल जाता। आज भी सुधा दर्पण में अपने चेहरे को निहार कर अपने ललाट के कोने पर बने काले दाग को भूल नहीं पाती। उस छोटे से चिह्न में जैसे उसके सुखद अतीत का सर्वस्व छिपा हुआ है। यह कमल के स्नेह का एक ऐसा अमिट स्पर्श है जिसे सुधा के सिवा दूसरा कोई भी अनुभव नहीं कर सकता। कमल की स्मृति ऐसे ही क्षणों में उसे भरमा देती है। उसके अस्ति को नास्ति में बदल देती है। अन्तर्मुख वेदना और मौनता की वह मूर्ति! सादगी और तेजस्विता की वह प्राण-रेखा! कहाँ है आज वह? वह तो स्मृति के लिये भी दूर पड़ चुका है। संसार में वह अब तक यहाँ, वहाँ से ठुकराया और दुतकारा जाता रहा। किसी का प्यार [illegible]

हुआ। यहाँ तक कि उसकी अकाल मृत्यु भी उसके परिवार में खुशी का कारण बन गई थी। ऐसा था वह कमल। कीच से उत्पन्न हुआ और फिर कीच में ही समा गया। सुधा के दृष्टि-पथ पर कमल के मर जाने के बाद का दृश्य अभी भी कभी-कभार नाच जाता है। उसके पिता प्रताप सिंह ब्राह्मणों को भोज दे रहे हैं। कमल के पिता, चाचा और भाई सबके सिर मुड़े हुए हैं। मृत्यु का मातम ऊपर-ऊपर जरूर है, किन्तु किसी की आँखों में गीलापन नहीं। मानो एक बोझ था जिसके खत्म हो जाने से अब सब कुछ हल्का हो गया है।...............दूर कहीं रेल की पटरी पर कमल की लाश पड़ी रह गई थी। शायद उसे ट्रेन के डब्बे में लाद कर शिनाख्त के लिये कहीं ले जाया गया था। पुलिस के डर से प्रताप सिंह उसे देखने भी नहीं गये और न उसकी अन्तिम क्रिया ही कर पाये। सुधा को मृत्यु की बीभत्सता तथा भयंकरता का बोध मानो पहली बार हुआ था। कई महीने तक उसने गाँव में आना-जाना छोड़ दिया था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी फिर स्कूल में पढ़ने नहीं गई। हार मान कर उसके पिता को उसकी पढाई की व्यवस्था घर पर ही करनी पड़ी। कमल की उस करुण मृत्यु के बाद कई महीने तक सुधा के रात-दिन आँसुओं में डूबे रह गये। कमल तब से अपनी सुधा को एक क्षण के लिये भी देखने नहीं आया। सुधा के आँसुओं का एक कतरा भी उससे पोंछा नहीं जा सका।.........

न चाहने पर भी विनोद और शोभा की बातों ने कमल की भूली हुई यादों को एक बार फिर सुधा के मन में उद्दीप्त कर दिया था। इस बीच उसने कई बार अरविन्द को कमल के रूप में देखने की कोशिश की है। किन्तु हर बार उसकी जिज्ञासा बिना किसी समाधान के थकी-हारी लौट आती है। केवल एक ही बात है जिस पर सुधा का ध्यान लगा हुआ है। अरविन्द ने उस दिन बड़ी उत्कण्ठा से सुधा का नाम-धाम पूछा था। सुधा के उत्तर सुनकर 'वही' कहकर स्पष्टतः किसी भावावेश में चुप हो गया था। सुधा यह भी जानती है कि अरविन्द ने सम्भवतः अब तक किसी को अपने जन्मस्थान आदि का कोई परिचय नहीं दिया है। ये दोनों बातें सुधा के लिए अब जैसे कुछ नये अर्थ लेकर प्रकट होने लगी हैं।.........किन्तु यदि कुछ देर के लिये मान भी लिया जाये कि कमल जीवित बच गया है तो इतने लम्बे समय के बीच क्या वह सुधा के नाम कोई पत्र भी नहीं लिख सकता था? नहीं, कमल के बचे रहने की सम्भावना कल्पना मात्र है। यदि इस बीच अरविन्द से सुधा

की दुबारे भेंट हुई होती तो वह निश्चय ही अपनी जिज्ञासा उसके सामने रखती। किन्तु दुर्भाग्यवश अरविन्द से सुधा को मिले लगभग तीन महीने हो रहे हैं। स्वयं सुधा पहले की तरह अब शोभा के घर भी नहीं जाती कि वहाँ भी अरविन्द से मिलने का मौका मिल सके। विनोद अब अकेले ही वहाँ आता-जाता है। इधर घनिया के कहने से सुधा को मालूम हो गया है कि अरविन्द भी अब अपनी ससुराल में नहीं रहता। किसी दूसरे मकान में चला गया है।

आज रविवार था। चार बजे सांझ का समय था। जाड़े से ठिठुरा सूरज अस्ताचल के समीप अपनी ठंढी किरणों को समेट रहा था। सुधा गर्म शाल ओढ़े अपने बंगले के बाहरी प्रांगण में युकिलिप्टस के एक छोटे पेड़ के सामने खड़ी थी। विनोद एक बजे दिन में ही खा-पी कर अपनी गाड़ी लिये कहीं चला गया था। उसके जल्दी वापस आने की कोई सम्भावना भी नहीं थी। घर में अकेले बैठे-बैठे जब सुधा का मन उजबुजाने लगता है तो वह अक्सर बंगले के छोटे उद्यान में चली आती है। वहाँ लताओं और फूलों के बीच उसका मन कुछ बहल जाता है। वहीं से कभी-कभी वह आस पास की सड़कों और ऊपर खड़े आसमान के अनन्त विस्तार को देख लेती है। कभी-कभी लगता है जैसे वह खुद किसी पिंजड़े में असहाय पंछी की तरह कैद हो गई है। किन्तु उसके अगल-बगल ऊपर-नीचे इतनी सारी गति, इतनी सारी मुक्तता है। उसकी नजरों के सामने सड़कों पर रोज अनगिनत लोग आते-जाते दिखते। किन्तु इतने सारे लोगों के बीच कोई भी चेहरा उसका जाना-पहचाना नहीं दिखाई देता। लोगों की भीड़ में ऐसा कोई भी नहीं जिसे वह अपना कह सके। सुधा आज भी कुछ ऐसे ही विचारों में खोई-खोई-सी अपने सामने सड़क को उदास नजरों से देख रही थी। सांझ के समय सड़क पर सवारियों और लोगों का आना-जाना बढ़ता जा रहा था। मोटर, रिक्शे, टमटम, फिटन जैसी सवारियों तथा पैदल चलने वालों की भीड़। सहसा सुधा की नजर को जैसे कोई भ्रम हो गया हो। अपने सामने पश्चिम दिशा से आते हुए एक रिक्शे को देखकर कुछ देर तक उसकी आँखों को विश्वास नहीं हुआ। रिक्शे पर अरविन्द कहीं चला जा रहा था। हाँ, सचमुच वह अरविन्द था। सुधा की आँखें अब धोखा नहीं खा सकती। आज इतने दिनों के बाद अचानक उसे दूर से देख कर भी सुधा की छाती जोरों से धड़क उठी। जी में आया कि दौड़ कर रिक्शे के पास पहुँच जाये। कुछ देर के लिए भी अरविन्द को अपने घर बुला लाए। दूसरे ही क्षण सुधा की आशा और उमंग पर पानी फिर गया। अब उसने ख्याल किया कि रिक्शे पर अरविन्द के साथ कोई बुजुर्ग सज्जन भी

बैठे हुए हैं। अरविन्द उन्हीं के साथ कुछ बातें करता बढ़ा आ रहा था। कुछ ही क्षणों में रिक्शा सुधा के बिल्कुल करीब आ गया। वह समझ नहीं पायी कि अरविन्द का ध्यान कैसे अपनी ओर आकर्षित करे। थोड़ी देर में अरविन्द की नजर स्वतः सुधा की ओर खिंच गई। उसने दूर से ही सुधा को देखकर हाथ जोड़ लिये। इतनी ही देर में रिक्शा उन दोनों को लिये आगे बढ़ गया। सुधा निराश हो गई। किन्तु उसकी निराशा फिर तुरत आशा और उल्लास में बदल गई जब उसने अपने सामने अरविन्द को अकेले पैदल आते देखा। सुधा को लगा जैसे कोई डूबता हुआ क्षितिज अचानक उग आया हो। लहरों में खोया किनारा अनायास प्रकट हो गया हो। वह भागती हुई-सी मकान के फाटक तक पहुँची। उसे झट से खोलकर लजाई-लजाई-सी एक ओर खड़ी हो गई। नजदीक आकर अरविन्द कुछ अचरज से बोला, "यह कैसा वेश बना रखा है भाभी ? दो-तीन महीनों में ही आप इतनी दुबली-पतली कैसे हो गईं ?"

"कोई सुध भी तो लेने वाला हो!" सुधा आनन्द और उलाहने के मिले-जुले स्वर में बोली, "आज कैसे रास्ता भूल गये ? कैसे पहचान लिया मुझे ?"

अरविंद ने सुधा के साथ बंगले की ओर बढ़ते हुए महसूस कर लिया कि उसकी आवाज इतना कहते-कहते कुछ थरथरा गई थी। अन्तिम शब्द गले की नमी में डूबे हुए-से लगे। उसने चलते-चलते स्नेह भरी वाणी में कहा, "ऐसा न कहें भाभी, आपको मैं कैसे भूल सकता हूँ ? बुरी तरह व्यस्त रहने के कारण इधर आपसे मिलने नहीं आ सका। आज आपको यहाँ खड़े देख कर चकित रह गया। इतना दुर्बल तो मैंने आपको कभी नहीं देखा था।"

"आपने मुझे देखा ही कब ?" सुधा भारी आवाज में किसी तरह बोल गई।

अरविंद ड्राइंग रूम में सोफे पर बैठता हुआ बोला, "यदि मैं यह कहूँ कि अब तक अपने जीवन में मैंने सबसे ज्यादा आपको ही देखा है तो विश्वास करेंगी ?"

अरविंद कहने को तो कह गया। किन्तु ऐसी बात अचानक मुँह से निकल जाने से उसे कुछ घबड़ाहट भी हुई। शायद वह सीमा से बाहर जा रहा है। उधर सुधा उसकी सहृदय बातों को सुन कर कुछ देर तक उसे एकटक निहारती रह गई। उसकी आँखों में अनायास न जाने कहाँ की स्निग्धता, मिठास और उत्सुकता लहर गई। अरविंद सुधा की ऐसी दृष्टि को सह नहीं सका। उसने

झट से सिर झुका लिया। विषय बदलता हुआ बोला, "विनोद बाबू को नही देख रहा हूं ?"

जब अपनी जिज्ञासा का कोई उत्तर अरविंद को नहीं मिला तो उसने फिर सिर उठाकर सुधा की ओर देखा। सुधा अब भी उसे वैसी ही तन्मय दृष्टि से निहार रही थी। अरविंद कुछ घबड़ाया हुआ-सा फिर बोला, "मैं विनोद बाबू के सम्बन्ध में पूछ रहा था भाभी !"

"जी ?" सुधा जैसे कच्ची नींद से जगी हो, अपनी नजरें झुकाती हुई सावधान होकर बोली, "वे तो अपने किसी दोस्त से मिलने गये हैं।"

दोनों आमने-सामने बैठे फिर कुछ देर चुप रहे। आज यह पहला मौका था जब सुधा ऐसे अकेले में अरविंद से मिली थी। एकान्त मिलन ने दोनों के मन पर अपना रंग ला कर छोड़ा। अरविंद के लिए सुधा अब कोई रहस्य की चीज नहीं रह गई थी। किंतु खुद सुधा के मन पर अरविंद के रहस्यों का जाल-सा बिछा हुआ था। अभी वह यही सोच रही थी कि कैसे अपनी बातें शुरू करे। किस प्रकार अरविंद के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासा करे। आज इस अकेले में अरविंद की ओर निहारने से उसे न जाने क्यों एक विचित्र-सी अनुभूति हो रही थी। लग रहा था जैसे अरविंद की नजरों में वह अपनत्व की तरल आभा देख रही हो। किन्हीं टूटे स्वप्नों की डोर में फिर से उसके प्राण बंधे जा रहे हों। विचारों के इसी क्रम में अरविंद की आवाज आई, "अच्छा भाभी, अब आज्ञा दीजिए। अभी कई जगह जाना है।"

सुधा जैसे अचानक होश में आकर अपना आंचल ठीक करती हुई घबड़ाहट के स्वर में बोली, "यह कैसे हो सकता है बाबू ? इतनी जल्दी आज आपको जाने नहीं दूंगी। आज तो आपसे एक भीख मांगनी है।"

"भीख और मुझसे ! कैसी भीख ?"

"यही कि जब तक मैं चाहूँ तब तक आप आज यहाँ बैठे रहें।"

"एवमस्तु," अरविंद फीकी मुस्कान लेकर बोला, "भाभी की पहली इच्छा है। अधूरी कैसे छोड़ूं !"

इस बार सुधा अपने आंचल को उँगलियों में लपेटती हुई कुछ साहस बटोर कर बोली, "शोभा जी को इधर बहुत दिनों से नही देखा है। कैसी हैं वे ?"

"यदि यही सवाल मैं आपसे करूं तो ?"

"मतलब ?"

"मतलब यही कि अभी शोभा के विषय में जितना आपको मालूम है, उससे ज्यादा मुझे भी मालूम नहीं।"

इतना कहते-कहते अरविंद कुछ गम्भीर हो गया। अपने मन को दूसरी ओर उलझाने के लिये वह खुली खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखने लगा। सुधा कुछ चकित होकर बोली, "किंतु वे तो आप ही के साथ नये मकान में रहती हैं न?"

"जी नहीं," अरविंद आकाश की ओर देखता हुआ ही बोल गया।

अरविंद के चेहरे का रंग अचानक बदलते देखकर सुधा भांप गई कि यह चर्चा अरविंद के लिये तकलीफदेह हो रही है। उसने शोभा की बात को वहीं दबा दिया। विषय बदलकर बोली, "अभी रिक्शे पर आपके साथ कौन सज्जन बैठे थे?"

"कौन?" अरविंद पहले कुछ अकचकाया, फिर सुधा के शब्दों को ग्रहण करता हुआ बोला, "ओ, वे तो पण्डित शोभाकात जी थे। हमारे प्रेस के मालिक।"

"यानी कि अलका जी के पिता।"

"जी हाँ, वही थे। किंतु आप अलका को कैसे जानती हैं?"

"जैसे आप उन्हें जानते हैं," इस बार सुधा कुछ मुस्काकर बोली, "भला उन्हें कौन नहीं जानता यहाँ?"

अरविंद ने कुछ खोज-भरी दृष्टि से सुधा की आँखों में देखा। जब वहाँ उसे कोई विशेष बात नहीं दिखाई दी तो सहज स्वर में बोला, "बड़ी अच्छी लड़की है वह। अच्छा है, आप भी उसे जानती हैं।"

सुधा ने चौंक कर अरविंद की ओर देखा। अलका के लिए अरविंद जैसे व्यक्ति के मुख से 'अच्छी' विशेषण सुनकर वह चकित रह गई। बोली, "जी हाँ, वायलिन तो काफी अच्छा बजा लेती है।"

"और अलका का स्वभाव भी उतना ही मधुर है। चरित्र भी उतना ही, उज्ज्वल है।"

"किंतु मैंने तो......' सुधा कुछ हकलाती हुई-सी लजाई-लजाई बोली "कुछ दूसरा ही सुना है!"

"आपने सब झूठ सुना है भाभी," अरविंद एकाएक कुछ उत्तेजित होकर बोला, "मैं तो किसी वेश्या को भी अच्छा मानता हूँ जिसका भीतर और बाहर दोनों खुला हुआ हो। वह ऐसी कुलांगना से, जो पर्दे की ओट में अपनी बुराइयों

का नंगा नाच करती है और बाहर की दुनिया में देवी बनती है, हर मानी में श्रेष्ठ होती है। फिर अलका तो दोनों ही है—कुलांगना भी और देवी भी। उसकी आत्मा सच्चरित्रता के अमृत से भरी हुई है। बस यही चाहिए।"

अरविंद को इस प्रकार उत्तेजित देखकर सुधा न जाने क्यों डर-सी गई। उसे लगा जैसे अरविंद की बातों का लक्ष्य कोई दूसरा हो। अलका केवल माध्यम बना ली गई हो। उसे तत्क्षण शोभा याद आ गई। विनोद के साथ उसके स्वैरी आहार-विहार के कई घृणित चित्र मन में उभर आये। वह खुद तो समय की धार में एक तटस्थ चट्टान की तरह बन गई थी। किंतु अरविंद के मन का हाहाकार लक्ष्य करके उसकी सारी करुणा और सहानुभूति अरविंद के साथ हो गई। ऐसे सज्जन और सहृदय पति के साथ ऐसा विश्वासघात, ऐसा दुर्व्यवहार! उसकी आँखें गीली हो गईं। अलका के विषय में भी अब कुछ अधिक बोलने या पूछने का साहस नहीं बटोर पाई। अचानक अरविंद की आवाज फिर सुनाई पड़ी, "अच्छा भाभी, बहुत देर हुई। अब तो आज्ञा दें।"

सुधा ने जब अकचका कर अपनी दृष्टि ऊपर उठाई तो अरविंद बाहर जाने के लिये सोफे से उठ कर खड़ा हो चुका था। अचानक कुछ नहीं समझ कर वह हताश-सी अपने करुण स्वर में केवल इतना ही कह पायी, "बाबू!"

अरविंद की कहीं बाहर भटकी हुई नजर सुधा के गीले स्वर कान में पड़ते ही स्वतः उसकी ओर मुड़ गई। उसने देखा, सुधा सोफे पर बैठी हुई उसकी ओर अपलक निहार रही है। उसकी पलकों पर आँसुओं के कतरे चमक रहे हैं। वह कुछ सहमा हुआ-सा फिर बैठ कर धीरज के स्वर में बोला, "आप तो रो रही हैं भाभी! मुझसे कोई गलती तो नहीं हो गई?"

सुधा सचमुच ही अब खुल कर रो पड़ी। महीनों के जकड़े आँसू अचानक बाँध तोड़कर बाहर आ गये। कुछ क्षणों के लिये वह भूल गई कि वह अभी किसी दूसरे के सामने बैठी है। उसे रोते देख कर वह क्या सोचेगा। अपना सिर सोफे के एक सिरे से टेक कर आँचल से मुँह छिपाये वह सुबकती जा रही थी। अरविंद हक्का बक्का-सा बैठा रहा। वह समझ नहीं पा रहा था कि सुधा के उस करुण रुदन का उत्तरदायी आखिर है कौन? खुद उसने तो कोई ऐसी बात कही नहीं जिससे सुधा के मन को कोई चोट पहुँचती। पटने में आज तक सुधा को उसने हँसते-मुस्काते ही देखा था। आज अचानक यह कौन-सी बात हो गई! भीतर से बड़ी इच्छा हुई कि वह सुधा को बगल में बैठ जाये। उसे पुचकारे, उसके आसुओं को पोछ दे। किन्तु अभी की स्थिति में उसका शरीर-स्पर्श

अरविंद के लिये पाप है। सुधा उसके प्राणों का सर्वस्व होकर भी हर तरह से पराई है .. ..

जब आँसू बहा-बहाकर सुधा का मानसिक आवेग स्वतः कुछ कम हो गया तो अरविंद ने बड़ी देर के बाद मौन भंग किया, "शायद मुझसे कोई गलती हो गई भाभी ! क्षमा चाहता हूँ।"

सुधा अब भी अपना चेहरा आँचल से ढके हुए थी। अरविंद की बात सुनकर जैसे एक नई चेतना उसके मन में दौड़ गई। आँचल के कोर से अपनी आँखें पोंछती उठ खड़ी हुई और बिना कुछ बोले भीतर चली गई। बाथरूम में जाकर अपना चेहरा धो-पोंछकर साफ किया। अब अरविंद के पास लौटते समय उसे लगा जैसे उसका मन काफी हल्का और स्वच्छ हो गया है। अरविंद के सामने आज अचानक रो कर भी उसके मन में कोई संकोच का भाव नहीं था। वह मन ही मन कुछ निश्चय करके वापस आई। ड्राइंग रूम में आने के पहले उसने घनिया को चाय बनाने का आदेश दे दिया। अरविंद के नजदीक आते ही बोली, "क्षमा करेंगे बाबू, मैं तो औरत हूँ न !"

अरविंद इस बार सुधा के प्रसन्न मुखड़े को देखकर चकित रह गया। जैसे वह रोयी ही नहीं हो और नहीं कोई ऐसी-वैसी बात हुई हो। मुस्का कर बोला, "आप तो अब बिल्कुल फ्रेश हो गईं भाभी !"

"नहा करके जो आई हूँ," अपने होठों पर फीकी मुस्कान लिये सुधा बोली, "सो भी नकली पानी से नहीं, असली पानी से।"

जब तक अरविंद कोई दूसरी बात बोलता, सुधा ने फिर कहा, "अब तो आप को चाय पी कर ही जाना होगा। मुझे आपसे कुछ जानना भी तो है।"

"मुझसे क्या जानना ?"

"पहले वादा करें कि सही-सही जवाब देंगे।"

"आप ने तो मुझे पहले ही डरा दिया," अरविंद कुछ शंकित होकर मुस्काता हुआ बोला, "बदले में आप से भी एक वादा चाहता हूँ।"

"वह क्या ?"

"यही कि ऐसा कोई प्रश्न आप नहीं करेंगी जिसका जवाब मैं नहीं दे सकूँ !"

"वाह, यह कैसे सम्भव है," सुधा इस बार खिलखिला कर हँसती हुई बोली, "इसे मानने का मतलब होगा कि मैं आपसे कुछ पूछूँ ही नहीं।"

अरविंद ने महसूस किया कि सुधा आज जरूरत से अधिक जिज्ञासु है।

उसका खुलकर हँसना शरदप्रात की तरह सुहावना लगा। एक क्षण के लिये उसने उसकी काली आंखों में अपनी नजर टिकाई। फिर गम्भीर होकर बोला, "ठीक है, पहले पूछिये तो सही। आज मेरी मन्द बुद्धि की परीक्षा भी हो जाये।"

"तो सबसे पहले मुझे यही बताइये कि आपकी यह मन्द बुद्धि पैदा कहाँ हुई .. ऐसे यह सब पूछने का अधिकार मुझे नही है।"

सुधा का चेहरा फिर मुर्झा गया।

"आप ऐसा न सोचें भाभो," अरविंद तुरत बोला, "आप कुछ भी पूछ सकती हैं मुझसे। यहाँ अधिकार का कोई प्रश्न ही नही उठता। यदि ऐसा प्रश्न उठे भी तो आपके ही अधिकारों का पल्डा भारी पड़ जायेगा।"

सुधा ने इस बार अरविंद पर अपनी खोज-भरी दृष्टि डाली। मानो उसे कही से किसी परिचित आत्मीयता की गन्ध मिल रही हो। फिर गम्भीर पड़ कर बोली, "तो बताइये।"

"पर मैं आपका प्रश्न समझा ही नही।"

"मैं जानना चाहती हूँ कि आपकी जन्मभूमि कहाँ है ?"

"जन्मभूमि ?" अरविंद का सिर चकराने लगा, किंतु तुरत ही अपने को संभाल कर बोला, "जो आपकी जन्मभूमि है !"

"जी ?"

सुधा का हृदय आश्चर्य और उत्कण्ठा से भर उठा। वह आंखें फाड़े अरविंद की ओर देखती रह गई।

"जी हाँ, ठीक ही तो कह रहा हूँ," अरविंद सुधा के कौतूहल का रस लेता हुआ शान्त स्वर में ही बोला, "वही जमीन, वही देश, गरीबी और शोषण की वही भूमि—जहाँ आप जनमी हैं, वही भारतवर्ष मेरी भी जन्मभूमि है।"

"नहीं-नहीं मेरे थके-हारे मन को अब और मत थकाइये बाबू," सुधा अपनी आंखों के कोरों पर भीनती हुई नमी को दबाकर बोली, "बहुत भटक चुकी हूँ अब तक। आप इतना ही कह दें कि आप मेरे ही गाँव के कीच में पैदा हुए हैं। आप कमल, नहीं कमल बाबू.......!"

सुधा अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाई। उसकी स्वप्निल आंखें अरविंद की ओर से हटकर कहीं दूर निहारने लगीं। अरविंद सुधा के उस आत्मविस्मृत रूप को देखता रह गया। हाँ, यह वही सुधा थी। कमल और विनोद की सुधा में रत्ती भर भी अन्तर नहीं। अरविंद के लिये इतना ही काफी था कि सुधा उसे अब

भी याद कर लेती है। कमल मर कर भी उसके लिये जिन्दा है। किंतु सुधा के लिए कमल भले ही मर कर भी जीवित हो जाये, खुद अरविंद के लिए तो वह जीवित हो कर भी मरा हुआ है। उसे फिर से जिलाने की भी कोई इच्छा रह नहीं गई है।.... तो क्या वह सुधा को साफ-साफ बता दे? नहीं, यह उसकी भारी भूल होगी। भावावेश में कुछ भी करना ठीक नहीं होगा। संभव है, इससे सुधा के जीवन में कोई नया संकट पैदा हो जाये। उसका पारिवारिक जीवन दुखी हो जाये।

"पता नहीं, आपके कमल या कमल बाबू कौन हैं भाभी!" अरविंद सुधा के खिन्न चेहरे पर किसी तरह अपनी नजर डालकर बोला, "वे जो भी हों, आपके लिये अब वे अपना अर्थ खो चुके होंगे। आपके जीवन की नई मिट्टी के लिये मरे हुए पुराने बीजो की कोई उपयोगिता नहीं हो सकती। जो है, उसकी चिन्ता कीजिए। जो नहीं है, उसकी चिन्ता करना आपकी कमजोरी है।"

"इसका मतलब कि आप कमल बाबू को जरूर जानते है," सुधा के स्वर में एक नया चेत जुड गया, "आप मुझसे कुछ छिपा रहे है। किंतु मैं आपसे पहले ही वचन ले चुकी हूँ।..... यदि आप ही कमल हुए तो यह तो मेरी शक्ति होगी बाबू! मेरी कमजोरी तो अभी है, जब मैं उसे मरा हुआ समझती हूँ। उसे पाकर तो मैं सचमुच ताकतवर हो जाऊँगी। आप कह दीजिए न कि कमल जीवित है और ...!"

एक बार फिर सुधा की आँखें आँसुओं के ज्वार मे डूब गईं। अरविंद का सुस्थिर मन भी उस सजल रूप की करुणा से काँप गया। लगा जैसे सुधा का व्यक्तित्व आँसुओं की पिण्डीभूत मेघमाला हो। करुण याचना की सदेह अभिव्यक्ति हो। क्षण भर में ही अपना सारा अतीत अरविंद के सामने घूम गया। वह भूल गया कि वह कहीं वर्तमान की नीरस रेत पर खड़ा है। आत्म-विस्मृति के उमड़े आवेग में उसका दाहिना हाथ अनायास सुधा के आँसू-भरे मुखड़े की ओर बढ़ चला। अपनी उँगलियों के पोर से सुधा के गर्म-गर्म आँसुओं के एक नन्हें कतरे को पोंछता हुआ स्नेह और संवेदना के गीले स्वर में बोला, "चुप सुधो, चुप! कमल के आगे रोते नहीं पगली! तेरा कमल मरा कहाँ है? वह तो जीवित है। तेरे ही सामने है। अब तो चुप रह!"

अरविंद की इस मार्मिक बात की प्रतिक्रिया सुधा के मन पर कुछ विचित्र हुई। उसकी आँखें कौतूहल और पुलक के उच्छ्वसित भावों से कुछ और फैल। गईं। गला रुद्ध हो गया। साँसें एक क्षण को रुक कर पुनः जोरों से चलने लगीं

किंतु यह स्थिति देर तक नहीं रही। अचानक ही सुधा अरविंद के चरणों पर लोट गई। उसके दोनों पैरों को पकड़ कर उसे अपनी आँखों के निरन्तर प्रवाह के माध्यम अपने को समर्पित कर दिया उसने। लगा जैसे वह अपने आँसुओं से अरविंद को प्रवाहित करती हुई अतीत के उस किनारे तक पहुँचा देगी जहाँ वर्तमान अपना अर्थ खो देता है।

इस बीच प्रकृतिस्थ होकर अरविंद ने कोशिश की कि सुधा को उठाकर बैठा दे। किंतु हर बार वह असफल रहा। अरविंद की तन्द्रा तब भग हुई जब अचानक उसकी नजर ड्राइंग रूम के दरवाजे पर गई। वहाँ पर्दे की ओट में खड़ी धनिया शायद बड़ी देर से वह अद्भुत दृश्य देख रही थी। उसे पहचान कर अरविंद का मन सन्न रह गया। उसने सुधा के सिर को झकझोरते हुए कुछ कठोर शब्दों में कहा, "बिल्कुल झूठ है भाभी! सरासर झूठ! मैं कमल नहीं, अरविंद हूँ! छोड़िए मेरे पैर!"

किंतु सुधा तो जड़ हो चुकी थी। उसके मन-प्राणों में उस समय कमल के सिवा दूसरा कुछ रह नहीं गया था। अरविंद ने हठात् अपने पैरों को उसके हाथों के बन्धन से छुड़ा लिया। किंतु सुधा की बाहें उसी तरह फर्श पर फैली रह गईं। मानो उसकी बाहों ने कमल के चरणों को सदा-सदा के लिये बाँध लिया हो। अब कोई भी शक्ति उसे कमल से तोड़ नहीं सकती। सुधा की सुबकियाँ पूर्ववत जारी रहीं। अरविंद कब खड़ा हुआ, कब अपने दिल पर पत्थर रखकर चुपके बाहर निकल गया, सुधा को उस समय इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। कुछ देर बाद धनिया ने उसके सिर को स्नेह से सहलाते हुए कहा, "चुप हो जाइए मेम साहब! अरविंद बाबू तो चले गये।"

बड़ी देर के बाद जैसे होश में आकर सुधा ने अपने आसपास देखा। न वह अतीत था और न कमल ही। थीं वर्तमान की वे ही चट्टानें। वही सूना-सूना-सा फैला हुआ आसमान। वे ही मनहूस और प्रेतनी की तरह खड़ी दीवारें।

तेरह

जब दूसरे दिन भी अरविन्द अपने आफिस में नहीं आया तो अलका के मन को कुछ खटका हुआ। उसने अरविन्द के डेरे पर अपना नौकर दौड़ा दिया।

पण्डितजी तीन-चार दिन पहले ही किसी सम्मेलन में भाग लेने कलकत्ता गये हुए थे। अलका की माँ की सेहत भी कुछ खराब थी। अकेले अलका का मन घबड़ा रहा था। कुछ समय के भीतर ही अरविन्द उसके परिवार का अभिन्न अंग हो गया था। यदि एक दिन भी वह अपने काम पर नहीं आता तो बड़ी उदासी मालूम होती थी। स्वयं अलका के लिये वह एक नया आदर्श, आस्था और आत्मीयता का नया रूप बन कर आया था। जिस दिन उसने अपने को सब तरह से खोलकर अरविन्द के सामने रख दिया, उस दिन से अलका की आत्मा बड़ी मुक्ति का बोध करने लगी थी। यह सही था कि उस घटना के बाद कई दिनों तक वह अरविन्द से खिंची-खिंची रही। समझ नहीं पाई कि फिर उसके साथ कैसा बर्ताव करे। अलका के मन में यह भी शंका थी कि अब अरविन्द उससे नफरत करता होगा। अब वह उसकी सद्भावना कभी नहीं पा सकेगी। किन्तु धीरे-धीरे अलका की ऐसी शंकायें निर्मूल होती गईं। वह एक नये विश्वास से अरविन्द के और भी करीब खिंचती चली गई। अपने जीवन के बचे-खुचे रहस्यों को भी परम विश्वास के साथ उसके आगे खोल दिया। आये दिन समाज की नई-नई समस्याओं पर अक्सर अरविन्द के साथ उसकी बातें होने लगीं। अलका पहले से ही अरविन्द की बहुत सारी गुत्थियों को जानती थी। अरविन्द के संतप्त जीवन के पहलुओं से अच्छी तरह परिचित थी।

कल रात को एक अनहोनी-सी बात हो गई। निर्मला देवी के बंगले पर संगीत का कार्यक्रम था। अलका और उसकी माँ भी आमंत्रित थीं। वहाँ जाने पर खान-पान करते काफी देर हो गई। जब संगीत का कार्यक्रम शुरू हुआ तो बहते समय का कुछ पता ही नहीं चला। कुल मिला कर वहाँ दस-बारह आदमी से ज्यादा नहीं थे। काशी के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ पधारे हुए थे। वे स्वर्गीय कुमार साहब के पुराने मित्रों में थे। उनके आगमन पर विनोद ने बड़े उत्साह से संगीत का कार्यक्रम आयोजित कर दिया। वहाँ पहुँच कर अलका को यह देखकर अचरज हुआ कि मजलिस में अरविन्द अनुपस्थित है। यों उसे पहले से ही मालूम था कि अरविन्द पिछले दो-तीन सप्ताह से निर्मला देवी के घर नहीं आया था। यहाँ से भी कोई उससे मिलने नहीं गया था। नहीं आने-जाने का कारण भी उसे अच्छी तरह मालूम था। किन्तु इस विशिष्ट अवसर पर भी अरविन्द को नहीं बुलाया जाये, यह अलका के लिये खटकने वाली बात थी। जब संगीत की मजलिस बंगले के बाहरी बरामदे में जम गई तो अलका ने शोभा से धीरे से पूछा, "अरविन्द बाबू दिखाई नहीं देते शोभा दी?"

इतना सुनते ही शोभा का मुँह कुछ विवर्ण पड़ गया। गले के नीचे उभरती किसी कड़वी बात को दबाकर वह लापरवाही से बोली, "निमंत्रण तो गया है। आते ही होंगे।"

अलका ने फिर कोई सवाल नहीं किया। जैसे तैसे अपने वायलिन-वादन का कार्यक्रम समाप्त किया। जब काशी वाले संगीतज्ञ का शास्त्रीय गीत शुरू हुआ तो तबले पर उनकी संगत करने खुद विनोद बैठ गया। सारंगी एक स्थानीय उस्ताद बजाने लगे। संगीत के प्रवाह में उपस्थित लोग तन्मय होने लगे। बसन्त बहार गाया जा रहा था। बीच-बीच में अलका बंगले के फाटक की ओर देखने लग जाती। जैसे बन्द फाटक को खोलकर कोई भीतर आना चाहता हो। इधर संगत देने में लीन विनोद की कलाबाजी की ओर सबकी आँखें लगी थीं। शोभा अपने पुलकित मुखड़े से तबले पर थाप देती विनोद की उंगलियों को दाद दे रही थी। उसे वैसी तन्मय मुद्रा में देखकर अलका को लगा जैसे वही स्वाभाविक है, सहज है। किन्तु शोभा और विनोद के बीच जब वह अरविन्द की कल्पित मूर्ति गढ़ने लगती तो उसके रोएँ सिहर उठते थे। यह कैसा विचित्र संयोग है। एक तरफ छल, प्रपंच और धोखा और दूसरी ओर विश्वास, प्रेम और आस्था! यह निराधार स्तम्भ कब तक खड़ा रहेगा? और यदि यह टूट जाये तो उस भोले-भाले अरविन्द का क्या होगा? उस सरल हृदया सुधा का क्या होगा?........ सुधा के विषय में अलका अरविन्द से सब कुछ जान चुकी थी। जिस अरविन्द ने आज तक किसी से अपने अतीत को साफ-साफ नहीं खोला था, उसी ने अलका जैसी पतिता के आगे अपना सारा रहस्य उगल दिया था। अरविन्द के ऐसे विश्वासों को पाकर अलका निहाल हो गई थी। जिस व्यक्ति को उसने कभी अपनी अतृप्त वासना की तृप्ति का साधन बनाना चाहा था, उसे अब वही विशुद्ध प्रेम और उसके आदर्श का मूर्त रूप दिखाई देने लगा था।............

संगीत की मजलिस से भटकी हुई अलका की नजर एकाएक सामने फाटक पर जाकर अटक गयी। उसे लगा जैसे बन्द फाटक के पास अरविन्द की छाया कहीं से आकर खड़ी हो गयी है। मरकरी का प्रकाश फाटक तक नहीं पहुँच रहा था। चाँदनी के धुंधलके में अरविन्द ठीक से दिखाई नहीं पड़ रहा था। एक क्षण को अलका के मन में भ्रम हुआ। शायद कोई दूसरा आदमी हो। दूसरे ही क्षण उसकी नजरों ने जैसे अरविन्द को पहचान लिया। इस समय संगीत तार-स्वर में लहरा रहा था। विनोद और उस्ताद की उँगलियाँ अपने-अपने वाद्यों पर बिजली की फुर्ती से नाच रही थीं। एक तरफ संगीत के राग-रंग में डूबी यह मजलिस

थी। दूसरी ओर किसी अकल्पनीय वेदना की आग में सुलगती फाटक पर अरविन्द की कल्पित छाया थी। अलका की करुणामयी नारी काँप उठी। उसने अपनी घड़ी पर नजर दौड़ाई। रात के ग्यारह बजे थे। वह दूसरों की नजर बचाती हुई धीरे से उठी और फाटक की ओर चल दी। किन्तु फाटक तक पहुँचते-पहुँचते छाया कहीं चाँदनी में विलीन हो चुकी थी। आस पास उसका कोई अस्तित्व नहीं था। अलका के मन में फिर सन्देह हुआ। कहीं यह उसका भ्रम तो नहीं था? किन्तु फिर उसने गौर किया कि कुछ ही क्षण पहले उसे अरविन्द वहाँ खड़ा दिखाई पड़ा था। वह फाटक खोल कर बाहर आयी। स्टेशन रोड से रिक्शे, कार तथा आदमियों के बोलने-चालने की मिली-जुली आवाज सुनाई पड़ रही थी। पीछे से बसन्त बहार का द्रुत आलाप हवा में फैलता अलका के कानों में प्रवेश कर रहा था। इस स्वर से अकेली खड़ी अलका के उद्‌भ्रान्त प्राणों की बेचैनी बढ़ती ही चली गई। अरविन्द फाटक तक आकर फिर लौट क्यों गया? उसके मन पर इस समय क्या बीत रहा होगा? ....कुछ देर बाहर खड़ी-खड़ी अलका भारी कदमों से फिर पीछे मजलिस की ओर लौट पड़ी। मन में आया, वह इसी समय अरविन्द के डेरे पर चली जाये। किन्तु साथ में उसकी माँ थीं और अब रात भी काफी हो चुकी थी। जब अलका जलसे में लौटी तो शास्त्रीय गायन समाप्त हो चुका था। विनोद हाथ में मगही पान और सुगन्धित द्रव्यों से भरी चाँदी की तश्तरी लिये समागत लोगों की ओर बढ़ाता जा रहा था। सामने बड़ी मसनद के सहारे बैठे संगीतज्ञ महोदय गीत समाप्त करके पान के बीड़े कचर रहे थे। अलका सीधे अपनी माँ के पास पहुँची। घड़ी की ओर देखती हुई उदास स्वर में बोली, "अब ग्यारह से ज्यादा हो चुके माँ! मेरे सिर में दर्द है। अब चलो भी!"

× × × ×

रात भर जगने से अलका की आँखें लाल हो गई थीं। मन और शरीर दोनों में अवसाद भर गया था। पिछली रात की बातें स्वप्न की तरह अब भी उसके मन पर छायी थीं। अरविन्द के डेरे पर नौकर को गये लगभग दो घण्टे बीत चुके थे। उसके जल्दी नहीं लौटने से अलका का मन और भी दुश्चिन्ताओं से भरा जा रहा था। नीचे प्रेस का काम शुरू हो गया था। मशीनों के चलने की घर-घर आवाज ऐसी लग रही थी मानो अलका के आकुल अन्तर के तार चोख रहे हों। कभी-कभी उसे अपने पर झल्लाहट होती थी कि खुद वही अरविन्द के डेरे पर क्यों नहीं चली गई? मानसिक अशान्ति के इसी दौड़ में उसका नौकर

हाथ में एक छोटा-सा चिट लिए पहुँच गया। आते ही बोला, "साहब की तबीयत खराब है। उन्होंने आपको यह पत्र दिया है।"

"कैसी तबीयत है ?" अलका हाथ में पत्र लेकर घबड़ाई हुई-सी बोली, "क्या बुखार लगा है उन्हें ? कब से बीमार हैं ?"

"जी सो तो नहीं पूछा। इस समय शायद थोड़ा बुखार और सिरदर्द है।"

"वहाँ अकेले पड़े होंगे ?"

"जी नहीं ! मैं पहुँचा तो एक मेम साहब पहले से ही उनके पास बैठी थीं।"

"मेम साहब ?" अलका भौंहों पर बल देकर बोली, "कौन मेम साहब ?"

"जी मैं उन्हें नहीं पहचानता।"

दोनों कुछ देर तक मौन खड़े रहे। नौकर को अचरज हो रहा था कि अलका उसे वहाँ से जाने का हुक्म क्यों नहीं दे रही है। अलका ने फिर पूछा, "तुम वहाँ पहुँचे तो साहब क्या कर रहे थे ?"

"अपने बिस्तर पर पड़े थे। मुझे वहीं बुला लिया।"

"उस समय वो क्या कर रही थी ?"

"वो कौन ?"

"वही जिसे तुम मेम साहब कह रहे हो।"

"जी वो तो," नौकर अपना सिर खुजलाता हुआ कुछ याद करके बोला, "साहब के पास नीचे फर्श पर घूँघट काढ़े बैठी थीं। उन्हें मैं ठीक से देख नहीं पाया।"

"अच्छा !" अलका के मुख से एक लम्बी गहरी साँस के साथ यह शब्द किसी तरह निकल पाया। फिर तुरत ही प्रकृतिस्थ होकर बोली, "अब तुम जा सकते हो।"

अलका गहरे विचार की मुद्रा में झटपट अपने बिस्तर पर आयी। लेट कर बड़ी उत्कण्ठा से अरविंद की चिट्ठी पढ़ने लगी—

"प्रिय अलका,

तुम्हारा पत्र मिला। घबड़ाओ मत। मैं ठीक-ठाक हूँ। तबीयत जरा सुस्त है। स्वस्थ होते ही ऑफिस करने लगूंगा। मेरी अनुपस्थिति में तुम वहाँ की देख-भाल करती रहो। पण्डित जी के नहीं रहने से हमारी जिम्मेदारी अधिक है। माता जी को नमस्ते बोल देना।

सस्नेह,

कमल"

पत्र पढ़कर अलका झुंझला उठी। भला यह भी कोई चिट्ठी है! ऐसे वह अरविंद की आदत जानती थी। अपने व्यक्तित्व पर वह सदा कवच चढ़ाये रहता है। ऐसा कि उसे तोड़कर भीतर पैठना दूसरे के लिये मुश्किल हो जाता है। अपने बड़े से बड़े दुख को भी तुच्छ समझने वाले अरविंद पर इस समय वह खफा हो गई। उसने सोचा था कि चिट्ठी बाँचकर उसे कुछ शान्ति मिलेगी। किंतु हुआ उल्टा। उसने पत्र को तीन-चार बार पढ़ा। कहीं कोई कुंजी नहीं मिली जो उसके जिज्ञासु मन को कुछ तोष दे सके। किंतु अन्तिम बार उसकी नजर पत्र के एक शब्द पर आकर ठिठकी रह गई—'सस्नेह, कमल।' यह 'कमल' उसने क्यों लिखा? इसकी क्या जरूरत थी? वह जानती थी कि अरविंद के बचपन का नाम कमल है। किंतु अब तो वह सब जगह अपने को अरविंद ही कहता और लिखता है। आज इस चिट्ठी में कमल शब्द का प्रयोग निश्चित रूप से कोई गूढ़ अर्थ रखता है। अलका ने पत्र अपने तकिये के नीचे रख दिया। करवट बदल कर कुछ नये सिरे से सोचने लगी। नौकर ने जिस मेम साहब की चर्चा की थी, वह अलका के लिए एक दूसरा रहस्य बन गई। वह कौन रही होगी आखिर? शोभा तो हो नहीं सकती। शोभा को उसका नौकर अच्छी तरह पहचानता है। यदि शोभा होती तो उसे वहाँ घूंघट काढ़कर बैठने की जरूरत ही क्या थी! तो फिर दूसरी औरत वहाँ क्यों जायेगी? अलका इस माथापच्ची से लगातार अशांत होती चली गई।

विचित्र रही अलका की जिन्दगी। उसने सोचा भी नहीं था कि उसके भी कोई हृदय है जिसमें आशा-निराशा के द्वन्द्व उठा करते हैं। प्यास और तृप्ति की इन्द्रधनुषी तरंगें उद्वेलित होती हैं। पण्डितजी के कायिक सम्बन्ध ने उसे काया-मात्र बना छोड़ा था। प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की आग एक बार मन में जरूर भड़की थी। उस समय उसे लगा था जैसे उसके शरीर में भी कोई विद्युत-तरंग है। उसके हिम-शीतल मन में भी उबाल आ सकता है। किंतु वह आग भी पण्डितजी की धूर्तता या उसकी मूर्खता से बराबर के लिए ठंढी हो गई थी। अब तो वह एक भोगी की भोग्या मात्र थी, और कुछ नहीं। पर इन दिनों उसी जड़ शरीर में एकाएक इतना सारा परिवर्तन कैसे हो गया? वायलिन के स्वर में पहले उसका भटका हुआ मन रोता था। अब उसके प्राण भी रोने लगे हैं। वर्षों से निर्जीव-सी लगने वाली यह देह अब अचानक सजीव हो गई है। इसका कारण अरविंद ही तो है। उसी ने अलका की बुझी हुई इच्छाओं को फिर सुलगा दिया है। उसके ढहे हुए स्वप्नों को फिर से खड़ा किया है। बेचारा अरविंद!...

स्नेह और पारिवारिक सुख से वंचित। माँ की ममता से वंचित। पत्नी के अनुराग से वंचित। और अरविंद को दुखी देखकर भी वह खुद उसके लिये कुछ नहीं कर सकती। वह तो कुछ न कर पाने की विवशता और तपिश लिये तटस्थ-सी खड़ी है केवल।

अलका की देह मानो सुन्न पड़ती जा रही थी। आँखों के कोर भींग आये थे। उसने कई बार मन को दूसरी तरफ मोड़ना चाहा। किंतु पिछली रात की संगीत-गोष्ठी, बीमार अरविंद की काल्पनिक करुण मूर्ति और उसके नजदीक किसी रहस्यमयी नारी की उपस्थिति उसके मन को बेचैन किए जा रही थी। अन्त में कुछ निश्चय करके वह उठ खड़ी हुई। जल्दी में कपड़े बदल कर बाहर जाने के लिए तैयार हो गई। अपनी माँ के पास पहुँच कर बेझिझक बोली, "अरविंद बाबू बीमार हैं माँ! सोचती हूँ, उनसे जाकर मिल आती।"

"अरविंद बीमार हैं?" देवी जी सर्दी की खाँसी खाँस कर फँसे गले से बोलीं, "बेचारे को अकेले रहना पड़ता है। मुसीबत है। रात निर्मला देवी की बात सुनकर मुझे परिणाम अच्छे नजर नही आते।"

"क्यों? क्या बात हुई माँ?" अलका उत्सुकता से अपनी माँ के और करीब आकर उनके पास बैठती हुई बोली, "रात तो आपने मुझसे कुछ नही बताया।"

"रात तो अपने डेरे पर पहुँचने की जल्दबाजी थी," देवी जी का स्वर जुकाम के प्रकोप से और भी सांय-सांय करने लगा, "मुझे लगा कि निर्मला देवी और शोभा दोनों अब बड़े पछतावे में हैं। उनके लिये अरविंद के साथ रिश्ता मुश्किल हो रहा है। किंतु सबसे दुखदायी बात तो मैंने दूसरी जगह सुनी। विनोद अपनी पत्नी को तलाक देना चाहता है।"

"तलाक?" अलका विस्मय के स्वर में बोली, "हिन्दू दाम्पत्य जीवन में यह कैसे सम्भव है?"

"सम्भव-असम्भव की कोई खास परिभाषा तो होती नही। असंभव कोई चीज नहीं। हिन्दू कोड बिल बन ही चुका है। विनोद एडवोकेट है, धूर्त है। कानूनी दाँवपेंच वह अच्छी तरह जानता है। उसकी पत्नी धर्मभीरु है। सहृदय और भोली है। संभव है, पति के सुख के लिये वह कोई भी कुर्बानी कर डाले।"

"किंतु इस विवाह-विच्छेद के पीछे कुछ बात तो होनी चाहिये," अलका का स्वर उत्तेजित हो चला, "विनोद यह तलाक दे क्यों रहा है?"

"इसलिये कि उसके और शोभा के रास्ते की खाई पट जाये।"

इतना कहकर देवी जी ने आवेश में आकर अपनी करवट बदल ली।

अलका की ओर से मुख मोड़कर सामने खिड़की से छनकर आती सूर्य-किरणों को एकटक निहारने लगी। खिड़की का नीला पर्दा हवा के हल्के वेग से काँप-काँप जाता था। देवी जी के प्राण भी वैसे ही कांप रहे थे। सुधा, शोभा, विनोद और अरविंद की चर्चा से उनके व्यक्तिगत जीवन के भी कुछ कठोर सत्य उभरने लगे थे। पण्डितजी के लिये देवी जी ने भी क्या असम्भव को सम्भव नहीं बना दिया था? स्वयं अपनी सुरक्षा और सुख के लिये अलका को नरक में धकेल कर क्या वे खुद उसके परिणामों से अछूती रह गई थी?

"विचित्र बात है माँ," अलका ने अचानक मौन भंग किया, "मेरी समझ में अभी भी कुछ नहीं आता। इसमें विनोद और उसकी पत्नी का ही तो सवाल नहीं? अरविंद और शोभा का भी तो सवाल है?"

जैसे यह प्रश्न अलका ने खुद अपने से ही किया हो। देवी जी भी फिर कुछ न बोलकर वैसे ही पड़ी रही। सामने दीवार पर टंगे कैलेण्डर में वाल्मीकि लव और कुश को धनुर्वेद की शिक्षा दे रहे थे। वाल्मीकि की उंगली के संकेत पर दोनों बालकों के बाण अपने सन्धान में लगे थे। हवा के वेग से कभी-कभी कैलेण्डर फड़फड़ा जाता। किंतु उस सन्धान में कोई अन्तर, कोई विकार नहीं आ पाता था। देवी जी को लगा जैसे वे खुद भी काल-पुरुष के तीखे बाणों के अटल लक्ष्य बनी हों। आज या कल उन बाणों से उन्हें बिंधना ही है। वे किसी भी तरह उनसे अपने को मुक्त नहीं कर सकती। वे खुद तो अपनी वासना की आग में जलीं ही। अपनी शारीरिक कमियों को क्षति-पूर्ति के लिये अपनी लक्ष्मी जैसी पुत्री का भविष्य भी बर्बाद कर दिया। देवी जी बहुत चाहती है कि वे भी पण्डितजी की ही तरह इस कठोर यथार्थ के साथ समझौता कर लें। किंतु ऐसा हो नहीं पाता। उनकी पैनी निगाह से अब तक यह बात छिपी नहीं है कि अलका अरविंद से प्यार करती है। एक नवयुवक और नवयुवती के परस्पर आकर्षण का परिणाम भी वे अच्छी तरह समझती है। किंतु जब वे खुद तन का सौदा करती और कराती है तो फिर वे किसी मुँह से इस आकर्षण को दूषें, उसके रास्ते में रोड़े अटकायें! अलका का नीरस जीवन यदि इससे कुछ हरा-भरा हो जाये तो निश्चय ही इससे उनके मन को शांति मिलेगी। यही कारण है कि अरविंद की ओर झुकी अलका को वे पीछे लौटाना नहीं चाहती। उसे इस काम में भरसक सहयोग ही देती आई है। किंतु चिन्ता तो दूसरी बात को लेकर है। पंडितजी को अब तक इन दोनों के सम्बन्ध की कोई भनक नहीं मिली है। यदि वे जान लें तो माँ-बेटी को इसका कठोरतम दण्ड भुगतना पड़ सकता है। पंडितजी ऊपर से जितने

सुसंस्कृत और उदार हैं, भीतर से उतने ही असंस्कृत एवं अनुदार। किंतु चाह कर भी क्या अलका को अरविंद मिल सकता है ? कोई उपाय नहीं दिख रहा था जिससे अरविंद को सदा के लिये अलका के साथ जोड दिया जाये।...

देवी जी ने कुछ देर बाद करवट बदल कर अलका की ओर दृष्टि मोड़ी। किंतु वह कमरे में कहीं दिखाई नहीं पड़ी। अलका बाहर जा चुकी थी। देवी जी एक ठण्डी आह भर कर रह गईं। पंडितजी आज ही किसी समय घर लौटने वाले थे।

चौदह

जब से सुधा अरविंद के नये रूप से परिचित हुई, उसका मन काफी अस्वस्थ हो गया। कल कमल उसे रोते छोड़कर उसके अनजाने ही वहाँ से शायद सदा के लिए चला गया था। कमल की अन्तिम बातों को सुनकर इतना स्पष्ट हो गया था कि अब शायद वह फिर कभी सुधा से मिलने विनोद के घर नहीं आयेगा। कल कुछ ही देर के भीतर जो कुछ भी घटित हुआ, वह अकल्पित और आकस्मिक था। सुधा उससे अपने को संभाल नहीं पाई थी। मानो कोई मधुर स्वप्न घिर-कर फिर अचानक ही टूट गया हो। आखिर शोभा और विनोद के व्यंग्य और ताने सच निकले। जो ताने पहले उसे जहर की तरह कडवे लगते थे वे ही अब एक मधुर सत्य में बदल गये थे। किंतु सच्चाई मिली भी तो क्या मिली ! यह उस समय मिली जब उसके चारों ओर अभेद्य दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। उसके शरीर और प्राण खुद उसके नहीं रह गये हैं। किंतु इससे क्या ? दुर्दिन के इस घने अन्धकार में कमल का मिलना वैसा ही है जैसे बादलों के पटल को चीरती सूर्य की उज्ज्वल किरणें। अभी की स्थिति में सुधा के दुखते प्राणों के लिये उन किरणों का एक हलका स्पर्श ही काफी है। अभी इससे अधिक वह अपेक्षा भी नहीं करती।

किंतु सुधा के मन में अब इस नई टीस की जरूरत ही क्या थी ! जिसे वह भुला चुकी थी, वह ऐसे समय नहीं ही आया होता तो क्या बिगड़ जाता ! जो

बिगड़ना था, वह तो बिगड़ ही चुका है। अब बचा ही क्या है जिससे कोई नई आशा बाँधी जाये, कोई नई दिशा खोजी जाये !......

अगहन का प्रारम्भ था। हवा में ठंडी सिहरन व्याप गई थी। सुबह नौ बजते-बजते विनोद हल्का नाश्ता करके कहीं चला गया था। उसके जल्दी वापस आने की सम्भावना नहीं थी। इधर रोज अक्सर वह तड़के ही निकल जाता और बड़ी रात गये घर लौटता। किसी-किसी दिन तो घर पर अपने खाने की मनाही कर देता, किंतु कभी-कभी ऐसा भी होता कि सुधा उसका खाना पकाकर प्रतीक्षा करती रह जाती। वह बाहर से ही खा-पीकर घर लौटता। रात सुधा भूखी ही सो गई। आज अभी तक उसे खाने-पीने की कोई सुध नहीं थी। वह अपने बंगले की खुली छत पर मन की भटकन में लगभग तीन बजे रात में ही आई थी। उस समय बड़ी ठंडक थी। छत की रेलिंग पकड़ने पर उंगलियां कनकना उठीं। किन्तु यह कनकनाहट और सिहरन आज सुधा को बहुत प्रिय लग रही थी। बाहरी प्रकृति की शीतलता मानो उसके मानसिक ताप को दुलराने लगी थी। ठंडी रात में नीचे बिछी सड़कें और आगे-पीछे खड़े घर-द्वार बिल्कुल खामोश थे। आकाश में सतभैया चमक रहे थे। बिस्तर पर जब हजार कोशिश के बावजूद वह सो नहीं पाई तो हठात् बाहर खिंची चली आई थी। किन्तु यहाँ भी क्या वह अपनी कठोर वास्तविकताओं से पिण्ड छुड़ा पाई ? उसका जीवन इधर कुछ महीनों में बुरी तरह उलझ चुका है। उसे मुक्त करना अब असम्भव लगता है। पति हाथ से निकल चुका है। अब तो मन की आंधी को शांत करने का एक ही उपाय है। सुधा यदि आत्महत्या कर ले तो आसानी से ऐसे कष्टों से छुटकारा मिल जाये। इससे विनोद का रास्ता निष्कण्टक हो जायेगा। शोभा को भी खुशी होगी। कमल को भी उसे इस तरह दुबारा ठुकराने का मौका नहीं मिलेगा। कमल का विचार मन में आते ही उसके रोएँ सिहर गए। हथेली में जकड़ी हुई रेलिंग की बर्फीली ओस भी जल उठी। उसने हथेली को वहाँ से हटा लिया। उससे अपनी सूजी हुई लाल आंखों को कुछ देर तक मलती रही। कमल फिर सामने आ गया। तो क्या उसके मन में कमल के लिये कोई कामना बाकी रह गई थी ? यदि नहीं तो फिर वह उसे लेकर कल से ही इतनी परेशान क्यों हो गई है ? क्या उसने कमल को पति बनाना चाहा था ? यदि चाहती भी तो कई सामाजिक कारणों से स्वयं कमल उसे पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता। तब भी वह शायद विनोद की हो होकर रहती। और अभी की स्थिति में तो कमल के सम्बन्ध में इस तरह सोचना भी पाप है।

सुधा कमल की ओर से अपने मन को जितना ही खींचने लगी उतना ही वह उसे कमल की पंखुड़ियों में उलझाती चली गई।......तो कमल कायर निकला। उसके चरित्र की सारी महत्ता झूठी साबित हुई। यदि वह जिन्दा था तो समाज के सारे बन्धनों को तोड़कर सुधा को अपना सकता था। किन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं किया। खुद सुधा का दोष ही क्या था ? वह तो उसे मरा हुआ समझ कर एक तरह से भूल गई थी। यह तो कमल को चाहिये था कि अपने कुशल-क्षेम का कोई पत्र वह उसके नाम भेज देता। कमल ने इतने दिनों तक उसे अन्धकार में रखा। उसे धोखा दिया। पटने में इतने दिन साथ रह कर भी उसने कभी सुधा से अपना भेद नहीं खोला।

नीचे से पति के खाँसने की आवाज आई। सुधा क्षण भर में ही आसमान से धरती पर लौट आयी। कहीं ऐसा न हो कि वे इतनी रात मे उसे बिस्तर पर न पाकर कोई दूसरी शंका कर बैठें। विनोद की प्रकृति में आये दिन जितना ही चिड़चिड़ापन बढ़ा था, सुधा उतनी ही शान्त और गम्भीर पड़ती गई थी। कोई एक दिन की बात तो थी नहीं, प्रायः रोज ही पति को झिडकियाँ सुननी पडती है। अब तो जैसे वह इन सबकी आदी हो गई है। कभी-कभी इस घने अँधेरे में भी उसे आशा की किरण नजर आने लगती है। सम्भव है, किसी दैवी उपाय से अभी भी यह अँधेरा समाप्त हो जाये।

सुधा नीचे के बेडरूम में जाने के लिए जीने उतरने लगी। तभी नजदीक के किसी पेड़ से एक कौवे ने काँव काँव किया। सुधा के सिर के ऊपर दो-तीन पंछी तेजी से उड़ते हुए निकल गये। उसने मुड़कर सामने आकाश मे देखा। क्षितिज के पास आसमान कुछ-कुछ साफ होने लगा था। सुधा एक बार जोरों से छींक पडी। नाक से पानी बहना शुरू हो गया। रूमाल से नाक साफ करती वह नीचे आई।

इधर कुछ दिनों से रात में दोनों पति-पत्नी नीचे गेस्ट रूम में ही सोने लगे थे। कमरे में विनोद अभी लिहाफ ओढे पड़ा था। उसकी देर से जगने की पुरानी आदत थी। मनमुटाव होने पर भी विनोद ने सुधा के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाए रखा था। किन्तु इस सम्बन्ध के तब और अब में बड़ा फर्क आ गया था। इधर जब वह किसी मानसिक उद्वेग से भरा होता या अधिक पी लिये होता, तभी सुधा के शरीर की इच्छा करता। ऐसे समय वह किसी भूखे हिंसक पशु की तरह सुधा के लिये दुखदायी हो जाता। किंतु अपने मन और शरीर की नसीहत झेलकर भी सुधा चुप लगाये रहती। पति के मुँह की शराबी गन्ध से उसे

उबकाई आने लगती। जी जाँतकर इसे भी बर्दाश्त कर लेती। विरोध करने का परिणाम वह जानती थी।

सुधा धीरे से पलंग पर लेट गई। सोने की कोशिश करने लगी। किन्तु रात भर उनींदी रहकर मन की ऐसी अशांति में भोर पहर उसे नींद कैसे आती! यह सच था कि अभी की स्थिति में वह कमल से बहुत-बहुत खफा हो गई थी। किन्तु अभी भी उसके मन के भीतर कमल के प्रति प्यार का कोई अबूझ उफान जारी था। यह उफान उसके सन्तप्त मन के रेशे-रेशे में अपनी मिठास बिखेर रहा था।

"सुनती हो जी," दूसरे पलंग से विनोद की आवाज सुनाई पड़ी, "जरा पास आना।"

एकाएक पति का स्वर सुनकर सुधा चौंक गई। विनोद की आवाज से लगा जैसे वह बहुत पहले से ही जगा हुआ हो। जाड़े के दिनों में विनोद सोते समय लिहाफ से अपने सिर तक को ढक लेता था। सुधा जब छत पर से लौटी तो उसने पति को वैसे ही लेटे पाया। सोचा, अभी गहरी नींद में है। देर से जगते ही हैं। किंतु अचानक पति का आमंत्रण सुनकर वह भयभीत हो गई। उसे मालूम था, वह किसलिये बुलाई जाती है। इस समय तो उसकी पूरी देह विषैले फोड़े की तरह दुख रही थी। उस सम्भावित आक्रमण के लिए अभी वह बिल्कुल ही असमर्थ थी। किंतु नहीं भी कैसे जाती! बलि पर चढाए जाने वाले बकरे की तरह उसे विनोद के सामने लुढ़क जाना पड़ा। विनोद ने अस्पष्ट-सी दिखने वाली पत्नी की आँखों में अपनी निगाह डाली। फिर सुधा की आशा के विपरीत कुछ ऊँघते हुए स्वर में पूछ पड़ा, "कैसी हो?"

सुधा ने उसकी बातों का कोई जवाब नहीं दिया। पति के पास निस्पंद लेटी रही। विनोद ने फिर प्रश्न दुहराया, "इतना सबेरे कहाँ चली गई थी?"

सुधा का शरीर काँप गया। किंतु इस प्रश्न के लिए जैसे वह पहले से ही तैयार थी। बोली "यों ही जरा छत पर चली गई थी।"

"इस सर्दी में इतनी रात को छत पर?" विनोद की आवाज में कठोरता कम, अचम्भा अधिक था, "लगता है, मेरी ही तरह तुम भी पगलायी जा रही हो!"

सुधा जब इस बार भी चुप्पी साधे रही तो विनोद कुढ़ता हुआ फिर बोला, "इतनी रुखाई से क्यों पेश आ रही हो चालाक नारी? अकेले तुम ही तो दुखी नहीं। तुमसे कहीं अधिक दुख तो मुझे है!"

विनोद के मुख से एक गहरी गर्म साँस निकली और सुधा के दाहिने कपोल के सर्द चमड़े से टकराई। उस समय ऐसा लगा जैसे उसके गाल का वह हिस्सा किसी बन्दूक की जहरीली गोली से दाग दिया गया हो। वह लक्ष्यहीन दृष्टि से हल्के अँधेरे में डूबे पंखे की ओर देखती हुई हिम्मत करके बोली, "क्या दुख है आपका, यह तो मैं आज तक नहीं जान पाई।"

"तुम सब जानती हो," विनोद की आवाज एकाएक रूखड़ी हो गई "नहीं जानती हो, छह नहीं! यह तुम्हारा दम्भ है। तुम अपने को ऊँचा और पवित्र मानती हो न? आज के युग में ऐसी पवित्रता की कोई कीमत नहीं।"

"मैंने तो कभी कोई दम्भ नहीं किया," सुधा निर्भीक होकर बोल गई।

"झूठ है, सरासर झूठ!" विनोद तड़प कर बोल उठा, "तो क्या तुम मुझे चरित्रहीन नहीं मानती? शराबी नहीं मानती?"

"मानती हूँ।"

"यही मानना तो तुम्हारा सबसे बड़ा दम्भ है।"

"यह दम्भ नहीं, सचाई है।"

सुधा ने आनेवाली हर विपत्ति के लिए अपने को तैयार कर लिया। निश्चय कर लिया, चाहे जो हो, आज मन की बात खोलकर रहेगी।

"यह सचाई हरगिज नहीं," विनोद ने लगे हाथों जवाब दिया, "सचाई तो कुछ दूसरी है जिसे तुम पहचान कर भी नहीं पहचानती हो।"

"क्या है सचाई, बतायेंगे?"

'तो सुन लो," विनोद आवेश में अपने अगले धड़ को बिस्तर से आधा उठाकर एक-एक शब्द पर जोर देता हुआ बोला, "सचाई यह है कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता और न तुम मुझे प्यार करती हो। सचाई यह है कि तुम्हें अरविंद से प्यार है और अरविन्द तुम्हें प्यार करता है। सचाई यह है कि मैं शोभा से प्यार करता हूँ और शोभा मुझे प्यार करती है!"

"आपकी सचाई यही है न?' सुधा की वाणी काँप गई और गले में नमी दौड़ गई, "कुछ और भी हो तो कह लीजिए!"

"हाँ, और भी सुनो," विनोद पहले की ही तरह रुखाई से बोला, "सचाई यह है कि इस झूठ को जल्द से जल्द खतम करना है।"

"कैसे खतम होगा यह?"

उबकाई आने लगती। जी जाँतकर इसे भी बर्दाश्त कर लेती। विरोध करने का परिणाम वह जानती थी।

सुधा धीरे से पलंग पर लेट गई। सोने की कोशिश करने लगी। किन्तु रात भर उनीदी रहकर मन की ऐसी अशांति में भोर पहर उसे नींद कैसे आती! यह सच था कि अभी की स्थिति में वह कमल से बहुत-बहुत खफा हो गई थी। किन्तु अभी भी उसके मन के भीतर कमल के प्रति प्यार का कोई अबूझ उफान जारी था। यह उफान उसके सन्तप्त मन के रेशे-रेशे में अपनी मिठास बिखेर रहा था।

"सुनती हो जी," दूसरे पलंग से विनोद की आवाज सुनाई पड़ी, "जरा पास आना।"

एकाएक पति का स्वर सुनकर सुधा चौंक गई। विनोद की आवाज से लगा जैसे वह बहुत पहले से ही जगा हुआ हो। जाड़े के दिनों में विनोद सोते समय लिहाफ से अपने सिर तक को ढक लेता था। सुधा जब छत पर से लौटी तो उसने पति को वैसे ही लेटे पाया। सोचा, अभी गहरी नींद में है। देर से जगते ही हैं। किंतु अचानक पति का आमंत्रण सुनकर वह भयभीत हो गई। उसे मालूम था, वह किसलिये बुलाई जाती है। इस समय तो उसकी पूरी देह विषैले फोड़े की तरह दुख रही थी। उस सम्भावित आक्रमण के लिए अभी वह बिल्कुल ही असमर्थ थी। किंतु नहीं भी कैसे जाती! बलि पर चढ़ाए जाने वाले बकरे की तरह उसे विनोद के सामने लुढ़क जाना पड़ा। विनोद ने अस्पष्ट-सी दिखने वाली पत्नी की आँखों में अपनी निगाह डाली। फिर सुधा की आशा के विपरीत कुछ ऊँघते हुए स्वर में पूछ पड़ा, "कैसी हो?"

सुधा ने उसकी बातों का कोई जवाब नहीं दिया। पति के पास निस्पंद लेटी रही। विनोद ने फिर प्रश्न दुहराया, "इतना सवेरे कहाँ चली गई थी?"

सुधा का शरीर काँप गया। किंतु इस प्रश्न के लिए जैसे वह पहले से ही तैयार थी। बोली "यों ही जरा छत पर चली गई थी।"

"इस सर्दी में इतनी रात को छत पर?" विनोद की आवाज में कठोरता कम, अचम्भा अधिक था, "लगता है, मेरी ही तरह तुम भी पगलायी जा रही हो!"

सुधा जब इस बार भी चुप्पी साधे रही तो विनोद कुढ़ता हुआ फिर बोला, "इतनी रुखाई से क्यों पेश आ रही हो चालाक नारी? अकेले तुम ही तो दुखी नहीं। तुमसे कहीं अधिक दुख तो मुझे है!"

बिनोद के मुख से एक गहरी गर्म साँस निकली और सुधा के दाहिने कपोल से सर्द चमड़े से टकराई। उस समय ऐसा लगा जैसे उसके गाल का वह हिस्सा किसी बन्दूक की जहरीली गोली से दाग दिया गया हो। वह लक्ष्यहीन दृष्टि से हल्के अँधेरे में छुपे पंखे की ओर देखती हुई हिम्मत करके बोली, "क्या दुख है आपका, यह तो मैं आज तक नहीं जान पाई।"

"तुम सब जानती हो," विनोद की आवाज एकाएक रुखड़ी हो गई "तो जानती हो, छह नहीं! यह तुम्हारा दम्भ है। तुम अपने को ऊँचा और पवित्र मानती हो न? आज के युग में ऐसी पवित्रता की कोई कीमत नहीं।"

"मैंने तो कभी कोई दम्भ नहीं किया," सुधा निर्भीक होकर बोल गई।

"झूठ है, सरासर झूठ!" विनोद तड़प कर बोल उठा, "तो क्या तुम मुझे चरित्रहीन नहीं मानती? शराबी नहीं मानती?"

"मानती हूँ।"

"यही मानना तो तुम्हारा सबसे बड़ा दम्भ है।"

"यह दम्भ नहीं, सचाई है।"

सुधा ने आनेवाली हर विपत्ति के लिए अपने को तैयार कर लिया। निश्चय कर लिया, चाहे जो हो, आज मन की बात खोलकर रहेगी।

"यह सचाई हरगिज नहीं," विनोद ने लगे हाथों जवाब दिया, "सचाई तो कुछ दूसरी है जिसे तुम पहचान कर भी नहीं पहचानती हो।"

"क्या है सचाई, बतायेंगे?"

'तो सुन लो," विनोद आवेश में अपने अगले धड को बिस्तर से आधा उठाकर एक-एक शब्द पर जोर देता हुआ बोला, "सचाई यह है कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता और न तुम मुझे प्यार करती हो। सचाई यह है कि तुम्हें अरविंद से प्यार है और अरविन्द तुम्हें प्यार करता है। सचाई यह है कि मैं शोभा से प्यार करता हूँ और शोभा मुझे प्यार करती है!"

"आपकी सचाई यही है न?' सुधा की वाणी काँप गई और गले में नमी दौड़ गई, "कुछ और भी हो तो कह लीजिए!"

"हाँ, और भी सुनो," विनोद पहले की ही तरह रुखाई से बोला, "सचाई यह है कि इस झूठ को जल्द से जल्द खत्म करना है!"

"कैसे खत्म होगा यह?"

"इसका उपाय आसान है," विनोद इस बार कुछ नरम पड़ कर बोला, "मैं तुम्हें छोड़ दूँ और अरविंद शोभा को छोड़ दे। फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। सारी उलझन दूर हो जाएगी।"

"असम्भव!" सुधा के मुख से अचानक निकल गया, "आप मुझे छोड़ सकते हैं, आपकी मर्जी। किन्तु मैं आपको कैसे छोड़ सकती हूँ? मुझे जितना सताना हो, सता लीजिए। मैं चूँ भी नहीं करूँगी। आप अपने सत्य की रक्षा कीजिए, मैं अपने सत्य की रक्षा करूँगी!...अरविंद बाबू सचमुच मेरे बचपन के साथी हैं। पहले मैं नहीं जानती थी। इसीलिये आपकी बातों से बुरा मान गई थी। किन्तु अभी की स्थिति में उनसे प्यार करने की बात बिल्कुल निराधार है। जो होना था, हो चुका। अच्छा या बुरा, सब मेरे कर्मों का फल है।"

आज बहुत दिनों के बाद विनोद ने पत्नी के मुख से दो टूक बातें सुनी थीं। उसे यह सब सुनकर अच्छा भी लगा। वह खुद चाहता था कि आज वे दोनों अपने मन की भड़ास निकाल लें। अगला कदम उठाने के लिये तैयार हो जायें। इस बार उसने लक्ष्य किया कि अपनी बातें खत्म करके सुधा की जबान लड़खड़ाने लगी थी। अब वह शायद भीतर ही भीतर घुट रही थी। उसकी दबी-दबी सिसकी सुनाई पड़ने लगी। विनोद को स्त्री-चरित्र के इसी अध्याय से नफरत है। जहाँ किसी परिस्थिति से मुकाबला करने की बात उठती है, वहाँ दूसरा कोई उपाय न करके औरतें अक्सर आँसू बहाने लगती हैं। पुरुष भी कितने बेवकूफ होते हैं? उन आँसुओं के आगे अपना माथा टेक देते हैं। सुधा की अन्तिम बातें उसे जहर की तरह कड़वी लगी थीं। अब उसके आँसुओं ने उस जहर को और भी असह्य बना दिया। कड़क कर बोला, "बेकार के आँसू मेरे सामने मत बहाओ! तुम्हारा त्रिया-चरित्र मैं खूब समझता हूँ। ऐसी बातें वह बोले जो पवित्र हो, सच्चा हो। जो स्वयं पतित है, वह सच बोलने का दम्भ नहीं भर सकता।"

विनोद की इस निष्ठुर झिड़की का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ कि सुधा का पिघलता अन्तर थम गया। आँसू जहाँ थे, वहीं रुके रह गये। बाष्प-रुद्ध कण्ठ से विद्रोह की एक चिनगारी फूट ही पड़ी, "क्या है मेरा पतन, बताइयेगा?"

"एक बार क्या, सौ बार बताने को तैयार हूँ," विनोद बिफर कर बोला, "तुम्हारा अपने विषय में यही ख्याल है न कि तुम सीता हो और मैं रावण हूँ? तो मैं पूछता हूँ कि कल यही सीता अपने नीच प्रेमी अरविन्द के गले नहीं लगी थी? वैसे पतित के पैरों पर पड़कर क्या उसने अपने दाम्पत्य, परिवार तथा ऊँचे कुल की इज्जत धूल में नहीं मिला दी? मैं अपने काम से बाहर चला जाता

हूँ और तुम्हें यहाँ गुलकर खेलने का मौका मिल जाता है ? तिस पर यह डींग ! अपने सतीत्व पर यह अभिमान ! इससे बड़ा पतन भी हो सकता है कोई ?"

विनोद की बातें सुनकर सुधा कुछ देर के लिए संज्ञाहीन-सी हो गई। विनोद ने अपने वाग्बाणों से उसके मर्म पर जो करारी चोट की थी वह अपना काम करके रही। लगा जैसे कमरे की दीवारें एक बार घूम गई हों। सुबह का झुट-पुटा गहरे अँधेरे में बदल गया हो।....तो इनको कल वाली घटना मालूम हो गई है। कौन जाने, कहीं निर्दोष कमल को भी इन्होंने इसी प्रकार अपमानित किया हो ! वैसी स्थिति में सुधा फिर कमल को अपना मुँह कैसे दिखाएगी ? कमल को दी गई गाली उसे सबसे तीखी लगी। समझ नहीं पाई, अपने मन की आग को बाहर कैसे निकाले। अपने को किसी तरह सम्भाल कर बोली, "बिना प्रमाण के किसी को लांछित करना सज्जन का काम नहीं है।"

"इसका मतलब कि मैं दुर्जन हूँ और तुम तथा तुम्हारा अरविंद सज्जन हैं ?" इतना बोलकर विनोद आवेश में बिस्तर पर बैठ गया।

"मेरा यह मतलब नहीं था", सुधा लेटी हुई ही दृढ़ता के साथ बोली।

"तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि कल वाली घटना झूठी है ? तुम अरविंद के पैरों पर नहीं गिरी थीं ? उसके आलिंगन में नहीं बँधी थी ?"

विनोद के अन्तिम प्रश्न से घृणा के मारे सुधा का अंग-अंग सिहर उठा। झट से बोली, "एक छोटी-सी बात के लिए इतना जहर क्यों उगल रहे हैं ? मैं उनसे जरूर मिली। उनके पैरों पर भी पड़ी। यह सब सही है। किंतु इसके अतिरिक्त कोई बात नहीं हुई। सब कुछ मनगढन्त है। बतानेवाला आप से झूठ बोला है।"

"तुम्हारे सत्य और सतीत्व को बहुत देख चुका," विनोद दूनी घृणा से बोला, "अब अधिक मत सुनाओ। जो औरत अपने पति के चुपके किसी नीच के पैरों पर लोट सकती है वह उसके साथ दूसरा कोई भी घृणित काम कर सकती है।"

"यदि अरविन्द बाबू नीच हैं तो यहाँ दूसरे अच्छे कौन हैं ? क्या वे जो न्याय और धर्म को तिलांजलि दे कर दूसरे की पत्नी को जबरन अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं ? दूसरे के सुख-सुहाग को लूटना चाहते हैं ?"

अपनी भड़की हुई क्रोधाग्नि के बीच भी विनोद को लगा जैसे आज उसके सामने ऐसी बातें बोलने वाली औरत सुधा नहीं है। यह कोई दूसरी नारी है जो निर्भीकता के साथ उससे बातें कर रही है। इस बार सुधा के तीखे शब्दों को सुनकर न जाने क्यों विनोद ठठाकर हँस पड़ा। यह हँसी इतनी भयावह लगी

कि सुधा विनोद की ओर से अपनी नजरें हटाकर दूसरी ओर देखने लगी। इसी बीच विनोद का बाँस की तरह फटा हुआ विकृत स्वर सुनाई दिया, "वाह री तर्कवागीश की बेटी! आज तो मामूली गधी भी रंग दिखा रही है! तू कान खोलकर सुन ले। मैं शोभा से अवश्य विवाह करूंगा। वह पहले भी मेरी थी और आज भी मेरी है। तेरी तरह नजरों की ओट में तो कुछ नहीं करता? जो करता हूँ उसे तू भी जानती है और तेरा वह भी जानता है। यदि उसमें कोई पुरुषार्थ है, दम है, तो ले ले न अपनी पत्नी?"

सुधा ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये। आँखों को गुलगुले तकिये में धसा लिया। तब भी विनोद की बीभत्स आवाज उसका पीछा करती चली गई। अपने विवाहित जीवन में उसने सब तरह के अत्याचार सहे थे। किन्तु आज तक कभी कोई गाली नहीं सुनी थी। आज पहली बार ऐसी भद्दी गाली सुनकर उसका संस्कार विद्रोह कर उठा। क्या यह वही पति है जिसके लिये उसने तथा उसकी माँ ने वर्षों तक देवी-देवताओं की मनौतियाँ की थी? तीर्थ-व्रत किये थे? यदि नहीं तो यह आदमी कुछ भी हो सकता है, सुधा का पति नहीं हो सकता। घृणा और क्रोध के मिले-जुले आवेगों से सुधा का मुखड़ा विवर्ण पड़ गया। ओंठ काँपने लगे। अब अपनी रक्षा का एक ही उपाय था। वह वहाँ से कहीं दूर चली जाये। कुछ भी बोलना फिजूल था। पति की बातों का प्रतिवाद करना तो अलग, उसे अब वह देखना भी नहीं चाहती थी। आवेश में वह पलंग से उठ खड़ी हुई। सिटकिली खोलकर बाहर निकलना चाहा। तभी पीछे से विनोद उसका आँचल पकड़ कर अपनी ओर खींचता हुआ गरज पड़ा, "भागी कहाँ जा रही है? आज, अभी ही, मेरी बातों का जवाब देना होगा।"

उस समय सुधा के शरीर में न जाने कहाँ की ताकत आ गई। उसने झटके के साथ अपना आँचल छुड़ा लिया और दरवाजे की ओर लपकी। इसी बीच क्रोध से बड़बड़ाते हुए विनोद ने उसकी पीठ के मर्म-स्थान पर एक जबरदस्त घूसा जमा दिया। सुधा अपने को सँभाल नहीं पाई। बेहोश होकर कमरे की नंगी फर्श पर औंधे मुँह जा गिरी।

× × × ×

बेहोशी के बाद जब सुधा का मन कुछ स्वस्थ हुआ तो वह समझ नहीं पाई कि उसे क्या करना है। उसे अपने ही घर-द्वार अपरिचित-से लगे। विनोद ने हाथ तो जरूर छोड़ दिया था, किंतु मूर्च्छित पड़ी सुधा को समेट कर बिस्तर पर सुला दिया था। सुधा की चेतना लौटने तक वह वहीं बैठा रहा था। जैसे

ही सुधा ने आँखें खोली, वह चुपके बाहर चल दिया। सुधा लिहाफ ओढे चुपचाप लेटी रह गई। कुछ देर पहले घटी बातों की कड़ियां मन में सहेजने लगी। उसकी रीढ़ अभी भी उस दानवी प्रहार से घाव की तरह दुख रही थी। किन्तु उस चोट की ओर अभी उसका बिल्कुल ध्यान नही था। उसे जल्दी ही जिन्दगी और मौत में से किसी एक को चुन लेना था। दूसरा कोई विकल्प नही था। किंतु मौत के रास्ते में सबसे बड़ा बाधक उसके पेट मे पलने वाला जीव था। यह जीव सातवें महीने को पार कर रहा था। इधर जीवन इतना बोझिल हो गया था कि उसे और अधिक ढो पाना असम्भव था। सुधा कोई रास्ता खोज नही पा रही थी। तभी उसे याद आया कि वह कमल के अपमान को नही सह पाई थी। उसी के प्रतिकार में कुछ कड़वी बातें उसके मुँह से निकल गई थी। परिणाम प्रत्यक्ष था। किंतु इससे उस स्थिति में भी सुधा के मन को सन्तोष हुआ। खुशी हुई कि अहिंसा और सत्य के लिए उसने कष्ट झेला।

न जाने कब तक वह मुर्दे की तरह लेटी रह गई। आँखों के आँसू भी सूख चुके थे। बिस्तर पर पड़ी-पड़ी यही सोचती रही कि उठकर कहाँ जाये, क्या करे। इसी समय विनोद कमरे में फिर आ पहुँचा। सामने खड़ा होकर दृढ स्वर में बोला, "मुझे अफसोस है कि तुम्हें इतनी तकलीफ हुई। किंतु जब तक तुम मेरी पत्नी हो, तुम्हारी मनमानी नहीं चलेगी। यदि फिर कभी ऐसा करने का दुस्साहस करोगी तो गला टीप कर मार डालूंगा। अगर तुम मेरा साथ नहीं ही छोड़ना चाहती तो उसका भी रास्ता है। तुम मेरे घर रह सकती हो। किंतु मेरी पत्नी बनकर नही। कानूनी दृष्टि से शोभा के साथ शादी करने से पहले मुझे तुम्हें तलाक देना पड़ेगा। इस काम में तुम्हें मेरा साथ देना ही होगा। इसके बदले तुम्हारी सुरक्षा का भार मेरे ऊपर रहेगा। इस विषय मे तुम्हें आज ही फैसला कर लेना है।"

विनोद की आवाज में अभी भी कोई सहानुभूति नही थी। केवल नफरत और विरक्ति प्रकट हो रही थी। सुधा लिहाफ हटा कर पलंग पर ही अपने को संभाल कर बैठ गई। शरीर में बड़ी कमजोरी मालूम हुई। गला बेतरह सूख रहा था। कुछ क्षणों तक एकटक पति के चेहरे को निहारती रह गई। जैसे कोई अजनबी उससे बिना पूछे सामने आकर खड़ा हो गया हो। उधर विनोद पत्नी की मर्मभेदिनी दृष्टि से अपनी नजरों को बचाता हुआ फिर बोला, "तुमने मेरी बात का जवाब नही दिया ?"

"किस बात का ?" सुधा ऐसे बोली जैसे मुर्दे की जबान हिल उठी हो।

"मैंने अभी ही जो तुमसे पूछा, "विनोद क्रुद्ध कर बोला।

'उसका जवाब साफ है," मरघट में चांदनी की तरह न जाने कहाँ से मुस्कान की एक फीकी लकीर सुधा के होठों पर खिंच आई। बोली, "आपके दुखों की जड़ मैं ही तो हूँ?"

"मेरा मतलब यह नहीं, मैं तो......"

"तो ठीक है, आप इसे मेरी तरह समझें, न समझें," सुधा बात काट कर बोली, "मैं अपने ढंग से इसे अच्छी तरह समझ चुकी हूँ। जो काम आप मुझसे कराना चाहते हैं, उसे मैं आपके लिये बहुत आसान बना देना चाहती हूँ।"

"सो क्या?"

"आप मुझे जहर देकर मार डालें। मैं चूँ भी नहीं बोलूँगा।"

इतना कहते-कहते सुधा के मन के आकाश में उमड़ती-घुमड़ती बदली उसकी आँखों से बरसने लगी। अपने दोनों घुटनों के बीच सिर छिपा कर सिसक पड़ी। लगा जैसे विनोद का निर्मम निश्चय आँसुओं की पिघलती करुणा से टूट जायेगा। किन्तु वह हार मानने वाला नहीं था। वह शोभा को वचन दे चुका था। वह उसे अब अधिक समय तक अनिश्चय के कुहासे में नहीं रहने देगा। उसे कानूनी तौर पर अपना लेने के लिये अविलम्ब पहल करेगा। जी कड़ा करके बोला, "तुम मुझे इतना मूर्ख समझती हो! मैं किसी की हत्या नहीं कर सकता।"

"तो आप मुझे न तो जीने देना चाहते हैं, न मरने देना," सुधा अपनी सिसकियों के बीच किसी तरह बोल गई।

कुछ देर पहले सूरज की जो सुहावनी बाल किरण सुधा के बिस्तर पर मुस्काने आई थी, वह अब तक सरक चुकी थी। खिड़की के बाहर रजनीगंधा का ओस-भीगा शरीर मीठी धूप में नहाता नजर आ रहा था। विनोद कुछ देर तक मौन खड़ा सोचता रहा। फिर निश्चय के स्वर में बोला, "अभी तुम्हारा मन ठीक नहीं। मैं अभी कुछ जरूरी काम से बाहर जा रहा हूँ। तुम्हारे साथ मेरी हमदर्दी भले न हो, सम्बन्ध तो अभी भी है। दोनों का भला इसी में है कि इस सम्बन्ध को जल्दी से जल्दी तोड़ दिया जाये। तुम्हें आज ही जवाब दे देना है। तुम इसके लिये तैयार हो या नहीं। तुम्हारे गर्भस्थ बच्चे के विषय में मैं पहले ही सोच चुका हूँ। उसका भार मेरे ऊपर रहेगा। उसकी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी है।"

इतना बोल कर विनोद गर्म कपड़े पहन बाहर निकल गया जैसे घर में कुछ

हुआ ही नही हो। सुधा अभी भी बिस्तर पर बैठी सिसक रही थी। जाते समय विनोद की बातों के जहरीले डंक से उसकी आत्मा कराह उठी थी। कितने दयालु है कि शोभा को पत्नी बनाकर भी जीवन भर सुधा की परवरिश करते रहेंगे! उसके भावी बच्चे की जिम्मेदारी भी अपने कन्धे पर ले लेंगे। वह खुद रास्ते के ढेले की तरह थी जिसे जब चाहा, कहीं फेंक दिया। किन्तु कुछ देर बाद उसका दृष्टिकोण बदलने लगा। विनोद ने अपनी नजर मे उसे जितना ही तुच्छ समझा था, अपने अस्तित्व को उतना ही वजनदार सिद्ध कर देने के लिये वह तड़प उठी। सुलेयाम कसूर करते रहने पर भी विनोद पर उँगली नही उठाई जा सकती। वह पुरुष है, इसीलिये किसी पाप को पुण्य में बदल देने की छूट है उसे। सुधा स्त्री है और यही उसकी सारी कमजोरी और तथाकथित पापो की जड़ है। बहुत सह चुकी वह। अब तक उसके सारे के सारे सपने जलकर स्वाहा हो गये। किंतु अपने जले हुए अस्तित्व की राख लेकर वह जीना नही चाहती। अच्छा हो, इस राख को किसी पवित्र जल में प्रवाहित कर दिया जाये। उसके हृदय के भाव-भण्डार में अभी भी ताजगी है, पवित्रता है। इसे वह निरर्थक नही जाने देगी। किसी देवता के चरणो में इसे अर्पित कर लेने के बाद ही वह अपनी इहलीला समाप्त करेगी।.... .... हाँ, वह देवता तुम ही हो कमल! तुम, मेरे जनम-जनम के संगी, मेरी आत्मा के स्वामी, मेरे बिछुड़े संगीत की कड़ी! यह फूल तुम्हारे ही चरणों के स्पर्श के लिए तड़प रहा है। यही इसकी सार्थकता है।

सुधा की आँखे एक बार फिर नये आँसुओं से नहा गईं। कमल के विरोध मे अब तक वह जितना सोच चुकी थी, उसका शैवालजाल फट चुका था। सामने निर्मल जल की सतह पर चिर परिचित कमल मुस्का रहा था। उसे देख-देखकर सुधा न जाने कब तक रोती-सुबकती रही। रोना समाप्त करके जब उठी तो उसकी नसो में नई ताकत दौडने लगी थी। एक नये निश्चय की स्फूर्ति थी। वह बाथरूम से आकर अपने ड्रेसिंग टेबुल के सामने आई। वहाँ आदमकद शीशे में अपने को देखकर चौक पडी। क्या अपने देवता का यही पुष्प है वह? नही, उसे यह मलिन वेश त्यागना होगा। दुख और विषाद के इस केंचुल को यहीं छोड़ देना होगा। फूल के अनुरूप ही उसकी डालियाँ सजेंगी। पत्ते-पत्ते में हरियाली झूमेगी। तभी तो इस फूल की महत्ता और सार्थकता है। वह दुबारे बाथरूम में गई। वहाँ नहा लेने के बाद कुछ देर तक छत पर बैठी अपने भीगे केशो को सुखाती रही। फिर नीचे आकर अपने प्रसाधन में जुट गई। जब वह

बाहर निकलने को तैयार हुई तो वह पुरानी सुधा रह नही गई थी। पलकों पर पेंसिल से बारीक खिची काजल की रेखा। विदेशी सेन्ट से महू-महू करती देह-यष्टि। कॉस्मेटिक्स के कलात्मक संयोग से दमकते अपने चन्द्रमुख को जब वह शीशे में निहारने लगी तो खुद अपने को नही पहचान पाई। आज के शृंगार के लिये उसने वैसे वस्त्रों का प्रयोग किया था जिन्हें आज के पहले उसने कभी धारण नहीं किया था। उसके उद्दीपक सौन्दर्य मे सब कुछ था, केवल एक चीज की कमी रह गई थी। उसके धुले उज्ज्वल ललाट पर सुहाग-बिन्दी नही थी। इसके लिये जैसे ही अपना हाथ सिन्दूरदान की ओर बढाया, वह घबडा कर पीछे हट गई। लगा जैसे किसी जहरीले बिच्छू के डंक से उसकी उंगलियाँ झनझना उठी हों।....

नही, अपने शरीर के पुराने केंचुल के साथ अब इस सिन्दूरदान को भी विदाई देनी होगी। पुरानी दुनिया के खण्डहरों में पलने वाले इस जीव को छोड़ देना होगा। उसने ममता-भरी दृष्टि से एक बार अपने सिन्दूरदान को देखा। उसे निहारकर उसकी कजरारी आँखों के कोर पसीज उठे। किन्तु माया का यह संघर्ष ज्यादा देर नही टिका। सुधा जल्दी ही अपने क्वारे अभिलाषों के राग में डूब गई। शीशे के सामने उसके गुलाबी होठों पर अनायास ही मीठी मुस्कान थिरक उठी। लगा जैसे निर्वाण के पहले दीपक की शिखा अपने पूरे आकर्षण के साथ झूम उठी हो। बाहर निकलने के पहले उसने अपने बटुए में एक हाल की खरीदी ताजी सिन्दूर की डिबिया भी रख ली। आँगन में आकर नौकर को आवाज दी। नौकर के आ जाने पर जल्दी ही रिक्शा लाने को कहा। नौकर को अपनी मेम साहब की आवाज और रूप दोनों ही अजनबी लगे। वह कुछ देर तक हक्का-बक्का-सा सुधा को देखता रह गया। डर के मारे कुछ पूछने की हिम्मत नही हुई। जब वह रिक्शा लाने बाहर चला गया तो कौतूहलवश धनिया भी वहाँ आ पहुँची। सुधा के अन्तर्मन में विश्वास हो चला था कि धनिया ने ही नमक में मिर्च लगाकर कल वाली घटना विनोद को बता दी थी। किंतु अब तक सुधा जैसे किसी राग या द्वेष से ऊपर उठ चुकी थी। चकित मुद्रा में खड़ी धनिया से वह बेबाक लहजे में बोली, "देख धनिया, मैं अरविन्द बाबू से मिलने चौधरी टोला जा रही हूँ। यदि साहब आ जायें तो उनसे बोल देना।"

सुधा बेधड़क कदम बढ़ाती हुई बंगले के फाटक तक आ गई। तब तक रिक्शा भी आ पहुँचा था। वह रिक्शे पर बड़े इतमीनान से बैठ गई और उसे चौधरी टोला चलने का आदेश दिया। रिक्शा आगे बढ गया। इधर सुधा के नौकर-चाकर अपनी स्वामिनी के नये रंग-ढंग को एक खासा तमाशा समझ रहे थे। धनिया

की नजर में सुधा आज तक कभी इतनी बनी-ठनी नही थी। साहब की अनुपस्थिति में वह अकेले कभी घर के बाहर भी नही गई थी। सुधा के चले जाने पर घनिया ने गहरी सांस ली। उसे इस घर के आसार अच्छे नजर नहीं आये। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह खुद भी तो इस घर की बरबादी में हिस्सेदार बन गई थी। वह जानती थी कि यदि साहब को अपनी पत्नी का चौधरी टोले जाना मालूम होगा तो आफत मच जाएगी।

सुधा का रिक्शा चौधरी टोले की ओर न जाने किन सड़कों और गलियो से गुजरता बढ रहा था। शरद की मीठी धूप चारों ओर बिछी थी। रिक्शे पर बैठी सुधा का हृदय अचानक धड़क उठा। उसने घबड़ाई हुई नजरों से अपनी घड़ी की ओर देखा। दिन के दस बज रहे थे। कही ऐसा न हो कि सुधा के पहुँचने के पहले ही कमल आफिस चला जाये। आज की यह यात्रा किसी भी तरह असफल नही होनी चाहिए। आज जैसे भी हो, कमल से मिलना ही होगा। अब किसी भी तरह पीछे नही मुड़ा जा सकता। किन्तु संकट तो यह है कि चौधरी टोले में उसे कमल का कोई अता-पता मालूम नही था। पण्डितजी के प्रेस का पता भी वह नही जानती थी। रिक्शा लेकर कहाँ-कहाँ भटकेगी, किससे-किससे पूछेगी! उसे भटकते देखकर लोग क्या सोचेंगे! इसमें सुधा की ही प्रतिष्ठा का सवाल नही था। उसके मुँह से कमल का नाम सुनकर, सम्भव है, लोग कमल के चरित्र पर ही शंका करने लगें। वह अपनी किस्मत की परवा नही करती। किन्तु जिसे वह देवता मानती आई है, उसकी मानहानि वह कैसे बरदाश्त कर पायेगी?

सुधा अपने घर से निर्द्वन्द्व होकर निकली थी। किन्तु अभी वह द्वन्द्वों के आवर्त में चारो ओर से घिर गई। तभी रिक्शेवाले की आवाज आई, "चौधरी टोला तो पहुँच गये हुजूर! आपको जाना कहाँ है?"

सुधा ने अकचका कर अपने आसपास देखा। रिक्शा एक तंग गली में किसी नुक्कड़ पर खड़ा था। गली के दोनो ओर पुराने ढंग के मकानों के सिलसिले नजर आ रहे थे। मकानो की दीवारें काली पड़ चुकी थीं। कही-कही नीचे की ओर लुढकती खिड़कियों तथा छज्जों से कई मकान खण्डहर जैसे लग रहे थे। एक अजीब-सा सन्नाटा छाया हुआ था। जैसे उधर आदमी रहते ही नही हों। कुछ देर पेशोपेश में रह कर सुधा रिक्शेवाले से बोली, "किसी से पूछो तो कि यहाँ कमल बाबू नाम के आदमी कहाँ रहते हैं। वे एक पत्र के सम्पादक हैं।"

रिक्शे वाले ने इधर-उधर नजर दौड़ाई। ऊपर एक टूटी खिड़की से कोई

आदमी झांक रहा था। रिक्शेवाले के पूछने पर उसने बताया, "इस नाम का कोई आदमी इधर नहीं रहता। हाँ, एक सम्पादक जी इसी गली में थोड़ी दूर आगे रहते हैं। किन्तु उनका नाम अरविन्द जी है। अच्छा हो, आप उन्हीं से कमल बाबू का पता पूछ लें। शायद वे जानते होंगे।"

रिक्शे पर बैठी सुधा सारी बातें सुन रही थी। उसे अपनी बेवकूफी पर बड़ा क्षोभ हुआ। कमल का नाम उसने पूछा ही क्यों ? किन्तु खुशी हुई यह जानकर कि अनजाने ही वह कमल के डेरे के नजदीक आ गई है। धड़कते दिल से रिक्शे वाले से बोली, "अरविन्द बाबू के डेरे का पता ठीक से पूछ लो। वहीं कमल बाबू रहते हैं।"

रिक्शेवाले ने फिर कुछ पूछताछ की और रिक्शे को निर्दिष्ट स्थान की ओर बढ़ा दिया। कुछ देर में रिक्शा अपेक्षाकृत चौड़ी गली में आ निकला। इस गली में कुछ जन-संचार भी था। रिक्शा गली के किनारे पानी के नल के पास पहुँचा। वहाँ खड़े एक नौजवान ने सामने अरविन्द बाबू के मकान को दिखा दिया। मकान का दरवाजा आधा खुला हुआ था। सुधा की छाती जोरों से धड़कने लगी। जैसे-तैसे रिक्शे से नीचे उतरी। रिक्शे वाले को पैसा देकर विदा किया। वह जिस साहस से अपना घर छोड़ कर निकली थी, वह एकाएक टूटता जान पड़ा। पता नहीं, आज इस रूप में उसे अचानक देख कर कमल क्या सोचेगा। उसे झिझकते देखकर उस नौजवान ने फिर कहा, "भीतर चले जाइए। अरविन्द बाबू आज प्रेस नहीं जा पाये हैं। उनकी तबीयत कल से ही सुस्त है।"

आशंकित-सी सुधा कुछ क्षणों तक दरवाजे की चौखट पकड़े खड़ी रह गई। लगा जैसे पैर जकड़ गये हों। साहस बटोरकर किसी तरह भीतर आई। अन्दर आंगन में सन्नाटा छाया था। कुछ देर वहीं खड़ी-खड़ी आंगन की एक-एक चीज पर गौर करती रही। सामने बरामदे में रसोई के कुछ सामान बेतरतीब पड़े थे। एक तरफ ठंढा चूल्हा रखा था। आंगन में झाड़ू नहीं पड़ा था। पता नहीं क्यों, सुधा के मन में एक पुरानी स्मृति अचानक कौंध गई। कमल बीमार पड़ा था। सुधा उससे मिलने गई थी। उस समय भी कमल बिल्कुल अकेला और असहाय दिखा था। जैसे तब और अब के कमल में कोई अन्तर नहीं हो। वह तब भी उपेक्षित था। एकाकी था। आज भी वैसा ही है। आखिर इस घर में वह है कहाँ ? लगता है, कल से ही चूल्हा नहीं जला है। कहीं वह भूखा ही तो नहीं ? तभी उसे इस बात की याद आई कि उसकी तबीयत कल से ही सुस्त है। शायद इसीलिए सारी चीजें बिखरी

पडी है। वह खुद शायद भीतर कमरे में सोया है। किन्तु यह काट खाने वाला अकेलापन! जिसकी पत्नी इतना समीप रहती है, उसकी यह दशा! सुधा के मन में कमल के प्रति अपार करुणा तथा शोभा के प्रति अपार घृणा के भाव एक साथ उभर आये। खपड़ैल बरामदे से संलग्न कोठरी के दरवाजे से उसने भीतर झाँका। सचमुच कमल सोया हुआ दिखाई पड़ा। ऊनी चादर से पूरा शरीर ढके हुए था। केवल सिर खुला था। आँखें झपी थीं, किन्तु पलकें कुछ सूजी हुई-सी लगीं। चेहरे से करुण खिन्नता टपक रही थी। सुधा अधिक देर तक दरवाजे पर खड़ी नहीं रह सकी। धीरे से कमरे में प्रवेश किया। कमल के चरणों का हल्का स्पर्श करके उसके सिरहाने नीचे फर्श पर ही बैठ गई। न जाने किस अधिकार से अपनी नरम उँगलियों को हौले-हौले कमल के ललाट और सिर के बालों पर फेरने लगी।

अरविन्द के सिर में रात से ही हल्का-हल्का दर्द था। कल सुधा के साथ उसका जैसा अकल्पित मिलन हुआ, उसने उसके मन को झकझोर दिया था। वह अपने जीवन के जहर का थोड़ा भी अंश दूसरे को देना नहीं चाहता था। अतीत के नाम पर किसी के वर्तमान और भविष्य को उजाड़ना नहीं चाहता था। सुधा उसके भावुक मन में जरूर लहरती आई थी। किन्तु अतीत की ओर दौड़ने वाली उसकी कवि-दृष्टि उसकी जीवन-दृष्टि से बिल्कुल अलग-थलग थी। उसका जीवन तो रास्ते की कठोर चट्टानों से संघर्ष लेने में रम लेता आया था। कवि-हृदय हो कर भी भावुकता में बह कर वह किसी की मर्यादा तोड़ना नहीं चाहता था। इसी लिये सुधा को पहचान कर भी वह अपने लिये कठोर बन चुका था। नहीं चाहता था कि सुधा के सामने अब निरर्थक अपने को प्रकट करे। किन्तु कल न जाने कैसे सुधा की करुणा से अभिभूत होकर अपना होश-हवास गवाँ बैठा। इस रहस्य-भेदन का दुष्परिणाम उसे अच्छी तरह मालूम था। सुधा का दाम्पत्य जीवन उसी के चलते अब और भी अशांत हो जायेगा। इस सबकी जिम्मेदारी उसी पर होगी। इन्हीं बातों को सोच-सोच कर कल से ही अरविन्द का मन और शरीर दोनों अस्वस्थ हो गये थे। उधर शोभा एक अलग समस्या हो गई थी। अब उसके साथ निभना कठिन था। सुधा और शोभा के दुहरे आघातों ने उसके मन-प्राणों को जर्जर बना दिया था। हल खोजने की कोशिश में कल से ही सिरदर्द लेकर पड़ा हुआ था। पास-पड़ोस में रहने वाले कुछ कालेज के छात्र जब-तब उसकी देखभाल करने आ जाते थे। किन्तु आज नौ बजे के बाद अब तक कोई नहीं आया था। उसी ने मना कर दिया था कि वह दो तीन घंटे तक सोयेगा, बीच में कोई डिस्टर्ब न करे।

अपने दुखते सिर पर किसी के कोमल कर-स्पर्श का अनुभव करके अरविन्द की तन्द्रा टूट गई। अपने पलक-सम्पुट बन्द किए ही उस दुर्लभ स्पर्श का आनन्द लेता रहा। उसे लगा जैसे आँखें खोल देने पर वह इस सुख से वंचित हो जाएगा। उसके अन्तर्मन में विश्वास हो गया कि यह स्पर्श शोभा का ही है। शोभा की उपस्थिति के अहसास से उसके तपते प्राणों में एकाएक अमृत की मिठास भरने लगी। कुछ देर के लिए वह शोभा की लापरवाही को भूल-सा गया। आँखें मुँदे ही प्यार से बोला, "तुम कैसे आ गई शोभा!"

जब शोभा ने उसकी बातों का कोई जवाब नहीं दिया तो अपने ललाट पर काँपती हुई नरम उँगलियों को उसने अपनी गरम उँगलियों में बाँध लिया। फिर उँगलियों को अपने पलकसम्पुट से सटा कर कुछ व्यथित स्वर में बोला, "मैं जानता था कि तुम जरूर आओगी!"

इस बार शोभा के किसी उत्तर के बदले करुण सिसकी सुनाई पड़ी। अकचका कर अरविन्द ने अपनी पलकें खोल दीं। उसको आँखों को विश्वास नहीं हुआ। नीचे फर्श पर सजी-धजी सुधा बैठी थी। उसकी कजरारी आँखों से टप-टप आँसू झड़ रहे थे। इसके दूसरे ही क्षण सुधा का हाथ छोड़कर वह अपने बिस्तर पर उठ बैठा। आश्चर्य के स्वर में बोला, 'क्या बात है सुधी, तुम यहाँ कैसे?"

सुधा इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दे पाई। आँचल से मुख ढक कर और भी पिघल पड़ी। अरविन्द के थके-हारे मन पर यह दूसरा आघात था। क्षण भर में ही सुधा के यहाँ आ जाने का भीषण परिणाम उसकी आँखों के आगे कौंध गया। तभी सिसकियों में बंधी सुधा की आवाज सुनाई पड़ी, "मैं जानती हूँ, मेरे आने से तुम्हें तकलीफ हुई!"

"ऐसा न कहें भाभी," अरविन्द आकुल स्वर में बोला, "आपके यहाँ आ जाने से मुझे तकलीफ क्यों होगी? मैं तो अभी आपके हित की बात सोच रहा हूँ।"

"बहुत कर चुके मेरा हित!" सुधा की सिसकी अचानक आक्रोश में बदल गई। आँखों में आँसू भरे फुफकार उठी, 'दुतकार कर बाहर क्यों नहीं निकाल देते? मैं किसी की भाभी-वाभी नहीं। कान खोल कर सुन लो। फिर से ऐसे शब्द मुँह से निकाला तो अभी गंगा में डूब मरूँगी!"

"मैं तुम्हारा दिल दुखाना नहीं चाहता सुधा," अरविन्द ने फिर सुधा का हाथ अपने हाथ में लेते हुए द्रवित स्वर में कहा, "किन्तु तुम अपनी और मेरी हालत पर भी तो ध्यान दो।"

प्यार की एक ही बोली से सुधा का रंज-भाव उड गया। उसने धीरे से अरविन्द के हाथ में बँधी अपनी उँगलियों को छुडा लिया। बाहर जाकर आँख-नाक साफ कर आयी। उसके लौट आने पर अरविन्द बोला. "एक कुर्सी खींच कर बैठ जाओ।"

सुधा ने कुर्सी खींच ली और बैठ गई। कुछ लजाए स्वर मे बोली, "मुझसे आज भी तुम्हें तकलीफ ही मिलो। मेरा भाग्य हो इतना खोटा है। किन्तु छोडो यह सब। पहले यह बताओ कि अपने शरीर पर अत्याचार करते रहने में तुम्हे कौन-सा सुख मिलता है ? तबीयत खराब है। न डॉक्टर, न दवा-दारू और न पास में बैठने वाला कोई। तुम्हारी आदत वही रह गई न !"

अन्तिम वाक्य के 'वही' शब्द में स्मृति की कुछ ऐसी नमी थी जिसने एक साथ ही सुधा और अरविन्द के हृदय को छू लिया। कुछ देर मौन रहने के बाद अरविन्द बोला, "मैं अभी बिल्कुल ठीक-ठाक हूँ सुधी ! थोड़ा सिर-दर्द जरूर था। किन्तु वह तो तुम्हारा स्पर्श पाकर ही डर कर भाग गया। यहाँ मैं अकेला होकर भी अकेला नही हूँ। जरूरत पड़ने पर आदमियो की कमी नही। ... .अच्छा, एक बात पूछूं ?"

अरविन्द फिर अपने बिस्तर पर लेट गया था। सुधा उसके बिल्कुल करीब बैठी थी। अरविन्द की बात सुनकर सुधा की स्नेहभरी उंगलियाँ पुनः अरविन्द के सिर के बालों के साथ खेलने लगीं। ममता-भरी आवाज में बोली, "पूछो न !"

"पटने मे जब से तुम्हें देखा है, तुम इतनी सजी-धजी कभी नही दिखाई पड़ी। किन्तु आज क्या बात है ? तुम इतना बन-ठन कर मेरे पास क्यो आई हो ? विनोद बाबू से पूछ कर आई हो ?"

"नही," सुधा गम्भीर होकर बोली, "तुम यह सब नही पूछते तो अच्छा। मेरे पास अभी समय की बडी कमी है। फिर तुमसे मिल भी पाऊँगी, इसकी कोई उम्मीद नही। यदि आज नही आती तो फिर कभी तुम्हारे दर्शन नही होते। रूप-रंग में क्या रखा है भला? अपने देवता के पास मलिन वेश में कैसे आती ? फिर किस दिन के लिए अपने इस रूप को संजोकर रखती ?"

अरविन्द ने सुधा के बुझे हुए स्वर तथा मर्म को भेदने वाली नजरों में जैसे सब कुछ पढ़ लिया। सुधा के इस दुस्साहस का भयावह परिणाम सोचकर वह काँप गया। कुछ कहने को सोच ही रहा था कि सुधा का धीर-गम्भीर स्वर पुनः सुनाई पड़ा, "मैं भी तुमसे कुछ पूछने आई हूँ। मुझे

अफसोस है, जब छोटी थी तब भी तुम्हारे मन को कष्ट ही देती रहती थी। और आज जीवन के इन अन्तिम क्षणों में भी तुम्हें तकलीफ देने आ गई हूँ। किन्तु क्या करोगे, मेरे लिए इतना भी तो सह लो! तुम्हारे लिए बहुत कुछ सहती आई हूँ। मुझे डर है, कल की तरह आज भी तुम कहीं मुझे अपने वाग्जाल में फँसा न लो। मैं अपनी बात फिर दुहराती हूँ— मेरे पास समय बहुत ही कम है। मैं तो बुद्धिहीन हूँ। तुम्हारी ऊँची बातें सुनने नहीं आई हूँ। तुम... "

सुधा भाव-विह्वल हो कर बोले जा रही थी। पता नहीं, और क्या-क्या बोलती। इसी बीच अरविन्द ने उसके होठों पर हाथ रखकर उसकी बात बीच में ही काट दी। बोला, "ऐसी बातें फिर मुँह से मत निकालो। मेरे जीवन की जो कुछ भी उपलब्धि है, वह तुम्हारी ही देन है। तुमसे बचना चाहकर भी कहाँ बच पाया हूँ? माता-पिता, घर-द्वार सबको भुला दिया। किन्तु तुम्हें बिसराने की जितनी ही कोशिश की, तुम उतनी ही मजबूती से मेरे मन पर छाती गईं। किन्तु दुर्भाग्य तो मेरा साथी है। तुम्हारे नजदीक रहता तो मेरे दुर्भाग्य से तुम भी अछूती नहीं रह पाती। समय का चक्र भी कितना विचित्र है! मैं नहीं जानता था कि खुद मेरी पत्नी तुम्हारे सुख-सुहाग के रास्ते में काँटा बन जायेगी। यदि यह कमल शेष जीवन के लिए भी तुम्हारे मन में मरा रह जाता तो आज की तरह स्थिति पैदा नहीं होती। तुम मेरे पास अपनी जिन्दगी को दाँव पर लगाकर दौड़ी-दौड़ी नहीं चली आती। तुम्हारे सारे दुर्भाग्य के मूल में मैं ही तो हूँ!"

"नहीं-नहीं," सुधा पिघले स्वर में बोली, "तुम गलत समझते हो कमल। तुम्हें सत्य का एक ही पहलू दिखाई दे रहा है। तुम नहीं भी रहते तो मेरा दुख कम होने को नहीं था। अभी तो कम से कम तुम्हारे पास आ जाने से मेरी आग कुछ ठण्डी है। इसका रहस्य तुम नहीं जानते। तुम कहते हो, यहाँ आकर मैंने अपने को खतरे में डाल दिया है। इसका मतलब कि यदि मैं अपने घर में बन्दिनी बनी पड़ी रह जाती तो सुख-चैन से रहती। खतरों के पार होती। किन्तु जिसके लिए अपने को बाँध रखा था, जब वही मुझे हठात छोड रहा है तो ममता और धर्म के इस बन्धन की जरूरत ही क्या? यह जितनी जल्दी टूट जाये, वही अच्छा!"

"मैं सब समझता हूँ सुधी," कमल सुधा के दूसरे हाथ को भी अपने हाथ में लेकर बोला, "ऐसा नहीं कि तुम्हारे सुख-दुख के विषय में कुछ जानता नहीं होऊँ। भाग्य का यह खेल भी तो देखो! हम दोनों एक ही मर्ज के रोगी हैं। हमारी समस्यायें भी एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। मैं खुद अपनी ज़ि हीं।

मैं तो अबतक बहुत कुछ झेल चुका हूँ। जो विपत्ति सामने आई है, उसे भी झेलने की ताकत है मुझमें। किन्तु तुम इसकी अभ्यस्त नहीं हो। इसे सह नहीं पाओगी। ऐसे व्यर्थ का कोई भी बन्धन सचमुच बुरा होता है। धर्म के नाम पर उसे ढोया नहीं जा सकता। तुम्हारे इस बात से मैं सहमत हूँ।"

"किन्तु यह बन्धन कटेगा कैसे ? जो एक बार बँध चुका, वह फिर उबरने को नहीं। उसे तुम कैसे बचा लोगे ?"

"यह सोचने का गलत तरीका है," अरविन्द ने सुधा के ललाट पर उतरे केश के एक हल्के गुच्छ को उँगलियों से ऊपर सरका कर कहा, "बन्धन तो आखिर बन्धन ही होता है। वही बन्धन प्रिय है जिसमें बँधने का कोई अहसास नहीं होता। जिसमें दो मिलकर एक हो जाते हैं। किन्तु जहाँ दो की इकाइयाँ बनी रह जाती हैं वह तो बड़ा कष्टदायक होता है। उसका टूटना जरूरी है।"

सुधा विस्फारित नेत्रों से कमल के चेहरे को देखती रह गई। समझ नहीं पाई, कमल कहना क्या चाहता है। यहाँ बैठ कर उसे ऐसा जरूर लग रहा था जैसे वह अभी सभी बन्धनों से ऊपर उठ चुकी हो। वहाँ केवल मुक्त आत्मा के रूप में बैठी हो। यह सही है कि आज तक वह अपना हृदय विनोद को नहीं दे पाई। उसका शरीर ही विनोद को मिल पाया है। हृदय और शरीर की यह कसकती हुई दूरी ही उसके दुखों की जड़ है। हृदय को अलग करके किसी को शरीर मात्र देने का ताप कैसा होता है, इसे वही जानती थी। किन्तु आज कमल के पास बैठने से उसके हृदय का अछूता भावकोष उभरता जा रहा है। उसके शरीर की मलिन परतें इस कोष की चेतना से बिखरती जा रही हैं। वह आत्मविभोर-सी बैठी रही। इस बीच अरविन्द उसे अपलक निहारता रहा। आज के पहले कभी उसने ऐसी तन्मय दृष्टि से सुधा को नहीं देखा था। अभी जिस स्वप्नलोक में उसकी कजरारी आँखें खोई लग रही थीं, उसके चलते उसकी बाँकी भौंहों में बल पड़ गया था। सुधा की दृष्टि जब अरविन्द की रसमयी नजरों से एकाएक टकरा गई तो उसने शर्मा कर नजरें नीचे झुका लीं। अरविन्द मुस्का कर बोला, "अभी-अभी क्या सोच रही थी तुम ?"

"कुछ तो नहीं," सुधा ने मुस्काती नजरों से अरविन्द की ओर देख कर कहा, "यही कि जिस बन्धन में मेरे मन-प्राण बचपन में ही बंध गये थे, आज भी तो वे उसी में बंधे हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे सारे बन्धन झूठे हैं। फिर, झूठे बन्धन से मुक्त होने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ?"

अरविन्द को इस बार अतुल रूप के पर्दे में छिपी भावों की सुरम्य स्थली

दिखाई पड़ी। सुधा की बातों ने उसके मर्म को छू लिया। उसके सामने अब बचपन के दूर छूटे किनारे खुले पड़े थे। वहाँ हर जगह सुधा दिखाई दे रही थी। अरविन्द के मुख से जैसे कोई अव्यक्त पीड़ा मुखरित हो उठी, "यह दूरी क्या खत्म नहीं की जा सकती ?"

अब तक सुधा का हाथ अरविन्द की हथेली में बँध चुका था। अरविन्द की तरल दृष्टि में कोई मौन आमंत्रण छाया हुआ था। सुधा स्वतः ही अरविन्द के मुखड़े के निकट अपना मुख करके कातर स्वर में बोली, "तुम अस्वस्थ हो कमल! नाहक तुम्हें तंग करने आ गई! तुम ...."

जब तक सुधा अपना वाक्य पूरा करे, अरविन्द का प्यार-भरा चुम्बन उसके अधर पर पूर्ण विराम की तरह जड़ित हो गया। सुधा की लाल पड़ी कनपटियों को अपनी गरम हथेलियों में लेकर वह किसी तरह काँपते स्वर में बोला, "मेरी सेहत के लिए इससे बड़ा रसायन और क्या हो सकता है सुधी ?"

दोनों उसी भावस्थिति में कुछ क्षणों तक मौन पड़े रह गये। इस बीच दोनों की आँखों का मूक आदान-प्रदान होता रहा। कुछ देर बाद सुधा ने अरविन्द के हाथ को अपनी कनपटियों से अलग करते हुए कहा, "अब और कुछ नहीं चाहिए। मेरे अपवित्र ओठों का जहर कहीं तुम्हें भी न लग जाये!"

"पगली!" अरविन्द ने सुधा के मासूम गाल पर प्यार की एक मीठी चपत जड़ते हुए कहा, "यहाँ न कोई पवित्र है, न अपवित्र। न कोई विवाहित है, न अविवाहित। हम दोनों अभी नर-नारी के सनातन रूप में हैं। समाज ने अपनी ओर से इस रूप को परिभाषित करने के लिये जितने शब्द दिये हैं, उनमें सत्य कम, दिखावा अधिक है। आज इसीलिए विवाहित होने पर भी हम दोनों एक दूसरे के लिये क्वारे हैं, पवित्र हैं। समाज का धर्म सर्वदा और सर्वत्र हमारा भी धर्म हो जाये, यह जरूरी नहीं। जहाँ जरूरत होगी, हम समाज के नियमों को मान लेंगे। किन्तु उसके लिये हम अपने सनातन रूप का त्याग नहीं कर सकते।"

सुधा को पता नहीं चला कि अरविन्द किस भाषा में बोल रहा है। अरविन्द के प्रबल खिंचाव में बह कर अबतक वह उसके अंक में समा गई थी। एक ऐसे अंक में जहाँ आज पहली बार उसे प्यार का अनन्त आकाश फैला हुआ दिखाई दिया। जहाँ एक उड़ान भर कर भी शरीर अपनी सत्ता खो देता है। यहाँ न तो वाणी काम करती है, न कान। कुछ देर में उसने अनुभव किया कि उसकी पलकें मुंद गई हैं। उसके अधखुले होठों पर गर्म-गर्म चुम्बनों की मुहर लगातार जारी है।.........

कमरे से बाहर आँगन में किसी की आवाज सुनकर दोनों जैसे सोते से जगे। दोनों में किसी को याद नहीं रही थी कि बाहर का दरवाजा खुला छोड़ दिया गया है। कोई आदमी भीतर आंगन में खड़ा पुकार रहा था, "भीतर है साहब ?"

"हाँ-हाँ, कौन है ?" अरविंद अपने को सुधा से अलग करता हुआ बोला, "क्या बात है ?"

"बबुनी जी एक खत दिहिन हैं हजूर !"

कण्ठ-ध्वनि से अरविंद पहचान गया कि बाहर अलका का नौकर खड़ा है। उसने बेझिझक आवाज दी, "अन्दर ही आ जाओ।"

नौकर ने भीतर आकर अरविंद को प्रणाम किया। अपनी जेब से एक हरा लिफाफा निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिया। अरविंद बिस्तर पर पड़ा-पड़ा लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ने लगा। पत्र कुछ लम्बा था। पढ़कर अरविंद के अधर पर एक फीकी मुस्कान खिच आई। नीचे फर्श पर घूँघट सरका कर बैठी सुधा उसके चेहरे के एक-एक रंग को देख रही थी। अरविंद कुछ क्षणों तक कुछ सोचता रहा। फिर कागज के एक चिट पर कुछ लिख कर उसे नौकर को दे दिया। बोला, "अलका को दे देना।"

नौकर के बाहर जाते ही सुधा ने प्रश्न किया, "यह कैसी चिट्ठी है ?"

"दरवाजे की सिटकिनी तो बन्द कर आओ," अरविंद ने करवट बदलकर मीठी उलाहना के स्वर में कहा, "बाहर से पहले तुम्हीं तो आईं ? कुण्डी चढ़ा दी होती ?"

सुधा लाज में गड़-सी गई। सचमुच उससे गलती हो गई थी। कुछ मुस्का कर बोली, "तुम दिन में बाहर का दरवाजा ऐसे ही खोल देते हो ?"

"दिन में तो शायद ही कभी डेरे पर रहता हूँ जब रहता हूँ। तो दरवाजा अक्सर खुला ही रहता है। भीतर कौन है जिसके लिये पर्दा करूँ ?"

"तो उसे खुला ही रहने दो न," सुधा ने अरविंद की आँखों में अपनी रसमयी दृष्टि डाल कर कहा, "कुण्डी चढ़ाने की जरूरत ही क्या है ?"

इस बार अरविंद के लजाने की बारी थी। शर्म से कट कर बोला, "मैं अपने लिये थोड़े कह रहा था ? खैर, जैसी तुम्हारी मर्जी।"

"मैं कुण्डी चढ़ाकर आ रही हूँ," सुधा अब बाहर जाने के लिये खड़ी होती हुई बोली।

अरविंद ने लपक कर सुधा का हाथ पकड़ लिया। बोला, "इस समय इसकी क्या जरूरत ? चुपचाप बैठी रहो। तुम तो [illegible]"

फिर कुछ देर बैठ कर साथ-साथ मुक्ति की साँसें तो लो ! कुण्डी चढ़ाकर किसी दूसरे बन्धन का सूत्रपात मत करो।"

सुधा के कदम रुके के रुके रह गये। आत्म-विस्मृति का पर्दा फट गया। वास्तविकता की कठोर चट्टान सामने दिखाई पड़ी। अरविंद के पास घर से आते समय वह मन में कई जिज्ञासायें लेकर चली थी। आज अरविंद से वह उन सबका समाधान चाहती थी। किन्तु यहाँ आते ही मन के सारे प्रश्न विलीन हो गये। अब कोशिश करने पर भी वह उन्हें याद नहीं कर पा रही है। हाँ, उसे इसका अहसास जरूर हुआ कि हँसी-खुशी के अब मुट्ठी भर क्षण ही बच गये हैं। उन्हें व्यर्थ में गँवाना नहीं है। वह सहम कर पीछे मुड़ी। कुर्सी पर बैठने ही जा रही थी कि अरविन्द ने उसे जबरन खींच कर अपने ही पास बिस्तर पर बिठा लिया।

"अगर तुम्हारे साथ इस तरह बैठे मुझे कोई देख ले तो ?"

"तो कह दूँगा, यह मेरी बिलवेड है," अरविन्द ने लगे हाथों जवाब दिया।

"बिलवेड ?" सुधा का स्वर उदास पड़ गया, "काश, तुम मुझे अपनी पत्नी कह सकते !"

अरविन्द ने सुधा की आँखों में झाँक कर देखा। वहाँ जैसे करुण हाहाकार मचा हुआ था। दो-चार बूँदों में ही वेदना का अनन्त लहरा रहा था। उसने उसकी ठुड्डी पकड़ कर उसकी गीली पलकों को चूमते हुए कहा, "तो तुम प्रेयसी को पत्नी से छोटा मानती हो ? इतना समझ लो कि पत्नी को रचनेवाला यह समाज है। प्रेयसी स्वयं भगवान की सृष्टि है। यदि पत्नी प्रेयसी भी हुई और पति प्रिय भी हुआ तो फिर परिवार स्वर्ग बन जाता है। किन्तु तुम्हीं बताओ, ऐसी पत्नी या पति कितनों को मिलते हैं ? स्त्री और पुरुष के वस्तुतः ये दो अलग-अलग रूप हैं। कभी दोनों साथ चलते हैं और कभी अलग-अलग भी। यदि तुम किसी की पत्नी हो तो भी मेरे लिए चिन्ता की कोई बात नहीं। मेरे मन में तो तुम्हारा उससे भी बड़ा सनातन रूप प्रतिष्ठित है। अभी तुम्हें पत्नी कह कर मुझे समाज को धोखा देने में कोई तुक नजर नहीं आता।"

"तुम यह सब कह क्या रहे हो कमल ?" सुधा प्रतिवाद के स्वर में बोली, "हम रहते तो हैं समाज में ही। उससे छिटक कर बाहर निकल कहाँ सकते हैं ? बातें ऐसी बोलो जो सामाजिक जीवन के लिए कुछ अर्थ रखती हों। मैं एक की प्रेयसी बनूँ और दूसरे की पत्नी इसे सह नहीं सकती। विनोद मेरा पति तभी हो सकता है यदि वह मेरा प्रिय भी हो। मैं नाम के लिए किसी की पत्नी होना

नहीं चाहती। किसी को शरीर दिया जाये और किसी को मन, यह भी नहीं चल सकता। शरीर भी ऐसी चीज नहीं जिसे जब चाहा, किसी को दे दिया। शरीर का अधिकारी वही होना चाहिए जो मन का अधिकारी हो। यदि तुम समझते हो कि मैं तुम्हारी प्रेयसी हूँ तो यह भी समझ लो, मैं ही तुम्हारी पत्नी हूँ। मैं तुम्हारी प्रेयसी पत्नी हो जाने में ही अपने नारीत्व की सार्थकता समझती हूँ। एक बार भी तो मुझे अपनी पत्नी कह लो! इच्छा होती है, इस शब्द को सुनते हुए ही मेरे प्राण तुम्हारे अंक में पड़े-पडे उड़ जायें! तुमसे अलग अब मेरी कोई दूसरी मंजिल नहीं।"

सुधा अनजाने ही कमल के वक्ष पर झुक गई थी। अरविन्द ने कई बार उसकी भीगी पलकों को पोंछा। उसे चुप रहने का आश्वासन दिया। अन्त में बोला, "तुम अपनी मंजिल तक आ गई हो सुधी! किन्तु हम दोनों की तथा दूसरे सभी इन्सानों की एक संयुक्त मंजिल भी है। वहाँ हममें से अभी कोई नहीं पहुँचा है। हाँ, कदम बढ रहे हैं। एक दिन पहुँचेंगे जरूर। हमारे जैसे समाज के अनगिनत लोगों की जो कुण्ठाएँ हैं, उनकी जो अतृप्त इच्छाएँ हैं, उन्हीं के धुएँ से उस मंजिल का निर्माण हो रहा है। हमारे आँसू व्यर्थ नहीं जायेंगे। यह दूसरी बात है कि हम अभी उस उज्ज्वल भविष्य के नाम पर अपनी आहुति दे दें। किन्तु यही आहुति शायद अभी हमारे जीवन का सबसे बड़ा प्रयोजन है।".......

अरविन्द की आँखों में न जाने किस दूरी के सपने लहराने लगे। चेहरे पर न जाने किस तेज की किरणें चमकने लगी। सुधा उसके दीप्त मुख-मण्डल को एकटक निहार रही थी। अरविन्द उसी तरह बोलता गया, "हमें ईश्वर ने बनाया है। किन्तु हम ईश्वरीय नियमों से लगातार दूर होते जा रहे हैं। तुम्हारा कहना ठीक ही है सुधी! पत्नी को सामाजिक नियमों का केवल छिलका बन कर नहीं रह जाना चाहिए। बिना बीज का छिलका व्यर्थ होता है। यह बीज प्रेम ही तो है जो न केवल दिव्य है, सनातन है, बल्कि सबसे [illegible] है। विडम्बना तो यह है कि आज चिटुकी भर सिन्दूर प्रेम की [illegible] की अपेक्षा अधिक कीमती हो गया है। यह सिन्दूर नियम, कानून और [illegible] के जाल बिछाये हुए है। उसके भीतर प्रेम की स्वच्छन्द [illegible] घुट रही है। हमें तो वहाँ पहुँचना है जहाँ ऐसे किसी कानून का न होना ही कानून हो, निर्बन्ध होना ही बन्धन हो।"

"यह तो बहुत दूर की बात है कमल," सुधा ने [illegible] हुए कहा। "[illegible] मानो, न मानो; किन्तु मेरी [illegible] यही है। इसके [illegible]

मुझसे नही हो सकती। बेहद थक गई हूँ। ऊब भी गई हूँ। अब तो इन बची हुई साँसों को अपने ढंग से सार्थक कर लेना चाहती हूँ। तभी मैं अन्तिम साँस छोड़ते समय शान्ति पा सकूँगी। मेरी अन्तिम इच्छा को आज पूरा कर दो कमल! विश्वास पूर्वक कह दो कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।"

सुधा के गिड़गिड़ाये स्वर तथा तरल आँखों में तगे चिकने डोरों से अरविन्द का हृदय भर आया। कुछ सोच कर बोला, "तो तुम मेरे मुँह से पत्नी बनना चाहती हो न?"

"ठहरो," सुधा तत्क्षण अरविन्द की गोद से बाहर निकल आई। बिस्तर के एक सिरे पर रखे अपने बटुए में से छोटी लाल डिबिया निकाल लाई। फिर अरविन्द की आँखों में ताकती हुई बोली, "तुमने कहा था न, कि हम दोनों अभी एक दूसरे के लिए क्वारे हैं, पवित्र हैं?"

"हाँ।"

"तो मेरी माँग की ओर देखो। तुम्हारे लिए आज इसकी झूठी लालिमा धो-पोंछ कर आई हूँ। बोलो, यह तुम्हें क्वारी दिखती है?"

"हाँ, दिखती है। यदि सिन्दूर भी रहता तो भी वैसी ही दिखती।"

"तो यह लो मेरे अमर सुहाग का चिह्न। इस ताजे सिन्दूर से मेरी माँग भर दो। जल्दी करो।"

अरविन्द के सामने सुधा के अवनत सिर पर कढ़ा हुआ उज्ज्वल सीमन्त मानो उसकी अपनी मंजिल का ज्योतिर्मय मार्ग बना बिछा था। उसने बिना किसी दुविधा के डिबिया से सिन्दूर लेकर सुधा की माँग भर दी। फिर उसके ललाट तथा सीमन्त के मिलन-बिन्दु को चूमता हुआ बोला, "अब लो, तुम मेरी प्रेयसी ही नहीं, मेरी जीवन-संगिनी भी हो, मेरी धर्मपत्नी भी हो!"

सुधा की आँखें आनन्द के उच्छ्वास से छलछला गईं। नववधू की तरह अपने कन्धे से आँचल लेकर उसने सिर ढक लिया और नीचे झुक कर अरविन्द के पैरों से लिपट गई।

पन्द्रह

शोभा को अपने पति से भेंट हुए कई दिन गुजर चुके थे। जिस दिन वह पति के डेरे से विनोद के साथ अपने घर लौट आई थी, उस दिन से अरविंद भी उससे मिलने नही आया था। वह खुद भी फिर उसके डेरे पर जाकर उससे मिलने का साहस नहीं बटोर पाई थी। उस दिन घर आने पर उसने अपनी माँ को अस्वस्थ जरूर पाया था। किन्तु उनकी सेहत का जो अतिरंजित चित्र विनोद ने खींचा था, वैसी कोई बात नही थी। वह क्या सचमुच अपनी माँ को देखने के लिये ही अपने घर लौट आई थी? अपना मन टटोलने पर वास्तविक कारण उसे दूसरा महसूस हुआ था। माँ का बीमार होना एक बहाना जरूर बन गया। विनोद ने भी उसकी मन की कमजोरी को पकड़ लिया था। पतिभक्ति के रूप में उसने जो बालू की भीत तैयार की थी, वह एक झटके में ही धराशायी हो गई। अब तो उसे अच्छी तरह पता हो गया है कि वह कितने पानी में है। उसे ग्लानि इसी बात की है कि उसने खुद ही पति से चौधरी टोले जाकर रहने का आग्रह किया था।

अब उसको यह ग्लानि भी समाप्त हो चुकी थी। यहाँ लौटने पर वह शुरू में कई दिनों तक यही सोचती रही कि अरविंद के सामने फिर कैसे अपना सिर उठायेगी। किन्तु जब कई रोज गुजर गये और अरविंद फिर उससे मिलने नही आया तो उसका आत्म सम्मान खौल उठा। अरविंद आखिर अपने को समझता क्या है? यदि उसका शोभा से सचमुच का प्यार होता तो कुछ देर के लिये ही सही, एक बार भी तो उसे या अपनी बीमार सास को देखने आ जाता। दिन बीतने के साथ शोभा अरविंद के प्रति और भी कठोर होती चली गई। इधर उसके घर विनोद का आना-जाना पहले से कई गुना बढ़ चला था। शोभा अब उसे रोक भी नही सकती थी। अरविंद का दुराव विनोद का सामीप्य बनता चला गया। विनोद जब तक उसके साथ होता, वह अपनी आँखों के सामने रंगीनी के सिवा दूसरा कुछ नहीं देख पाती थी। आये दिन अपनी कायिक तृप्ति का जैसा अहसास उसे विनोद के साथ हुआ था, उससे आज तक जैसे वह अपरिचित रह गई थी। अरविंद ने न तो उसके शरीर में कभी ऐसी प्यास ही जगाई थी और न उसे ऐसी तृप्ति ही दे पाया था। विनोद की मांसल प्रेम-लीला का नित-नवीन

प्रयोग शोभा की विलासमयी नारी के लिये सम्मोहन बन कर आया था। विनोद के जाते ही शोभा के भीतर कोई दूसरी नारी भी जग जाती। इस नारी का सुधा के साथ लगातार संघर्ष चला करता। संघर्ष का अन्त अभी तक नहीं हुआ था। जबतक अरविंद अपनी ससुराल में रहा, शोभा को अपने पत्नीत्व का अहसास बना रहा। अब उसके दूर चले जाने से उसके पत्नीत्व का बिखराव बड़ी तेजी से शुरू हो गया था। किन्तु अभी भी बिखराव की सिद्धि दूर पड़ी हुई थी। शोभा की सबसे बड़ी बाधा अपनी माँ से ही मिलने लगी थी। उनकी इकलौती सन्तान होने का अनुचित लाभ वह बराबर उठाती रही। अपने प्रति माँ की निश्छलता और उदारता शोभा के मन में अपराधों के नये बीज अंकुरित करती जा रही थी।

निर्मला देवी अधुनातन परिवेश में रहने पर भी धर्मभीरु महिला थीं। अपनी बेटी के लिये उनके मन में असीम स्नेह था। इस स्नेह का पर्दा कुछ ऐसा था कि शोभा की बड़ी से बड़ी कमजोरी भी उन्हें नही दिख पाती थी। ऐसा नही था कि शोभा के साथ विनोद के बढ़ते हुए सम्बन्ध पर उनका कभी सन्देह नही हुआ हो। किन्तु इसे उन्होंने अबतक अधिक बुरे अर्थ में नही लिया था। अभी की स्थिति में अपनी बेटी के मनबहलाव के लिये वे इस सम्बन्ध को उचित भी मानने लगी थी। वे अक्सर विनोद और शोभा को पिक्चर या क्लब जाते देखा करती। इससे उनके मन में कहीं न कहीं खुशी ही होती। अपने जामाता के प्रति क्षोभ इस खुशी के मूल मे होता।

निर्मला देवी सन्ध्या समय इधर नियमित रूप से बिड़ला मंदिर में भगवान का चरणामृत लेने चली जाती थी। किसी-किसी दिन यदि किसी मित्र से भेंट हो जाती तो उन्हें घर लौटने में रात के आठ-नौ तक बज जाते। वस्तुतः उनके जीवन का सपना भी यही था। कोई अच्छा-सा घरजमाई मिल जाये और वे अपनी गृहस्थी का भार उसे सौंप कर खुद तीर्थाटन करती रहें। भगवान ने उनकी यह इच्छा पूरी नहीं की। अरविंद ने अपने हठी स्वभाव के कारण उनका सारा सपना धूल में मिला दिया था। इसका उनके मन पर गहरा आघात लगा था।

एक दिन सन्ध्या समय बाहर निकलने के पहले निर्मला देवी शोभा से बोली, "आज एक मित्र के घर जा रही हूँ बेटा। लौटने में देर हो सकती है। तुम्हें भी ले चलती। किन्तु विनोद आया है, उसके स्वागत-सत्कार के लिये तुम्हारा यहाँ रहना जरूरी है।"

शोभा माँ की ऐसी औपचारिक-सी लगने वाली बातों से अच्छी तरह परिचित थी। उस दिन यदि माँ साथ चलने को कहती भी तो शायद वह विनोद को छोड़कर नहीं जाती। जिस दिन माँ घर पर रहती, वह विनोद के साथ खुलकर मिल नहीं पाती थी। माँ की ओर से कोई बाधा न मिलने पर भी उनकी उपस्थिति से उसके मन में अपने अपराधों का एक अजीब बोध होने लगता। इसीलिये चाह कर भी वह विनोद को अपना सब कुछ नहीं दे पाती थी। आज की सुहावनी संध्या में एक तरफ विनोद का आना और दूसरी तरफ माँ का बाहर जाना, दोनों ही बातें उसकी उमंग का कारण बन गईं। बाहर निकलती हुई अपनी माँ से शोभा ने औपचारिक स्वर में ही पूछा, "किस मित्र के यहाँ जा रही हो माँ?"

"डाक्टर साहब सपरिवार दरभंगे से आये हैं," निर्मला देवी अपनी गाड़ी में बैठती हुई बोली, "उनकी बदली जब से दरभंगे में हुई तब से इधर उनसे भेंट नहीं हो पायी थी। तुम्हारी शादी में भी वे नहीं आ सके थे!"

"ओह माँ, तब तो किरण दी का समाचार भी मिल जायेगा न?" किरण की इस अचानक याद से शोभा की आँखों में चमक आ गई। उत्सुक होकर बोली, "इतने दिन बीत गये, उनकी कोई चिट्ठी भी मुझे नहीं मिली है।"

"सुनती हूँ, उसका जौण्डिस बीच-बीच में उभरता गया था। लम्बी चिकित्सा के बाद वह ठीक हो पाई। इस समय दार्जिलिंग में ही किसी मिशन कालेज में लेक्चरर हो गई है।"

"लेक्चरर?" शोभा अपनी आँखों में आश्चर्य भर कर बोली, "यह तो बड़ी अच्छी खबर है माँ! वे अपने पैरों पर खड़ी हो गई हैं। मैं तो अभी ग्रेजुएट भी नहीं हो पाई हूँ।"

"दुख तो है बहुत बुरी चीज बेटा," निर्मला देवी भावुक होकर बोलीं, "किन्तु जीवन को हरा बनाने में उसकी खाद बड़े काम की होती है। किरण के दुखों ने ही उसे ऊँचा उठा दिया। तू तो सुख में ही लिपटी रह गई। आगे बढ़ती तो कैसे!...... मैंने तो एक दूसरी बात भी सुनी है। शायद किरण की शादी होने जा रही है।"

"शादी?" सुधा चकित स्वर में पूछ पड़ी, "किससे? कब?"

"सो मैं कुछ नहीं जानती। वही तो आज पता लगाने जा रही हूँ।"

निर्मला देवी की गाड़ी आगे बढ़ गई। शोभा कुछ क्षणों तक खोई-खोई सी बंगले के गेट पर खड़ी रह गई। माँ का यह कहना कि शोभा सुख में ही लिपटी

रह गई, कितना असत्य है ! उसकी तरह दुखिया दूसरा कौन है ? जिसे माँ सुख समझती है, वह शोभा के लिये दुख का अंगारा है। यहाँ तक कि माँ का सुख-भरा प्यार भी आज शोभा के लिए जहर होता जा रहा है। दुख को तो किसी की सवेदना भी मिल जाती है। किन्तु उसके इस बेहया सुख को तो भी नसीब नही। काश, अपनी माँ का यह निश्छल प्यार उसे नही मिलता, अपने पति का अटूट विश्वास उसे प्राप्त नही होता ! प्यार और विश्वास की इस दुहरी चोट से शोभा निरन्तर टूटी जा रही है। इसका किसी को पता नही। उससे अरविन्द घृणा करे, माँ नफरत करें। सारी दुनिया के लिये वह घृणित वस्तु हो जाये। तभी वह शायद सुख के इस जहर को बुझा पायेगी। वह जैसी है, दुनिया उसे उसी रूप में क्यों नही लेती ?........किरण दी विधवा हो गई तो सभी जान गये कि वे विधवा है। अपनी-अपनी सोमा में सभी उन्हें सहानुभूति देते आये। उनकी सजल आँखें पोंछते आये। किन्तु पति के रहते हुए भी शोभा के इस वैधव्य को कौन जानता है ? इस वैधव्य के ताप को वह जिन उपायों से शान्त कर रही है, उसे भी कौन समझता है ?... जब शोभा अपने बंगले के खुली छत पर आई तो आसमान में शरद को सुहानी संध्या फैली हुई थी। छत की रेलिंग के सहारे खड़ी-खड़ी वह सामने उड़ते कौवों के एक झुण्ड को निहारती रह गई। कौवे पश्चिम के अरुणाभ दिगन्त में ऐसे उड़े जा रहे थे : मानो अन्धकार के दूत हों। शोभा जानती है कि सन्ध्या की जिन किरणों में अभी सोना ही सोना है, कुछ ही क्षणों में उनमें कालिख पुत जायेगी। कौन जानता है, शोभा जिसे आज सोना समझ रही है, उसका अन्त भी कुछ ऐसा ही हो ! किन्तु अब उपाय भी क्या है ? उसमें खुद इतनी शक्ति नही है कि अपने को इस सुनहली तृष्णा में बहने से रोक सके। माँ और अरविन्द भी अब उसे इस रास्ते में जाने से नहीं रोक सकते। वे तो उसे सुखी, सुसंस्कृत, सच्चरित्र और निश्चिन्त मानते ही हैं। फिर क्यों आयेंगे उसे बचाने ? उसके सुख के सोने को सन्देह की दृष्टि से देखने ?.......

भीतर कमरे में से विनोद को मन्द-मधुर गुनगुनाहट सुनाई पड़ रही थी। कमरे में अकेला बैठा वह शोभा का इन्तजार कर रहा था। शोभा को लगा जैसे गीत की उन अस्पष्ट कड़ियों में उसका मन बंधता चला जा रहा है। कितना सुरीला और भावभरा है यह स्वर। इसके जादू में वह जितनी देर पड़ी रहती है, उसके सामने दूसरी कोई उलझन दिखाई नही देती। तब वह इस स्वर की राह में फूलों के गुच्छे बन कर बिछ जाती है। खुद विनोद इसी स्वर का मूर्त रूप है।

उसके प्रत्येक स्पर्श में इसी के आरोह-अवरोह की रसमयी लहरें भरी होती हैं। शोभा अब किसी तरह भी इन लहरों से अपने को उबार नहीं सकती।

कुछ देर बाद शोभा ने सुगन्धित पवन के झोंके की तरह अपने कमरे में प्रवेश किया। भीतर अकेले बैठे गुनगुनाते हुए विनोद की गोद में अपने को आप से आप सौंप दिया। विनोद पहले कुछ अकचकाया। फिर उसे अपनी बाहों में लेकर मुस्का कर बोला, "ऐसी क्या बात हो गयी शोभा? इतना हाँफ क्यों रही हो?"

"इसका जवाब अपने से ही पूछ लो न," शोभा हाँफते-हाँफते प्यार के स्वर में बोली, "कैसे जादूगर से पाला पड़ा है!"

"ओह!" विनोद हँस पड़ा। नागिन की तरह बिखरे शोभा के बालों को अपने हाथ में लपेट लिया। फिर निर्दयता के एक मीठे आवेग में उसके मुखड़े को अपने मुख से सटा कर बोला, "जादूगरनी तो तुम ही जो! पूरा कामरूप का सिद्ध किया जादू है इन आँखों में!"

इसके बाद विनोद शोभा के ओठ, पलक और ललाट पर लगातार चुम्बन जड़ते हुए उलाहने के स्वर में बोला, "इतनी देर क्यों कर दी तुमने? मैं तो अकेला बैठा-बैठा बोर हो रहा था।"

"एक्सक्यूज मी, कुछ देर जरूर हो गयी," शोभा को अचानक किसी बात की याद आई। अपने को विनोद की गोद से खिसका कर नियंत्रित स्वर में बोली, "आज कुछ काम की बातें करनी है तुमसे।"

"जैसे अब तक जो कुछ हुआ है वह निष्काम है," विनोद ने मीठी चुटकी ली, "सुनाओ तो सही, तुम्हारे कोश में 'काम की बात' का क्या अर्थ होता है?"

कमरे में अभी रोशनी नहीं जली थी। किन्तु अभी भी इतना प्रकाश था जिसमें शोभा और विनोद एक दूसरे को अच्छी तरह देख सकें। सामने खुली खिड़की से ठंढी हवा उनकी देह को कण्टकित कर रही थी। शोभा ने जैसे विनोद का मजाक समझा ही नहीं हो। खिड़की से बाहर फैले आसमान में दूज के चाँद की पतली रेखा पर नजरें टिकाती हुई बोली, "जानते हो, किरण दी प्रोफेसर हो गई हैं?"

विनोद को शोभा की आवाज, उसके शब्द और विचार में कोई तुक नजर नहीं आया। चकित स्वर में बोला, "किरण दी! कौन किरण दी?"

"और उनकी शादी भी होने जा रही है!" शोभा ने जैसे विनोद की बात सुनी ही नहीं हो।

"यह कैसा तमाशा कर रही हो ?" विनोद इस बार झल्ला कर बोला, "किरण ! प्रोफेसर ! शादी ! आखिर इन सबके मानी क्या है ? तुम्हारी कौन होती है वह ?"

"तुम शायद उसे भूल गये होगे," शोभा अपने दाहिने घुटने पर ठुड्डी टेक कर चेहरे में स्मृति की स्वप्निलता भरती हुई बोली, "बड़ी दुखिया थी बेचारी। भगवान ने उसे सब कुछ दिया था—रूप, संस्कार, शिक्षा, ऐश्वर्य आदि सब। किन्तु शादी होने के तुरत बाद पति स्वर्गवासी हो गये।"

"ओ, समझा," विनोद कुछ याद करके बोला, "वही गोरी-गोरी-सी लड़की जिसे तुम्हारे घर ही एक बार देखा था। फिर शायद बनारस या कहीं चली गई थी।"

"हाँ-हाँ, वही," शोभा ने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाते हुए शान्त स्वर में कहा, "घोर दुख की काली रातें भी सुख की चाँदनी बिखेरने जा रही हैं। केवल मैं ही हूँ जिसके मिथ्या सुख की पीड़ा कभी मिटने वाली नहीं। काश, मैं सुख के पीछे इस तरह नहीं भागती। किरण दी की तरह दुखी आत्मा होती !"

शोभा ने अपनी बात मानो विनोद से नहीं कही थी। उसे अपनी भटकती हुई आत्मा को सुनाने के लिए ही बोली थी। वह ताक रही थी विनोद की ओर ही। किन्तु उसकी नजरें विनोद के भौतिक अस्तित्व को पार कर कहीं बहुत दूर आगे टिकी हुई थीं। विनोद को उसके इस दार्शनिक पागलपन पर बड़ी हँसी आई। किसी तरह अपनी हँसी को गले के नीचे दबा कर चुहल के स्वर में बोला, "आई सी ! तो तुम सीधे यह न कहो कि तुम्हें किरण से ईर्ष्या है। इसमें छिपाने को कौन-सी बात ? पर अचरज तो यह है कि लोग दूसरे के सुख से ईर्ष्या करते हैं ! इधर तुम किरण के दुख पर ही आँख लगा रही हो। यों किरण में सचमुच कुछ बात ऐसी है जिसपर ईर्ष्या की जा सकती है। यदि रूप को ही लो तो वह शायद तुमसे अधिक सुन्दरी है।"

"क्या सच ?" शोभा को मानो किसी ने कच्ची नींद से जगा दिया हो। अपने रूप की हिनाई सुनकर कुनमुनाती हुई बोली, "तुम गलत कह रहे हो। यदि ऐसी बात होती तो आज मैं अरविन्द की पत्नी नहीं बनी होती !"

"क्या मतलब ?"

"किरण दी के रूप का पूरा आकर्षण अरविन्द के मन पर बिछा था। किन्तु

अरविन्द ने जब मुझे देखा, वह झट से मेरी तरफ खिंच गया। यही इसका पुष्ट प्रमाण है!"

"तो यह बात?" विनोद के स्वर में अब व्यंग्य का रंग घुल-मिल गया, "तब तो अरविन्द जी सचमुच पारखी निकले! कवि जो हैं! अब इसके बाद तुम्हें कौन सुन्दरी नहीं मानेगा?"

"रहने दो, मैं अच्छी ही सही," शोभा के नथुने काँपने लगे। विनोद के चुभते व्यंग्य से मर्माहत होकर उसने मुँह घुमा लिया। तलखी के साथ बोली, "मुझे रूप की जरूरत नहीं। दुनिया में बहुत लोग सुन्दर हैं। आई डोन्ट केयर!"

विनोद मानो इसी घड़ी की इन्तजारी में था। अपनी जगह से खिसक कर शोभा के पीछे पहुँचा। मान से भरी शोभा की गरदन में अपना दाहिना हाथ डाल कर उसके ललौंछे मुखड़े को ऊपर उठा लिया। फिर पीछे से ही उसके ललाट को चूमता हुआ बोला, "कितनी सिली हो तुम! मजाक को भी सीरिअसली ले लेती हो। तुम्हीं कहो, क्या मैं तुम्हारे रूप के जादू से दीवाना नहीं बन गया हूँ? उसी के कारण तो अपनी पत्नी तक को छोड़कर तुम्हारे पीछे पागल बना चलता हूँ!"

"तो तुम मेरे रूप के दीवाने हो न?" सुधा एकाएक विनोद की ओर मुड़ गई। उसके प्यार भरे शब्दों का उसपर अभी कोई प्रभाव नहीं हुआ। अपनी पैनी दृष्टि विनोद पर टिका कर बोली, "यदि तुम मुझे अप्सरा की तरह सुन्दर समझते हो, तब भी बात जहाँ की तहाँ रह गई। आज मुझमें रूप है तो तुम मुझे पसन्द करते हो। कल अगर मैं कुरूप हो जाऊँ तो?"

विनोद को आज की शोभा की विचित्र-सी मन:स्थिति का अन्दाज लगाना कठिन हो गया। वह समझ नहीं पाया कि आखिर बात क्या है? विनोद तो उसके पास मनबहलाव के लिए आया था। ऐसे प्रश्न सुनने या उनके उत्तर देने के विषय में उसने सोचा तक नहीं था। शोभा की अन्तिम बात सुनकर उसे थोड़ा रोष हो गया। किन्तु आवेश पर काबू करके सधे हुए वकील की तरह बोला, "लगता है, आज तुम मेरी बात सुनना नहीं चाहतीं। सुनकर भी उसका उटपटांग अर्थ लगाना चाहती हो। आई एम रीअली वेरी सॉरी, मेरे चलते तुमको इतनी तकलीफ हुई!"

"ओह, नो नो!" शोभा ने अपने आवेगों को पलक-सम्पुटों में दबा लिया। विनोद की छाती में अपना सिर गड़ाती हुई आकुल स्वर में बोली, "तुम मुझे

नहीं समझ रहे हो। तुम्हीं क्यों, सारी दुनिया मुझे मिस-अन्डरस्टैण्ड कर रही है। सच बात कहूँ, मैं रूप और शरीर इन दोनों से तंग आ चुकी हूँ। तुमने मेरे रूप की प्रशंसा की। एक हद तक मैं इससे सुख भी हूँ। किन्तु इसी को पूरी सचाई मान कर चलना मेरे लिए कठिन हो रहा है। मेरी ही बात लो न। क्या तुम बहुत रूपवान थे ? क्या इसीलिए मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट हुई ? मैं ठीक से कह नहीं सकती। इसके पीछे कारण क्या रहा, मैं नहीं जानती। रूप और गुण में अरविन्द तुमसे ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं ! फिर तुम्हारी ओर क्यों दौड़ी मैं ? शायद यह तुम्हारे रूप का चमत्कार नहीं था। यह था तुम्हारा स्वर और उसके पीछे पिघलते प्राणों का दर्द। यही दर्द मेरे मन के कोने-कोने में छाता चला गया है। जिस समय अरविन्द से शादी हुई, उस समय भी मैं तुम्हारे इस रूप से मुक्त नहीं थी। शायद उस समय मेरे मन की आग पर परिस्थितियों की राख का झीना पर्दा पड़ गया। तुम्हारे कुछेक व्यवहारों से मैं खिन्न हो गई। यह मेरी भूल थी। उस समय मैं अपने अन्तर को ठीक से टटोल कर नहीं देख पाई। इस अन्तर में तुम बचपन से ही प्राण बनकर छाये हुए थे। मैंने दूसरी ओर बहना चाहा। प्रवाहित होने के लिए अच्छी दिशा भी खोज ली। किन्तु न जाने कहाँ-कहाँ बहती हुई अन्त में तुम्हारे अदृश्य हाथों के घेरे में ही आ गई। यह सचाई है कि मैं तुम्हारी ओर बहती आ गई हूँ। किन्तु इस क्रिया में न जाने खुद अपने से कितनी दूर चली गई हूँ। मेरी आत्मा के साथ मेरी इस गति का दुराव ही मेरी सारी पीड़ा की जड़ है विनोद !"

विनोद ने अपनी छाती की धड़कनों के माध्यम शोभा के दुखते प्राणों की आवाजों को ग्रहण किया। कुछ देर चुप बैठा यही सोचता रहा कि शोभा को क्या जवाब दे। जो आदमी आज तक खुद अपने को नहीं समझ पाया, वह दूसरे को कैसे समझा सकेगा ! वह तो वकील है, कवि या दार्शनिक नहीं। तर्क उसे प्रिय है। तर्क पर ही वह अपने-पराये को तोलता आया है। उसे कुहासा नहीं, स्पष्टता चाहिए। अपने मन के भावों को शब्दों के आडम्बर में बाँधना उसे नहीं आता। वह जिस बात को शोभा से इतनी सफाई के साथ कह देता है, शोभा को उसी में धुआँ क्यों नजर आता है ? अपनी पत्नी को वह छोड़ चुका है। उसे छोड़ने या शोभा की ओर प्रवृत्त होने के पीछे उसकी कोई भावुकता नहीं। यह तो सीधे शब्दों में उसकी रुचि या पसन्द की बात है। कुछ देर सोच कर विनोद ने शोभा से कुछ कड़ी आवाज में पूछा, "आखिर तुम चाहती क्या हो शोभा ? अपनी बातें साफ-साफ क्यों नहीं बोलतीं ?"

"मैं चाहती हूँ कि मैं कभी भी अरविन्द के विषय में न सोचूँ," शोभा स्थिर शब्दों में बोली, "तुम्हारी ओर आ गई हूँ तो हर तरह से तुम्हारी होकर ही रहूँ। अपने मन को खण्ड-खण्ड करके जहाँ-तहाँ फेंकती न चलूँ। खुद अपने लिए ही मैं अजनबी न बन जाऊँ।"

"तो यह सम्भव कैसे होगा ?" विनोद अपने ही शब्दों से लजाकर और उन्हें होठों के संकोचन से एक झटका-सा देकर नये अन्दाज में बोला, "सब ठीक हो जायेगा शोभा ! अब तुम ज्यादा दिन अनिश्चय की स्थिति में नहीं रहने पाओगी।"

"तुम जल्दी कुछ करो भी तो !" शोभा ने विनोद को भीगी पलकों से निहार कर कहा, "माँ से मुझे बहुत डर लगता है। उनके भय से रात में ठीक से सो भी नहीं पाती।"

"डर लगता है !" विनोद चौक कर बोला, "क्यों ?"

"तुम मेरी माँ को नहीं जानते," शोभा इस तरह बोली जैसे उसकी माँ छिप कर उसकी बातें सुन रही हो, "माँ का अन्धा स्नेह ही मेरे डरने की वजह है। अपने इसी स्नेह के कारण माँ ने मुझे तुम्हारे साथ मुक्त छोड़ रखा है। किन्तु यदि उन्हें सही बात की जानकारी हो जाये..... !"

"मतलब यह कि अबतक उन्हें गलत बात की जानकारी है !" विनोद की आँखें झुंझलाहट से सिकुड़ गईं। शोभा की बातें सुनकर मन में कसैलापन छा गया। उसे जबरन गले के नीचे दबाता हुआ बोला, "मैं भी तुम्हारी माँ को जानता हूँ। एक तरह से हमारी और तुम्हारी सगाई बचपन में ही हो गई थी। तुम्हारी माँ इसे अच्छी तरह जानती हैं। वे एक दूसरे के प्रति हमारे प्रेम को नहीं जानती हों, ऐसा मैं नहीं समझता। यह दूसरी बात है कि हम दोनों की एक दूसरे से शादी नहीं हुई है। अतः अब हमारा प्रेम उनके धार्मिक मन में खटक पैदा कर सकता है। किन्तु यह खटक ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है। हम अपने प्यार के रास्ते में बड़ी से बड़ी चट्टान की भी परवा नहीं करते। मुझे आश्चर्य है, तुम्हारी जैसी आधुनिका के मन में सामाजिक रूढ़ियों से इतना डर क्यों बना हुआ है ? तुमने अभी ही तो किरण की चर्चा की थी। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि उसके श्वसुर, माँ आदि उसकी दूसरी शादी के विरुद्ध थे। फिर अपने लोगों के विरोधों के बावजूद किरण जैसी विधवा अपनी शादी की तैयारी करे, यह कम साहस की बात है ?"

"किरण दी दुखी जो हैं," किरण का प्रसंग आते ही शोभा की जबान फिर लड़खडाने लगी, "और मैं हूँ एक सुखी सधवा। तुम्हीं बोलो, अरविन्द ने मेरा क्या बिगाड़ दिया है कि मैं छोड़ दूँ उसे? उसकी तरह सादगी का जीवन मैं नहीं जी सकती। उसकी तरह अभावों को अपनाकर नहीं चल सकती। उसके और मेरे बीच बस इतनी-सी ही दीवार है न? अरविन्द कभी मुझसे झूठ नहीं बोला। कभी झूठे वादे नहीं किए। कभी मेरे प्रेम की तौहीनी नहीं की। इसके बदले मैंने उसे क्या दिया?—धोखा और विश्वासघात! तो त्याज्य मैं हूँ या अरविन्द है? अच्छा तो लगता है कि मैं हर तरह से तुम्हारी हो जाऊँ। किन्तु तुम्हीं बताओ, अरविन्द के सामने कैसे यह सब कबूल कर पाऊँगी?"

शोभा के टूटते प्राणों का दर्द विनोद ने महसूस नही किया, ऐसा नही कहा जा सकता। उसकी दीनता भरी बातें सुनकर आज पहली बार जैसे विनोद के मन में भी थोड़ा मानवीय कम्पन जगा। उसे स्मरण हुआ, सुधा के साथ क्या उसने शादी इसलिए की थी कि वह शोभा से अच्छी थी?.......वह तो शोभा के रूखे व्यवहारों से उत्तेजित हो गया था। उसकी शादी इसी उत्तेजना का फल थी। सुधा से व्याह रचा कर वह शायद शोभा को और खुद अपने को भी दण्डित करना चाहता था। आखिर उत्तेजना शान्त हुई। दण्ड की चोटों ने फिर इन दोनों को करीब ला दिया। शुरू-शुरू में अपनी शादी के बाद विनोद शोभा को अपना शिकार मात्र समझता रहा। इस शिकार को अपने जाल में तड़पते तथा अपनी मुक्ति के लिए छटपटाते देख उसके अन्तर्मन को सुख मिलता रहा। अपने ढंग से उसने बदला ले लिया था। यही उसकी विजय थी। जिसने उसे कई बार अपमानित किया था, वही शोभा अब दिन-रात उसके पाश में बँधी रहती है। किन्तु विजय का उन्माद धीरे-धीरे प्यार के आवेग में बदलने लगा। अब शोभा उसकी नजर में कोई शिकार नही थी। विजय या पराजय की कसौटी नही थी। अब शोभा उसकी प्राण-प्रिया है। उसे वह सभी तरह अपना बना लेना चाहता है जैसे खुद शोभा उसे सर्वांशतः अपना लेना चाहती है। ऐसा करने में उसके सामने भी कई समस्यायें है। किन्तु ये समस्यायें एक मर्द की है। ऐसा मर्द जो कट्टर भौतिकवादी है। वह किसी यथार्थ को इसलिये स्वीकार करना नहीं चाहता कि उसपर किसी अधर्म या सामाजिक आचार की मुहर लगी है, बल्कि इसलिये कि वही यथार्थ है। जिस प्रकार अरविन्द ने शोभा का अहित नहीं किया है, इसी प्रकार सुधा ने भी विनोद का कुछ नहीं बिगाड़ा है। विनोद खुद चाहे जैसा

भी हो, सुधा तो उसकी पत्नी के रूप में ही रहती आई है। फिर भी विनोद उसे नहीं चाहता। यह इसलिये कि वह विनोद की असलियत नहीं। वह एक भूल है जो सुधारी जा सकती है, अपनायी नहीं जा सकती। भूल-सुधार के रास्ते विनोद की नजर में बिल्कुल सुलझे हुए हैं, साफ है। शोभा के रास्ते की तरह उनमें न कोई उलझन है, न मोह, न क्षोभ। इतना निश्चित है कि सुधा विनोद की पत्नी नहीं हो सकती। और चाहे जो कुछ हो ले। किन्तु जिस तरह वह दूसरे की पत्नी को अपनी पत्नी बनाना चाहता है, उसी तरह अपनी पत्नी को भी इस मामले में आजाद क्यों नहीं कर देता? उसे भी दूसरे की पत्नी के रूप में देखने में उसे शिकायत किस बात की है? शायद इसके लिये भी वह तैयार हो जाता, यदि परिस्थिति कुछ भिन्न रहती। यदि शोभा को पति के रूप में अरविन्द नहीं मिला होता, उसी अरविन्द के प्रति वह सुधा के प्यार को लक्ष्य नहीं करता। अपनी बाल-सहचरी के पति के रूप में अरविन्द जैसे मामूली युवक को देखकर विनोद की ईर्ष्याग्नि भड़क उठी थी। उसी अरविन्द के प्रति सुधा का झुकाव देखकर वह और भी जलभुन गया। धीरे-धीरे सुधा को सताने में उसे रस मिलने लगा। उसकी कठोरतायें सीमा लांघने लगीं। उसने अपने को तो पत्नी के हर बन्धन से छुड़ा लिया, किन्तु सुधा को अपने कठोर बन्धनों में और भी जकड़ता चला गया।

किन्तु अभी-अभी शोभा ने जिस प्रकार अरविन्द के गुणों का बखान किया, उससे विनोद पहले की तरह क्षुब्ध नहीं हुआ। उसने आज पहली बार महसूस किया कि शोभा को समस्या उसकी अपनी समस्या है। उस पर क्षोभ प्रकट करके अब वह अपना ही नुकसान करेगा। शोभा के स्वरों में उगने वाले अरविन्द के प्रशंसा-वचनों को उसने इसी समस्या का मूलधन माना। इसे ऋण सहित चुकता कर देना होगा। शोभा की समस्या एक औरत की समस्या है। ऐसी औरत जो अप-टू-डेट हो कर भी अपने को धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त नहीं कर पाई है। शायद यह धार्मिकता उसे अपने परिवार से विरासत के रूप में मिली है। एक वकील की तरह विनोद ने समस्या की जड़ पकड़नी चाही है। इसे वह फुनगी से काटने की अपेक्षा जड़ से ही काट देना चाहता है।

शोभा उसके सामने ही पलंग की बाही पर सिर टेके चिन्ता की मुद्रा में बैठी थी। उसकी एक आँख नहीं दिख रही थी। दूसरी आँख की झुकी पलकों के कम्पन से ही विनोद उसके मानसिक कष्ट की थाह लेना चाहता था। सांझ के झुटपुटे को जब अंधेरा कुछ ज्यादा पी गया तो विनोद को शोभा के भावों की

परख लेने में कठिनाई महसूस होने लगी। उसने धीरे से उठ कर स्विच दबा दिया। कमरे में हल्का नीला प्रकाश छा गया। इसने शोभा की समाधि भंग कर दी। उसने अकचकाई नजरों से विनोद को देखा। उस समय विनोद को लगा जैसे कमरे की नीली रोशनी तरल बूँदों में परिणत होकर शोभा की पलकों पर छा गई हो। शोभा अपनी बोझिल नजरों से उसे कुछ देर निहारती रह गई। विनोद ने धीरे से अपनी उँगलियों के हल्के स्पर्श से उसकी पलकों के चमकते कतरों को पोछ दिया। सहानुभूति के स्वर में पूछा,"एक बात बताओगी शोभा ?'

"पूछो।"

"अपने चरित्र और मनोबल को अरविन्द के चरित्र की तुलना में इतना हीन क्यों समझती हो ? यह नासमझी है, अथवा जान बूझकर सचाई को झुठलाना है ?"

शोभा ने अपनी झुकी नजरों को उठा लिया। विनोद के गम्भीर पड़े चेहरे को निहार कर विस्मय के स्वर में बोली, "मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।"

"मतलब साफ है." विनोद के स्वर से लगा जैसे वह कोर्ट में जिरह कर रहा हो, "मैं ऐसे आदमी को पसन्द करता हूँ जो जैसा भीतर वैसा ही बाहर हो। वह ऐसे व्यक्ति सेबहुत अच्छा होता है जिसके भीतर कुछ और बाहर कुछ हो।"

"यदि ऐसा कोई है तो वह मैं हूँ," शोभा ने विनोद के स्वर का मर्म समझ लिया। उसमे कुछ आहत-सी होकर सिर झुकाए ही बोली, "मैं ही अब तक अरविन्द को ठगती आई हूँ।"

"झूठ!" विनोद का स्वर कड़ा होता गया,"यदि तुम सही अर्थ में उसे ठगना चाहती तो उसके लिये तुम्हारे मन में ऐसी सहानुभूति, ऐसा प्रेम नहीं होता।"

शोभा ने इस बार विनोद पर अपनी खोजती हुई नजर डाली। उसकी आँखों में कोई अर्थ पढना चाहा। वहाँ ऐसा कुछ न पाकर उसकी पलकें प्रश्न बनी कुछ देर तक खुली की खुली रह गई। विनोद चुप रहकर शोभा पर अपनी बातों की प्रतिक्रिया भाँपता रहा। फिर बोला, "तुमने आज तक इसे समझने की कोशिश क्यों नहीं की कि मैं भी एक सहृदय पति हूँ। फिर मैं सुधा को उपेक्षा की दृष्टि से क्यों देखता हूँ ? शायद तुम सोचती होगी कि सुधा को उपेक्षित करने के पीछे मेरे मन में तुम्हारे प्रेम की अमर ज्योति है। इस ज्योति से अँजी हुई मेरी आँखें

सुधा को सह नहीं पाती। बात कुछ हद तक ठीक भी है। किन्तु जिस तरह तुम मुझे अपना सर्वस्व सौंप कर भी अरविन्द का गुणगान कर सकती हो, उसी तरह मैं तुम्हारे प्रेम में दीवाना होकर भी सुधा जैसी सुशील और सुन्दरी पत्नी का गुणगान कर सकता था। किन्तु मैंने ऐसा आज तक नहीं किया। ऐसा करके न तो मैंने अपने को ठगना चाहा और न तुम्हारे मन को दुखाना ही।"

शोभा को लगा जैसे उसकी आँखों पर लगे पर्दे को किसी ने अचानक सरका दिया हो। सचमुच उसने इन बातों की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया था। अपने प्रति विनोद के समर्पण-भाव से वह इतनी आश्वस्त रहती आई थी कि सुधा के बारे में वह कुछ इस प्रकार सोच ही नहीं पाई। एक बार उसे अरविंद और सुधा के बचपन के रिश्ते की कुछ जानकारी हुई थी। तब उसका स्वयं अपने प्रति अपराधी मन इस रिश्ते के तिल का ताड़ मान बैठा था। वह सुधा पर इसलिये रुष्ट हुई थी जैसे वह उसके पति के जीवन में आने का अधिकार नहीं रखती थी। अभी-अभी उसे नया अनुभव हुआ। अरविंद के विषय में उसकी स्नेह-भरी बातें सुनकर विनोद का बुरा मानना स्वाभाविक है। सचमुच विनोद के प्रेम के आगे उसका प्रेम बौना है। वह तो अपने व्यवहारों से विनोद को कष्ट ही देती आई है। स्वयं विनोद अपने विषय में उससे ऐसा कुछ नहीं बोला है जिससे उसका मन आहत हो।

इस नये अहसास के जगते ही शोभा ने अपराधी नजरों से विनोद की ओर देखा। विनोद को अपनी ओर एकटक ताकते देखकर उसने संकोच से सिर झुका लिया। अपनी साड़ी के छोर में उँगलियाँ उलझाने लगी। विनोद की आवाज सुनाई पड़ी,"मेरी बातों से बुरा तो नहीं मान गई ?"

"मैं ?..... नहीं तो!" शोभा विनोद की ओर न देखकर दूर खिड़की के पार निहारती हुई बोली,"मैं सचमुच लज्जित हूँ। मेरे चलते तुम्हें तकलीफ हुई।"

"नेवर माइंड डीयर," विनोद ने अपनी हथेलियों में शोभा की कनपटियों को जकड़ते हुए उसके चेहरे को अपनी ओर मोड़ कर कहा, "तुम्हारे प्यार का मुझे पूरा भरोसा है। तुम्हारी चिन्ताओं को मैं मिटा कर रहूँगा। आज नहीं तो कल अरविंद की पोल खुल कर रहेगी। तभी तुम्हें पता लग जायेगा कि उसकी असलियत क्या है ? फिर तुम उसके आगे किसी हीन भावना से ग्रस्त नहीं हो पाओगी।... ...तो अब चलता हूँ।"

"नहीं, यह कैसे ?" शोभा विनोद की हथेलियों से अपना चेहरा मुक्त करके घबड़ा कर बोली, "इतनी जल्दी कैसे जाओगे ? बातें करने में इतना डूब गई कि तुम्हें अब तक चाय भी नहीं पिला सकी।"

"नहीं शोभा," विनोद खड़ा होता हुआ बोला,"चाय फिर कभी पी लेंगे। अभी कुछ जरूरी काम से बाहर जाना है।"

शोभा ने उसे रोकना चाहा। किंतु वह इतनी जल्दी में बाहर चला गया कि न तो वह फिर कुछ बोल सकी, न उसे रोक ही पाई। हतबुद्धि सी खड़ी-खड़ी जीने पर विनोद के जूते की बुझती हुई आवाजों को सुनती रह गई। जब ये आवाजें खो गईं तो उसने पाया कि उसके मन के अँधेरे में अब कुछ नये दीप जलने लगे हैं।......तो क्या सचमुच अरविंद का चरित्र भी उसी की तरह गिरा हुआ है ? वह भी किसी दूसरी लड़की से प्यार करता है ? शोभा उसके प्रेम की एक मात्र अधिकारिणी नहीं ? विनोद उसकी शंकायें जगाकर खुद चला गया था। अब तो मन के इस विष को पीते रहने के सिवा कोई उपाय नहीं था। विनोद का अनुमान गलत था कि अरविंद के चरित्र की कुछ ऐसी बातें जानकर शोभा उसकी ओर से उदासीन हो जायेगी। इन शंकाओं का शोभा के मन पर उल्टा असर होने लगा। वह भीतर ही भीतर ईर्ष्याग्नि से दग्ध होने लगी। अरविंद किसी दूसरी लड़की से प्रेम करे, इसे वह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। मन के नये उत्ताप में वह कमरे के बाहर आई। छत की रेलिंग पकड़ कर कुछ सोचती खड़ी रही। दूज के चाँद की मद्धिम किरणें आकाश के गहरे नीलापन में उदास-उदास फैली थीं। दूर कहीं से गिरजाघर का घण्टा बज रहा था। उसकी आवाजें आकाश के दूरव्यापी कानों में बिखरती-मिटती जा रही थीं। विश्व की अनन्त सत्ता जैसे उसकी ओर से अपने कान बन्द कर किसी दूसरे चिन्तन में लीन थी। कोई नहीं था जो शोभा को सुन सके। उसके मन में जगी इस नयी आग को शीतल कर सके। वह अपने मन के किसी कोने में अरविंद को अभी भी देवता समझती थी। स्वयं कमजोरियों में लिपटी रहने पर भी शायद उसी देवता की अदृश्य शक्ति के सहारे कदम बढ़ाये जा रही थी। किन्तु आज इस शक्ति को भी डगमगाते देख कर उसका स्वयं अपने ऊपर से विश्वास हिलने लगा।

सोलह

अलका के बाहर जाने के लगभग घंटे भर बाद ही पण्डितजी कई दिनों पर घर वापस आये। आते ही सबसे पहले अलका के कमरे में गये। पटना सीटी की तरफ से वे अपने किसी मित्र की गाड़ी से घर लौटे थे। उनकी कार जब पत्थर की मस्जिद से कुछ आगे बढ़ी तो उन्हें रिक्शे पर सामने से आती अलका दिखाई पड़ी। अलका को अकेले कहीं जाते देख कर उनके मन में कौतूहल हुआ। सोचा, किसी सहेली से मिलने जा रही होगी। किन्तु उनके जानते अलका की कोई सहेली उधर नहीं रहती थी। मन में आया कि कार रोक कर अलका को बुला लें, किन्तु ट्राफिक की भीड़ के बीच सड़क बड़ी तंग थी। सोचते-सोचते कार आगे निकल गई। पण्डितजी अलका के लिये कलकत्ते से नये फैशन की कुछ कीमती खादी सिल्क की साड़ियाँ, ब्लाउज पीस और सैंडल लेते आये थे। घर पहुँचते ही अपना उपहार अलका को सौंप कर उसे खुश कर देना चाहते थे। किन्तु अब अलका की अनुपस्थिति से उन्हें मन ही मन बड़ी खीझ हुई। पहले नहीं, किन्तु इधर कुछ दिनों से अलका पर उनकी सतर्क दृष्टि रहने लगी थी। उन्हें इसका अहसास होने लगा था कि इधर कुछ दिनों से अलका उनसे कटी-कटी-सी रहने लगी है।

अलका के कमरे में सभी सामान बेतरतीब पड़े थे। पण्डितजी ने कमरे में ऐसी बेतरतीबी पहले कभी नहीं देखी थी। मेजपोश एक तरफ काफी लटक गया था। बिस्तर का कवर भी उसी हालत में था। किताबें कुछ नीचे फर्श पर, कुछ बिस्तर पर बिखरी थीं। अलका के नटवर एक कोने में औंधे मुँह गिरे पड़े थे। पण्डितजी विस्मित दृष्टि से कुछ देर खड़े-खड़े यह सब निहारते रह गये। अचानक उनकी नजर पलंग के पैताने पड़ी डायरी के खुले पन्ने पर जाकर अटक गई। वे जानते थे, अलका को डायरी लिखने का कभी शौक नहीं रहा। अचानक इस नये शौक का रहस्य जानने के लिये उनका मन उत्कण्ठित हो गया। कमरे का चप्पा-चप्पा उनका जाना-पहचाना था। किन्तु आज वही उनके लिये रहस्यमय लग रहा था। दूसरे की डायरी पढ़ना उचित नहीं, इसे वे जानते थे। किन्तु अलका उनके लिये 'दूसरी' तो थी नहीं। अलका से भिन्न उनका कोई

दूसरा व्यक्तित्व रह नहीं गया था। उसके साथ अपने विकृत सम्बन्ध का अब उन्हें कोई पछतावा भी नही था। अलका के बिना अब वे रह नहीं सकते थे। उनकी पत्नी तो शुरू से ही हाथी के दाँत की तरह दिखावे की चीज थीं। उम्र पकने के साथ पण्डितजी की वासना की प्यास बढती ही गई थी। अलका से अपनी यह प्यास बुझाने में पण्डितजी ने अपनी पत्नी, पुत्र और समाज की कटूक्तियों की तनिक भी परवा नही की थी। समाज की ऐसी आलोचनायें उन्हें और भी हठी बनाती गई थी। उनके मन का राक्षस अपनी निन्दा सुनकर और भी मजबूत होता चला गया था।

पण्डितजी ने डायरी हाथ में ले ली। उत्सुक नजरों से जैसे एक ही साँस में खुले पन्ने को पढ़ने लगे—

"मेरे जीवन में यह अप्रत्याशित नयापन कहाँ से आ रहा है ? अब तो मुझे भी दर्द होने लगा है। मेरे मन में भी कोई प्यास पनपने लगी है। क्या वेदना को भी वेदना हो सकती है ? किसी आग को कोई दूसरी आग सता सकती है ? मैं अब नयी अनुभूतियों के तीखे जहर से भरती जा रही हूँ। जानती हूँ, इस जहर से अपने को उबार लेने का कोई रास्ता नही। अपने अन्धकार के हाथों से मैं एक ऐसी दिव्य शिखा को पकड़ने चली हूँ जिसका प्रकाश किसी पराये स्नेह पर टिका हुआ है। यदि शिखा को उस स्नेह से छीन भी लूँ तो अपने पास उसकी ज्योति को बनाये रखने का साधन ही क्या है ? स्नेह के बदले स्नेह तो मैं दे नही सकती। भले ही अपने जीवन का यह लम्बा रेगिस्तान उसे दे दूँ। और यदि इस शिखा को नही छीनूँ तो अपने इस दर्द को क्या उत्तर दूँ ? मैं तो अपनी देह के संकीर्ण किनारों में बँधी एक ऐसी कुरूप तलैया हूँ जिसका पानी सड़ चुका है। इसमें अरविन्द क्या, कोई साधारण शैवाल भी नहीं जी सकता। किन्तु दिव्य पवन का यह कैसा झकोरा आया है ? इस मरी हुई तलैया में भी लहरें उठने लगी हैं। कुण्ठित किनारे आप से आप टूटने लगे हैं और मैं अपने को प्रवाहित होते महसूस करने लगी हूँ। जो हो, अब तो मैं चल चुकी हूँ। अपनी कुरूप सीमाओं में भी मेरा यह चलना कितना संगीतमय है, कितना मधुर है ! धन्य हो मेरे देवता ! तुमने मुझ निर्जीव में भी आज ऐसी चेतना जगा दी है। मेरे उच्चतम लक्ष्य को अरविन्द की सुगन्धित पंखुड़ियों में साकार कर दिया है। धन्य हो तुम !"

पण्डितजी के हाथ काँपने लगे। तमतमाये चेहरे की शिराओं में बल पड़ गये। डायरी उनके काँपते हाथों से फर्श पर गिर पड़ी। कुछ देर अन्तर्मुखी

ज्वाला की तरह वे निश्चल खड़े रह गये। फिर मानो होश में आकर फर्श से डायरी उठा ली। बिजली की फुर्ती से अपनी पत्नी के कमरे में घुसे। देवी जी को अभी तक पण्डितजी के आने की खबर नहीं मिली थी। वे चिन्तित मन से अपने बिस्तर पर लेटी पड़ी थी। उनकी चिन्ता का कारण अलका ही थी। आज अलका के अरविन्द के पास जाने से वे मन ही मन घबड़ा गई थीं। इसके सम्भावित परिणामों को सोचकर उनकी बेचैनी बढती जा रही थी।

भीतर प्रवेश करते ही पण्डितजी ने देवीजी के सिर पर डायरी दे मारी। पागल की तरह गरज पड़े, "मैं पूछता हूँ, इस डायरी में क्या लिखा है ? अलका गई कहाँ है ?"

पण्डितजी को एकाएक इस भीषण रूप में सामने पाकर देवी जी घबड़ा गईं। डायरी से लगी चोट की परवा न करके आँचल सम्भालती हुई उठ खड़ी हुईं। इसी बीच पण्डितजी की कर्कश आवाज फिर सुनाई पड़ी, "मेरी बात का जवाब मिलना चाहिये ! यह सब तुम्हारी साजिश है ! मैं एक-एक को गोली मार दूँगा !"

"आप तो हर बात पर मुझपर ही गुस्सा होते हैं," देवी जी नाक बजाती हुई बोली, "लड़की की उम्र नहीं देखते !"

"शट-अप !" पण्डितजी क्रोधावेश मे उछल पड़े, "मैं तुम्हारा उपदेश सुनने नहीं आया हूँ। तुम न भी बताओ तो मुझे पता है कि वह कहाँ गयी है। ऐसा विश्वासघात ! ऐसी नमकहरामी ! मैं अभी जाकर उस अरविन्द के बच्चे की खबर लेता हूँ !"

पण्डितजी फिर कुछ दूसरी बात नहीं बोले। क्रोध और प्रतिशोध की ज्वाला ने उन्हें पागल बना दिया था। उन्हें लगा जैसे अब तक जिन मूल्यों पर वे खड़े थे, उनपर आज अचानक कुठाराघात हुआ है। अब तक उनके नजदीक पास में एक से एक सुन्दर और प्रतिभाशाली लोग रहते आये थे। किन्तु कभी भी अलका का ध्यान पण्डितजी से बँटकर दूसरी जगह नहीं गया था। आज उसके ध्यान बँट जाने का अहसास करके पण्डितजी एकाएक अपने को बेसहारा महसूस करने लगे। अलका के सिवा उनके जीवन में अब रखा ही क्या था ? उससे बिछुड़कर वे जी ही नहीं सकते। किन्तु वह तो बच्ची ठहरी। यह सारा काम उस नमकहराम अरविन्द का है। आज तक जिसपर आँख मूंद कर विश्वास करते आये थे, वही अब उनके जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहा था।

लम्बी यात्रा से थके होने पर भी पण्डितजी की नसों में इस घटना ने नई ताकत भर दी। उन्होंने झपट कर अपनी आलमारी खोली। काँपते हाथों से अपना रिवाल्वर निकाला। उसके कल-पुर्जे को जाँच की और गोली भरी। फिर जल्दी में उसे अपने ओवर कोट की जेब में रखकर लड़खड़ाते हुए-से बाहर निकले। देवी जी सन्त्रस्त होकर पर्दे की ओट में खड़ी-खड़ी यह सारा दृश्य देख रही थी। पण्डितजी का क्रोध उन्हें अच्छी तरह मालूम था। जीवन के आघातों ने उनके मन को पत्थर बना दिया था। शायद इसीलिये पण्डितजी की तरह उन्होने भी अपनी विद्रोही भावनाओं के साथ समझौता कर लिया था। पहले अपनी बेटी की दुर्दशा उनसे देखी नहीं जाती थी। इससे उनकी आत्मा तिलमिला जाती थी। किन्तु अब तो उनकी भावनायें बर्फ की तरह ठंडी पड़ गई हैं। अपने विरोध की पुरानी स्मृतियों से आज भी उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अलका को बचाने के लिये उनको हर तरह की यातना झेलनी पड़ी थी। वे स्त्रियों के उस वर्ग में आती थी जो अपने स्वार्थ, आनन्द तथा सुरक्षा को सर्वोपरि समझता है। इसके लिये प्रिय से प्रिय सिद्धान्त का भी त्याग कर देता है। अलका का मुँह देख कर भी वे अपना वैधव्य काट सकती थी। किन्तु उनकी काम-पिपासा शायद उतनी ही बलवती थी जितनी खुद पण्डितजी की। इसी पिपासा की तृप्ति के लिये उन्हें अलका तक की बलि दे देनी पड़ी। ऐसा हो जाने पर अब वे पण्डितजी की नजर में एकाएक सम्मानित महिला हो गयीं। यों अब वे नाम के लिये ही पत्नी हैं। रात-दिन तमाशा देखती रहती हैं। चूँ भी नहीं कर सकती।

पण्डितजी के हाथ में रिवाल्वर देखकर देवी जी अपना होश खोने लगी। आँधी के झोंके की तरह आगे बढ़कर कमरे से बाहर निकलते पण्डितजी के पैरों पर गिर पड़ीं। किन्तु अब अपने को उस दृढ़ निश्चय से रोक लेने की क्षमता स्वयं पण्डितजी में ही नही थी। अपने पैरों पर गिरी तथा बुरी तरह चीखती हुई पत्नी को उन्होंने रास्ते में पड़े तुच्छ कंकड़ की तरह झटका देकर अलग कर दिया। उनकी ओर बिना देखे आगे बढ़ चले। नीचे गेराज में उनकी कार पड़ी हुई थी। चाहते तो आवाज देकर ड्राइवर को बुला लेते। किन्तु अभी उन्हें इसका होश नही था। कार को खुद ड्राइव करते हुए शिकार पर झपट्टा मारने वाले बाज की तरह चौधरी टोले की ओर चल पड़े।

सतरह

विनोद क्रोध और आवेश में पगलाया हुआ शोभा के घर पहुँचा। शोभा अभी-अभी खा-पीकर विश्राम करने जा रही थी। नीचे जीने से आती किसी के कदमों की आहट सुनकर बिस्तर पर बैठी की बैठी रह गई। अभी दिन के करीब दो बजे थे। शरद् की निस्तेज धूप का प्रभाव हवा की ठंडी सिहरन से और भी क्षीण पड़ गया था। गर्म स्वेटर पहने रहने पर भी ठंड मालूम हो रही थी। शोभा ने सोचा था कि बाहर खुली छत पर कुछ देर धूप का आनन्द लिया जाये। किन्तु ठंडी हवा में बाहर निकलने की हिम्मत नहीं हुई। वह भीतर कमरे में रजाई ओढ़कर लेट जाना चाहती थी। तभी कमरे के दरवाजे पर दस्तक शुरू हो गई—खट-खट-खट!

शोभा धीरे से उठ खड़ी हुई। शंकित मन से सिटकिली खोल कर बोली, "कौन है.........ओ, तुम!"

"हाँ, मैं ही!" विनोद उखड़ी हुई मुद्रा में प्रवेश करता हुआ बोला, "क्षमा करना। मैं असमय ही आ गया। तुम्हें अभी ही मेरे साथ बाहर चलना है।"

"बाहर! आखिर कहाँ?" शोभा विनोद की डरावनी आकृति को देख कर घबड़ाती हुई खड़ी-खड़ी ही बोली, "क्या मतलब है तुम्हारा?"

"इस समय मतलब समझाने का बिल्कुल समय नहीं है," विनोद शोभा का हाथ खींचता हुआ बोला, "अभी किसी विशेष पहनावे की जरूरत नहीं। जिस वेश में हो उसी में इसी क्षण मेरे साथ चलो। गाड़ी फाटक पर लगी है। मैं अकेले ही चला जाता। किन्तु अपने सुख से तुम्हें वंचित नहीं करना चाहता। थोड़ी देर होने पर भी हम निशाना चूक जायेंगे।"

शोभा विनोद का आग्रह टालना चाह कर भी नहीं टाल सकी। अब तक उसका यही दुर्भाग्य रहा कि अपनी इच्छाओं की प्रतिकूल दिशा में वह हठात चलती आई थी। जैसे वह विनोद के हाथ की कोई कठपुतली हो। विनोद जब जैसे घुमायेगा, उसे घूमना ही होगा। अपने हाथ को विनोद की दृढ़ उँगलियों में बंधे छोड़कर दूसरे हाथ से उसने किसी तरह पैरों में सैंडल डाल लिया। फिर विनोद के रहस्यमय संकेत पर बाहर चल पड़ी। जीने से उतरते हुए भी विनोद ने उसका हाथ नहीं छोड़ा। जैसे हाथ छूट जाने से शोभा कहीं भाग न

जाये। नीचे उतरते समय शोभा कई बार सीढ़ी से गिरते-गिरते बची। आखिर नीचे आकर उसे कहना ही पड़ा, "मैंने कौन-सा कसूर किया है भई! मुझे इस तरह घसीट क्यों रहे हो?"

दूसरा मौका होता तो विनोद इस चुटकी का कोई सरस उत्तर देता। किंतु इस समय तो वह जैसे होश-हवास खो चुका था। शोभा की बातों का इतना असर जरूर हुआ कि विनोद ने उसका हाथ छोड़ दिया। इतनी तेजी से वह अपनी गाड़ी के नजदीक पहुँच गया कि शोभा फुर्ती से चलकर भी उसके कदमों से कदम नहीं मिला सकी। बहुत पीछे छूट गई। जब तक वह कार के समीप आयी, विनोद ड्राइवर की सीट पर बैठ चुका था। दूसरा अवसर होता तो वह पहले शोभा को भीतर बिठा कर बाद में उसी की बगल में सीट लेता। शोभा यन्त्रवत विनोद के पास बैठ गई। कार एक घर्राहट के साथ स्टार्ट हो गई। दोनों पास-पास बैठ कर भी चुप रहे। अपने-अपने विचारों मे उलझे रहे। विनोद की नजर सामने सड़क पर टिकी थी। वह सड़क की भीड़ को किसी तरह काटता-छाँटता बड़ी स्पीड में गाड़ी लिये जा रहा था। उसके मन की नजर चौधरी टोले की तंग गली में स्थित थर्डक्लासी मकान में अरविंद और सुधा की जोड़ी पर टिकी हुई थी। सुधा के घर छोड़ने के लगभग दो घण्टे बाद वह खुद अपने बंगले पर पहुँचा था। दरवाजे पर ही धनिया के मुख से सुधा की बातें सुनकर जल-भुन गया। सुधा पर आज सबेरे ही उसने हाथ छोड़ दिया था। मन ही मन इसका उसे बहुत पछतावा था। पत्नी के खिलाफ वह इस हद तक चला जायेगा, उसने सोचा भी नहीं था। यह सही था कि वह शोभा को पाने के रास्ते में सुधा को अपना कांटा समझने लगा था। किसी कीमत पर अपने रास्ते से इस कांटे को हटा देना चाहता था। किंतु अभी उसकी मनःस्थिति बिल्कुल बदल गई। सुधा उसे नीचा दिखाने के ख्याल से ही इतनी बेहयाई के साथ अरविंद से मिलने गई थी। यह सब सोच कर उसका खून खौल उठा। पहली बार मन में आया कि सुधा से बड़ी आसानी से मुक्ति मिल गई। अब उसे वह घर में घुसने ही नहीं देगा। किंतु यह विचार ज्यादा देर टिक नहीं सका। तुरन्त ही उसके मन में प्रतिहिंसा की भीषण आग जलने लगी। उसका हाथ अपने रिवाल्वर की ओर स्वतः बढ गया। उसे संभालकर अपनी जेब में रख लिया और गाड़ी बाहर निकाली। अपने मन के हिंसा-भाव को तृप्त करके ही वह अगले परिणामों की सोचना चाहता था। इस भीषण यात्रा के शुरू में ही उसे शोभा की याद आई। कल ही तो उसने शोभा से अरविंद के दुश्चरित्र

होने का संकेत दिया था। आज यदि शोभा अपनी आँखों से यह सब देख ले तो उसे विनोद की बातों का यकीन भी हो जायेगा और उसकी हीन भावना भी मिट जायेगी। आमतौर पर अपने इस व्यक्तिगत मामले की जानकारी वह किसी दूसरे को नहीं देना चाहता। यह उसकी अपनी इज्जत का सवाल था। किंतु शोभा को बात ही कुछ और थी। सोचा, एक ही तीर से दो शिकार किये जायें।

इधर गाड़ी में एकान्त भाव से बैठी शोभा कुछ दूसरा ही सोच रही थी। इस तरह वह अपने घर से बाहर कभी नहीं हुई थी। न तो उसने कपड़े बदले, न बालों में कंघी की और न ही चेहरे को शीशे में देखा। अपने घर की बगल में किसी सहेली से भी मिलने जाती तो वह कुछ न कुछ मेक-अप जरूर कर लेती थी। आज इस उखड़े हुए वेश में किसी परिचित की नजर उस पर पड़ जाये तो गजब हो जायेगा। उससे सचमुच गलती हो गई। विनोद के लाख चाहने पर भी अभी वह उसके साथ नहीं निकल सकती थी। आज तो इसका रंग-ढंग ही पागलों जैसा है। पता नहीं, उसे किस खाई में धकेलने लिये जा रहा है।

गाड़ी गोविन्द मित्र रोड से निकलकर हॉस्पीटल के सामने अशोक राजपथ पर आई। वहाँ से सीधे पूरब दिशा में आगे बढ चली।

"तुम कहीं चौधरी टोले तो नहीं जा रहे हो?" एक बड़ी चुप्पी के बाद शोभा ने अकुलाये स्वर में मौन भंग किया, "यदि ऐसा है तो मुझे यहीं उतार दो। मैं वहाँ नहीं जा सकती।"

विनोद ने इतनी देर बाद शोभा की ओर मुड़कर देखा। फिर सामने सड़क की ओर देखता हुआ बोला, "तुम कैसे समझ गईं कि मैं चौधरी टोला जा रहा हूँ?"

"तो तुम इधर कहाँ जा सकते हो?" शोभा उसी लहजे में बोली, "इधर तुम बड़ी या छोटी पटनदेवी जा नहीं सकते। हरमन्दिर जा नहीं सकते। तुम्हारा इधर कोई दूसरा कन्सर्न भी नहीं है।"

इस बार विनोद कुछ मुस्काया। किंतु उसकी यह मुस्कान उसके चेहरे के विद्रूप रंग से भी अधिक भयंकर और तीखी लगी। विनोद बोला, "मान लो मैं चौधरी टोला जा रहा हूँ। तो इसमें डरने की कौन-सी बात है?"

"मतलब कि तुम जा रहे हो वहीं!" शोभा ने एक बार अपने मलिन-वेश पर गौर किया। फिर सामने कार के पारदर्शी शीशे से चलते-फिरते लोगों पर

जाये। नीचे उतरते समय शोभा कई बार सीढ़ी से गिरते-गिरते
नीचे आकर उसे कहना ही पड़ा, मैंने कौन-सा कसूर किया है
तरह घसीट क्यों रहे हो?

दूसरा मौका होता तो विनोद इस चुटकी का कोई सरस
इस समय तो वह जैसे होश-हवास खो चुका था। शोभा
असर जरूर हुआ कि विनोद ने उसका हाथ छोड़ दिया।
अपनी गाड़ी के नजदीक पहुँच गया कि शोभा फुर्ती से चल
से कदम नहीं मिला सकी। बहुत पीछे छूट गई। जब
आयी, विनोद ड्राइवर की सीट पर बैठ चुका था। दस
पहले शोभा को भीतर बिठा कर बाद में उसी की ब
यन्त्रवत विनोद के पास बैठ गई। कार एक घर
दोनों पास-पास बैठ कर भी चुप रहे। अपने-अपने वि
की नजर सामने सड़क पर टिकी थी। वह सड़क
काटता-छाँटता बड़ी स्पीड में गाड़ी लिये जा रहा
चौधरी टोले की तंग गली में स्थित थर्डक्लासी मका
जोड़ी पर टिकी हुई थी। सुधा के घर छोड़ने के
अपने बंगले पर पहुँचा था। दरवाजे पर ही घ
सुनकर जल-भुन गया। सुधा पर आज सबेरे
मन ही मन इसका उसे बहुत पछतावा था। प
चला जायेगा, उसने सोचा भी नहीं था। यह
के रास्ते में सुधा को अपना कांटा समझने
रास्ते से इस काटे को हटा देना चाहता था
बिल्कुल बदल गई। सुधा उसे नीचा दिखा
साथ अरविंद से मिलने गई थी। यह सा
पहली बार मन में आया कि सुधा से बड़ी
वह घर में घुसने ही नहीं देगा। कि
सका। तुरन्त ही उसके मन में
हाथ अपने रिवाल्वर की ओर स्वतः
रख लिया और गाड़ी बाहर निकाली
ही वह अगले परिणामों की सोचना
ही उसे शोभा की याद आई। कल

नजर टिकाती हुई गम्भीर होकर बोली, "ऐसा था तो मुझे तुम्हें पहले ही बता देना चाहिये था।"

शोभा की बात सुनकर विनोद मन ही मन कुढ़ गया। किन्तु अपनी खीझ प्रकट नहीं होने दी। सामने सड़क पर आठ-दस बैल गाड़ियाँ कतार बाँधे आ रही थीं। सड़क तंग होने के कारण साइड दिये बिना कार आगे बढाना मुश्किल था। इधर विनोद के सामने एक-एक क्षण का महत्व था। कोई उपाय न देख उसे साइड देना ही पड़ा। गाड़ी कुछ देर के लिये रोक लेनी पड़ी। तभी शोभा की आवाज आई, "एक्सक्यूज मी विनोद, मैं यहीं उतर जाती हूँ। रिक्शा करके घर चली जाऊँगी। अभी तुम्हारे साथ चौधरी टोला नहीं जा सकती। वहाँ जाकर न तो मैं अपना हित कर पाऊँगी, न तुम्हारा।"

"शोभा!" अपनी सीट से उठती शोभा को कड़ी आवाज में सम्बोधित करके विनोद तलखी के साथ बोला, "तुम मेरा मजाक उड़ाना चाहती हो? समझती हो कि मैं पागल हो गया हूँ? तुम्हें बेवजह तंग करने के लिये चौधरी टोला लिये जा रहा हूँ? इतना समझ लो कि आज मैं अन्तिम बार वहाँ जा रहा हूँ। जो चीज तुम वहाँ देखोगी उससे तुम्हारी भी वहाँ के लिये यह अन्तिम यात्रा हो जायेगी। मैं तुम्हें इनसल्ट करने के लिये वहाँ नहीं ले जा रहा हूँ। केवल यह दिखा देना चाहता हूँ कि आजतक जिसे तुम अपना सौभाग्य मानती आई हो, उससे बढ़कर तुम्हारा कोई दुर्भाग्य नहीं।"

शोभा के पाँव आप से आप जकड़ गये। उसे लगा जैसे विनोद के स्वर ने कहीं उसके मर्म को छू लिया है। वह अपनी सीट पर पुनः धसक कर बैठ गई। कार बड़ी मुश्किल से हार्न पर हार्न देने के बाद आगे बढ़ पाई।

सूरज पश्चिम के आसमान में लटकता जा रहा था। विनोद की दौड़ती कार के दोनों ओर खड़े छोटे-बड़े पेड़ों और मकानों की परछाइयाँ कार के शीशे पर बनती-मिटती जा रही थी। शोभा जल्दी में अपनी शाल लाना भी भूल गई थी। गर्म स्वेटर पहने रहने पर भी शीशे की दराज से छन कर आती ठंडी हवा से उसे कँपकँपी लग रही थी। विनोद की बातों से वह जितना समझ पाई थी, उसका मन उसके लिये कतई तैयार नहीं था। अरविन्द चाहे जिस स्थिति में हो, शोभा आज उसका सामना नहीं कर पायेगी। बड़ी मुश्किल से उसने इतने दिन पति से अलग रहकर अपने बिखरे अस्तित्व को सच मान लेने का यत्न किया था। आज उसको यह कोशिश बेबुनियाद सिद्ध होने जा रही है।

विनोद की गाड़ी अचानक एक गली मे आकर रुक गई। शोभा की छाती जोरों से धड़क उठी। कार में बैठे-बैठे ही उसने आस-पास के मकानों पर खोजती हुई नजर डाली। सामने दाहिनी ओर अरविन्द का सुपरिचित बन्द दरवाजा दिखा। इसी मकान से एक दिन वह अरविन्द की अनुपस्थिति में ही विनोद के साथ अपने घर भाग गई थी। आज पुनः उस दरवाजे को देखकर लगा जैसे उसका माथा चकराने लगा है। वह जिस सीट पर बैठी है, वह भी जैसे कोई ठोस चीज नहीं। अपने विश्वास के लिये उसने सीट को दोनों हाथों से कस के पकड़ लिया। तभी विनोद का स्वर सुनाई पड़ा, "उतरो शोभा, जल्दी करो!"

"मैं नही उतरती," शोभा की लड़खड़ायी आवाज आई, "कृपा करके मुझे यही रहने दो, प्लीज!"

"यह लड़कपन करने का वक्त नही शोभा," विनोद उसका हाथ पकड़ कर उसे जबरन बाहर खीचता हुआ बोला, "मेरे किये-कराये पर पानी मत फेरो। चुपचाप मेरे साथ चलो। फिर जल्दी ही लौट चलना है।"

"नही-नहीं, तुम मुझे वहाँ नही ले जा सकते," शोभा विनोद के हाथ से अपना हाथ छुड़ाती हुई विकृत आवाज में बोली, "तुम मेरे साथ जबरदस्ती नहीं कर सकते विनोद!"

"आज मैं तुम्हारा कुछ नही सुन सकता!" विनोद उद्धत वाणी में बोला, "तुम्हारी इस बेवकूफी के आगे झुकने का मतलब है एक सुयोग गवाँ देना।"

विनोद आवेश में शोभा को घसीटता हुआ-सा अरविन्द के दरवाजे तक ले गया। बन्द दरवाजे पर जोरों से दस्तक देने लगा, मानो उसे तोड़ डालेगा। कुछ देर बाद भीतर से एक स्त्री-कण्ठ की आवाज सुनाई पड़ी, "कौन है भाई? दरवाजे पर जरा रहम तो कीजिये!"

इसके साथ ही भीतर सिटकिली खुलने की आवाज हुई। झटके के साथ किवाड़ खुल गये।

"ओ, आप लोग!" भीतर खड़ी अलका ने विनोद और शोभा की युगल मूर्ति को कुछ अचरज और नफरत के साथ देखते हुए कहा, "कहिए, क्या चाहिए?"

"चाहिए कुछ नही!" विनोद शोभा का हाथ पकड़े भीतर बढ़ता हुआ बोला, "मुझे अन्दर जाना है। अरविन्द बाबू से कुछ काम है।"

नजर टिकाती हुई गम्भीर होकर बोली, "ऐसा था तो मुझे तुम्हें पहले ही बता देना चाहिये था।"

शोभा की बात सुनकर विनोद मन ही मन कुढ़ गया। किन्तु अपनी खीझ प्रकट नहीं होने दी। सामने सड़क पर आठ-दस बैल गाड़ियाँ कतार बाँधे आ रही थीं। सड़क तंग होने के कारण साइड दिये बिना कार आगे बढ़ाना मुश्किल था। इधर विनोद के सामने एक-एक क्षण का महत्व था। कोई उपाय न देख उसे साइड देना ही पड़ा। गाड़ी कुछ देर के लिये रोक लेनी पड़ी। तभी शोभा की आवाज आई, "एक्सक्यूज मी विनोद, मैं यहीं उतर जाती हूँ। रिक्शा करके घर चली जाऊँगी। अभी तुम्हारे साथ चौधरी टोला नहीं जा सकती। वहाँ जाकर न तो मैं अपना हित कर पाऊँगी, न तुम्हारा।"

"शोभा!" अपनी सीट से उठती शोभा को कड़ी आवाज में सम्बोधित करके विनोद तल्खी के साथ बोला, "तुम मेरा मजाक उड़ाना चाहती हो? समझती हो कि मैं पागल हो गया हूँ? तुम्हें बेवजह तंग करने के लिये चौधरी टोला लिये जा रहा हूँ? इतना समझ लो कि आज मैं अन्तिम बार वहाँ जा रहा हूँ। जो चीज तुम वहाँ देखोगी उससे तुम्हारी भी वहाँ के लिये यह अन्तिम यात्रा हो जायेगी। मैं तुम्हें इनसल्ट करने के लिये वहाँ नहीं ले जा रहा हूँ। केवल यह दिखा देना चाहता हूँ कि आजतक जिसे तुम अपना सौभाग्य मानती आई हो, उससे बढ़कर तुम्हारा कोई दुर्भाग्य नहीं।"

शोभा के पाँव आप से आप जकड़ गये। उसे लगा जैसे विनोद के स्वर ने कहीं उसके मर्म को छू लिया है। वह अपनी सीट पर पुनः धसक कर बैठ गई। कार बड़ी मुश्किल से हार्न पर हार्न देने के बाद आगे बढ़ पाई।

सूरज पश्चिम के आसमान में लटकता जा रहा था। विनोद की दौड़ती कार के दोनों ओर खड़े छोटे-बड़े पेड़ों और मकानों की परछाइयाँ कार के शीशे पर बनती-मिटती जा रही थी। शोभा जल्दी में अपनी शाल लाना भी भूल गई थी। गर्म स्वेटर पहने रहने पर भी शीशे की दराज से छन कर आती ठंडी हवा से उसे कँपकँपी लग रही थी। विनोद की बातों से वह जितना समझ पाई थी, उसका मन उसके लिये कतई तैयार नहीं था। अरविन्द चाहे जिस स्थिति में हो, शोभा आज उसका सामना नहीं कर पायेगी। बड़ी मुश्किल से उसने इतने दिन पति से अलग रहकर अपने बिखरे अस्तित्व को सच मान लेने का यत्न किया था। आज उसकी यह कोशिश बेबुनियाद सिद्ध होने जा रही है।

विनोद की गाड़ी अचानक एक गली में आकर रुक गई। शोभा की छाती जोरों से धड़क उठी। कार में बैठे-बैठे ही उसने आस-पास के मकानों पर खोजती हुई नजर डाली। सामने दाहिनी ओर अरविन्द का सुपरिचित बन्द दरवाजा दिखा। इसी मकान से एक दिन वह अरविन्द की अनुपस्थिति में ही विनोद के साथ अपने घर भाग गई थी। आज पुनः उस दरवाजे को देखकर लगा जैसे उसका माथा चकराने लगा है। वह जिस सीट पर बैठी है, वह भी जैसे कोई ठोस चीज नहीं। अपने विश्वास के लिये उसने सीट को दोनों हाथों से कस के पकड़ लिया। तभी विनोद का स्वर सुनाई पड़ा, "उतरो शोभा, जल्दी करो!"

"मैं नही उतरती," शोभा की लड़खडायी आवाज आई, "कृपा करके मुझे यही रहने दो, प्लीज!"

"यह लड़कपन करने का वक्त नहीं शोभा," विनोद उसका हाथ पकड़ कर उसे जबरन बाहर खीचता हुआ बोला, "मेरे किये-कराये पर पानी मत फेरो। चुपचाप मेरे साथ चलो। फिर जल्दी ही लौट चलना है।"

"नहीं-नही, तुम मुझे वहाँ नहीं ले जा सकते," शोभा विनोद के हाथ से अपना हाथ छुड़ाती हुई विकृत आवाज में बोली, "तुम मेरे साथ जबरदस्ती नहीं कर सकते विनोद!"

"आज मैं तुम्हारा कुछ नहीं सुन सकता!" विनोद उद्धत वाणी में बोला, "तुम्हारी इस बेवकूफी के आगे झुकने का मतलब है एक सुयोग गवाँ देना।"

विनोद आवेश में शोभा को घसीटता हुआ-सा अरविन्द के दरवाजे तक ले गया। बन्द दरवाजे पर जोरों से दस्तक देने लगा, मानो उसे तोड़ डालेगा। कुछ देर बाद भीतर से एक स्त्री-कण्ठ की आवाज सुनाई पड़ी, "कौन है भाई? दरवाजे पर जरा रहम तो कीजिये!"

इसके साथ ही भीतर सिटकिली खुलने की आवाज हुई। झटके के साथ किवाड़ खुल गये।

"ओ, आप लोग!" भीतर खड़ी अलका ने विनोद और शोभा की युगल मूर्ति को कुछ अचरज और नफरत के साथ देखते हुए कहा, "कहिए, क्या चाहिए?"

"चाहिए कुछ नहीं!" विनोद शोभा का हाथ पकड़े भीतर बढ़ता हुआ बोला, "मुझे अन्दर जाना है। अरविन्द बाबू से कुछ काम है।"

"किन्तु इस तरह आप अन्दर नहीं जा सकते," अलका बिजली की फुर्ती से विनोद के सामने खड़ी होती हुई बोली, "बिना गृहस्वामी का परमिशन लिये आप अन्दर नहीं जा सकते।"

"तुम कौन होती हो मुझे रोकने वाली ?" विनोद रुक तो गया, किन्तु क्रोध से आँखें लाल-पीली करते हुए बोला, "तुम न तो अरविन्द की कोई लगती हो, न उसकी नौकरानी ही हो। नही हटोगी तो मुझे जबरदस्ती करनी होगी !"

"मैं वह सब हूँ जो तुम नही हो !" अलका ने अपने दृढ़ हाथों से रास्ते के अगल-बगल खड़ी दोनो दीवारों को पकड़ लिया और कड़े शब्दों में बोली, "मैं अरविन्द बाबू की सचमुच कुछ नही लगती। हाँ, उनकी नौकरानी जरूर हूँ। इसी नाते तुम्हे रोक रही हूँ !"

"तो यह गुस्ताखी ?" विनोद दाँत पीसने लगा और आगे बढने से पहले अपने पीछे संत्रस्त खड़ी शोभा को ओर देख कर विकृत स्वर में बोला, "देखती जाओ शोभा ! यह तुम्हारे पतिदेव की अभी पहली ही दासी है। इस तरह की कई दासियाँ तुम्हें और मिलेंगी। देखती जाओ !"

"जी हाँ शोभा दी, देखती जाइए," अलका का स्वर पहले की ही तरह कठोर और दृढ़ था, "अपने पालतू दास की करतूत पर गौर कीजिए। ऐसे दासों की कमी क्या है आपको ?"

"शट-अप, प्लीज !" विनोद ने झट से अपने काँपते हाथ से रिवाल्वर निकाल लिया। उसे अलका की ओर तान कर गरजता हुआ बोला, "हट जाओ सामने से !"

"नहीं-नहीं-नहीं !!" अलका के स्वर एवं भुजाओं में न जाने कहाँ की ताकत आ गई। रणचण्डी की तरह गरज पड़ी," तुम्हारा रिवाल्वर मेरा बाल भी बाका नहीं कर सकता ! खबरदार जो एक भी कदम आगे बढे !"

इसी बीच बाहर के खुले दरवाजे से हाँफते हुए पण्डितजी भीतर घुसे। पीछे से ही फुर्ती के साथ विनोद के हाथ से रिवाल्वर छीन लिया। उसे विनोद की ओर ही तान कर गरज पड़े,"कायर ! एक लड़की पर रिवाल्वर चलाता है ? चुल्लू भर पानी मे डूब नहीं जाता ?"

पण्डितजी के इस नाटकीय प्रवेश से वहाँ खड़े सभी कुछ क्षणों तक स्तब्ध रह गये। अलका रास्ता छोड़ कर सिर झुकाए एक ओर खड़ी हो गई। पीली पड़ती तथा चक्कर खाती हुई शोभा का हाथ विनोद ने आप से आप छोड़ दिया।

अब विनोद पण्डितजी के तने हुए रिवाल्वर की सीध मे कुछ पीछे हट कर विकृत वाणी में बोला, "आप गलत समझ रहे हैं पण्डितजी ! मेरा टार्गेट अलका नहीं अरविंद है। वह भीतर मेरी पत्नी को बन्द रखे हुए है।"

"झूठ ! सरासर झूठ ! ' अलका एक बार फिर गरज पड़ी,"आपकी कोई पत्नी यहाँ बन्द नहीं है। पहले जो आपकी पत्नी थी, वह तो आपके अत्याचारों और विश्वासघातो से कब की न मर चुकी है। आज जो यहाँ आई है, वह एक दूसरी औरत है। आपकी पत्नी हरगिज नहीं हो सकती।"

सबकी नजरें सामने अलका के पीछे मुड़ गईं। भीतर से अरविंद और उसके पीछे सुधा वहाँ पहुँचकर अविचल भाव से खड़े हो गये थे। अरविंद को देखते ही पण्डितजी के हाथ का रिवाल्वर जमीन पर गिर पड़ा। वे विकृत हँसी हँस कर बोले, ' तो अरविंद जैसा मेरा टार्गेट, वैसा तुम्हारा भी ! अफसोस है विनोद, मैं खुद भी चूक गया और तुम्हें भी डिस्टर्ब किया !'

"तो आप भी ......?" विनोद आश्चर्य से इतना ही बोल सका।

"हाँ, मैं भी वही करने आया हूँ जिसे शायद तुम करना चाहते हो," पण्डित जी इस बार स्तब्ध भाव से खड़े अरविंद की ओर कठोर और हिकारत भरी दृष्टि से देखते हुए बोले, "जिस प्रकार यह तुम्हारी पत्नी को अवैध तरीके से बन्द किए हुए है, उसी प्रकार मेरी अलका को भी बन्दी बनाये हुए है। यह अरविंद नहीं, डाकू है डाकू ! नमकहराम, विश्वासघाती, ठग और पक्का चार सौ बीस !"

"पण्डितजी !" अलका की भौंहें तन गईं, आँखें सुर्ख हो गईं और मारे घृणा तथा क्रोध के होंठ काँपने लगे।

"चुप रह !" पण्डितजी शेर की तरह गरज पड़े और फिर अरविन्द को ही अपने वाग्बाणों का निशाना बनाते हुए कहा, "दूसरे की बहू-बेटियों की इज्जत लूटने वाले नराधम ! मुझे अफसोस है, विनोद ने मेरा वार खाली कर दिया ! अब तक तो तुम यम के दरवाजे तक पहुँच चुके होते ! यदि भला चाहो तो आज रात तक पटने से कहीं दूर भाग जाओ। ऐसी जगह जहाँ मैं फिर तुम्हें देख नहीं सकूँ। यदि नहीं, तो मेरे हाथ से बेमौत मारे जाओगे। भाग जा कायर !"

पण्डितजी के काले पड़े दाँतों, पान के जर्दे की ही तरह लगने वाले धब्बेदार सुर्ख होंठों तथा बकरे की करेजी-सी स्थूल जीभ से फूटने वाले शब्दों के अंगारे किसी तरह बन्द हुए। इधर अलका ने इस बीच जमीन पर पड़े रिवाल्वर को

लपक कर अपने हाथ में उठा लिया। उसे पण्डितजी की ओर तानकर वज्र की तरह कठोर वाणी में बोली, "कायर, अपनी ओर तुम्हें ख्याल है जो दूसरे को नराधम कह रहे हो? लानत है तुम्हारी संस्कृति पर, तुम्हारे मिथ्या दम्भ पर और तुम्हारी तथाकथित इज्जत पर! उल्टे आये हो गंगा-जल की तरह पवित्र इन्सान को नीचा दिखाने? उन्हें भद्दी गालियाँ देने? तुम्हारे जैसे नरक के कीड़े से अरविन्द का कुछ नहीं बिगड़ सकता! तुमसे अच्छा तो गली-गली में चक्कर काटने वाला आवारा कुत्ता होता है! कामी पशु, तुम आदमी रह कहाँ गये हो? अपनी किस्मत पर रो बूढ़े, तू अभी मेरी गोली का शिकार हुआ चाहता है!"

"अलका! यह क्या पागलपन है?" अचानक अरविन्द पण्डितजी के सामने आकर खड़ा हो गया और अलका को डाँटता हुआ बोला, "ऐसी नासमझ मत बनो! चुपचाप रिवाल्वर मेरे हाथ में दे दो!"

"आप हट जाइये सामने से!" अलका का खून क्रोध से खौल रहा था। चिल्ला कर बोली, "जिसने मुझे बर्बाद किया है, मेरा लहू चूस-चूस कर मुझे जानवर बना दिया है, उस पापी को आज जरूर अपनी गोली का शिकार बनाऊँगी। तभी मेरी छाती ठण्डी होगी, तभी!"

घबड़ाये हुए अरविन्द ने दूसरा कोई चारा न देखकर बड़ी फुर्ती से अलका की कलाई पकड़ ली। रिवाल्वर उसके हाथ से छीन लेना चाहा। उधर क्रोध में पागल अलका 'छोड़ दो,' 'छोड़ दो' कहती हुई अरविन्द के हाथ से अपनी कलाई छुड़ाने की भरपूर कोशिश करने लगी। छीनाझपटी में दुर्भाग्य से रिवाल्वर का घोड़ा दब गया। उसकी गोली अरविन्द की कनपटी से सनसनाती हुई पीछे खड़े पण्डितजी के दाहिने कान को जख्मी बनाकर आगे बढ़ गई। गोली की आवाज सुनकर इधर शोभा और उधर सुधा चीख कर नीचे जमीन पर गिर पड़ीं। शेष लोग हक्के-बक्के की तरह खड़े के खड़े रह गये। पण्डितजी को अपने कान से टपकते गाढ़े खून को देख कर न तो कोई भय हुआ, न अचम्भा, न दुख। एक जड़ पेड़ की तरह वे कुछ क्षणों तक अचल भाव से खड़े रहे, मानो उन्हें मतिभ्रम हो गया हो। फिर उल्टे पाँव लड़खड़ाते कदमों से बाहर खड़ी अपनी गाड़ी की ओर लपके। पीछे से उनका उजला ओवर कोट जगह-जगह खून से तर दिख रहा था। थोड़ी ही देर में बाहर कार की घर्राहट हुई। फिर एक मुर्दनी शान्ति छा गई।

"मैंने यह क्या कर दिया अरविन्द ?" अलका अपने कांपते हाथों की ओर देख कर भावविह्वल स्वर में बोली, "मैंने तो यह सोचा भी नहीं था ...कि मुझसे ऐसा हो जायेगा ! खैर, अब मैं जा रही हूँ। पण्डितजी को देखना जरूरी है। जिन्दगी रही तो दुनिया के किसी भी कोने में तुम्हें खोज लूंगी। किसी लालसा से नहीं, बल्कि अपने जीवन की दुर्दमनीय पुकार बन कर तुम्हें नदी-प्रान्तर, पर्वत, खाई सब जगह खोजती रहूँगी। और यदि इस सिलसिले में मेरी मरी हुई जिन्दगी का यह पापी शरीर भी मर जावे तो तुम्हें प्रेत बन कर खोजूंगी। मैं किसी का अधिकार छीनना नहीं चाहती। किसी का आशीर्वाद या प्रशंसा भी नहीं चाहती ! ....आप लोग, मेरा मतलब है अरविन्द और विनोद बाबू अपनी समस्यायें सुलझा लेंगे। यह मेरी शुभ कामना है। विनोद बाबू और शोभा दी मेरी गुस्ताखी माफ करेंगे। और तुम अरविन्द...... मेरे देवता !"

अलका की आंखों से झर-झर आंसू बह रहे थे। उसने लपक कर अरविन्द के चरण छुए। शेष लोगों की ओर हाथ जोड़कर सुबकती हुई बाहर भाग चली। अरविन्द अभी भी जैसे स्वप्न में डूबा हुआ ठगा-सा खड़ा था। अपने हाथ के रिवाल्वर को, जिसे उसने अलका से छीन लिया था, बडे अविश्वास और अचरज की नजरों से देखा। फिर बिना कुछ बोले उसे सामने खडे विनोद के हाथ में थमा दिया।

अबतक सुधा और शोभा दोनों का चित्त पहले से कुछ आश्वस्त हो चुका था। दोनों एक दूसरे की ओर भय तथा हसरत की निगाहों से देख रही थी। अबतक विनोद चुपचाप द्रष्टा बनकर खड़ा था। अचानक मौन भंग करता हुआ तलखी के साथ बोला, "यह तो पहला अध्याय था मिस्टर अरविन्द ! इसके हीरो तुम आसानी से बन गये। किन्तु दूसरा अध्याय इससे भी भयंकर है। यह अब शुरू होगा !"

"ठाट से शुरू कीजिए विनोद बाबू," अरविन्द दृढ़ स्वर मे बोला, "अच्छा हो कि आज यह अध्याय भी पूरा हो जाये ! किन्तु पहले हम लोग भीतर चल कर तो बैठें। और तब—मेरा मतलब है आप लोग अन्दर चलिये !"

अरविन्द हाथ से सबको भीतर चलने का संकेत देता हुआ कुछ दूर आगे बढ़ गया। इस क्रम में दुलहन के रूप मे सजी उद्भ्रान्ता सुधा उससे कुछ पीछे पड गई। अरविन्द ने पीछे मुड़ कर जब अपने अतिथियों पर नजर दौड़ाई तो वह स्तब्ध रह गया। किसी हिंसक पशु की तरह विनोद ने बड़ी फुर्ती से झपट्टा मार कर कातर सुधा के सजे-सँवारे जूड़े को निर्दयतापूर्वक पकड़ लिया था। इसके

दूसरे क्षण उसने सुधा की पीठ पर बड़े जोर की लात जमाई। सुधा दर्द से चीख कर जमीन पर गिर पड़ी। यह काम इतनी जल्दी में किया गया कि पास खड़े अरविन्द और शोभा अवाक् से रह गये। अरविन्द जबतक स्थिति को समझे, भू-लुंठित सुधा के शरीर पर कई घातक प्रहार पड़ चुके थे। आखिर अरविन्द उछलकर सुधा के नजदीक आया। विनोद को अपनी पूरी ताकत से पीछे धकेलता हुआ गरज पड़ा, "खबरदार विनोद, जो फिर से सुधा को स्पर्श किया! अभी-अभी जो कुछ हुआ उससे पेट नहीं भरा तुम्हारा ?"

अरविन्द के धकेलने से विनोद गिरता-गिरता बचा। पुनः सम्भल कर वह अरविन्द के सामने आया। दाँत पीसता हुआ बोला, "मैं पण्डितजी नहीं हूँ अरविन्द, और नहीं सुधा अलका है! सुधा मेरी पत्नी है। वह मेरा अपमान करने, मेरी इज्जत धूल में मिलाने यहाँ आई है! उसे मैं मारूँ या काटूं, तुम बीच में पड़ने वाले कौन होते हो?"

"यदि सुधा तुम्हारी पत्नी है तो मेरी आत्मा है," अरविन्द की आँखों में खून उतर आया। बिफर कर बोला, "तुम मेरे ही सामने मेरी आत्मा का हनन नहीं कर सकते। सुधा ने यदि तुम्हें पत्नीत्व दिया है तो मुझे पुरुषार्थ दिया है। तुम मेरे पुरुषार्थ को चैलेन्ज नहीं कर सकते! और तुम्हारी इज्जत ?.........
तुम्हारी इज्जत तो सुधा के रूप में जमीन पर लोट रही है विनोद! जितने प्रहार तुमने अपनी निर्दोष पत्नी पर किये, उससे कई गुना ज्यादा अपनी झूठी इज्जत पर कर दिये हैं!"

"तुम सामने से हट जाओ कमल," जमीन पर पेट के बल गिरी सुधा की कराह-भरी आवाज सुनाई पड़ी, "मुझे मर जाने दो। मैं तो मृत्यु का वरण करके यहाँ चली ही थी। यह राक्षस कहीं तुम्हें भी खा न जाये! तुम यहाँ से हट जाओ कमल! मेरी कसम, हट जाओ!"

"मैं तुम्हारा लेक्चर सुनने नहीं आया अरविंद!" विनोद ने अपना रिवाल्वर संभाल कर कड़ी आवाज में कहा, "तुम मेरी पत्नी के सामने से हट जाओ, वरना अभी जमीन पर लुढ़कते नजर आओगे! हट जाओ! हट जाओ!!"

शोभा शुरू से अब तक के सारे दृश्यों को अपनी चकराती आत्मा के धूमिल पर्दे पर देख रही थी। उसके अस्तित्व-बोध के चारों ओर अन्धकार की गहरी घाटियाँ फैलती जा रही थीं। वहाँ से यहाँ के विविध स्वर उसके कर्णपुटों में कुहरे की तरह छाते जा रहे थे। अचानक वह अनुभूति की एक तीखी बेचैनी में अरविंद के सामने दौड़ आई। विनोद के आगे छाती तान कर बोली, "खबर-

दार विनोद, जो मेरे पति पर गोली चलाई ! यही करने के लिये मुझे यहाँ तक खीच लाये ? मेरे सुहाग को लूट कर, मेरी दुनिया को उजाड बना कर तुम मुझे सुख देना चाहते हो ? यदि ऐसा है तो मुझे ही मार डालो। अपने दिल को आग ठण्ढी कर लो। मैं मरने के लिये तैयार हूँ !"

"ओफ्फो ! तो यह तुम हो शोभा ?" विनोद की आँखे अपनी बीभत्सता में भी आश्चर्य मे फैल गईं। बोला,"यह तुम हो जो अपने कपटी और दुराचारी पति के काले कारनामे देखकर भी उसका पक्ष ले रही हो ?"

"जो हाँ, वह मै ही हूँ !" कहते-कहते शोभा का कण्ठ रूँध आया, "मैं अलका और सुधा भाभी को यहाँ देख कर भी अपने पति से नफरत नही कर सकती। मैं अपने पति को तुमसे अधिक जानती हूँ। मेरे जीते जी तुम अरविंद पर गोली नही चला सकते। पहले मुझे मार डालो। उसके बाद जो मन मे आये, करना !"

"पागलपन मत करो शोभा," विनोद के हाथों की तरह उसके स्वर भी आवेश में काँपने लगे थे,"अभी नही हटोगी तो पीछे पछताओगी। तुम मेरी हो, हर तरह से मेरी ! आज तुम्हारे और अपने रास्ते को निष्कण्टक बना देना चाहता हूँ। ऐसी गलती मत करो !"

"गलती मै कर रही हूँ ?" शोभा का पिघलता स्वर और भी तेज हो गया, "अपनी गलती को दूसरो पर थोपने की तुम्हारी आदत बहुत पुरानी है। मुझे तो बर्बाद कर ही चुके। अब मेरे सुहाग को नष्ट करके क्या पा लोगे ? मै तुममें और पण्डितजी मे कोई फर्क नही देखती। तुम अत्याचारी हो। आततायी हो !"

"शट-अप ! डैम यू !!" विनोद की आँखों मे हिंसा और भयानक हो गई। बोला, "मैं तुम्हें अभी दिखा देता हूँ। मैं न तो पण्डितजी हूँ और न ही तुम अलका हो ! तुम मेरी जिन्दगी हो। मैं तुम्हें छोड़ नही सकता !"

विनोद ने अपने एक हाथ में रिवाल्वर संभाल लिया। दूसरे हाथ से बड़ी निठुराई से शोभा की कलाई पकड़ ली और उसे घसीटता हुआ बाहर ले चला। शोभा 'बचाओ', 'बचाओ' चिल्लाती रही और अपनी कलाई को छुड़ाने का यत्न करती रही। अरविंद ने एक तरफ जमीन पर मूर्च्छित पड़ी सुधा को देखा। उसकी साड़ी न जाने कैसे, खून से तर-बतर हो रही थी। दूसरी तरफ अपनी मुक्ति के लिये छटपटाती शोभा पर उसकी नजर गई। वह मानो साक्षात यमराज के चंगुल में फँसी तड़प रही थी। कुछ देर के लिये अरविंद की बुद्धि मारी गई।

किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा का खड़ा रह गया। अबतक शोभा उसकी नजरों के पार जा चुकी थी। बाहर सड़क पर कार की घर्राहट के साथ उसका चिल्लाना भी बुझ गया। अरविंद पागल-सा दौड़ता हुआ बाहर दरवाजे तक आया। सामने सड़क पर कुछ दूर विनोद की धूल उड़ाती हुई कार दिखाई पड़ी जो जल्दी ही मकानों की ओट में पड़ गई। कुछ देर तक अरविंद वहीं ठगा-सा खड़ा रह गया। अचानक उसे सुधा की याद आई। वह पुनः भागता हुआ अपने आंगन में आया। सुधा पहले की ही तरह निश्चेष्ट पड़ी हुई थी। अरविंद स्थिति की गम्भीरता से मानो पहली बार परिचित हुआ। घबड़ाहट में लपक कर सुधा के म्रियमाण शरीर को अपने दोनों हाथों पर उठा लिया। उसे भीतर लाकर धीरे से बिस्तर पर लिटा दिया। उसने सुधा की नाड़ी की जाँच की। नाड़ी की चाल ठीक थी। केवल साड़ी के अन्दर कहीं से रक्तस्राव लगातार जारी था। उससे सुधा की साड़ी भीगी जा रही थी। उसने सबसे पहले सुधा को होश में लाने का कुछ कृत्रिम उपाय किया। थोड़ी ही देर में सुधा ने आँखें खोल दी। बड़ी कमजोर आवाज में पानी माँगा। विनोद दौड़ कर पानी लाया और उसे सुधा के सूखे होंटों से लगा दिया। पानी पीकर सुधा कुछ स्वस्थ नजर आई। अपने चेहरे पर झुके तथा टप-टप आँसू बरसाते अरविन्द की ओर एकटक निहार कर उदास मुस्कान के साथ क्षीण स्वर में बोली, "पगले, रोते काहे को हो, मैं तो अभी जी ही रही हूँ!"

"तुम्हें यह सब क्या हो गया सुधो," अरविन्द के पिघलते मन की आवाज बाहर आई, "मैं अभागा तुम्हें बचा नहीं सका! मेरी आँखों के सामने तुम पिटी। मैं देखता रह गया। मुझे धिक्कार है!"

"ओफ!" सुधा के मुख से एक मर्मान्तक कराह निकली," पेट में भयानक दर्द और मरोड़ है।"

"तुम्हारी साड़ी तो खून से भीग गई है," अरविन्द का हाथ आप से आप सुधा का पेट सहलाने लगा। घबड़ा कर बोला," पता नहीं, कहाँ क्या हो गया है!"

"खून?" सुधा अचानक कुछ याद करती हुई बोली," समझ गई। अच्छा ही हुआ। राक्षस का बीज उखड़ रहा है। मेरे रक्त में जो विजातीय रक्त आ मिला था, वह बाहर निकल रहा है!......पर माँ की छाती!........ आह, मैं उसे बचा नहीं सकी!"

देखते ही देखते सुधा की आँखों में सावन-भादो उमड़ आया। भयानक पीड़ा की बेचैनी से उसका चेहरा पीला पड़ता गया।

अरविन्द सुधा की बातें समझ नहीं पाया। हाँ, इतना उसे लगा कि सुधा की शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक होती जा रही है। एकाएक बिस्तर छोड़ कर खड़ा हो गया और सुधा से भीगे स्वरों में बोला," घबड़ाओ नहीं सुधा, मैं अभी रिक्शा लाकर तुम्हें हॉस्पीटल ले चलता हूँ।"

"नहीं-नहीं, सुनो तो !" सुधा ने अपना निर्बल हाथ ऊपर उठा कर अरविन्द का हाथ पकड़ लिया। आतुर स्वर में बोली," तुम जब तक रिक्शा लाओगे, मैं मर जाऊँगी कमल ! मेरी बात मानो। मेरे नजदीक बैठे रहो। इससे बढ़कर अभी मेरे लिये दूसरी कोई संजीवनी नहीं। मेरी अन्तिम इच्छा का ख्याल करो। बैठ जाओ न !"

कमल इस सहृदय आग्रह को टाल नहीं सका। पुनः अपनी जगह पर बैठता हुआ लाचारी के स्वर में बोला, "हॉस्पीटल में तुम जल्दी ही ठीक हो जाती सुधी ! यह खून......!"

"कुछ भी तो नहीं यह," सुधा जैसे अरविंद को पुचकारती हुई बोली, "केवल खून का ही खून हुआ है। बहने दो उसे ! हाँ, एक काम करो। मेरी साड़ी गन्दी हो रही है। मुझ दुल्हन का रूप इस खून से विकृत होता जा रहा है। तुम मुझसे घिनाओगे तो नहीं ?.......मुझे थोड़ा-सा पुराना कपड़ा दे दो।"

अरविंद झटपट अलगनी से अपनी धोती उतारने लगा। उधर सुधा दर्द से छटपटाती रही। अरविंद ने जल्दी में धोती के कई टुकड़े कर डाले। उन्हें सुधा को देता हुआ बोला, "ये लो। लेकिन ये तो इतने खून के लिये शायद नाकाफी होंगे !"

सुधा ने हाथ के इशारे से अरविंद को बाहर निकल जाने को कहा। अरविंद बाहर आकर कुछ देर चिन्तित मुद्रा में खड़ा रहा। इसी बीच भीतर से सुधा की करुण चीख सुनाई पड़ी। अरविंद भीतर दौड़ गया। देखा कि बिस्तर पर उठने की कोशिश में सुधा गिर पड़ी थी।

"क्या हुआ सुधी ?" अरविंद का स्वर काँपने लगा, "तुम लेटी रहो न ? उठती क्यों हो ?"

"मुझसे उठा नहीं जाता कमल," सुधा रोती हुई बोली, "यह खून साफ कैसे होगा ?"

"बस, इसी के लिये मुझे बाहर निकाला था ?" अरविंद सहानुभूति की सजल वाणी में बोला, "बताओ, जख्म कहाँ है ? मैं उसे साफ करके पट्टी बाँध देता हूँ। इसमें लजाने की क्या बात ?"

"ओह !" दुर्निवार पीडा के क्षणों मे भी सुधा को पथराती आँखों में लाज के डोरे उग आये। होठों पर मुस्कान की उदास रेखा खिंच आई। बोली, "तुम इतने बड़े विद्वान होकर भी अभी वही हो ! बचपन के बुद्धू कमल !...... और लाज ? तुमसे सचमुच अब लाज कैसी ?"

किसी तरह मुड़ कर सुधा ने पास बैठे अरविंद की गोद में अपना सिर रख दिया। उसके पायजामे में आँखें भींच कर पलक-सम्पुट बन्द किये चुपचाप लेटी रही। अरविंद कुछ देर उसका सिर सहलाता रहा। तभी उसका ध्यान सुधा के अस्तव्यस्त जूड़े की ओर गया। जूड़े में विनोद की निर्ममता की छाप मौजूद थी। उसने जूड़े को यथास्थान खोंस देना चाहा। पर यह काम उससे हो नही सका। अब तक उसको बुद्धि में साफ हो गया था कि सुधा की असल तकलीफ क्या है। कुछ समय वह खुद भी संकोच और फर्ज के द्वन्द्व मे पड़ा रहा। फिर सुधा के सिर को आहिस्ते नीचे रखकर उसने धोती के टुकड़े हाथ में लिये। उनसे निरन्तर बहते कच्चे रक्त की धार को साफ करने की कोशिश करने लगा। टुकड़े रंगते गये, किन्तु खून का बहाव बन्द नही हुआ। उस ठंढक में भी अरविंद के ललाट पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। तभी सुधा ने अर्धमूच्छित अवस्था में उसे पुकारा, "छोड़ दो कमल, इधर आओ तो !"

अरविन्द सुधा की साड़ी को सम्भाल कर उसके सिरहाने बैठता हुआ अधीर स्वर मे बोला, "अब तुम्हारी बात नही मानूँगा सुधी ! हमे जल्दी ही हॉस्पीटल जाना होगा, नही तो.........!"

"दुत पगले !" सुधा पुनः उसकी गोद मे सिर रखती हुई बोली, "अब तो इनी-गिनी सांसें ही बची हैं। तुम इन्हें भी व्यर्थ कर देना चाहते हो ?.......आह, मैं आज कितनी खुश हूँ, कितनी सन्तुष्ट ! मेरी इच्छा थी, तुम्हारी गोद में ही मरती। आज यह इच्छा भी पूरी होने जा रही है !...........तो सुनो कमल, मेरे प्राण ! मेरे और नजदीक मुँह लाओ। मैं तुम्हें ठीक से देख नही पा रही हूँ !"

अरविन्द सुधा के चेहरे के पास अपना अश्रुसिंचित मुखड़ा ले गया। सुधा की अधमुँदी पलकों, ललाट, होठ, कपोल आदि पर अपने पागल चुम्बनों की मुहर

घबराता हुआ रुंधे कण्ठ से बोला, "तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकती सुधी! मैं तुम्हें खोकर पागल हो जाऊँगा, पागल!"

सुधा ने किसी तरह अपने पिचिल होठों से अरविन्द के गीले गालों को चूम लिया। प्रणय के उद्दाम आवेग में दुर्बल स्वर में बोली, "घबराओ मत मेरे स्वामी! मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकती हूँ? नश्वर शरीर सत्म हो जाये, पर मैं——मैं तुम्हारी परछाईं बन कर डोलती चलूँगी। मेरे बिसरे जीवन के दिन तो थके गये नाथ! अब तो तुम मेरे इतने नजदीक हो। इससे अधिक सुख मुझे........आह! मैंने तुम्हें तन सौंप दिया, मन दे दिया और अब अपने प्राण भी तुम्हारे चरणों में अर्पित कर रही हूँ। इसे ठुकराना मत कमल, ठुकराना मत! मैं मर जाऊँ तो मुझे अपने ही हाथों गंगा में प्रवाहित कर देना। दूसरा कोई मेरा शरीर छूने न पाये! मैं.............ओफ, सिर चक्कर सा रहा है.........आह!"

अचानक दर्द का मर्मान्तिक और घातक दौरा फिर शुरू हो गया। सुधा अरविन्द की गोद में ही छटपट करती तथा कराहती हुई पुनः मूर्च्छित हो गई। अरविन्द के लाख यत्न करने पर भी उसकी चेतना फिर नहीं लौटी। थोड़ी ही देर में उसकी गोद में पड़ी-पड़ी ही वह ठण्डी पड़ गई। अरविन्द बड़ी देर तक उसे उसी तरह गोद में लिये रहा। अपनी कांपती उँगलियों से उसके बिखरे केशों को दुलराता रहा। अपने मूक प्यार का सर्वस्व निवेदित करता रहा। उसकी आँखों से निरन्तर झड़ते बिन्दुओं का स्रोत कब और कहाँ सूख गया, इसे वह खुद मालूम नहीं कर सका। जब होश हुआ तो उसने पाया कि वह आदमी नहीं, कोई पत्थर है। उसकी देह तथा मन के यन्त्राकोल के साथ सुधा के मुर्दे शरीर को बाँध दिया गया है। नियति के इस विचित्र खेल पर उसे बड़ा कुतूहल हुआ। सुधा तो, अपने ही शब्दों में, शायद अपनी मंजिल तक पहुँच आई थी। किन्तु अरविन्द जैसे पत्थर की भी कोई मंजिल शेष रह गई है अब? कमल इस प्रश्न के सारे पहलुओं पर सोचता रहा। किन्तु सुधा के रेशमी बालों की तरह प्रश्न और उसके उत्तर उलझे के उलझे ही रह गये। सुधा जहाँ भी थी, उसकी शक्ति थी। उसकी आस्था और विश्वास थी। आज उसके अचानक टूट जाने से अरविन्द के विश्वास भी टूट गये थे। उसकी आस्था और शक्ति बिखर गई थी। इन्हीं आस्थाओं के बल पर अब तक उसने जीवन की लड़ाइयाँ लड़ी थीं। संघर्षों की आँधी में भी ज्योति की शिखा बनकर मुस्काता रहा था। आज पहली बार उसने अनुभव किया कि वह पराजित है। अकेला है। उसके धुएँ

ही स्वप्न, अपनी ही इच्छाएँ उसे नितान्त अकेला छोड़ कर कहीं दूर भटक गई हैं।

धीरे-धीरे रात ने अपने अन्धकार के डैने विश्व पर फैला दिये। आज शुक्ला पंचमी थी। बाहर चाँद की मद्धिम किरणें अनन्त के रहस्य बनकर पृथ्वी पर छा गई थीं। किन्तु अरविन्द की कोठरी के भीतर तो अँधेरा ही अँधेरा था। अरविन्द और सुधा भी जैसे उसी अँधेरे के दो छोटे पिण्डों की तरह कमरे में पड़े हुए थे। सांझ होते ही अरविन्द कमरे की बत्ती जला देता था। किन्तु आज अब तक उसने रोशनी की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। ज्योति का पथिक आज अनजाने ही अन्धकार के अनन्त गलियारे में भटक गया था। यह अन्धकार ही इस समय उसका एक मात्र सत्य रह गया था। पता नहीं कब तक अँधेरे के साथ उसका आदान-प्रदान चलता रहा। आखिर उसकी समाधि टूटी। उसने सुधा का सिर अपने हाथों से टटोल कर अपने अंक से आहिस्ते बिस्तर पर रख दिया। फिर बड़े धैर्य से बत्ती जलाई। बत्ती के जलते ही कमरे की सारी चीजें अपनी-अपनी इकाइयों में चमकने लगीं। अरविन्द ने पाया कि अब वह सुधा के जड़ अस्तित्व के इर्द-गिर्द रिसता हुआ कोई विचार है। इस विचार को अभी भी चलना है। सुधा के निर्जीव शरीर का यह जीवन्त मील-पत्थर उसी दिशा का संकेत है जहाँ उसे बढ़ते जाना है। उसने झुक कर सुधा के मुखड़े को एक बार प्रकाश की नई आँखों से देखा। उसने पाया कि उस महानिद्रा में लीन चेहरे की शिरा-शिरा में अरविन्द के बढ़ते कदमों को स्वीकृति है। उसके ललाट पर उसी ज्योति की तस्वीर है जिसे अरविन्द को अपने तथा सुधा की अमर आत्मा के लिये धारण करना है। उसने झुक कर सुधा के ललाट को चूम लिया और चूमता रहा। चुम्बन की प्रक्रिया में ही उसे अनुभव हुआ जैसे सुधा मरी नहीं है। वह तो प्रकाश के ही फूल बनकर अरविन्द के जीवन-पथ पर बिछ गई है। प्रेरणा बनकर भीतर और बाहर छा गई है।

अब अरविन्द को स्मरण हुआ कि सुधा का अन्तिम संस्कार भी करना है। उसे लगा जैसे सुधा के पार्थिव शरीर को ज़्यादा देर तक भीतर रखने से शायद उसकी आत्मा को कष्ट हो रहा है। तभी अपने कमरे से बाहर एक स्त्री-कण्ठ के चीखने-चिल्लाने तथा 'बचाओ' 'बचाओ' की आवाज उसके प्राणों को कँपा गई। उसने बाहर निकल कर देखा, कहीं कुछ नहीं था। केवल बीच आगन में, चाँद के दुधिया प्रकाश में, खून के कुछ धब्बे अब भी चमक रहे थे। उसने उनमें से एक-एक को झुक कर देखा। उसे लगा जैसे सुधा की करुण चीख और

विनोद की निर्दयता की पिण्डीभूत परछाइयाँ उनमें नाच रही हैं। उसे चुनौती दे रही हैं। उसने उनकी ओर से दृष्टि मोड़कर एक बार आकाश में देखा। चाँद ढलता जा रहा था। उसकी तिरछी किरणें अरविन्द के मकान की बगल में खड़े पीपल के पेड़ की झझरीदार पत्तियों से झाँक रही थी। मकानों की धूमिल पहचान के आगे मन्दिर के कँगूरे का चिरपरिचित त्रिशूल भी दिख रहा था। *न जाने कब से यह त्रिशूल अनन्त की ओर निशाना साधे समाधिस्थ खड़ा* था। मन्दिर की ईंट-ईंट में जडी हुई किसी अज्ञात शिल्पी की उज्ज्वल साधना त्रिशूलीभूत होकर लम्बरूप से नीरव आकाश में उड़ना चाह रही थी। किन्तु नीचे मन्दिर की माया शक्ति का आकर्षण उसे अपने रेशे-रेशे में बाँधे हुए था। भगवान शंकर का यह त्रिशूल क्या अपने लक्ष्य की अमित ऊँचाइयों में उड़ सकेगा ? क्या विश्व की रंगीन माया की यह शक्ति इतनी मजबूत है कि वह त्रिशूल को लक्ष्य-वेध नहीं करने देगी ?.........

कहीं बाहर से एक बार फिर 'बचाओ', 'बचाओ' की चीख अरविन्द के पागल प्राणों में दौड़ गई। वह उद्भ्रान्त-सा भागता हुआ दरवाजे तक गया। बाहर सड़क पर झाँककर देखा। पतली सड़क शान्त भाव से सोई हुई थी। केवल सामने कुछ दूरी पर स्ट्रीट लाइट के पोल के नीचे एक ठिगने तथा दूसरे लम्बे आदमी की दो काली परछाइयाँ खड़ी-खड़ी कुछ बातें कर रही थी। उनसे भी आगे किसी रिक्शे की घंटी टुनटुना रही थी। कुछ देर खड़े रहकर अरविन्द ने अनुभव किया कि इस घर से अन्तिम विदाई लेने से पहले शोभा के प्रति भी उसका कुछ फर्ज है। नही तो 'बचाओ' 'बचाओ' की मार्मिक चीख उसके प्राणों में कभी भी शान्ति नही आने देगी। अपने पीछे वह सुधा को कोठरी मे अकेला छोड आया था। सुधा शायद अकेली पड़ी-पड़ी घबड़ा रही होगी। वह उल्टे पाँव पुनः अपनी कोठरी की ओर भागा। वहाँ सब कुछ पूर्ववत था। अरविन्द महानिद्रा मे डूबी सुधा को कुछ देर तक एक-टक निहारता रहा। फिर कुछ सोच कर सुधा की बगल मे ही कागज पेंसिल लेकर बैठ गया। एक पत्र लिखने लगा—

"शोभा,

शायद अभी मैं उस जगह पहुँच चुका हूँ जहाँ व्यक्ति के लिये प्रिय या अप्रिय जैसी कोई चीज नहीं रह जाती। अपने जीवन की सबसे प्रिय वस्तु को गवाँ कर आज मैं सदा-सदा के लिये भिखारी बन गया हूँ। ऐसा भिखारी जो अपनी झोली किसी की ओर नहीं फैलाता। अपने अभावों की मिठास में ही जीता

है। फिर भी मेरे रास्ते में तुम एक छोटे भाव-खण्ड की तरह अब भी खड़ी हो। मैं आज इसे भी अपने अभावों की खुरदरी कूची से मिटा देना चाहता हूँ। तभी मैं शान्ति से आगे बढ़ सकूँगा। मैं जानता हूँ, मेरे रास्ते पर तुम्हारा यह अस्तित्व इतना दुर्बल है कि जरा-सा झटका देकर ही इसे तोड़ा जा सकता है। इससे तुम्हें जितना कष्ट होगा उससे कई गुना ज्यादा मुक्ति का आनन्द मिलेगा। तुम शायद अबतक समझ चुकी होगी कि मेरी, तुम्हारी या तुम्हारी माँ की गलती से मेरा और तुम्हारा जो सामाजिक गठबन्धन हुआ, वह ठीक नहीं हुआ। अब तो हमारे इस सम्बन्ध में सराँध पैदा हो गई है। ऐसी सराँध जिसे न तो साफ किया जा सकता है, न ढोया जा सकता है। जरूरत है एक ऐसी शल्य-चिकित्सा की जो इस जहरीले घाव को काट कर फेंक दे। आशा है, ऐसा करने से तुम्हारे दुख दूर हो जायेंगे। तुम्हारी पीड़ा से मैं भी बच जाऊँगा।

"विवाह एक सामाजिक प्रयोग है। इसके द्वारा स्वभावतः एक दूसरे को अपनी ओर खीचने वाले प्रकृति और पुरुष को सम्बद्ध करके उन्हें भावी सृष्टि के लिये सामाजिक रूप से सार्थक बनाया जाता है। वस्तुतः हम सब लोग उसी महा प्रयोग की इकाइयाँ हैं जिसका परम लक्ष्य एक अति मानव-समाज का गठन है। यह हमसे अभी न जाने कितनी दूर आगे है। स्वभावतः ऐसे सारे सामाजिक प्रयोग अभी कच्चे हैं, क्योंकि मानव संस्कृति को जनमे ही अभी कितने दिन हुए! प्रयोग कच्चे हों या पक्के, आखिर प्रयोग ही हैं। सफलता की दृष्टि से वे अक्सर असफल ही होते हैं। इन प्रयोगो को जो धार्मिक महत्व दिया जाता है, वह भी अपनी जगह पर ठीक है। बशर्ते कि धर्म को अन्धा नही बना दिया जाये। धर्म की नींव तो प्रेम ही है। अब यदि प्रेम के नाम पर किसी की क्वारी माँग में सिन्दूर भरने को धर्म कहा जाये तो इसमें बुराई क्या है? सिन्दूर को दो हृदयों के मिलन का प्रतीक मान कर चलना ही ठीक होगा। धर्म मानव प्रेम के जितना नजदीक होगा, उतना ही स्वाभाविक दिखेगा। वह इससे जितना ही दूर जायेगा, उसकी पारदर्शिता मिटती जायेगी। धीरे-धीरे वह अन्धी रूढ़ियों का पर्याय बन जायेगा।

"तुम मेरी विवाहिता पत्नी हो तो क्या, प्रयोग ने दिखा दिया कि हम दोनों गलती से एक दूसरे के साथ मिल गये थे। मुझसे विवाहित होकर भी तुम्हारा प्रेम विनोद के लिए था। मैं इस प्रेम की दिशा में कोई चन्दन का पेड़ नहीं जिसकी सुरभि उसे आप्यायित करती हो। मैं तो वहाँ निर्जीव पत्थर की तरह रुकावट मात्र हूँ।; कब तक तुम इस पत्थर को अपने प्रेम तथा धर्म की मर्यादा

मानती रहोगी ? यह तो तुम्हारी दृष्टि का भ्रम है। जिस दिन तुम इस पत्थर को देवता समझना छोड़ दोगी, तुम्हारे दुख उसी दिन दूर हो जायेंगे। तुम्हारे बन्धन उसी दिन खुल जायेंगे।

"मैं यह नही कहता कि तुमने मुझसे प्रेम नहीं किया या नही करती हो। वस्तुत: प्रेम कोई ऐसी चीज नही जिसका सर्वांश कोई पति अपनी पत्नी के लिये या पत्नी पति के लिये जुगा कर रखे। इस जीवन में हमारे सामाजिक या आत्मिक सम्बन्ध बहुत ज्यादा हैं। प्रेम के इसी अक्षय कोष में से उन सबको कुछ न कुछ देना पड़ जाता है। तुम मेरी पत्नी नही भी होतीं तो भी मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट गुणों के कारण तुम्हे अपना थोड़ा या ज्यादा प्रेम देता ही। यह स्वाभाविक है। मेरे विषय में भी तुम अपने प्रेम को इसी कसौटी पर परख सकती हो। तुम्हारे प्रेम के लिये मैं सचमुच आभारी हूँ। सामाजिक या धार्मिक रूप से अलग हो जाने पर भी हम दोनों एक दूसरे के प्रेम की अपेक्षा करेंगे ही। किंतु आज विनोद ने सबके सामने मेरी बगल में अनन्त निद्रा में सोई सुधा के साथ जैसा बर्ताव किया, उसके प्रकाश में भी हमें एक दूसरे के सम्बन्ध को परखना होगा। शायद गलत प्रयोग का ही नतीजा था कि विनोद को अपनी ही शोभा का अपहरण करना पड़ा। अरविंद को अपनी ही सुधा को निर्मम पिटाई देखनी पड़ी। उसकी करुण अकाल मृत्यु का कारण बनना पड़ा। जिस समय विनोद मुझे अपने रिवाल्वर का शिकार बनाना चाह रहा था, उस समय भी मैंने तुम्हारे प्रेम का एक रूप देखा। तुम अपने सुहाग की रक्षा के लिये अपने प्रिय विनोद को 'आततायी' तक कह बैठीं। क्या उस समय सचमुच तुम अपने सुहाग को बचाने के लिये ऐसा बोल गईं ? अथवा तुम्हारे वे शब्द किसी झूठे अभिमान, अन्धे धर्म तथा नपुंसकता के प्रतिबिम्ब थे ? मेरी समझ में दूसरी बात ही सही थी। जो तुम्हारी रक्षा नही कर सकता, तुम्हें अपने प्रेम मे नहीं बाँध सकता, तुम्हारे विश्वास को पात्र नहीं बन सकता, यदि वही तुम्हारा सुहाग है तो इससे तो वैधव्य अच्छा है। वैधव्य में कम से कम मन को किसी खूंटे से बांधना तो नहीं होता। मैं समझता हूँ कि तुमने 'बचाओ', 'बचाओ' की जिस करुण ध्वनि का उच्चारण आज यहाँ किया, उससे मूलत: तुम मुझसे ही बचने को छटपटा रही थीं। विनोद की ओर तुम्हारे स्वभावतः बढ़ते हुए कदमों का रोड़ा मैं ही तो हूँ।

"अतः मैं आज अपनी ओर से तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ। इस मुक्ति के लिये न तो किसी घोषणा-पत्र की जरूरत है और न किसी कानून की। विनोद बाबू

चूंकि वकील है, अतः कानून के लिये स्वभावतः उनके मन में कमजोरी होगी। वे बाजाप्ता कानूनी ढंग से मुझसे तुम्हारा डाइवोर्स खोजेंगे। मैं खुद कानून में श्रद्धा नहीं रखता। सबसे बड़ा कानून हमारे मन की आवाज है। इस आवाज की दिशा में कदम उठें तो किसी बाहरी कानून की शरण नहीं लेनी पड़ेगी।

"मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे इस मुक्ति-पत्र के बाद तुम्हारा मन स्वस्थ हो जायेगा। मनुष्य के नाते यदि सम्भव हो तो कभी मेरी भी याद कर लेना। इस अभागी सुधा को भी स्मरण कर लेना जिसने आज मेरे जीवन की सारी खुशियाँ लूट ली है। तुम्हारी मुक्ति का यह नवीन प्रयोग तुम्हें स्वस्थ और सानन्द रखे, इसकी शुभ कामना करता हूँ। अच्छा अलविदा!

शुभेच्छु,
कमल"

पत्र पूरा कर लेने के बाद अरविंद को लगा जैसे वह एक बड़े भार तथा अनावश्यक जिम्मेदारी से मुक्त हो गया है। उसने पत्र मोड़कर एक सादे लिफाफ में बन्द कर दिया। उस पर शोभा का पता लिखकर उसे एक तरफ रख दिया। अब उसकी दृष्टि सुधा की ओर गई जो अब भी मानो उसके प्रेम की याचना करती हुई उसकी ओर अधमुंदी पलकों से देख रही थी। उसकी माँग में सिन्दूर की आभा अभी भी विराज रही थी जिसे अरविंद ने खुद अपने हाथ से लगाया था। उसे लगा जैसे शोभा को पत्र लिख देने के बाद उस सिन्दूर की मुस्कान पहले से भी अधिक दीप्त हो गई हो।

अरविंद ने अपने ट्रंक में से एक नई रंगीन साड़ी निकाली जिसे उसने कभी शोभा को देने के लिये खरीदा था। उससे सुधा के शरीर को अच्छी तरह ढक दिया। फिर सुधा के बटुए में से सिन्दूर की डिबिया निकाली। सिन्दूर से एक बार फिर उसने अपनी पसन्द से उसकी माँग भरी। सिर्फ इस थोड़े से परिवर्तन से ही सुधा का दुलहन-रूप निखर उठा। अरविंद ने बड़े आवेग के साथ उसके सिन्दूर-भरे सीमन्त को चूम लिया। फिर सुधा के शव को अपने कंधे पर डालकर बाहर गंगा की ओर चल पड़ा। वह चाहता तो अपनी मदद के लिये पास-पड़ोस में रहने वाले कुछ लोगों को बुला लाता। किन्तु उसने इसकी कोई जरूरत नहीं समझी। सुधा के प्यार से स्फुरित होठों से निकले अन्तिम शब्दों को वह अक्षरशः सच कर देना चाहता था। सुधा का शव उसे फूल जैसा हल्का लगा। जिसे जीवन में नहीं ढो सका उसे मरणोपरान्त ढो रहा है। जिसे सामाजिक रूप से अपना नहीं सका उसे ही अब आत्मिक रूप से अपना लिया है।

अरविन्द के डेरे से गंगा का घाट बहुत नजदीक था। जाड़े के दिनों में गंगा कुछ नीचे सरक गई थी। क्षितिज पर खड़ा चाँद अरविन्द को सहमा-सहमा-सा कनखियों से देख रहा था। आकाश की अनन्त नीलिमा में नक्षत्रों के छोटे-बड़े कारवाँ न जाने किस दिशा में बढ़े जा रहे थे। नीचे शांत भाव से पड़ी गंगा की नील जलराशि पर चाँद की बुझती किरणें चकमक कर रही थी। गंगा के पार सोनपुर स्टेशन की बिजली बत्तियाँ क्षितिज की पीली-पीली आँखों-सी चमक रही थी। सर्पाकार गंगा के टेढ़े-मेढ़े तीर पर खड़े पटने के छोटे-बड़े मकान पीछे छूटते जा रहे थे। अरविंद गंगा की धार के अनुकूल ठंडी रेत पर न जाने कब तक चलता रहा। जब पैर थक गये तो उसने अपने को एक पुराने घाट की टूटी-फूटी सीढ़ियो के नीचे बालू पर खड़ा पाया। अब तक चंद्रमा ढल चुका था। अन्धकार में चीजो की पहचान मिट गई थी। अरविंद जहाँ खड़ा था उसके ठीक सामने तिमजिले मकान की खुली खिड़की से बिजली का मन्द प्रकाश नीचे गंगा के तट तक पहुँच रहा था। अरविंद ने उसी प्रकाश के सामने सुधा का मुख करके उसपर अपना अन्तिम चुम्बन जड़ दिया। दूसरे ही क्षण सुधा को मिट्टी को लेकर सामने गंगा की जल-सतह में उतर गया। घुटने भर पानी में उतर कर नदी के कनकनी-भरे जल मे सुधा को छोड़ दिया। सुधा के पानी में पड़ते ही एक हल्की छप-सी आवाज हुई। थोड़ी देर मे सब कुछ शांत हो गया। अब सुधा के पीछे कुछ स्मृतियों के अतिरिक्त दूसरा कुछ शेष नही रह गया था। बाहर निकलने के पहले अरविन्द ने झुक कर वहाँ गंगा-जल के थिरकते प्रवाह को प्रणाम किया। फिर भारी कदम चलकर गंगा के तट पर आया। लड़खड़ाता हुआ टूटी हुई सीढ़ियो पर चढ़कर पुरानी ईंटो की एक छोटी शिला पर परकटे पंछी की तरह थहरा कर बैठ गया। बड़ी देर तक उस ठंडी रात मे बैठा-बैठा गंगा की शान्त लहरों का संगीत सुनता रहा। फिर चेतना ने एक नई करवट ली। उठ कर एक तरफ चल पड़ा। कहाँ, वह खुद नही जानता था।

विग्रह-वाक्य

अपनी कर्मभूमि की खोज में भटकते हुए अरविंद को लगभग चार महीने हो रहे हैं। आज से एक सप्ताह पहले काशी और दार्जिलिंग को छोड़कर उत्तर भारत का शायद ही कोई नगर उसके भटकते कदमों से छूट पाया हो। कई नगरों में उसे राष्ट्र के नव निर्माण तथा नव जागरण की झलक मिली। किंतु

उसने पाया कि ऐसे सारे निर्माण के भीतर भारतीय मानस अन्दर से विकृत होता जा रहा है। मशीनों को चलाने वाले हाथ मशीनो से भी अधिक जड़ हो गये है। समाज आगे भागा जा रहा है। किन्तु उसे कहाँ और कैसे जाना है, यह किसी को मालूम नहीं। इस भाग-दौड़ में जागरूक आत्माएँ आँख मूंद कर दौड़ने वाले लोगों के पैरों तले पिस रही है। सुधा की आकस्मिक करुण मृत्यु ने अरविंद की नस-नस में वैराग्य भर दिया था। काफी समय तक उसका विरागी मन जीवन के किसी भी पहलू पर टिक नही पाया। पागल की तरह यहाँ से वहाँ चक्कर काटने मे ही वह समय बिताता रहा।

काशी और दार्जिलिंग से न जाने क्यों वह अब तक कतराता रहा था। ये दोनों जगहें कही उसके मर्म पर बैठी थी। वहाँ जाकर शायद वह अपने घावों को और हरा नहीं बनाना चाहता था। किन्तु धीरे-धीरे इन दोनों स्थानो के अदृश्य सूत्रों में उसका मन लिपटता चला गया। तब उसने निश्चय किया कि सूत्रो की इस माया को भी पहले तोड़ लिया जाये। काशी से पटना आ जाने के बाद अरविंद ने कई बार महसूस किया था कि किरण के साथ उसने उचित न्याय नहीं किया। ताज्जुब नही कि किरण के मन पर भारी सदमा पहुँचा हो। अरविंद उसकी नजरों में बराबर के लिये गिर गया हो। अपनी शादी के बाद उसने कई बार किरण को पत्र लिखना चाहा था। किंतु लिख नही सका। किरण की ओर से भी इस बीच कोई चिट्ठी नही आई। श्यामाकान्त के नाम उसने बीच-बीच मे कई पत्र जरूर छोड़े थे। जब एक का भी जवाब नही आया तो हार मानकर अरविंद भी चुप लगा गया। जीवन के जो किनारे पीछे छूट चले थे, उसकी किश्ती जाने-अनजाने आज तक उन्ही की ओर बढ़ रही थी। पीछे लौटकर देखने और अनुभव करने में उसके मन को न जाने कितने आघात झेलने पड़े थे। किसी नये हादसे को वह सह सके, इतनी ताकत उसमें अब रह नही गई थी।

दार्जिलिंग से अभी-अभी वह काशी आया है। काशी वह कैसे आ गया, इस पर उसे खुद आश्चर्य है। दार्जिलिंग की पहाड़ियों में वह एकाकार हो जाना चाहता था। पता नही कैसे उसके प्राणों का पत्थर अपने सजातीय परिवेश को छोड़ यहाँ काशी में आ गया। काशी मे तो जब वह आदमी था तब भी एक ढेले की तरह पटने में फेंक दिया गया था। अब जब वह पत्थर हो चुका है, कौन उसकी रक्षा करेगा यहाँ? कौन उसे ठौर देगा? हाँ, काशी में ही उसके पत्थर को शायद विधिवत पूजा मिल सकती है। किसी मंदिर के अँधेरे कोने में उसे थोड़ी जगह मिल जा सकती है। वहाँ वह भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रतीक बन सकेगा।

संस्कृति और धर्म के आघातों ने तो उसे पत्थर बना ही दिया है। फिर वह अब उन्ही का निर्जीव प्रतिमान बनकर उनकी श्रद्धा के अक्षत और फूल प्राप्त करेगा। जीवन की गति से हारकर अगति के देवत्व में प्रतिष्ठित हो जायेगा....नहीं, वह नही चाहता पत्थर का देवता बनना। जड़ ज्योतिर्लिंग बनकर किसी की अन्धी श्रद्धा का अन्धकार पीते जाना। इससे तो अच्छा है कि वह किसी खड़ी होती हुई इमारत मे छोटी-सी ईंट बनकर चुन जाए। किसी सडक पर कंक्रीट का टुकड़ा बनकर बिछ जाए। अपने थके-हारे अस्तित्व को ले करके भी वह जीवन को धड़कन बनेगा, निर्माण का पत्थर बनेगा। कहीं मील-पत्थर के रूप मे भी गीत के प्रवाह को निरन्तर आगे बढते जाने का संकेत देता रहेगा। वह जीवन को आह से जला है तो जीवन की ही राख होकर रहेगा। अपनी खाद पर नई जिन्दगी को अंकुरित करेगा। अब उसके बचे-खुचे अस्तित्व की यही सार्थकता होगी।

काशी के इस तंग गलियारे में खड़ा-खड़ा वह लोगों के आते-जाते प्रवाह को देख रहा है। मानो यहाँ भी वह कोई मील-पत्थर ही हो जिसकी अपनी कोई चेतना नही होती। हाँ, दूसरे लोग उसे अपनी चेतना का अंश अवश्य बना लेते हैं। आते-जाते लोगों में कई ऐसे चेहरे हैं जिनसे वह अच्छी तरह परिचित रहा है। किंतु खुद उसे अभी कोई नही पहचान पाया है। उसकी बढी हुई लम्बी दाढ़ी, हवा में उड़ते लम्बे रूखे बाल, कई जगह फटा-चिटा बन्द गले का कोट, गर्द से भरी मैली खादी की धोती और नंगे पाँव—उसे देखकर भी कौन पहचान पाता कि यह वही अरविंद है जो कभी काशी के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। वह तो आज हर तरह से पागल था। अपने अस्तित्व के लिए पागल, जो कही से भी कोई तिनका पकड़ कर मझधार में अपनी डूबती हुई किश्ती को सहारा देना चाहता था। गली के एक मोड़ पर खड़े अरविंद को वह रास्ता तूफानी समुद्र के ज्वार की तरह लग रहा था। एक ऐसा ज्वार जो अनगिनत मनुष्यों के रूप में लगातार छोटे-बड़े बुलबुले छोड़ता बढ़ा जा रहा था। बुलबुले क्षण भर के लिये कोई संज्ञा बने आते थे। फिर वे ज्वार की लहरो के झटके में संज्ञाहीन होकर अदृश्य हो जाते थे। खुद अरविंद उनके बीच मानो कोई नाचीज टापू हो। उसके इर्द-गिर्द केवल लहरें और बुलबुले नाच रहे थे। कोई चीज यहाँ स्थिर नही थी। रूप, नाम और भाव सबमें बहाव था। खुद अरविंद मानो प्रतिक्षण बदलता जा रहा हो। अपने पीछे और आगे प्रवहमान रूप और गति को बनती-मिटती रेखाएँ छोड़ता बहा जा रहा हो।...

दार्जिलिंग की ऊँच-नीच पर्वत श्रेणियाँ उसके मन के अतीत रूपों की तरह कहीं दूर पीछे छूट चुकी हैं। मुक्ति के मरने के बाद फिर किसी नई डाल को पकड़ने या किसी पुरानी डाल से रिश्ता जोड़ने की ख्वाहिश अब रह नहीं गई थी। किंतु पता नहीं, यह कैसा मोह था जो उसे खींचकर उन पहाड़ी ऊँचाइयों पर ले गया। एक दो दिनों तक तो वह वहाँ हरी मखमल की तरह दूर-दूर तक फैले चाय-बागानों में अपने को भुलाए रहा। सुनील पहाड़ियों की गोद में अबोध मेमनों की तरह सोते-जगते बादलों को निहारता रहा। किंतु उसका स्वप्न एक दिन भंग हो ही गया। उस दिन वह माल रोड के एक किनारे बैठा था। उसकी किरण भाभी, जो कभी करुणा की मूर्ति थी और जिनका स्वच्छ रूप सादे पहनावे में छलका करता था, आज माल रोड की दूसरी तितलियों को अपनी भड़कीली पोशाक से मात कर रही थी। उनका दाहिना हाथ एक दूसरे पुरुष के हाथ में बंधा था। पहनावे और चाल-ढाल में वह छंटा हुआ साहब जान पड़ता था। दोनों आपस में अंग्रेजी में बातें कर रहे थे। कुछ क्षण अरविंद से थोड़ी ही दूर वे माल रोड पर खड़े रहे। फिर सामने कपड़े की एक बड़ी दुकान में शापिंग के लिए घुस गए। इस बीच अरविंद उठ कर खड़ा हो गया था। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। क्या सचमुच वह काशी के मन्दिर की ही किरण है? किंतु उसकी आँखें ज्यादा देर धोखे में नहीं रहीं। किरण की एक-एक भंगिमा से वह इतना परिचित था कि उसकी लाख आधुनिकता के बावजूद उसे पहचानने में कठिनाई नहीं हुई। उसने कुछ तटस्थ भाव से अपने दुखते प्राणों में टटोल कर देखा। वह खुद भी तो पहले से बहुत बदल चुका है। दुखिया किरण के उजड़े जीवन में यदि फिर बहार आ गई है तो यह तो सुख की बात है। सबके रास्ते अलग-अलग हैं। नये रूपों में ढलने की प्रक्रिया भी सबकी भिन्न है। क्या हुआ, यदि किरण अरविंद के मनचाहे ढंग से नहीं बदल पाई? वह खुद भी क्या किरण की इच्छा के अनुसार ढला है कभी? ...

अरविंद ऐसे लज्जित हुआ जैसे किसी ने उसकी कोई कमजोर नस पकड़ ली हो। सोचने लगा, क्या उसका किरण से मिलना अभी ठीक होगा? यदि नहीं, तो क्या वह उससे बिना मिले दार्जिलिंग छोड़कर चला जावे? किंतु ऐसे चले जाने में एक खतरा था। शायद उसके मन की गाँठ खुल नहीं पायेगी। उसके आगे बढ़ते कदमों को शायद वह पीछे मुड़-मुड़कर देखने को विवश करती रहेगी। उसे खुले दिल से किरण से मिल लेना चाहिए। उसके नये जीवन पर मुबारकबाद देकर आगे बढ़ जाना चाहिये। नहीं तो उसके व्यक्तित्व

का वह अंश जिसे किरण ने अपने स्नेह और आँसू से सोच-सींच कर पुष्ट किया था, दुखता रह जायेगा।

कुछ ही देर में किरण कपड़ों का एक बड़ा-सा बण्डल लिये दुकान से बाहर आई। उसके पीछे साथ वाले जेन्टिल मैन भी हड़बड़ी में बाहर निकले। किरण का हाथ पहले की तरह ही पकड़ कर माल रोड की बगल से आगे बढने लगे। अरविंद चुपचाप दोनों का पीछा करता गया। पहाड़ी रास्ते में कई बार उसे नीचे उतरना पड़ा। कई बार ऊपर भी चढना पड़ा। वह दोनों से आठ-दस गज की दूरी बनाए चल रहा था। सोचता रहा, उनसे कैसे और कहाँ मिले। आखिर वे एक सुन्दर बंगले के सामने आकर रुक गए। बंगले के बरामदे मे बैठा एक चपरासीनुमा नेपाली दौड़कर उनके सामने आया। किरण के हाथ से बण्डल लेकर सामने दरवाजे के पर्दे को ऊपर उठा दिया! साहब और बीवी के भीतर जाते ही वह खुद भी अन्दर चला गया। अरविंद बंगले के छोटे से गेट के बाहर खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा। कुछ देर बाद वह गेट खोलकर भीतर चला आया। बरामदे के निकट पहुँचने ही जा रहा था कि भीतर से एक तगड़ा अलसेसियन कुत्ता भौंकता हुआ उस पर झपट पड़ा। खैरियत यही थी कि कुत्ता बँधा हुआ था। कुत्ते के लगातार भौंकने तथा झपटने के ढंग से ही अरविंद के प्राण सूख गये। वह गेट से जितनी दूर भीतर आया था, उतनी ही दूर पीछे खिसक गया। कुत्ते का भौंकना अब भी जारी था। कुछ देर में बंगले से वह नेपाली बाहर निकला। दूर खड़े अरविंद को शका की नजरों से घूरने लगा। फटे हाल वेश में अरविंद को शायद उसने पागल या लम्पट समझ लिया था। अरविंद ने अपने हाथ के संकेत से उसे अपने नजदीक बुलाया। कुछ झिझकते हुए वह आगे बढ़ा। अरविंद से चार गज दूर खड़ा होकर ही डाँट के स्वर मे बोला, "यहाँ क्या चाहता है? किसको खोजता है?"

"भाई, जरा नजदीक तो आओ," अरविंद बोला, "मैं आदमी ही हूँ। कुछ पूछना है।"

पागल की तरह दिखने वाले आदमी के मुँह से ऐसी बात सुनकर भुटिया को कुछ आश्चर्य हुआ। अब वह इतमीनान से अरविंद के नजदीक पहुँच गया। उसे अब भी अविश्वास की नजरों से देखता हुआ बोला "कहो, क्या चाहता है?"

"यह तो बताओ कि यह बंगला किसका है?"

"यह बंगला तो प्रिंसपल खन्ना का है जी,"नेपाली भीतर से कुढ़ता हुआ बोला, "पढ़ा-लिखा नहीं है? सामने नोमप्लेट को बाँच नहीं सकता?"

अरविंद को सचमुच अचरज हुआ कि उसकी नजर अब तक गेट पर लगे नेम-प्लेट पर क्यों नहीं जा सकी थी। वहाँ अंग्रेजी अक्षरों में लिखा था—प्रिंसिपल जी० खन्ना एण्ड प्रो० मिसेज किरण खन्ना।

अरविंद की जिज्ञासा बहुत कुछ इसे पढ़कर ही शान्त हो गई। किरण के लेक्चरर होने की बात उसे मालूम हो चुकी थी। किंतु उसने कालेज के प्राचार्य से ही शादी कर ली है, यह उसके लिए नई बात थी। उसे खुशी हुई कि किरण के जीवन की भटकी हुई किश्ती खन्ना महोदय के रूप में एक अच्छा-सा किनारा पा गई है। उसने वहाँ अधिक देर ठहरना उचित नहीं समझा। उसे दार्जिलिंग आने की सिद्धि मिल गई थी। न जाने क्यों अब बंगले के प्रांगण में जाने से उसका मन विद्रोह करने लगा। उसे किरण की खुशी और सम्मान का भी ख्याल रखना चाहिये। अरविन्द को सामने पाकर किरण का कोई पुराना घाव फिर हरा न हो जाये। उसके बसे-बसाये शान्त नीड़ में फिर कोई नई हलचल पैदा न होने लगे। अरविन्द अपनी उपस्थिति से किरण के लिए कोई नई समस्या बनना नहीं चाहता।........

अरविन्द अभी-अभी जहाँ खड़ा था, वह काशी के दशाश्वमेध घाट का एक कोना था। अब तक अनजाने ही कई गलियों को पार करके वह यहाँ पहुँचा था। आज सुबह ही वह काशी आया था। स्टेशन से सीधे श्यामाकांत के मकान पर पहुँचा। उसका वह पुराना मकान सचमुच भूतों का अड्डा बना हुआ था। कई मुंडेरे ढह चुके थे। भीतर जाने के रास्ते में ढही पड़ी दीवारों की ईंटें बिखरी थीं। सामने दरवाजे पर एक बड़ा-सा ताला लटक रहा था। ताले में भी जंग लगी थी। अरविन्द ने वहाँ खड़े एक आदमी से श्यामाकांत के बारे में जिज्ञासा की। उसके कहने से मालूम हुआ कि श्यामाकांत की बहन प्रीति किसी युवक के साथ भाग गई थी। श्यामाकांत ने उसे खोजने की भरपूर कोशिश की। किन्तु उसका कोई अता-पता नहीं चला। इस हादसे से उसकी बूढ़ी माँ चल बसी। इसके बाद श्यामाकात खुद भी पगला गया। एक रात अपने घर में ताला बन्द करके, सब कुछ छोड़-छाड़ कर न जाने कहाँ लापता हो गया। यह लगभग एक वर्ष पहले की घटना थी। तब से श्यामाकांत काशी में फिर कहीं दिखाई नही पड़ा है।

श्यामाकान्त के इस छोटे से खण्ड-काव्य को सुनकर, न जाने क्यों, अरविंद को बड़ी हँसी आई। एक कोने में खड़ा होकर वह पागलों की तरह हँसता रहा।

जब हँसते-हँसते उसके खाली पेट में दर्द होने लगा तो पेट को दोनों हाथों से दबाये इधर आ निकला।.........

तो श्यामाकान्त भी जिन्दगी से हार गया। बड़ा शेखी बघारता था। अपनी बुद्धि और चतुराई की दलीलें पेश करता था। बेवकूफ कहीं का!...... ....अरविन्द की सूखी आँखों में भी एकाएक पानी उमड़ आया। घाट की निचली सीढ़ी पर बैठा वह आँसू-भरी आँखों से गंगा के शान्त प्रवाह को देखता रहा। गंगा की छलछलाती लहरें किनारे को चूम-चूम कर तीर की तरह आगे निकली जा रही थीं। दिन का तीसरा पहर था। घाट पर स्नान करने वालों की भीड़ कम थी। जब-तब इक्के-दुक्के लोग स्नान करते और चले जाते थे। अरविन्द इस घाट पर अनगिनत बार आ चुका है। उसे यह भी याद है कि इस घाट पर वह शायद ही कभी अकेला आया हो। कई बार नास्तिक श्यामाकांत को भी वह घसीटकर यहाँ ला चुका था। श्यामाकांत की बूढ़ी माँ विद्या देवी, उसकी दोनों बहनें और ....और किरण भाभी तो प्रत्येक रोज यहाँ नहाने आ जाती थीं। किरण के साथ वह जब भी यहाँ आता, वह अपने हाथ से उसे गंगाजल पिलाती। उसके माथे पर चन्दन लगाती। साथ-साथ विश्वनाथ मन्दिर में जाकर बाबा के सामने सिर झुकाती। उनका प्रसाद उसे खाने को देती।.......... अब कहाँ है वह किरण? कहाँ है वह श्रद्धा, विश्वास और स्नेह की मूर्ति? क्या वह वही किरण थी जिसे कुछ दिन पहले उसने दार्जिलिंग में देखा था?

वही घाट है, वही नदी, वही अरविन्द भी। पर आज सब कुछ यहाँ अपरिचय के रंग में डूबा हुआ है। स्वयं अरविन्द भी आज यहाँ के लिए कोई अजनबी हो मानो। उसके साथ की सभी पुरानी पहचानें अब मिट चुकी हैं। श्यामाकान्त, सुधा, किरण, प्रीति, शान्ति आदि सभी अपनी-अपनी डगर पर बहुत दूर आगे निकल गये हैं। अरविन्द अपने कमजोर हाथों से अब उन्हें पकड़ नहीं सकता। वे लहर बनकर आये थे। कुछ दूर साथ-साथ चले। फिर तूफान का ऐसा झोंका आया कि सभी अलग-अलग बिखर गये। न जाने कहाँ क्षितिज की गहराइयों में गायब हो गये। रह गया है केवल अरविन्द। सामने गंगा की लहरें अब भी भागी जा रही हैं। उनकी यह दौड़ हजारों वर्षों से जारी है। हजारों वर्षों के धर्म और अधर्म, पतन और उत्थान के ... लहरें कभी शिथिल नहीं हुईं। अपनी गति में युगों-युगों के ... हुई तटस्थ भाव से बही जा रही हैं। इसमें कहीं भेद की ...

स्वर गूंज रहे हैं, वही अभागन क्षुधा और शांति की हड्डियाँ भी खटखटा रही हैं।

अरविन्द जब उस जगह से उठ कर कहीं चलने को तैयार हुआ तो लगा जैसे चक्कर खा कर गिर पड़ेगा। कल सुबह से ही निराहार था। पास में अब एक पैसा भी नहीं बचा था। 'संस्कृति' के सम्पादन-काल में पैसों की जो बचत उसने की थी, वह सारी की सारी उसकी आवारा यात्रा में स्वाहा हो चुकी थी। सीढ़ियों को बड़ी कठिनाई से पार करके जब वह ऊपर आया तो बेतरह हांफने लगा। कुछ देर तक उसकी सूखी हुई आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह शायद गिर पड़ता यदि किसी के कोमल हाथों का सहारा उस समय उसे नहीं मिला होता। लगा जैसे वह परकटे पंछी की तरह आसमान से जमीन पर गिरने जा रहा हो। बीच में ही किसी दयालु महात्मा के सहृदय हाथों ने उसे थाम लिया हो। कुछ क्षणों तक अब भी उसे अपने आसपास ठीक से दिखाई नहीं पड़ा। धीरे-धीरे आँखों के सामने अँधेरे का पर्दा हटता गया। देखा कि करुणा और स्नेह की मूर्ति अलका उसे अपने हाथ का सहारा देती हुई खड़ी है। उसे सजल आँखों से निहार रही है।

"तुम, अलका ?" अरविन्द किसी तरह इतना ही कह पाया।

इसके दूसरे ही क्षण अलका के कन्धे पर उसका मस्तक खुद-ब-खुद झुक गया। अलका बिना कुछ बोले उसके रुखड़े बालों में उँगलियाँ फेरने लगी। जैसे अरविन्द कोई नन्हा बच्चा हो और वह स्वयं कोई ममतामयी माँ।

प्रकृतिस्थ होने पर अरविन्द ने सिर उठाकर पूछा, "तुमने मुझे पहचान लिया अलका ? कैसे खोज लिया मुझे ?"

"कहीं लहर को भी प्रवाह खोजने की जरूरत होती है ?" अलका ने सान्त्वना-भरे शब्दों में कहा, "किन्तु यह तुमने कैसा वेश बना लिया है ? क्या थे और क्या हो गये !"

अरविन्द ने लक्ष्य किया कि इतना कहते-कहते अलका का गला भर आया है। वह अरविन्द की ओर से आँखें मोड़कर दूसरी ओर ताकने लगी। अरविन्द में इस समय इतनी ताकत भी नहीं बची थी कि वह अलका को सान्त्वना के दो शब्द भी कह सके। किसी तरह इतना बोल गया, "मैं चलना चाहता हूँ अलका, पर......थक कर चूर हूँ। शायद फिर कभी चल नहीं सकूँगा !"

"नहीं-नहीं; ऐसा मत बोलो अरविन्द," अलका ने अरविन्द की दायीं भुजा को अपनी गर्दन में डाल लिया। उसे धीरे-धीरे आगे बढ़ाती हुई बोली, "तुम

जरूर चलोगे। तुम्हारे थके-हारे कदमों में मैं स्फूर्ति भरूँगी। जो खालीपन अभी है उसे मैं पूर दूंगी। तुम्हारे चरणों मे जो छाले पड़े हैं, उनका मरहम मै बनूँगी।"

"किन्तु मैं तो वेतरह टूट चुका हूँ अलका ! शायद तुम्हारी दो जिन्दगी भी मुझे नही जोड़ पायेगी। मुझमें अब बचा ही क्या है जिसे तुम्हें दे सकूंगा ?"

"मैं तुमसे कुछ भी पाने नही आई हूँ," अलका के शब्दों मे ममता की शक्ति और संकल्प की दृढ़ता थी, "मैं खुद इस योग्य नही कि तुमसे कुछ पा सकूंगी। हाँ, तुम्हारे झुलसते प्राणों को कुछ भी छाया दे सकी तो यही मेरे पतित जीवन की सार्थकता होगी। इससे अधिक कुछ नही चाहती। केवल इसी के लिए तुम्हे चार महीनों से खोज रही हूँ। अब तक तुम्हारी खोज में मैंने कहाँ-कहाँ की धूल फाँकी है, कह नहीं सकती। आज बाबा विश्वनाथ की कृपा से ही तुम मुझे मिल पाये। मेरी खोज समाप्त हुई। और अब......जिस तरह तुम अकेले हो, मैं खुद भी वैसी ही अकेली रह गई हूँ। पण्डितजी तो उसी दिन अपनी ही गाडी की दुर्घटना के शिकार हो गये। उसके बाद मेरी माँ भी.......!"

"अलका !" अरविन्द को लगा जैसे उसकी अपनी सारी पीडा अचानक बुझ गई हो। अलका के लिए उसके मन की मरुभूमि मे भी प्यार, सहानुभूति और ममता का सागर लहरा उठा हो। बोला, "यह तुम क्या कह रही हो ?"

"मैं सच कह रही हूँ," अलका अरविन्द के शरीर का अधिकाश भार अपने कंधे पर लिए आगे बढ़ती हुई बोली, "मेरी माँ ने भी जहर खा लिया। बच गई मैं। मैं तो जहर को बनी ही हूँ। मेरे जहर खाने का कोई मतलब नही था। किन्तु .. ....किन्तु मैं तुम्हे जीवन भर खोजती रह जाती। तुम्हे देखे बिना मैं किसी भी तरह मरना नही चाहती थी।"

अरविन्द को लगा जैसे वह गिरते-गिरते भी एक कुसुमित डाल पर आ टिका है। उसकी महक से उसके रिक्त प्राण अघा गये हैं। उसकी नस-नस में चेतना और शक्ति की नई लहरें दौड़ने लगी हैं।

"अलका, तुम नारी नही, देवी हो !" अरविन्द के सूखे होठों से अनायास शब्द फूट कर बाहर आ गये, "दुनिया कितनी अन्धी है ! ऐसी देवियों को भी पतित मानती है !"

"नही अरविन्द, ऐसा कुछ मत कहो," अलका के गीले स्वर गम्भीर हो गये, "देवी तो सुधा थी जिसने तुम्हारे चरणों में ही अपने प्राण तक न्योछावर कर दिये ! मैं खुद न देवी हूँ, न साधारण आदमी। आदमी भी रहती तो बहुत

था। जिसने मुझे आदमी से पशु बना दिया, आज भी उसके लिए न जाने कैसी ममता से बँधी हूँ। पण्डितजी हजार बुरे थे, पर...... उनका अपार स्नेह, उनकी कृपा........मेरे ही कारण उन्होंने अपनी जान दे दी! अब फिर कभी मुझे गिराने नही आयेंगे!"

अलका का गला रूँध गया। इसके आगे कुछ बोल नही सकी। अरविन्द ने नारी-चरित्र के ऐसे उत्कर्ष की कल्पना तक नही की थी। अलका अपनी पीड़ा में जितनी ऊँचाई पर दिख रही थी, अरविन्द अपनी पीड़ा में उतने ही नीचे उतरा हुआ लगा। कुछ देर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। अचानक अरविन्द ने प्रश्न किया, "तुम किधर चल रही हो अलका ?"

"हम लोग फिर नदी के किनारे रेत पर आ गये हैं। शायद मैंने तुम्हें यहाँ लाकर अच्छा नही किया। पहले चलो, कहीं खा-पी लो। फिर सोचेंगे कि क्या करना है।"

"नहीं अलका," अरविन्द दृढ़ स्वर में बोला, "अभी बिल्कुल भूख नही है। तुम्हारे साथ अभी और चलना चाहता हूँ।"

"कहाँ चलोगे ?"

"किनारे-किनारे ही चलो ना !"

"धार के अनुकूल ?"

"नही, प्रतिकूल !"

अरविन्द ने अपने तलवों के नीचे नदी की ठंढी गद्‌दीदार रेत को महसूस किया। सूरज पश्चिम दूर तक झुक गया था। उसकी तिरछी किरणें अरविन्द और अलका के ठीक सामने पड़ रही थी।

"तुमने एक बात नहीं पूछी अरविन्द ?" अचानक अलका ने मौन तोड़ा, "मेरा मतलब शोभा से है।"

"छोड़ो इन बातों को," अरविन्द बात काट कर बोला 'अभी हम चल किधर रहे हैं ?"

"तुमने ही तो कहा था, धार के विपरीत चलो !"

"हाँ, ठीक ही तो," अरविन्द जैसे कुछ याद करके बोला, "धार के अनुकूल चलने में कोई तुक नही अलका !"

अलका ने अपनी गर्दन पर अरविन्द की एक लम्बी गर्म साँस का स्पर्श अनुभव किया। कुछ क्षणों में अरविन्द की गुरु–गम्भीर आवाज फिर सुनाई पड़ी, "अजीब बात है अलका ! तुम, किरण, शोभा, सुधा, प्रीति, शान्ति, निर्मला देवी, तुम्हारी माँ आदि एक ही नारीत्व के परस्पर विरोधी रूप ! मैं खुद, विनोद, श्यामाकान्त, पण्डितजी, कान्तिबाबू आदि एक ही पुरुषत्व की अलग-अलग पहचान ! यह कुल नारीत्व और कुल पुरुषत्व मिलकर मानवता का एक ही सम्पूर्ण प्रवाह ! एकता के इस सागर में यह अनेकता कैसे, परस्पर विरोध क्यों ? शायद हम सभी किसी बहुव्रीहि के वैसे व्यधिकरण पदों की तरह हैं जो अनेक विभक्तियों में अलग-थलग अपनी इकाइयाँ बनाये हुए हैं। किन्तु जिसके हम सभी पद हैं, वह बहुव्रीहि खुद अभी खुल नहीं पाया है। एक ही प्रवाह को अंगभूत हम सभी लहरें मानवता की उस परा अभिव्यक्ति की ओर बहते चले जा रहे हैं। कोई हमें वहाँ जाने से रोक नहीं सकता !"

और अलका अरविन्द की बातों को कुछ समझती और कुछ नहीं समझती हुई उसे सहारा दिये बढ़ी जा रही थी।